चिन्तामणि



ब्रह्मर्षि श्री लक्ष्येश्वर आश्रमजी महाराज

का प्रसाद

टीकाकारः

त्र्यम्बकेश्वरश्चैतन्यः

॥ ॐ ॥

चिन्तामणिः

ग्रन्थकार

ब्रह्मर्षि श्रीलक्ष्येश्वर आश्रमजी महाराज

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव।।

टीकाकार

त्र्यम्बकेश्वर चैतन्य

प्रकाशक —
राकेश कुमार, विनोद कुमार
४९८/२८ साउथ सिविल लाइन,
मुजफ्फरनगर, उ.प्र. - २५१००१
फोन नं. : 09359984709



प्रथम संस्करण – ५०० प्रतियाँ



मूल्य – प्रेमयोग्यता च



मुद्रक
श्रीजी प्रिण्टर्स
नाटी इमली, वाराणसी-२२१००१
फोन : 0542-2201104, 3257329



अखिल-कोटि-ब्रह्माण्ड-नायक परात्पर परब्रह्म सद्गुरुदेव श्रीलक्ष्येश्वर आश्रमजी महाराज

अद्धितीय प्रतिभा के धनी हमारे महाराजश्री

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै स्वेष्टदेवस्वरूपिणे ।
यस्य वाक् सकलं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ।।

अनादि काल से (पुण्यातिपुण्यमयी सकल ब्रह्माण्ड की संपोषिका) यह भारत भूमि अपनी तप:पूत सन्तसन्तति के द्वारा सम्पूर्ण विश्व में अपनी गरिमा महिमा को अक्षुण्ण रखने में समर्थ रही है। अपने सच्चारित्र्य आलोक से जगत् भर के अज्ञान तिमिर को ध्वस्त करने वाले महापुरुषो में अन्यतम हैं पूज्य श्री स्वामी लक्ष्येश्वराश्रमजी महाराज।

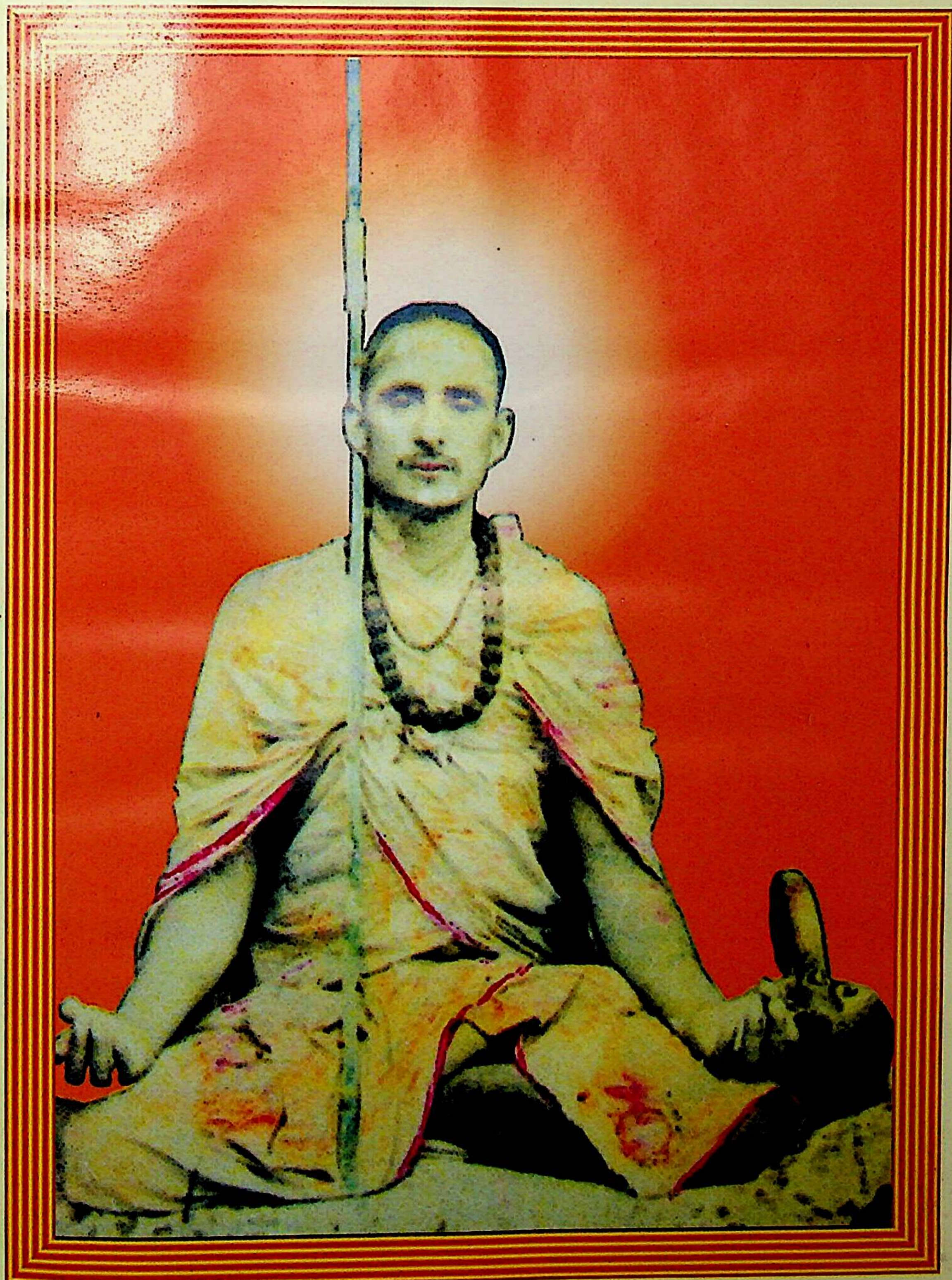
पूज्यश्री का प्रादुर्भाव जनपद हरदोई के मोहन्दीपुर नामक गांव में सं. १९७३ कार्तिक कृष्ण एकादशी को अग्निहोत्रनिरत कान्यकुब्जीय विप्रप्रवर भोलानाथ जी के पुत्र श्रीनन्हा जी के घर पूर्वदिशारूपी इन्द्रयाणी की पावनतम कोख से हुआ। इन बालदिवाकर का शैशव कालीन नाम हुआ लालविहारी (दुई=दोई=द्वित्व=द्विर्भाव=द्वैत का जो हरण कर ले वह पवित्र अद्वैतमयी भूमि है हरदोई, मोहं दीपयति ज्वालयति इति मोहन्दी मोह ममता को जलाकर भस्म कर दे वह जन्मभूमि मातृभूमि है मोहन्दीपुर) इन भावी महामनीषी के नैसर्गिक अद्वैतनिष्ठ मोहग्राह-विनिर्मुक्त स्वभाव के संपोषणार्थ ही दैव ने अल्प सांसारिक संरक्षक पिता का विप्रलम्भ करा दिया। पारिवारिक असहज वातावरण से हटाकर माता इन्हें लखनऊ ले आयीं, वहां योगेश्वर मठ के महन्त योगेश्वरानन्दजी के सम्पर्क में पूज्यश्री बीजभाव से वृक्षभाव की यात्रा पर निर्द्वन्द्व भाव से बढ़ने लगे; प्रथमा उत्तीर्ण कर अन्त:सुप्त वैराग्य जागृत हो व्यावहारिक जगत् में साकार हुआ और नाम पड़ा शान्तानन्द। तदनन्तर महाराजश्री ने सीतापुर में प. मधुसूदन दीक्षितजी के आश्रय में आयुर्वेदिक ज्ञान प्राप्त किया। इसके अनन्तर वात्सल्यमयी मातृछाया भी छिन गयी, भावगम्भीर पूज्यश्री ने माता का शास्त्रोक्त विधि से गोमती तट पर संस्कारादि सम्पन्न कर नारदजी के समान ही स्वयं को अनन्तशक्तिसंवलित ब्रह्म के अनुग्रह से अनुगृहीत माना तथा घर त्यागकर सर्वविध बन्धन विनिर्मुक्त हो पूज्य धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी के द्वारा कानपुर में आयोजित महायज्ञ का (लक्षचण्डी) दर्शन किया। सत्संग की वैराग्यानुवर्धिनी सुरभित त्रिपथगा में अवगाहन कर पूज्य स्वामी शान्तबोधाश्रमजी से २७ वर्ष की अवस्था में मिश्रित तीर्थ में संन्यासाश्रम की दीक्षा ले ली और योगपट्ट हुआ। स्वामी लक्ष्येश्वराश्रम जी परिव्राजक के रूप में साक्षात् वैराग्य की प्रतिपूर्ति सदृश प्रतीत होते थे। अर्धकुंभ के अवसर पर हरिद्वार में पूज्य स्वामी भूमानन्दजी से मिलन हुआ तो जन्मान्तरीय पारस्परिक आत्मीयता के संस्कार उद्बुद्ध हो उठे और उनमें एकात्मसत्ता का आभास संसार भर ने किया।

महाराजश्री **ऋते ज्ञानान् न मुक्तिः** के भाव को मन में संजोये सिरसा-नौहर-कुरुक्षेत्र-हरिद्वार-जयपुर-काशी आदि स्थलों पर ज्ञानार्थ गये। मुमुक्षु भवन काशी के संस्थापक स्वामी

घनश्यामानन्दजी का अन्तरंग भाव प्राप्त होने पर थी सर्वथा असंगताव्रती, निष्कल्मष, अपरिग्रही, संन्यास सिद्धान्तो को आचरण द्वारा साकार करने वाले स्वामीजी साधारण वेष में विश्व के महानतम विचारक, सर्वजनीन हित के उद्घोषक, ज्ञानकी उच्चतम भूमिकाओ में केलि करने वाले, 'सबके प्रिय सबके हितकारी सुख दुख सरिस प्रशंसा गारी' प्रदर्शन पराङ्मुख तथा द्रव्य निरपेक्ष-यायावर है। स्वामी जी सं. २००१ से अब तक ६५ चातुर्मास्यव्रत सम्पन्न कर चुके है, हरिद्वार के साथ ही महाराजश्री की कृपा कुरालसी उमरपुर-लुहसाना हुसैनपुर आदि गांवों पर विशेष रही। स्व. पूरनचन्द्र जी, ठा. लहना सिंहजी, बीराभगतजी, लाला पद्मसैनजी को माध्यम (निमित्त) बनाकर पूज्यश्री हमारे उद्धारार्थ ही इस क्षेत्र में पधारे। उनकी कृपा का अनुभव वाल्यावस्था से आज तक हम करते आ रहे है। जैसे बाल रक्षा में माँ, भक्त रक्षा में भगवान तन्मय रहते हैं, ठीक वैसे ही सद्गुरु भी शिष्य के प्राशस्त्य- वर्धन में सचेष्ट रहते हैं (जिमि बालक राखहि महतारी)। भिक्षान्नाशी पूज्य स्वामीजी ने शास्त्रों का अनुशीलन करके मननार्थ-लोकोपकारार्थ जो संकलन किया उसे उनकी ही कृपानुमति से प्रकाशित कराया जा रहा है। संयोग की बात है कि जिस दिन पूज्य स्वामीजी से वह संकलन (डायरी) प्राप्त हुआ उसी दिन डॉ. प्रेम प्रकाश लक्कड़जी, निवर्तमान आयकर आयुक्त (सह सम्पादक कल्याण) से गीता भवन में भेंट हो गयी। उन्होंने वह दिव्य संग्रह देखा और हमारे मन की भावना को अपने शब्दों में व्यक्त कर दिया—वे बोले-अद्भुत है प्रकाशित कराओ—उन्होंने ही कम्प्यूटरीकृत प्रकाशनका शोधन किया-अद्वितीय द्वितीय संयोग। जिस दिन काशी जी से परिशुद्ध यह संकलन मुजफ्फरनगर घर पहुंचा (उसी दिन त्र्यम्बकेश्वर चैतन्यजी पूज्य महाराजश्रीजी के दर्शनार्थ घर पधारे, संकलन को देखा तो देखते ही रह गये। आगे जो भी हुआ उसका प्रभाव 'मणि-प्रभा' के रूप में प्रस्तुत है। तदनन्तर श्री राधेश्याम खेमकाजी (प्रधान सम्पादक–गीता प्रेस) के माध्यम से परम सहयोगी के रूप में श्रीकृष्णकुमार खेमका जी प्राप्त हुए और उनके माध्यम से श्री अनूप नागर जी (श्रीजी प्रिन्टर्स, नाटी इमली, काशी) से भेंट हुई। इनकी सौम्यता से मन विश्वस्त हो गया कि यह कार्य शीघ्रातिशीघ्र सम्पन्न होगा। सहज ही यह सम्पूर्ण कार्य महाराजश्री ने न जाने कैसे करा लिया, हम जान ही नहीं पा रहे हैं—बस इतना समझ पाये हैं कि यह उनका ही कार्य है और उनके कृपा-प्रसाद से सम्पन्न हुआ है। अतः सभी सहभागी- सहयोगी बान्धवों सहित हम इस कार्य को उनके ही श्रीचरणों में समर्पित करते है।

प्रस्तोता

पवन कुमार



ब्रह्मलीन परम सद्गुरु ब्रह्मर्षि श्रीशान्तबोध आश्रमजी महाराज



ब्रह्मलीन परात्पर सद्‌गुरु ब्रह्मर्षि श्रीआनन्द आश्रमजी महाराज

ॐ

पुत्रत्व की सफलता के लिए ही सारस्वत यज्ञ द्वारा मातृ-पितृतर्पणम्

महाराजश्री जी की कृपामृत सुरसरिता
से ही परिपोषित-पल्लवित-पुष्पित-फलित
यह वंशवल्लरी—

१. पवन कुमार-कुसुमलता,

२. राजेश कुमार-पूनमरानी,

३. राकेश कुमार-ऊषारानी,

४. प्रदीप कुमार-मंजूरानी,

५. विनोद कुमार-सुधारानी,

६. शिवहरि-संगीतारानी,

७. दिनेश कुमार-कवितारानी

महत्पादरजोभिषिक्त सौभाग्यशाली सुजन

ब्रह्मलीन पिताश्री श्री लाला आनन्द प्रकाश जी

ब्रह्मलीन माताश्री श्रीमति शकुन्तलता देवी

भूमिका

शिवप्रदाभ्यां च शिवाप्रदाभ्यां शुभप्रदाभ्यां श्रुतिसौख्यदाभ्याम् ।
सदा सदानन्दनिधिप्रदाभ्यां नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ।।

अगाध महोदधि का विस्तार परिमाप ही दुःसाध्य है तब उसकी गंभीरता की बात कौन करे, कदाचित् सागर की गहराई नापी जा सके, वसुधा-तल के रजकण गिने जा सकें, आकाशमण्डल के नक्षत्र गिने जा सकें, वृक्षों के पत्र, मस्तिष्क की केशराशि भी सम्भवतया गिनी जा सकें, किन्तु किसी निरतिशयानन्दनिमग्न यति का अन्तःकरण-गाम्भीर्य कोई नापे तो कैसे? अन्तर्निहित गुणगणों की गणना करे तो कैसे?

आज जिन महापुरुष का सामीप्य हम पा रहे हैं अथवा ग्रन्थाकार विग्रह के रूप में हम पाने जा रहे है, वे उन विरल सन्तों में भी विरलतम निराले सन्त हैं, जो वाणी से नहीं दृष्टि से नहीं, उपस्थिति से नहीं, अपितु जिनके ध्यानमात्र से ही सर्वविध जिज्ञासायें शान्त, शंकायें समाप्त, प्रश्न स्वयं उत्तर बन जाया करते हैं, 'जिनके मुखमण्डल पर सौम्यता-शान्ति-गम्भीरता-प्रसादगुणयुक्त ईषत् स्मित विलासित आभा खेलती है, ब्रह्मानन्द सन्दोह की अप्रतिम दिव्य प्रभा जिनकी रोमराशि से छिटकती है, जो भक्ति-विरक्ति-भगवत्प्रबोध-अष्टांगयोग-युक्ति-सूक्ति लोकशिक्षणार्थ विविधोदाहरण प्रमाण सम्पन्न हैं, जो जीवन्मुक्त होकर भी, परम विरक्त होकर भी अपने निरालेपन से हम अज्ञानियों के कल्याणार्थ मात्र ही हमारे मध्य हैं'

महाराजश्री ने स्वाभिधान को सार्थक करते हुए—(लक्ष्यश्चासौ ईश्वरः इति लक्ष्येश्वरः, ईश्वरः एवं लक्ष्य इति लक्ष्येश्वरः तस्मिन् लक्ष्येश्वरे परमात्मनि-आत्मनि वा एवं आश्रम आश्रयः येषां ते लक्ष्येश्वराश्रमाः) अपने सम्पूर्ण जीवन में अध्ययन अध्यापनसे, समाराधन से, परिभ्रमण-तीर्थाटन से, शास्त्रानुमोदित सदाचरण-सम्पादन से, उसके सम्बर्धन से, शास्त्र महोदधि के अवगाहन से, आलोडन से सम्प्राप्त स्वानुभूति मणिकुलमणि पावनतम चिन्तामणि को प्राप्त किया, जिसकी सन्निधि में आकांक्षा करके स्वयं स्वलक्ष्य ईश्वर के आश्रय को पाया, अब और भी पा सकें इसके लिए परमगोप्य को भी लोक कल्याणार्थ प्रकाशित करने का सार्वजनीन हितसाधक अनुमोदन किया।

श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासधर्मशास्त्रादि-पारावारसंतरणपटु, तलस्पर्शी, सुदक्ष महाराजश्री की अप्रतिम शेमुषी ने गूढातिगूढतत्त्वों तक को सहज ही अपनी प्रतिभा के बल पर सहज बना दिया (अगम को सुगम बना दिया), जो बात सहस्रों शब्दों से व्यक्त करने में भी उलझी उलझी सी लगती है वहीं बात चित्रों-रेखाचित्रों द्वारा व्यक्त करने से तुरन्त ही अल्पज्ञ को भी अनायास ही समझ में आ जाती है।

पूज्य महाराजश्री की यही हृदयतन्त्री के सुप्ततारों को झंकृत करने वाली शैली इस अल्पज्ञ के अन्तर्मन में प्रेरणा बनकर दुःसाहस उत्पन्न कर गयी, शेष चिन्ता उस क्षण चली गयी जब उनका पावनतम आध्यात्मिक ऊर्जा-स्रोत-सम्पन्न कोमल-निर्मल करतल अपनी

अलक्षित ज्ञानमयी रश्मियों से इस मस्तिष्क के अवशिष्ट अज्ञान मूलक कुसंस्कारों को स्पर्श मात्र से नष्ट कर गया। अन्यथा उनकी कृपा के बिना उनकी आन्तरिक सम्पदा चिन्तन मणियों (चिन्तामणि) के बारे में लिखना तो दूर सोचना भी दिव्याभांप्रभासम्पन्न अखण्ड मार्तण्डमण्डल को दीप दिखाना जैसा ही होता। जो कुछ जैसा भी बन पड़ा है, वह उनका ही है, उनके लिए ही है, उनके द्वारा ही सम्पन्न है, कोई अतिशयोक्ति न समझे तो चिन्तामणि पूज्य महाराजश्री का अनुपम चिन्तनरूपात्मक वाङ्मय श्रीविग्रह ही है'।

इस नगर ने आध्यात्मिक जगत् को अपने औदार्य से, सौशील्य से, सौजन्य से, सौमनस्य से, सौभाग्य से, समय-समय पर अवसर दिया है, कि एक बार तो परमात्मा भी पुलकित हो मुस्करा उठता होगा, इठलाता होगा। इस नगर के सद्भाव व सौभाग्य को देखकर भारत वर्ष का कौन ऐसा महामनीषी है जो यहाँ नगर को उपकृत करने अथवा उपकृत होने नहीं आया-चाहे तो गंगा के पावन पुलिन के उत्संग में स्थित दिव्यतम मोक्षप्रद शुक्रतीर्थ (श्रीमद्भागवत की प्राकट्यस्थली) के कारण कहो अथवा बदरीनाथ-केदारनाथ भगवान् हरि-हर के घर है, और उन घरों का द्वार ३०० किमी. दूर हरिद्वार या हरद्वार है, जिन महाप्रभु के घर का द्वार ३०० किमी. दूर होगा तो द्वार के बाहर का आंगन क्या १०० किमी. नहीं हो सकता। अभ्यागत कहाँ रथ खड़े करते होंगे, कहाँ अनुमति के लिए प्रतीक्षाकाल का विश्राम करते होंगे.....। अतः यह नगर तो धन्यातिधन्य है, यहाँ तो सबको आना ही पड़ेगा, आते ही हैं, आयें ही हैं। अब किसको क्या मिला, कौन मिला, कितना मिला, कैसे मिला, कैसा मिला, कब मिला, कहाँ मिला, क्यों मिला—यह अपने अपने भाग्य की बात है।

चिन्तामणि प्रकाशन जैसा सारस्वत महायज्ञ भी इस धर्मनगरी के सौभाग्य सम्वर्धन का हेतु व साक्षी बनने जा रहा है। पवनजी के काशीनिवास में महेन्द्रजी श्यामलालजी वैभव, वीराभगतजी आदि के साथ पूज्य महाराजश्रीजी के दर्शनलाभार्थ जाने पर यह सेवा का अवसर प्राप्त हुआ। सुधीजन त्रुटियों को मेरा दोष मानकर सुधार लें, जीवनोपयोगी सूत्रों को महाराजश्री का प्रसाद मानकर जीवन में उतारें, इस दुस्तर सागर को पार करने में जिनका आशातींत सहयोग रहा है, जिन्होंने संशोधनपूर्वक इस ग्रन्थ को संवारा है वे पूज्य आचार्य दिवाकर वशिष्ठजी अत्यन्त आदरपूर्वक स्मरणीय हैं। साथ ही पूज्य ब्रह्मचारी श्री श्याम बाबाजी महाराज, स्नेही अवनीशजी एवं गुणप्रकाशजी का सहकार भी प्राप्त हुआ। सभी के भावुकतापूरित सहयोग का स्मरण करते हुए सदाशिव महादेव राजराजेश्वरी मां जगदम्बा के चरणारविन्दों में ये वाक्पुष्प समर्पित हैं।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ।।

त्र्यम्बकेश्वरश्चैतन्यः

अनुक्रमणिका

ॐ

।।श्रीसूर्याथर्वशीर्षम्।।

ॐ भद्रङ्कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रम्पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ᳪ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ।।
।।ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।।

सूदितस्वातिरिक्तारिसूरिनन्दात्मभावितम् ।
सूर्यनारायणाकारं नौमि चित्सूर्यवैभवम् ।।

हरिः ॐ अथ सूर्याथर्वाङ्गिरसं व्याख्यास्यामः। अस्य ब्रह्मा ऋषिः। गायत्री छन्दः। आदित्यो देवता। हंसः सोऽहमग्निनारायणयुक्तं बीजम्। हृल्लेखा शक्तिः। वियदादिसर्ग-संयुक्तं कीलकम्। चतुर्विधपुरुषार्थसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।। षट्स्वरारूढेन बीजेन षडङ्गरक्ताम्बुजसंस्थितम्। सप्ताश्वरथिनं हिरण्यवर्णं चतुर्भुजं पद्मद्वयाभयवरदहस्तं काल-चक्रप्रणेतारं श्रीसूर्यनारायणं य एवं वेद स वै ब्राह्मणः।।१।।

हे देवों! हम कानों से भद्रवचन ही सुने। हे यजनीय देवों! आँखों से हम भद्र (कल्याणकारी) दृश्य ही देखें। स्थिर अंगों से सदा देवों की स्तुति करते हुए हम अपने शरीरों से उस आयु को प्राप्त करें, जो देवों ने हमें दी है।

सुन्दर स्वरूप में उदित होते ही स्वकीय प्रकाश से अतिरिक्त अज्ञानान्धकार के विनाशक, समुपासक विद्वज्जनों के आनन्द के उद्भावक, चैतन्य प्रकाशरूप वैभव से परिपूर्ण सूर्याकार नारायण को मैं नमन करता हूँ।

भगवान् हरि और परम मङ्गलमय ओंकार एवं अथ शब्द को स्मरण करते हुए अथर्ववेदीय सूर्याथर्वशीर्ष की व्याख्या करते हैं। सूर्याथर्वशीर्षसूक्त के ब्रह्मा ऋषि हैं, गायन्त्री छन्द, आदित्य देवता, हँसः सोऽहं अग्निनारायण युक्त बीज, हृल्लेखा शक्ति, वियत् आदि सर्ग युक्त कीलक है और चतुर्विध (धर्म, अर्थ, काम मोक्ष) पुरुषार्थ प्राप्ति के निमित्त इसका विनियोग है।

षट् स्वरारूढ़ बीज से छः अंगों वाले रक्त कमल पर संस्थित, सात घोड़ों के रथ पर आरूढ़, स्वर्ण के समान वर्ण वाले, चतुर्भुज, हाथों में दो कमल पुष्प, अभय और

ॐ भूर्भूवः स्वः। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। सूर्याद्वै खल्विमानि भूतानि जायन्ते। सूर्याद्यज्ञः पर्जन्योऽन्नमात्मा।।२।।

नमस्त आदित्य। त्वमेव प्रत्यक्षं कर्मकर्तासि। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्माऽसि। त्वमेव प्रत्यक्षं विष्णुरसि। त्वमेव प्रत्यक्षं रुद्रोऽसि। त्वमेव प्रत्यक्षमृगसि। त्वमेव प्रत्यक्षं यजुरसि। त्वमेव प्रत्यक्षं सामासि। त्वमेव प्रत्यक्षमथर्वासि। त्वमेव सर्वं छन्दोऽसि।।३।।

आदित्याद्वायुर्जायते। आदित्याद्भूमिर्जायते। आदित्यादापो जायन्ते। आदित्याज्ज्योतिर्जायते। आदित्याद् व्योम दिशो जायन्ते। आदित्याद्देवा जायन्ते। आदित्याद्वेदा जायन्ते। आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति।।४।।

असावादित्यो ब्रह्म। आदित्योऽन्तःकरणमनोबुद्धिचित्ताहंकाराः। आदित्यो वै व्यानः समानोदानोऽपानः प्राणः। आदित्यो वै श्रोत्रत्वक्चक्षूरसनघ्राणाः। आदित्यो वै शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः। आदित्यो वै वचनादानागमनविसर्गानन्दाः। आनन्दमयो ज्ञानमयो विज्ञानमय आदित्यः।।५।।

वरद मुद्रा धारण किये हुए काल चक्र के प्रणेता श्री सूर्यनारायण को जो इस प्रकार जानता है, वह निश्चय ही ब्राह्मणत्व से युक्त है।।१।।

व्याहृति सहित सकल जगत् के समुत्पादक सविता देव के वरणीय तेज को हम धारण करते हैं—उनके वन्दनीय तेज का हम ध्यान करते हैं। वे हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रेरित करें। सूर्य स्थावर जङ्गमात्मक जगत् के आत्मा हैं, सूर्य से पञ्च महाभूत समुत्पन्न होते हैं, सूर्य से ही यज्ञ, पर्जन्य (वर्षा), अन्न और जीव उत्पन्न है।।२।।

आदित्य को नमस्कार है, तुम ही प्रत्यक्ष कर्म कर्त्ता हो, तुम ही प्रत्यक्ष ब्रह्म हो, तुम ही प्रत्यक्ष विष्णु हो, तुम ही प्रत्यक्ष रुद्र हो, तुम ही प्रत्यक्ष ऋक्, यजु, साम और अथर्ववेद हो, तुम ही समस्त छन्द हो।।३।।

आदित्य से वायु उत्पन्न होता है, आदित्य से पृथिवी उत्पन्न होती है, आदित्य से जल उत्पन्न होता है, आदित्य से ज्योति (अग्नि) उत्पन्न) होती है, आदित्य से आकाश और दिशाएँ उत्पन्न होती हैं, आदित्य से देवता उत्पन्न होते हैं, आदित्य से वेद उत्पन्न होते हैं, यह आदित्य ही मण्डल रूप में तपते हैं।।४।।

यह आदित्य (सूर्य) ही ब्रह्म हैं, आदित्य ही अन्तःकरण, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार हैं, आदित्य ही व्यान, समान, उदान, अपान और प्राण रूप से पञ्च प्राण हैं, आदित्य ही ज्ञानेन्द्रियां-श्रोत्र, त्वक्, नासिका, नेत्र और रसना हैं, आदित्य ही शब्द, स्पर्श, रूप,

नमो मित्राय भानवे। मृत्योर्मा पाहि। भ्राजिष्णवे विश्वहेतवे नमः। सूर्याद्भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु। सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च।।६।।

चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्नऽउत पर्वतः। चक्षुर्धाता दधातु नः। आदित्याय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्।।७।।

सविता पश्चात्तात्सविता पुरस्तात्सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात्। सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः।।८।।

ॐमित्येकाक्षरं ब्रह्म। घृणिरिति द्वे अक्षरे। सूर्य इत्यक्षरद्वयम्। आदित्य इति त्रीण्यक्षराणि। एतस्य वै सूर्यस्याष्टाक्षरो मनुः। यः सदाहरहर्जपति स वै ब्राह्मणो भवति स वै ब्राह्मणो भवति। सूर्याभिमुखो जप्त्वा महाव्याधिभयात्प्रमुच्यते। अलक्ष्मीर्नश्यति। अभक्ष्यभक्षणात्पूतो भवति। पतितसंभाषणात्पूतो भवति। असत्संभाषणात्पूतो भवति। मध्याह्ने सूर्याभिमुखः पठेत् सद्योत्पन्नपञ्चमहापातकात्प्रमुच्यते।।९।।

रस, गन्ध पञ्च तन्मात्राएँ हैं, आदित्य ही वचन (वाक्), आदान (पाणि), आगमन (पाद), विसर्ग (पायु), आनन्द (उपस्थ) ये पञ्च कर्मेन्द्रियाँ हैं, आदित्य आनन्दमय, ज्ञानमय एवं विज्ञानमय हैं।।५।।

मित्र भानु को नमस्कार है, मृत्यु (भय) से मेरी रक्षा करो, विश्व कल्याण कर्त्ता तेजस्वी सूर्य के लिए नमस्कार है, सूर्य से ही सृष्टि उत्पन्न होती है, सूर्य से ही पालित है और सूर्य में ही विलय को प्राप्त होती है, अतः जो सूर्य है वह ही मैं हूँ।।६।।

वे सविता देवता हमारे नेत्र हैं, पर्व काल द्वारा पुण्य का आख्यान करने से वे पर्वत हैं, सब को धारण करने से वे धाता नामक सूर्य हमारे नेत्रों की शक्ति के धारक हों—वर्धक हों। आदित्य को हम जानें, सहस्रांशु का ध्यान करें। वे सूर्य हमें सन्मार्ग में प्रेरित करें।।७।।

आगे सविता, पीछे सविता, उत्तर में सविता, दक्षिण में सविता, ऊपर सविता, नीचे सविता, सविता हमारी सर्वविध रक्षा करें, सभी प्रकार से सविता हमें दीर्घ आयु प्रदान करें।।८।।

ॐ—यह एकाक्षर ब्रह्म है, घृणि—ये दो अक्षर हैं, सूर्य—ये दो अक्षर हैं, आदित्य—ये तीन अक्षर हैं, इस प्रकार यह सूर्य का अष्टाक्षर मन्त्र है। जो सदा निरन्तर (प्रतिदिन) इस अष्टाक्षर मन्त्र का जप करता है वह निश्चित ही ब्राह्मण होता है, वह ही ब्राह्मण होता है, अर्थात ब्रह्मवेत्ता होता है। सूर्याभिमुख इस मन्त्र का जप करने से बड़ी से बड़ी व्याधियों के भय से मुक्ति प्राप्त होती है, दरिद्रता का नाश होता है, अभक्ष्य भक्षण के दोष से

सैषा सावित्री विद्या न किंचिदपि न कस्मैचित्प्रशंसयेत्। य एतां महाभागः प्रातः पठति स भाग्यवाञ्जायते। पशून् विन्दति। वेदार्थं लभते। त्रिकालमेतज्जप्त्वा क्रतुशतफलमवाप्नोति। यो हस्तादित्ये जपति स महामृत्युं तरति स महामृत्युं तरति य एवं वेद।।१०।। इत्युपनिषद्।। हरिः ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ३।।

।।इति सूर्याथर्वशीर्षं समाप्तम्।।

पवित्र हो जाता है, पतित के साथ वार्तालाप से लगने वाले प्रत्यवाय से मुक्ति प्राप्त कर पवित्र हो जाता है। मध्याह्न में सूर्याभिमुख होकर जप करने से आर्द्र पञ्च महापापों से मुक्ति हो जाती है।।९।।

यह सावित्री विद्या है, इसको धारण करके थोड़ी भी किसी को भी न सुनाये और न ही किसी के सम्मुख इसकी प्रशंसा करते हुए प्रकाशित करे। जो महाभाग प्रातःकाल में इसका पाठ करता है वह भाग्यवान् हो जाता है, पशुधन प्राप्त करता है, वेदार्थ उपलब्ध होता है। इसका त्रिकाल जप करने से सौ यज्ञ करने का फल प्राप्त हो जाता है, जो हस्त नक्षत्र युक्त आदित्य तिथि (सप्तमी-रविवार) में इसे जपता है वह महामृत्यु को जीत लेता है, वह महामुत्यु से पार हो जाता है।।१०।। यह जानने योग्य विद्या है, तदुपरान्त हरिः स्मरण करते हुए पुनः भद्रं कर्णेभिः—यह शान्ति मन्त्र बोलना चाहिए।

●

ॐ

श्रीसाम्बसादशिवः शरणम्

चिन्तामणिः

संन्यस्तसर्वसंकल्पः समः शान्तमना मुनिः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा ज्ञानवान्मोक्षवान्भव।। (अन्नपूर्णोपनिषत्)

बलातिबला विद्या

ॐ बलातिबलयोर्विराट् पुरुष ऋषिः, गायत्री छन्दः, सविता देवता, अकारो बीजम्, उकारः शक्तिः, मकारः कीलकम्, क्षुधादिनिरसने विनियोगः। क्लीं इत्यादि षडङ्गन्यासः।।

ध्यानम्–अमृतकरतलार्द्रौ सर्वसञ्जीवनाढ्यावघहरणसुदक्षौ वेदसारे मयूखे। प्रणवमय-विकारौ भास्कराकारदेहौ सततमनुभवेऽहं तौ बलातिबलान्तौ।।

मन्त्रः–ॐ ह्रीं बले महादेवि ह्रीं महाबले क्लीं चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धिप्रदे तत्सवितुर्वरदात्मिके ह्रीं वरेण्यं भर्गो देवस्य वरदात्मिके अतिबले सर्वदयामूर्ते बले

संन्यस्तसर्वसंकल्प

समस्त संकल्पों का परित्याग कर, सभी प्राणियों में समता का दर्शन करते हुए शान्त चित्त अर्थात् शम-दमादि से सम्पन्न संन्यासयोगनिष्ठ आत्मा वाला ज्ञानवान् मुनि मोक्ष को प्राप्त करे।

बला-अतिबला मन्त्र महाविद्या

बला-अतिबला मन्त्र के विराट् पुरुष ऋषि हैं, गायत्री छन्द, सविता देवता, अकार बीज, उकार शक्ति और मकार कीलक है। क्षुधा आदि निवारण में इस मन्त्र का विनियोग है। 'क्लीं,—इत्यादि से षडङ्गन्यास करना चाहिए। यथा—ॐ क्लीं हृदयाय नमः। ॐ क्लीं शिरसे स्वाहा। ॐ क्लीं शिखायै वषट्। ॐ क्लीं कवचाय हुम्। ॐ क्लीं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ क्लीं अस्त्राय फट्।

भगवती बला-अतिबला का ध्यान

जिनके कर-तल अमृत द्रव से आर्द्र हैं, (जो अपने अमृतस्रावी कर-कमलों से अधिकारी आराधकों को अभिसिञ्चित करती हैं) चराचर जगत् को सञ्जीवन प्रदान करने में जो प्रसिद्ध

सर्वक्षुद्भ्रमोपनाशिनि धीमहि धियो यो नो जाते प्रचुर्यो या प्रचोदयादात्मिके प्रणवशिरस्कात्मिके हुं फट् स्वाहा।। (सावित्र्युपनिषत्)

विश्वामित्रो रामाय

मन्त्रग्रामं गृहाण त्वं बलामतिबलां तथा।
न श्रमो न ज्वरो वा ते न रूपस्य विपर्ययः।।
न च सुप्तं प्रमत्तं वा धर्षयिष्यन्ति नैर्ऋताः।
बलामतिबलां चैव पठतस्तात राघव।।
न सौभाग्ये न दाक्षिण्ये न ज्ञाने बुद्धिनिश्चये।
नोत्तरे प्रतिवक्तव्ये समो लोके तवानघ।।
बलातिबला चैव सर्वज्ञानस्य मातरौ।
क्षुत्पिपासे न ते राम पठतस्तात राघव।।
पितामहसुते ह्येते विद्ये तेजःसमन्विते।

(वाल्मीकीय रामायण १.२२)

हैं, प्राणियों के पापों का अपहरण करने में जो अत्यन्त कुशल हैं, जो सूर्य के समान परम प्रकाशक शरीर वाली हैं,—ऐसी वेदसारभूता, ज्योतिर्मयी, प्रणवस्वरूपा, भगवती बला और अतिबला का मैं निरन्तर ध्यान करता हूँ।

तदुपरान्त गुरुपरम्पराप्राप्त उपर्युक्त मन्त्र अधिकारी साधक सिद्ध गुरु की सन्निधि में विहित संख्या में जप-पाठ क्रिया सम्पन्न करे।

मन्त्र-माहात्म्य—वाल्मीकीय रामायण में इस बला-अतिबला महाविद्या मन्त्र की सविधि दीक्षा देते हुए लक्ष्मण सहित श्री राम से कहते हैं—हे राम! तुम इस वला-अतिबला मन्त्र समूह (महामन्त्र) को आदर पूर्वक ग्रहण करो, इस से तुम्हें श्रम (थकान-दुर्बलता), ज्वर व सौन्दर्यविकार नहीं होगा। इसके प्रभाव से सुप्तावस्था व प्रमाद (असावधानी) की स्थिति में भी राक्षस प्रभावी नहीं हो सकेंगे। तुम्हारे द्वारा इस मन्त्र का पाठ करने से संसार में कोई भी सौभाग्य में, दक्षता में, ज्ञान में, निश्चयात्मिका बुद्धि में और वचन-प्रतिवचन में तुम्हारी समानता नहीं कर सकेगा। यह महाविद्या सभी प्रकार के ज्ञान की जननी है, तेजस्विता से परिपूर्ण यह बला-अतिबला विद्या पितामह ब्रह्मा जी की पुत्री है। हे राघव। इसके पाठ-मात्र से तुम्हें भूख-प्यास नहीं लगेगी।

अध्यात्म रामायण में इस सन्दर्भ को निम्नाङ्कित श्लोक के माध्यम से स्पष्ट किया गया है—

महामुद्रा/योगचूडामण्युपनिषत्

वक्षोन्यस्तहनुः प्रपीड्य सुचिरं योनिं च वामांघ्रिणा
हस्ताभ्यामनुधारयन्प्रसरितं पादं तथा दक्षिणम्।
आपूर्य श्वसनेन कुक्षियुगलं बध्वा शनै रेचयेत्
सेयं व्याधिविनाशिनी सुमहती मुद्रा नृणां कथ्यते।।

शोधनं नाडिजालस्य चालनं चन्द्रसूर्ययोः।
रसानां शोषणं चैव महामुद्राभिधीयते।।

चन्द्रांशेन समभ्यस्य सूर्यांशेनाभ्यसेत्पुनः।
या तुल्या तु भवेत्संख्या ततो मुद्रां विसर्जयेत्।।

क्षयकुष्ठगुदावर्तगुल्माजीर्णपुरोगमाः।
तस्य रोगाः क्षयं यान्ति महामुद्रां तु योऽभ्यसेत्।।

ददौ बलां चातिबलां द्वे विद्ये देवनिर्मिते।
ययोर्ग्रहणमात्रेण क्षुत्क्षामादि न जायते।।

श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी रामचरितमानस के बालकाण्ड में इस विद्या की चर्चा की है—

विद्यानिधि कहं विद्या दीन्हीं।
जाते लागि न क्षुधा पिपासा। अतुलित बल तन तेज प्रकासा।।

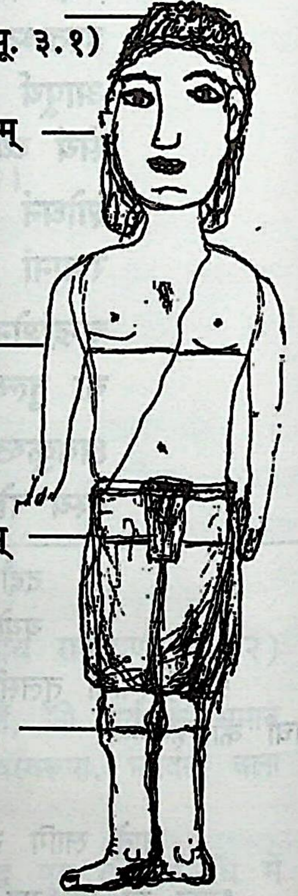
ध्यान रहे कि यह देवनिर्मित अलौकिक महाविद्या है और शास्त्रज्ञ सिद्ध गुरु द्वारा श्रेष्ठ साधक शिष्य को गोपनीय रूप से लोक-कल्याण या आत्म-कल्याण के लिए प्रदान की जाने वाली विद्या है। संसारी जन पुस्तक में पढ़कर इसका प्रयोग न करें।

महामुद्रा

सर्वप्रथम हनु (ठोड़ी) को वक्षःस्थल पर देर तक दृढ़तापूर्वक रखते हुए बायें पैर की एड़ी से योनि (वृषणमूल) को पीडित करें—दबायें तथा सीधे पैर को सीधा फैलाकर पैर के अग्रभाग को दोनों हाथों से पकडें, फिर दोनों कोरवों (कुक्षि प्रदेश) को बाँधकर श्वास भरें-खींचें (पूरक करें) श्वास खींचते समय ऐसा लगेगा कि कोरवें बँध सी गयी हैं। तदनन्तर शनैः शनैः रेचक करें अर्थात् भरी हुई श्वास को धीरे-धीरे बाहर निकालें। यह अति विशिष्ट व सर्व व्याधि-विनाशिनी महामुद्रा मनुष्यों के कल्याण के लिए कही गयी है। इस मुद्रा के उत्तम प्रयोग से नाडीगत समस्त दोषों-अवरोधों का शोधन हो जाता है तथा सूर्य व चन्द्र से सम्बन्धित स्वरों, इडा-पिंगला का सञ्चालन विशुद्ध रूप से होता है। यह मुद्रा अपेक्षित

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा

५.	स्वच्छवारिवत् हम् सदाशिवः शमनी, नाभसी धारणा
४.	कृष्णम्, ईश्वरः यम् भ्रामणी, वायवी धारणा
३.	रक्तम्, रुद्रः रम् दाहिनी, तैजसी धारणा
२.	श्वेतम्, विष्णुः वम् प्लाविनी, वारुणी धारणा
१.	पीतम्, ब्रह्मा लम् अवष्टम्भिनी, पार्थिवी धारणा



(जाबालदर्शनोपनिषत्)

रसों का पोषण करती हुई अतिरिक्त व अनावश्यक रसों का शोषण करती है। अतः इस मुद्रा का महामुद्रा के रूप में अभिधान किया गया है। चन्द्रांश (इडा-वाम स्वर) से अभ्यास करके सूर्यांश (पिंगला-दक्षिण स्वर) से पुनः अभ्यास करें, जब दोनों (चन्द्रांश-सूर्यांश) की संख्या तुल्य हो जाये तब इस मुद्रा का विसर्जन करना चाहिए।

इस महामुद्रा के सविधि प्रयोग से क्षयरोग, कुष्ठरोग, गुदावर्त-गुदा के सम्बन्धित अर्शादि रोग, गुल्म तथा अजीर्ण आदि विविध असाध्य रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

धारणा

देह के एक देश विशेष में चित्त की एकाग्रता को धारणा कहते हैं।

१. पार्थिवी धारणा—पाद से जानुपर्यन्त (पैरों से जंघा तक) देह भाग में चित्त की एकाग्रतापूर्वक वहाँ के अधिष्ठातृदेवता ब्रह्मा (अन्यत्र-शिवाराधनप्रसङ्ग में निवृत्तिकलात्मा

सद्योजात) का विशिष्ट चिन्तन करते हुए चतुरस्र (चौकोर) पीत वर्ण, विन्दु युक्त लं, बीज-सहित पृथिवी मण्डल का ध्यान करे। यह चित्त को सुस्थिर करने वाली अवष्टम्भिनी, पृथ्वी तत्त्वात्मिका-पार्थिवी धारणा कही जाती है।

२. **वारुणी धारणा**—जानु से पायु (गुद्प्रदेश) पर्यन्त एकाग्र चित्त होकर शरीर भाग में (नाभ्यादिजानुपर्यन्तं यह पाठ भी मिलता है) तदधिष्ठातृदेवता विष्णु (प्रतिष्ठा कलात्मा वामदेव) का सुष्ठु चिन्तन करते हुए अर्ध चन्द्राकार (धनुषाकार) शुभ्र (श्वेत) वर्ण, सबिन्दुक वं, बीजसहित वरुणमण्डल का ध्यान करे। यह प्लाविनी—रस से प्लावित कर देने वाली जलात्मिका वारुणी धारणा है।

३. **तैजसी धारणा**—पायु से हृदय पर्यन्त (अन्यत्र नाभ्यादिहृदय पर्यन्त) देहभाग में चित्त को सुस्थिर रखते हुए वहाँ के अधिष्ठातृदेवता रुद्र (विद्या कलात्मा अघोर) का सम्यक् चिन्तन करके त्रिकोण, रक्तवर्ण, बिन्दुयुक्त 'रं' बीजसहित वह्निमण्डल का ध्यान करे।

यह असत् वासनाओं को दग्ध कर देने वाली दाहिनी, प्रकाशात्मिका तैजसी धारणा है।

४. **वायवी धारणा**—हृदय से भ्रूमध्य पर्यन्त देहभाग में चित्त की एकाग्रतापूर्वक तदधिष्ठातृदेवता ईश्वर (शान्तिकलात्मा तत्पुरुष) का विचिन्तन करके वर्तुलाकार कृष्णवर्ण (धूमवर्ण) सबिन्दुक 'यं' बीजसहित वायुमण्डल का ध्यान करे। यह भ्रामणी-सर्वथा सर्वदोष शून्य, भ्रमापहारिका, वाटवात्मिका वायवी धारणा है।

५. **नाभसी धारणा**—भ्रूमध्य (आज्ञा चक्र) से ब्रह्मरन्ध्र (सहस्रार चक्र) पर्यन्त देहभाग में वहाँ के अधिष्ठातृदेवता सदाशिव (शान्त्यतीत कलात्मा ईशान) का विशिष्ट रूप से चिन्तन करते हुए सप्त कोणाकार, स्वच्छ वारिवत् नीरूप-अवर्ण, सबिन्दुक 'हं' बीज समन्वित आकाश मण्डल का ध्यान करे।

यह शमनी—अन्त:करण को पूर्णरूपेण नियन्त्रित करने वाली आकाशात्मिका नाभसी मुद्रा है।

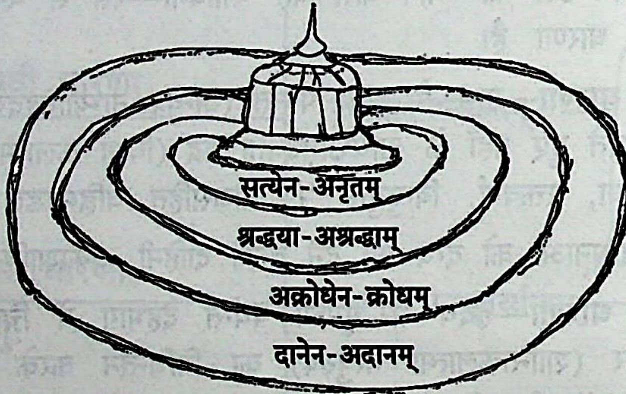
इस प्रकार पञ्चधारणा द्वारा पञ्च भूत मण्डलों का योगशास्त्र विधि से ध्यान करके फिर उन्हें उनके कारणों में प्रविलापन कर दिया जाता है। यथा—पृथ्वी को जल में, जल को अग्नि में, अग्नि को वायु में, वायु को आकाश में। तदुपरान्त आकाश को अहङ्कार में, अहङ्कार को महत् में, महत्तत्व को प्रकृति में और प्रकृति को आत्मा (ब्रह्म) में।

उस अवस्था में साधक नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव होकर ब्रह्मरन्ध्रगत पद्म के मध्य में अवस्थित शशिशुभ्र सच्चिदानन्दघन साम्बसदाशिव के ध्यान में 'अद्वैत भावापन्न हो जाता है।

यहाँ धारणासन्दर्भित कठिन विषय को चित्र के माध्यम से सरल व सुस्पष्ट किया गया है।

कल्माषसाम/(शतश्लोकी १९ टी.)

हाउ सेतूँस्तर दुस्तरान् दानेनादानं, हाउ अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य, हाउ सेतूँस्तर दुस्तरान् अक्रोधेन क्रोधम्, हाउ पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाभाइ सेतूँस्तर दुस्तरान् हाउ श्रद्धया अश्रद्धां, हाउ यो मा ददाति स इदेव मावाः, हाउ सेतूँस्तर दुस्तरान् सत्येनानृतं, हाउ अहमन्नमन्नमदन्तमाद्मि, हाउवा एषा गतिः एतदमृतं स्वर्गच्छ ज्योतिर्गच्छ सेतूँस्तीर्त्वातत्तुरः ॐ।।



कल्माष साम

हाउ—यह अव्यय पद सम्बोधन वाची है। हे प्राणियों! सुनो, तुम इस दुस्तर-दुःखपूर्वक तरने योग्य संसारसागर को वेदविहित सेतुओं से सुखपूर्वक पार कर सकते हो। अदान (लोभ) के दुस्तर सागर को दान के सेतु से पार करो। मैं ही सत्य-असत्य जगत् के पहले हुआ हिरण्यगर्भ हूँ। तुम क्रोध के दुर्लङ्घ्य सागर पर अक्रोध (क्षमाशीलता) का सेतु बनाकर विजय प्राप्त करो। तुम इस दुस्तर संसार-सागर से पार हो जाओ। श्रद्धा के द्वारा अश्रद्धा को जीतो, क्योंकि श्रद्धावान् ही ज्ञान प्राप्ति का अधिकारी होता है, श्रद्धा सेही सत्य की प्राप्ति होती है। जो मुझे देता है वह इस प्रकार मेरी रक्षा करता है जिसमें तुम्हारी रक्षा निहित है। असत्यरूपी दुर्गम सागर को सत्य के सेतु से पार करो। जो मुझे अन्न स्वरूप को दान न करता हुआ स्वयं भोगता है, उस अन्नभक्षण करने वाले को मैं अन्नरूप से भक्षण करता हूँ। प्राणियों! यह जो अमृत है, यही तुम्हारी गति है—यही गन्तव्य या प्राप्तव्य है। तुम स्वर्ग (देवत्व) को प्राप्त करो। अज्ञानान्धकार को विदीर्ण करते हुए प्रकाश की ओर बढ़ो। संसार के समस्त दुस्तर सागरों को शास्त्रोक्त सेतुओं से पार करते हुए अन्त में उन सेतुओं से भी परे परम सत्य परमात्मा को प्राप्त करो।

यहाँ उक्त कल्माष साम के आधार पर प्राणी को प्राप्तव्य स्थान पर पहुँचने में बाधक अदान (लोभ-लोलुपता) आदि दुस्तर सागरों को दान, अक्रोध आदि सेतुओं से पार होने का प्रकार चित्र के माध्यम से प्रतिपादित किया गया है।

ऋक्स्वस्तिः

हरिः ॐ स्वस्ति नो मिमीता मश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः। स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावा पृथिवी सुचेतुना।।

यजुःस्वस्तिः

स्वस्ति पन्थामनुसंचरेम सूर्याचन्द्रसामिव।
पुनर्ददताऽघ्नता जानता संगमेमहि।।

सामस्वस्तिः (कौथुमिशाखा)

ॐ त्रातारमिन्द्रमविता। र मी२, ३न्द्राम। हवे हवे सुहवं शू।

रमी २, ३न्द्राम्। हु वा इ नु शक्रं पुरहूं।

त मी २, ३न्द्राम्। इदं स्वस्ति नो मघवा। वा ३, ४, ३, ४, ३, इ तु ३ वा ५ इन्द्रा ६, ५, ६।।

ॐ हाउ ३ वा। विश्वतोदावन्विश्वतो न आभर। हाउ ३ वा। यन्त्वाराविष्ठ मीमहे। हाउ ३ वा। आयुः। हाउ इ वा। सू वः। हाउ वा। ज्योतिः हाउ ३ वा। ई २, ३, ४, ५।।

ऋक्स्वस्ति

अश्विनी कुमार हमारे लिए स्वस्ति के निर्माता हों, भग और अदिति देवी भी हमारे लिए निरन्तर स्वस्ति प्रदान करें, पूषा और असुर तक स्वस्तिकारण हों, अन्तरिक्ष और पृथिवी हमें सुस्थिर स्वस्ति दें।

यजुःस्वस्ति

हम कल्याणप्रद मार्ग पर चलें, जैसे सूर्य और चन्द्रमा सन्देहरहित विघ्ननाशपूर्वक श्रेष्ठ मार्ग पर चलते हैं। जैसे वे भगवान् के द्वारा निर्दिष्ट दायित्वपूर्ण मार्ग का अनुगमन करते हैं वैसे ही हम पारस्परिक स्नेहपूर्वक शास्त्रोपदिष्ट मार्ग का अनुसरण करें।

सामस्वस्ति

सर्वविध आपत्तियों से रक्षा करने वाले तथा सुन्दर प्रकार से याज्ञिकों के द्वारा आहूत किये जाने वाले पराक्रमी इन्द्र का आह्वान करता हूँ। ये धनवान् इन्द्र हमें स्वस्ति प्रदान करें।

सब कुछ देने वाले इन्द्र सभी प्रकार से हमारा भरण-पोषण करें। सर्वत्र समाविष्ट आपको हम नमस्कार करते हैं। हमें आयु, प्राण तथा ज्योति प्रदान करें।

अथर्वणः स्वस्तिः

हरिः ॐ शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम् शान्ता उदवन्ती रायः शान्ता नः सन्त्वौषधीः।।

अथ वृहत्साम

ऋग्द्वयमैन्द्र प्रगाथःशम्युदृष्टः वृहत्साम्नोयोनिरध्वर्य्योर्गानस्योक्तेरागावृहतो-
१र २र २१ २र ३१२
द्वितीयासतोबृहतोवृहदुत्तरेमक्षे इतिश्रुतेः ॐ त्वामिद्धिहवामहेसातौ वाजस्यकारवः।
२ ३१ ३१२३१ २३ ३१२
त्वांवृत्रेष्विन्द्रस्वत्पतिन्नरस्त्वांकाष्ठास्वर्व्वतः।।१।।

१२२र ३२३१२३१२
सत्वन्नश्चित्रवज्रहस्त धृष्णुयामहस्त वानोऽअद्रिवः।
२र ३२र ५१२ ३ २र ३२ १२
गामश्व छंरथ्यमिन्द्रसंकिरस-वाव्वाजेन जिग्युषे।।२।।

।। इति वृहत्साम।।

अथर्वणस्वस्ति

द्युलोक हमें शान्तिप्रदायक हो, पृथिवी हमें शान्ति दे, यह अन्तरिक्ष भी शान्त हो, ये जलपूरित नदियाँ हमारे लिए शान्तिस्वरूपा रहें और ओषधियाँ हमें शान्त करें।

वृहत्साम

हे परमेश्वर! हम स्तोता ऊर्ध्वगति दान प्राप्ति की कामना से आपका ही आह्वान करते हैं। अन्य विवेक शील मनुष्य शत्रुओं की शत्रुता से आक्रान्त सज्जनों की रक्षा करने वाले हे परमेश्वर आप का ही आवाहन करते हैं। जितना भी मनुष्य के द्वारा प्रयत्न सम्भव है वह सब करने के बाद भी जब समस्त प्रयत्न असफल हो जाते हैं तब वह आपका ही स्मरण करते हैं।

हे विचित्रवज्रहस्त! स्वकीय तेज से स्तूयमान हे परमेश्वर! आप हमें गाय और रथवहनसमर्थ अश्व प्रदान करें, जैसे विजय शील अश्व की रक्षापूर्वक अन्नादि प्रदान करते हैं।

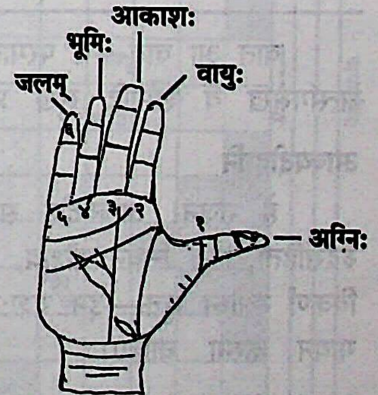
ज्येष्ठसाम

अथ ज्येष्ठसाम

३ १ २३ १२३३२३ १ ३२३२उ ३२ ३ २
ॐ मूर्द्धानन्दिवो अरतिम्पृथिव्या वैश्वानरमृत आजातमग्निम्।
३ २ ३२३१ २३१२ ३ २१२ ३२
कविर्ठंसम्राजमतिथिंजनानामा सन्नापात्रञ्जनयन्त देवाः।।१।।
१र २र ३ १ २३ २३ २ ३२ ३१र २र
त्वांविश्वेअमृतजायमानठं शिशुं न देवा अभिसंनवन्ते।
२३ १३ ३१२र २३ ३१र १र २र
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन्वैश्वानर-यत्पित्रोरदीदेः।।२।।
१२ ३२३ १२ ३२३ १२३ २३ १र २
नाभियं ज्ञानां सदनठं रयीणां महा माहावमभि संनवन्त।
३ २ क२र३२२ ३ १२ ३२
वैश्वानरठं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः।।३।।

।।इति ज्येष्ठसाम।।

३२३१ ३१२ ३२ २ ३२
सम्राजमतिथिं जनाना मासन्नायात्र जनयन्त देवाः।।१।।
१र २ र ३ २ ३
त्वां विश्वे अमृत जायमान ठं।।



ज्येष्ठ साम

द्युलोक के मूर्धा, पृथिवी को गति देने वाले, सत्यता से परिपूर्ण हृदय में उत्पन्न होने वाले, क्रान्त द्रष्टा (कवि) सम्राट् यज्ञमानों के अतिथि, सर्वव्यापक, सर्वजन हितैषी वैश्वानर-परमात्मा को भक्तजन अपने हृदय में प्रकट करते हैं। तुम्हारे यज्ञों द्वारा अमृतत्व प्राप्त कर वे वैश्वानर यज्ञों के ध्वजों की शोभा को देवगण उत्पन्न करते हैं।

२३ १ २ ३ २ ३ १२ ३१ २ ३२
वात आ वातु भेषज ꣳ शम्भुमयोमु नो हृदे।
२ ३ १ २
प्र न आयू ꣳषि तारिषत्।। (साम सं. २.७.१०)

आज्यदोहानि सामानि शान्तिकं भारुण्डानि च।
वैराजं पौरुषं सूक्तं सौपर्णं रुद्रसंहिताम्।।

शैशवं प्रञ्चनिधनं गायत्रं ज्येष्ठसाम च।
वामदेव्यं वृहत्साम रौरवं सरथन्तरम्।।

गवावृतं विकर्णञ्च रक्षोघ्नञ्च यशस्तथा।
गायेयुः सामगा राजन् पश्चिमद्वारमाश्रिताः।।

सामवेदस्य स्वरूपं हेमाद्रौ—

नीलोत्पलदलाभासः सामवेदो हयाननः।
अक्षमालान्वितो दक्षे वामे कम्बुधरः स्मृतः।।

अथ वामदेव्यम्

ॐ।। का ३ऽ४या५। न५ श्चा४ऽ३यि३त्रा२३आ४भू४वा५त्५।। ऊतीसदावृध२

वात आ वातु—वे परमात्मा हमारे हृदय के सन्तोषार्थ परम कल्याण प्रदान करें, जिससे सत्संगसुख व शमादि सुख प्राप्त हों। वे हमारी आयु को बढ़ायें।

आज्यदोहानि

हे राजन्! आज्यदोह साम, शान्तिमन्त्र, भारुण्डमन्त्र, वैराज पुरुष सूक्त, सौपर्णसूक्त, रुद्रसंहिता, पञ्च निधन शैशव, गायत्री, ज्येष्ठ साम, वृहत्साम, रथन्तर सहित रौरव, मबावृत, विकर्ण रक्षोघ्न सूक्त—इन यश:शील मन्त्रों का यज्ञमण्डप के दक्षिण द्वार पर अवस्थित होकर गायन करना चाहिए।

हेमाद्रि में सामवेद का स्वरूप

नील कमल की आभा वाले, अश्वमुख, दक्षिण हाथ में रुद्राक्ष की माला और वाम हस्त में शंख धारण किये हुए भगवान् सामवेद हैं—यह कहा गया है।

वामदेव्यम्

विचित्र और सदा सबको समृद्ध करने वाला परमेश्वर किस स्तवन-तर्पण के द्वारा

स्स। खा। अ२३हो३हा२यि२। कयाऽ२३श३चार, ७। ष्ट३यौ३हो२३हुम्म४.२‘७। वाऽ२३र्ता२ऽ३५हयि२।।१।। का ३ऽ४स्त्वा५। स५ त्यो२३मा२३दा४ना५म्५। मा। हिष्टो२मास्तादं२धा। सा.। अ२३ हो३हा२इ२। दृढाऽऽ२३चि३दा२, ७रु३जौ३हो२३। हुम्मा४,२,७। वाऽ२३सो३२३४। हा२। यि२।।२।। आ३ऽ४भी५। षु५ण४ऽ५स्स२। खि४ना५म्। ५आऽविता२जरायितॄ२णाम्। अ२३हो२हा२यि२। शताऽ२३म्भा२वा२ ‘७सि३यौ३हो२३हुम्मा४२’७। नाऽ२३यो२३ऽ५हा२। ३।।३।। इति वामदेव्यम्।

पूर्वादिक्

वैनायकी
ऐन्द्री
कौमारी
भरद्वाजः
विश्वामित्रः
तमः
रजः
सत्त्वम्
कश्यपः
ईशानः
आदित्याः
अश्विनी कु०
अग्निः
श्रीविष्णुः
इन्द्रः
दुर्गा
स्वधा
पितरः
रुद्राः
विश्वे
देवाः
सुमेरुः
सोमः
महाकालः
नन्दी स्कन्दः
ब्रह्मा
यमः
मृत्युः
रोगाः
गौतमः
जमदग्निः
सागराः नद्यः भूमिः
वसवः
मरुतः
गणेशः
वरुणः
आपः
गन्धर्वाः
नागाः
वायुः
अप्सरसः
निर्ऋतिः
अरुन्धती
अत्रिः
वशिष्ठः
वैष्णवी
चामुण्डा
वाराही

पश्चिमादिक्

१२३१ २र ३ १२ ३१२१
ॐ तत्सवितु वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

२ ३ २ ३१२
धि यो यौ नः प्रचोदयात्।। (सामसं-उत्तरा. १३.६)

३१ २ ३१३ ३२३ ३२ १ १२
उत वात पितासि न उतभ्रातोत नः सखा।

१ ३ ३१२१
से नो जीवातवे कृधि।। (''२०।)

पञ्चपुरीष पदानि।

३११ १ ३१ २ ३१ २
६५० एवाह्ये ऽ३ऽ३व। एवां ह्यग्ने। एवाहीन्द्र।

३१र २र ३ १र २र
एवाहि पूषन्। ए वा हि देवाः।।

(साम सं. महार्चिकम्, ऋ.सं. ९.१०)

हमारा सखा होता है, किस याग-क्रिया द्वारा हमारा सहायक होता है, किस उत्तम कर्म से अपनी पालनशक्ति के साथ अभिमुख होकर हमें अपनी मित्रता प्रदान करता है, अर्थात् हमारी सर्वविध रक्षा करता है।

हे परमेश्वर! हममें से कौन ऐसा शिष्य (भक्त) होगा जिसकी निष्ठा सत्य में होगी। ऐसा जो कोई सत्यनिष्ठ होगा वही दृढ़तापूर्वक आपके विशाल ज्ञान को अपने हृदय में धारण कर सकेगा।

हे सर्वसामर्थ्यसम्पन्न जगद्गुरु! आप जीव मित्रों व स्तुतिकर्ता हम ऋषियों के परिपालक हैं। आप समान ख्याति वाले अपने भक्त शिष्यों की अनन्त रूप धारण करके रक्षा करते हैं।

उन सविता देवता के वरेण्य भर्गः—सर्वोत्तम तेज का हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियों को सत्कर्मों के प्रति प्रेरित करे।

वे परमात्मा पिता हैं, भ्राता हैं, हमारे सखा हैं, वे हमें जीवन प्रदान करते हैं। वे अहि हैं, वे अग्नि हैं, वे ही इन्द्र हैं, पूषा भी वे ही हैं और देवता भी वे ही हैं।

अथ रथन्तरम्

३ १ ३१२ ३१२
ॐ अभित्वाशूरनोनुमोऽदुग्धाइव धेनवः।
२ १ २२ ३ २१२ ३१२
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः।।१।।

१२३ ३१ २र३ २ २र
नत्वाᳫंवा अन्योदिव्यो नपार्थिवो न जाता न जनिष्यते।
३ १ २ ३ १ २३१२
अश्वायन्तोमघवन्निन्द्र व्वाजिनोगव्यन्तस्त्वा हवामहे।।२।।

१ २र ३ १ २र ३१२
त्वा मिद्धि हवामहे सातौव्वाजस्यकारवः।
२३१ २ ३ १ २ ३२२ ३ १२
त्वांवृत्रेष्विन्द्रसत्पतिन्नरस्त्वां काष्टा स्वर्वतः।।३।।

३ १२र३१२ ३२२ ३१२३२
अभिप्रवःसुराध समिन्द्रमर्चयथाविदे।
१२३ १२३ १२३ ३१२ ३ १ २
योजरितृभ्योमघवापुरुवसुसहस्त्रेणेव शिक्षति।।४।।

अथ रथन्तरम्

हे परमेश्वर! जैसे विना दुही गौ दोहनार्थ दोग्धा को देखती है—हम्वा रव द्वारा बुलाती है, उसी तरह हम आप चराचरात्मा सर्वेश्वर को पुकारते हैं॥१॥

हे इन्द्र! आप जैसा ऐश्वर्यशाली कोई अन्य इस भूमि पर और स्वर्ग में भी न हुआ है और न भविष्य में होगा ही। सद्विद्या की प्राप्ति के निमित्त हम आपको पुकारते हैं॥२॥

हे इन्द्र! हम स्तुतिकर्ता ऊर्ध्वगति की प्राप्ति के लिए आपको ही आवाहित करते हैं। शत्रुओं के हननार्थ व जयशील अश्व की प्राप्ति की कामना से आस्तिक जन आपका आह्वान करते हैं। आप सज्जनों के परिपालक हैं, अतः आपके लिए कुछ भी असाध्य नहीं है।।३।।

हे भक्त! तुम जैसे प्रत्यक्ष ब्रह्मवित् की पूजा करते हो, वैसे ही अदृश्य परमात्मा की भी पूजा करो, जो परमात्मा स्तवनकर्ता मनुष्यों की अनेकों तरह से रक्षा व शिक्षा प्रदान करता है॥४॥

१२ ३१२३२३ १२ ३२ २र
तंव्वोदस्ममृतीषहंव्वसोर्म्मन्दानमन्धसः।
३ ३१ ३२३१२३१२
अभिवत्संस्वसरेषुधेनवइन्द्रगीभिर्न्नवामहे।।५।।
१२ ३१२३ १२ ३१२ १२
तरोभिर्वोविद्वद्वसु मिन्द्रर्ठंसवाधऽउतये।
२र ३१२ ३२ ३र २३३२३ २
वृहद्गायन्तःसुतसोमेअध्व-रेहुवेभरंनकारिणम्।।६।।
३२३ १२ ३२ ३१२ ३२
तरणिरित्तिसिषासतिवाजंपुरंध्यायुजा।
आवइन्द्र पुरुहुतंनमेगिरानेमिंतष्ठेवसुद्रवम्।।७।।
१२ ३१२३२३ १ २ ३१२
पिवा सुतस्यरसिनोमत्स्वानइन्द्रगोमतः।
३१२ ३१२३ १ २ ३१ २
आपिर्नोवोधिसधमाद्यैर्वृधेस्मा ँअवन्तुतेधि यः।।८।।
२३ ३२ ३२३ ३१ २
त्वँहोहिचेरवेविदाभगंवसुत्तमे।
१२ १ ३२३१२
उद्वावृषस्वमघमन्नोविष्टयउदिन्द्राश्वमिष्ठये।।९।।

हे भक्त! तुम्हारे कल्याण के लिए दर्शनीय, कामादि-नाशक, परधाम-प्रदायक भक्तिरूप अन्न से तुष्ट परमात्मा को स्तुतिरूप वाणी से पुकारते हैं, जैसे दिन में बाहर गयी गायें अपने बच्चों को पुकारती हैं।।५।।

हे भक्तों! जब तुम शान्तिमय भक्ति यज्ञ करते हो, तब यदि विघ्न-बाधा उपस्थित हो तो सर्वज्ञानप्रद परमात्मा को रक्षार्थ बुलाओ। ऋषि कहते हैं कि मैं भी उसी को बुलाता हूँ।।६।।

समर्थ उपदेष्टा से प्रेरित भक्त शीघ्र मोक्षप्रद परमात्मा की सेवा में लग जाता है। जैसे बढ़ई नेमि के लिए काष्ठ को नवाता है वैसे ही मैं आपके लिए बहुतों के द्वारा आहूत किये जाने वाले परमात्मा को प्रार्थना के द्वारा नवाता हूँ।।७।।

हे प्रभो! हृदय से उत्पन्न प्रार्थनायुक्त इस रसमय इस भक्ति-यज्ञ के आप साक्षी बनें। आप प्रसन्न होकर हमें तृप्ति प्रदान करते हैं। आप हमारी आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्रत्यक्ष हों। आपका भजन करने वाली बुद्धि हमारी रक्षा करे।।८।।

हे परमेश्वर! हृदय में समासीन आप हमें ज्ञान-ऐश्वर्य प्रदान करें जिससे मैं आपको

१ २२ ३२३१ २२ ३ १ २
नहिवश्च रमंचनवसिष्ठःपरिमर्ठसते।
३ १२३ २३२ ३२३३१ २ ३ १२
अस्माकमद्यमरुतः सुतेसचाविश्वेपिवन्तुकामिनः।।१०।।
१ २ ३१ २२ ३१२ ३१ २
माचिदन्यद्विशर्ठसतसखा योमारिपणयत।
२११ २३१२३ १ २३१ २२३ १ २
इन्द्रमित्स्तोतावृषणर्ठस चासुतेमुहुरुक्थाचशर्ठसत।।११।।

।।इति रथन्तरं साम।।

अथ पुरुषसूक्तम्

३१२ ३१२ ३२ ३१२
ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषःसहस्राक्षः सहस्रपात्।
१२ २२ ३१२ ३ १ २ ३ २
सभूमिर्ठंसर्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।१।।
३२३ २३ ३१२३ २३ २३१२
त्रिपादूर्द्ध्वउदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः।
२३ २ ३क२२ ३२३२
तथाविष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशनेअभि।।२।।

प्राप्त कर सकूँ। मुझे ज्ञान व दर्शन देकर तृप्त करें, कृतार्थ करें।।९।।

मैं वसिष्ठ आज निमन्त्रण देते हुए किसी तुच्छ को भी त्याग नहीं रहा। सभी भक्ति रस रसिक भक्ति रस का पान करें।।१०।।

हे भक्तों! परमात्मा के अतिरिक्त अन्य की प्रार्थना न करो। विरोधियों की भी हिंसा न करो। भक्ति यज्ञ में सब मिलकर परमात्मा का स्तवन करो।।११।।

अथ पुरुषसूक्तम्

सर्वात्मक होने से वह परमात्मा सहस्रों शिर, सहस्रों (अनन्त) नेत्र, सहस्रों पैरों वाला है। वह भूमि को सब ओर से व्याप्त करके दस अंगुल दूर स्थित है अर्थात् समस्त जगत्प्रपञ्च में व्याप्त रहता हुआ भी वह इससे पृथक् है। वह दस इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य नहीं है नाभि से दस अंगुल ऊपर हृदयदेश में वह अन्तर्यामी रूप से अवस्थित है।।१।।

तीनों गुणों से परे, तीनों कालों से परे, जन्म-जरा-मृत्यु से परे वह परमात्मा संसार

१२३ २३३ २३ २३ ३ १ २
पुरुषएवेदर्ठं सर्वयद्भूतंयच्चभाव्यम्।
१ २३ १ २३१ २३१२ ३ १२३२
पादोऽस्य सर्व्वाभूतानित्रिपादस्याऽमृतंदिवि।।३।।

१ २ ३२र ३१२ १२
एतावानस्य महिमातोज्यायांश्च पूरुषः।
३१२३१ २र ३१ २र ३१२
उतामृतत्वस्येशानोयदन्नेनातिरोहति।।४।।

१२ ३ १२ ३२ ३२ ३१२
ततोव्विराडजायतविराजोअधिपूरुषः।
२३ १२र ३ ३ १ २ ३ २
सजातोअत्यरिच्यतपश्चाद्भूमिमथोपुरः।।५।।

१२ ३ १ २र ३२ ३२३२ १२ २३१ २ ३ २
कयान त्रिआभुवदूति सदावृधःसखा। कयाशचिष्ठयावृता।।६।।

।।इति षड्चात्मकं पुरुषसूक्तम्।।

से पृथक् ही है फिर भी उससे सम्बद्ध है। वह ही चेतन-अचेतन का अधिष्ठाता है।।२।।

जो कुछ उत्पन्न हो चुका है, जो उत्पन्न होगा, वह सब पुरुष ही है। यह सम्पूर्ण जगत् उसका एक पाद है, उसका अमृतमय त्रिपाद स्वरूप परम धाम में है।।३।।

यह जो कुछ (जगत्) दिखायी दे रहा है वह सब पुरुष ही है, यह सब उसका लीला-विलास मात्र है। यह सब उसकी महिमा का एक अंश है, उसका वास्तविक स्वरूप नहीं वह तो इससे अतिशय अधिक है। वह जीवों के कर्मफल के निमित्त उत्पन्न इस जगत् का और मोक्ष का भी स्वामी है।।४।।

उस परमात्मपुरुष से विराट्-ब्रह्माण्ड देह उत्पन्न हुआ। फिर ब्रह्माण्ड देहाधिपुरुष की उत्पत्ति हुयी। तदनन्तर पृथिवी आदि भूतों, देव-तिर्यङ् मनुष्यादि के सप्त धातुओं से पूरित पुरों-शरीरों और लोकों की उत्पत्ति हुयी।।५।।

यह आश्चर्ययुक्त सदावर्धक सर्वेश्वर परम पुरुष परमात्मा किस स्तवन के द्वारा हमारा सखा होता है। किस अत्यन्त सुन्दर स्तुति से आवृत होकर अपनी पालनशक्ति के साथ अभिमुख होकर हमारा हित-सम्पादन करता है।

अतः यह पुरुष सूक्त ही परमात्मपुरुष का सर्वश्रेष्ठ स्तवन है।।६।।

विष्णुसूक्तम् (सामसं.उत्तरा. १८.२)

३२३ ३१३ ३१ २र ३२ १२ ३२
इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधे पदम्। समूढमस्य पाꣳ सुरे।।१।।

१ २३१ २र ३ १२ ३१ २र २ ३ १२ ३१२
त्रीणिपदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन्।।२।।

१ २ १२ ३ १ २ ३१ ३ २ १२३ २३ १२
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पश्पशे। इन्द्रस्य पूज्यः सखा।।३।।

१ २र ३ २३१ २र ३१२ ३ २३३१ १२
तद्विष्णोः परमं पदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीवचक्षु राततम्।।४।।

१ ३१२ ३२ २ १ २ २ ३ १२३२ ३२
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाꣳसः समिन्धते। विष्णो र्यत्परमं पदम्।।५।।

१ २ ३२ २ ३ २३ १२ ३२ ३ २३ ३ १२
अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णु विचक्रमे। पृथिव्या अधि सानवि।।६।।

विष्णुसूक्तम्

विष्णु नें सब कुछ अतिक्रान्त किया है। उसने तीन बार अपने चरण को भूमि, अन्तरिक्ष, द्युलोक में अग्नि, वायु और सूर्यरूप में रखा। उसके इस पांसुल पदन्यास में ही यह सारा जगत्प्रपञ्च विधृत है॥१॥

अप्रतिहत शक्तिवान्, सर्वरक्षक, जगत्परिपालक, परमात्मा, त्रिलोकी का स्वामी विष्णु ही इन लोकों में सत्यादि की स्थापना करता है॥२॥

विष्णु के सृष्टि आदि आश्चर्यजनक कर्मों को देखो कि सभी को नियमबद्ध किया है। इस महान् ऐश्वर्यशाली स्वामी के साथ सम्बद्ध होने वाला उनका सखा बन जाता है।।३।।

उस विष्णु के परम पद को वेद-पारग विद्वान् सदा ही देखते हैं (विद्वान् ही उसे प्राप्त कर सकते हैं—करते हैं) जैसे द्युलोक में विस्तारित नक्षत्रमण्डल को हमारे चक्षु देखते हैं।।४।।

विष्णु का जो परम पद है अविज्ञान व आनन्दघन हैं, संसार-व्यवहार-शून्य, निष्काम व जागरणशील विद्वान् दीपित करते हैं॥५॥

जिस दिव्य स्थान पर अवस्थित होकर विष्णु तीनों लोकों पर शासन करते हैं, वे देव वेद-वेदान्त रहस्य ज्ञाता विद्वान् उस लोक को हमें प्राप्त करायें॥६॥

वामदेव्यं वृहत्साम ज्येष्ठसाम रथन्तरम्।
पुरुषसूक्तं रुद्रसूक्तं आज्यदोहानि शान्तिकम्।।
वैराजं शैशवं गायत्रं सौपर्णं च गवावृतम्।।

३ ३ १२ ३१२ ३१र २र ३२३ १२
ॐ आ वो राजानमध्वरस्य, रुद्रं होतारम् सत्ययजं रोदस्योः।
३ २ ३१ २ ३ २३ २३ १२ ३ १२
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्तात्, हिरण्यरूप मवसे कृणुध्वम्।।

(सामसंहि. १.७.८, ऋ. ४.३.१)

३१२ ३ १२ १ ३ १२ २ ३ २ ३ २
तरणिविश्वदर्शतो ज्योतिष्क्रिदसि सूर्य। विश्वभाभासिरोचनम्।।

(सामसं. आरण्यका., ऋ. १.५०.४)

अथ रुद्रसूक्तम्

ॐ आ४वो५रा५जा४। न३मा२ध्वा३। रा२, ७। स्य३रु४द्रा ५म्५ होता२। राम्। स२त्य२य२जा२ ३म्३। रा२,७दा३सी४यो५अ२ग्निम्पुरा। त२न२यि३त्नो२, ७र३चि४त्ता ५त्५। हिराण्या२रूपा२ ३मवासा२ ३ ४ऽ ३यि३का२ ३र्णू ४ऽ ५ध्वा५ ६ ५म्५।।१।।

त५द्वौ४हो४वा५गायाऽ २,७ सु३, ता२, ७यि२,७। सा३ २ ३वा ५। पुरूहू२ता२। य२सात्वा२ऽना४ २,७यि। शंयत्। हा। अ२ ३हो२,७यि२, ७गाइ२ ३ ४वा५यि५। नाऽ २, ७शा ३ २ ३ ४अ५हो५वा५ए२ ३ किनेऽ २ ३ ४ ५।।२।।

हे मानवो! भक्ति-यज्ञ-प्रकाशक, अभ्युन्नतिदायक, उपदेशक, अपेक्षित वस्तु प्रदाता, सत्य सेव्य सर्वव्यापक परम प्रकाश रूप परमात्मा की सेवा करो, जिससे कि वह तुम्हारी रक्षा करे। जन्म-मृत्यु के बन्धन से छुड़ा दे।

तरणि—विश्व का प्रदर्शक, ज्योति प्रदाता, जगत् तारक सूर्य विश्व को आभासित करता है।

अथ रुद्रसूक्तम्

हे मनुष्यों! भक्ति यज्ञ के प्रकाशक-वर्धक, वेदोपदेशक, समस्त अपेक्षित वस्तु के प्रदाता, सत्य से ही सेवनीय, पृथिवी और आकाश में सर्वत्र व्यापक प्रकाश स्वरूप परमात्मा की मृत्यु से पूर्व ही ऐसी सेवा करो जिससे वह हमारी रक्षा करे—जन्ममरण के बन्धन से छुड़ा दे॥१॥

हे मनुष्यों! तुम लोग मिलकर जगदुत्पादक, सर्वप्रार्थ्य, शत्रुविनाशक परमात्मा की ऐसी

त५द्वो५गा५या५। सु२ता२यि२। स२चा२३। पुरूऽ२३४। हूता २३४। हा३हो२३। यास२,७। त्वा ३२३४ना४यि५। शं२ यद्गाऽ२३वे२। न२शौ४२,७ हौ ४,२,७हुवोऽ२३४वा५। का४ऽ५ यि५नो५६हाइ५।।३।।

त५द्वो५गा५य५सु५ते५स५चा५६ए५। पु२रू२हू२तायसत्वाने२। पुरूहूत२ता। यासत्वाऽ२३४यि४। शं४य्य५। त्५।गौ२वा२, ७ओ३२३वा५। नाऽ२३शा४ऽ३का २३४५यि५नो५६हा५इ५।।४।।

त५द्वो५गा५य५सु५ते५स५चा५६ए५। पु२रू२हू२तायसत्वानायि। शयद्गाऽ-२३वे२। ए४२, ७हो२ऽआ२३यि३ही२। न२शाऽ२३। काऽ२, ७यि२, ७ना३२३४-अ५हो५वा ५इ३२३४अ५हो५वा५इ३२३४५।।५।। इति रुद्रसूक्तम्।

अथ आज्यदोहमन्त्रत्रयम्

ॐ हा२उ२ ।३। आ२-७ ज्य३दो४ह५ म्५ ।३। मू२ र्द्धानन्दायि। वा२३अर। ति२,७म्पृ३थि४व्या५ः। वै२श्वनाराम्। ऋतआ जा२, ७त३मा४ग्नी५म्५। क२ विर्ठसम्रा। जा२३मतिथिं२, ७ज३ना ५ना५म्। आ२सन्नाष्पा। वा२३ज्ञनायं२, ७त३दे४वा५ःहा२-हा२उ२ ।३। आ२, ७ज्य३दो४ह५म् ।२। आ२,७ज्य२दो४ऽ५हा५उ५। वा५। ए२। आ२ज्य२दोह२म्२। ।२। ए२। आ२ज्य२दोहा ३२३४५म् ५।।१।।

हा२उ२३। हु२म् २। चि२दोह३म् २। चि२दोह२म्२। ।२। मू२ र्द्धानन्दायि पूर्ववत्। हा२उ२ ।३। हु२ म्२। चि२ दोह२। म्२ ।२। चि२दो३हा२उ२। वा२३। इ३२३३५।।२।।

हा२ उ२ ।३। च्योह२ ।मू२ ।३। मू२ र्द्धानन्दायि। पूर्ववत्। हा२ उ२ ।३। च्योह२ म् २ ।२। च्यो२३हा३उ२। वा२३। ए२३ ऋ२। तम्। इति आज्यदोहमंत्रत्रयम्।

स्तुति करो जिससे कि वह उस प्रकार प्रसन्न हो जैसे मृदु वचन से गाय प्रसन्न होती है।।२।।

शेष मन्त्रों में एतद्विषयक गायन है।

आज्यदोहमन्त्रत्रय

द्युलोक में सूर्यभाव से मूर्धाभूत पृथिवी के सञ्चरणशील, यज्ञ में अरणि से समुद्भूत, क्रान्तदर्शी, यजमानों के अतिथि देव, ज्वालारूप मुख में घृत युक्त श्रुवा पात्र को लगाये रखने वाले तथा विश्व का भरण-पोषण करने वाले अग्नि को देवताओं ने उत्पन्न किया। शेष दो मन्त्रों में इसी अर्थ विशेष का गायन है।

अथ देवव्रतानि त्रीणि

ॐ अधिप२ ताइ। मित्रप२। ताइ। क्षत्रप२ताइ। स्वष्प२ताइ। धनप२ता४,२, ७यि२। ना४,२,७माः। म२न्यूतावृ२त्र२ हासूर्य्येण२ स्व२ राड्य२ज्ञे नम२व्ववा२दक्षिणा२स्य२ प्रि२यात२ मूराज्ञा२ विशन्दा२धा२ र२। वृ२ ष२ भस्तवष्टावृ२ त्रेणाश२ची२पति२रन्नेन२गयप्पृ२ थि२व्यासृणि२देकोवेम्रि नावि स्वम्भू२तमा। म्यभा२वो२युनाविस्वप्र२जाभ्यप२व २था२व२ष२ट२का२ रेणार्द्ध२भाक्। सोमेन२सो२ म पास्यमित्य२प२र२मेरष्ठी। येदेवा२दे२वा२: दि२विषद२:। स्थतेभ्योवो२दे२वा२दे२वेभ्यो२नमः२। येदेवा२ दे२वा२:अ२न्त रि२क्ष२ सद२:। स्थातेभ्योवो२ दे२ वा२ देवेभ्यो२ नमः२। येदेवा२ दे२ वा२:। पृ२ थि२ वी२ षदः। स्थतेभ्योवो२ दे२ वा२। २दे२ वे२ भ्यो २नमः२:। येदेवा २दे२ वा२। अप्सु२ षद२:। स्थतेभ्योवो२ दे२ वा२ देः वेभ्यो२नम२:। येदेवा२ दे२ वा२:। दि२ क्षु२ सद२:। स्थतेभ्यो वो२ दे२ वा२ दे२ वेभ्यो नम२ः येदेवा२ दे२ वा२:। आ२ सा२ सद २: शद२ स्थतेभ्योवा२ देवा२ दे२ वेभ्यो२२नमः। अव२ जामिव२ धन्वानो२ वितेम२ न्युन्नया२ मसि२ मृ२ इतान्न। इहाअ२ स्मभ्य२ म्२२। इडाऽ२३४ भा२। यइदम्विश्वम्भूतम्। यूयो२३। आउ। वा ऽ२३। ना ३२३३ माः५।।१।।

अधिप२ ताइ। मित्रप२। ताई। क्षत्रप२। ताइ। स्वष्य२ ताइ। धनप२ ता४२, ७इ२। ना४२, ७माः नमउ२ त्त२ जिभ्यश्चो २ त२ न्वा नेभ्य २नामोनी ष२ भ्यि २ प२ वो निभ्या२ नमो स्यद्भ्य२श्च २ प्र२ ति दधाने२ भ्य२ श्च२ नमऽप्र२ विद्याभ्य२ श्च२ प्र२ व्या२ घिभ्यश्च२ नमः२। त्सर्दभ्य२ श्च२ त्सा२ रिभ्यश्च२ नमश्रि२। तेभ्यश्च२ श्रा२ यिभ्यश्च२ नम२ तिष्ठद्भ्य२ श्चो२ प२ तिष्ठद्भ्ये२ श्च२ नमोपतेचवि२ पा२ ते२ च२ नमष्पृ२ थे। च२ विपथा२ य२ च२। अ२ व२ ज्यामिव२ धन्वानो२ वीतेम२ न्युन्नया२ सिमृ२ डतान्। इहाअ२ स्मभ्य२ म्२। इडाऽ२३भा२। यइदम्विश्व म्भूतम्। युयो२३। आउ। वाऽ२३। ना३२३४। मा५:।।२।।

अधिपा२। ताइ। मित्रप२ ताइ। क्षत्रप२ताइ स्वष्प२२ताइ। धनप२ ताइ४, २, ७इ। ना २७माः। नमोन्नाय २ नमोन्नय२ प२ त२ य२ ए२ का२। क्षयाचा२ वा२ प२ न्ना२ दायच२ नमो२ नमः। रूद्रायाती२ र२ सदे भ्यमृस्थि२ रा२ य२ स्थि२ रध२ न्वानेनमप्रतिप २दा२ च२ प२ ट२ रिणेच२ नम२ स्त्र्यम्ब२ का२ य२ च २२क२। प२ र्दिनेच२नमआ२। श्र२ येभ्यश्च२ प्र२ त्य२ श्र२ येभ्यश्च२ नमष्क्र२ व्येभ्यश्चरविररि २स्फे२ भ्मश्च२ नमस्स२ म्वृतेच२ वि२ वृते२ च२। आव२ ज्या मिव२ धन्वनो२ वितेम२ न्यन्नया२ म२ सि२ मृ२ डातान्२ इ२ हअ२ स्मभ्य२ मृ२

इडाऽ२३भा२। य३। इदम्विश्वम्भूतम् युयो२३ आउ। वाऽ२३। ना३२३४ मा ५ः। इति देव्रतानि। (सा.सं.गा.छ.आ.परि. ५, प्र. १, अ. ३, व्रतपर्वे)

अथ शान्तिकाध्यायः

ॐ अवोध्यग्निः समिधाजनानाम्प्रतिधेनुमिवायतीमुषासम्।
यह्वाऽइवप्रवयामुज्जिहानाः प्रभानवः सिस्रतेनाकमच्छ।।१।।

इत्यस्य त्रिधा जपः—

अवोध्यग्निज्जर्म उदेति सूर्य्योव्युऽ३षाश्चन्द्रा मह्यवोअर्च्चिषा।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविताजगत्पृथक्।।२।।
यद्युञ्जाथेवृषणमश्विनारथं घृतेननोमधुनाक्षत्रमुत्तम्।
अस्माकं ब्रह्मपृतनासुजिन्वतं वयं धनाशूरसाता भजेमहि।।३।।
अर्वाङ्त्रिचक्रोमधुवाहनोरथो नीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः।
त्रिबन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद्विपदे चतुष्पदे।।४।।

क्षेमकामप्रयोगः/सामविधानं४खण्डः

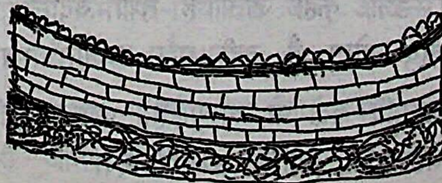
करवीरदण्डमुत्थाप्य देवब्रतैरभिजुहुयात् अनुगानशस्तेन हस्तगतेन यत्र कचगच्छति सर्वत हास्य स्वस्ति भवति।।१।।

तेन नगरं वा निगमं वा ग्रामं वा गोष्ठं वागारं वा मनसा ध्यायन् परिलिखेन्नात्रानिष्टाः प्रविशन्ति।।२।।

प्रतिभयेऽध्वनि देवव्रतमाद्यं गीत्वा मध्यममावर्तयेत् गतेऽध्वन्युत्तमꣳ समापयित्वा विरमेत्।।३।।

उद्यतशस्त्रान् शत्रून् दृष्ट्वा देवव्रतानि मनसा ध्यायन् नैनꣳ हिंसन्ति।।४।।

हरिः ओम्। इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि। मैषांन्नुगा दवरो अर्त्तमेतम्, शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्म्मृत्युन्दंधतां पर्वतेन। (शुक्लयजु. संहिता ३५.१५)



नित्यप्लुतवाची ॐ (यज्ञसागरे), स्वरितोदात्त एकाक्षरः (ऋग्वेदे), सर्वोदात्त एकाक्षरः (यजुर्वेदे), दीर्घोदात्त एकाक्षरः (सामवेदे), संक्षिप्तोदात्त एकाक्षरः (अथर्वणवेदे)।

अथ गायत्रीतत्त्वम्

श्रीगणेशाय नमः। श्रीगायत्र्यै नमः।।

श्रीगायत्रीतत्त्वमालामन्त्रस्य विश्वामित्र ऋषिः। अनुष्टुप्छन्दः। परमात्मा देवता। हलो बीजानि। स्वराः शक्तयः। अव्यक्तं कीलकम्। अभीष्टे विनियोगः।।

ॐ चतुर्विंशतितत्त्वानां यदेकं तत्त्वमुत्तमम्।
अनुपाधिपरं ब्रह्म तत्परं ज्योतिरोमिति।।१।।
यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तः वेदान्ते च प्रतिष्ठितः।
तस्य प्रकृतिलीनस्य तत्परं ज्योतिरोमिति।।२।।
यत्सदादिपदैर्वाच्यं परमं पदमव्ययम्।
अभेदत्वं पदार्थस्य तत्परं ज्योतिरोमिति।।३।।

ॐ नित्य प्लुत का वाचक है। यह ॐकार ऋग्वेद में एकाक्षर स्वरित उदात्त के रूप में प्राप्त होता है। यजुर्वेद में सर्व उदात्त एकाक्षर स्वरूप में है। सामवेद में दीर्घ उदात्त एकाक्षररूप में विद्यमान है। अथर्ववेद में यह एकाक्षर संक्षिप्त उदात्त है।

अथ गायत्रीतत्त्वम्

श्रीगणेश के लिए नमस्कार, श्रीगायत्री को नमन। श्रीगायत्री तत्त्व माला मन्त्र के विश्वामित्र ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द हैं, परमात्मा देवता है, हल वर्ण बीज हैं, स्वर वर्ग शक्ति है, अव्यक्त कीलक है। अभीष्ट सिद्धि में यह श्रीगायत्री माला मन्त्र विनियुक्त है।

चौबीस तत्त्वों में (गायत्री मन्त्र के २४ अक्षर ही २४ तत्त्व हैं) जो एक श्रेष्ठतम तत्त्व है, वह उपाधि रहित परब्रह्म है, वही परं ज्योतिस्वरूप ॐ है॥१॥

जो वेदारम्भ में 'हरि ॐ, कहा जाता है तथा वेदान्त में प्रतिष्ठित है, वेदान्त— औपनिषद् विद्या में प्रकृतिलय होता है वही परम ज्योति स्वरूप ओङ्कार है॥२॥

जो सत्, चित्त, आनन्दादि पदों से वाच्य है, परम पद है, अव्यय है, पदार्थों का जिससे अभेद सिद्ध है, वही परं ज्योति ॐ है॥३॥

यस्य मायांशभागेन जगदुत्पद्यतेऽखिलम्।
तस्य सर्वोत्तमं रूपं अरूपस्याभिधीमहि।।४।।
यं न पश्यन्ति परमं पश्यन्तोऽपि दिवौकसः।
तं भूतानिलयं देवं सुपर्णमुपधावताम्।।५।।
यदंशः प्रेरितो जन्तुः कर्मपाशनियन्त्रितः।
आजन्मकृतपापानां अपहन्तुं समर्थकः।।६।।
इदं महामुनिप्रोक्तं गायत्रीतत्त्वमुत्तमम्।
यः पठेत्परया भक्त्या स याति परमां गतिम्।।७।।



अथ सौपर्णसूक्तम्

ॐ उद्धेदमिश्रुतामघंवृषभंनय्यपिसू। अस्तारमेषिसूर्य्य।।१।।
नेवयोनवतिं रोविभेदवाहोजसा। अहिंचवृत्रहाऽहाऽवधीत्।।२।।
सनइन्द्रः शिवः सखाश्खाव इगोमद्यवमत्। उरुधारेवदोहते।।३।।
।।इति सौपर्णसूक्तम्।।

जिसके मायांश भाग से अखिल जगत् उत्पन्न होता है, उसी अरूप के सर्वोत्तम रूप ज्योतिस्वरूप 'ॐ' का हम ध्यान करते हैं।।४।।

देखते हुए भी उस परम तत्त्व को देवता तक नहीं देख पाते, उन समस्त प्राणियों के आश्रय सुपर्ण देव का आश्रय पाना चाहिए।।५।।

जिसके अंश से प्रेरित कर्मपाश-नियन्त्रित जन्तु आजन्म कृत (जन्म-जन्मान्तरीय) पापों का विनाश करने में समर्थ होता है।।।६।।

जो इस महामुनिप्रोक्त उत्तम गायत्री तत्त्व का अनन्य भक्तिभाव से पाठ करता है वह परम गति को प्राप्त हो जाता है।।७।।

अथ श्रीचाक्षुषोपनिषद्

अस्याः श्रीचाक्षुषीविद्याया अहिर्बुध्न्य ऋषिः। गायत्री छन्दः। श्रीसूर्यो देवता। चक्षुरामय–निवृत्तये विनियोगः।। ॐ चक्षुः चक्षुः चक्षुस्तेजःस्थिरो भव। मां पाहि पाहि। त्वरितं चक्षूरोगान् शमय शमय। मम जातरूपं तेजो दर्शय दर्शय। यथाहमन्धो न स्यां तथा कल्पय कल्पय। कल्याणं कुर कुरु। यानि मम पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुः-प्रतिरोधकदुष्कृतानि तानि सर्वाणि निर्मूलय निर्मूलय। ॐ नमश्चक्षुस्तेजोदात्रे दिव्याय भास्कराय। ॐ नमः करुणाकराय अमृताय। ॐ नमः सूर्याय। ॐ नमो भगवते सूर्याय। ॐ अक्षितेजसे नमः। खेचराय नमः। महते नमः। रजसे नमः। तमसे नमः। ॐ असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय। उष्णो भगवान् शुचिरूपः। हंसो भगवान् शुचिरप्रतिरूपः। ॐ विश्वरूपं घृणिनं जातवेदसं हिरण्मयं ज्योतिरूपं तपन्तम् विश्वस्य योनिं प्रतपन्तमुग्रं, पुरः पुरस्तादुदयत्येष सूर्यः।। ॐ नमो भगवते आदित्याय अहोवाहिने अहोवाहिने स्वाहा। ॐ वयः सुपर्णाऽउपसेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः। उपध्वान्तमूर्णूहि पूर्द्धि चक्षुर्तुमुग्ध्यस्मान् निधयेनवद्धान्। पुण्डरिकाक्षाय नमः। पुष्करेक्षणाय नमः। अमलेक्षणाय नमः। कमलेक्षणाय नमः। विश्वरूपाय नमः। महाविष्णवे नमः।।

अथ श्रीचाक्षुषोपनिषद्

इस चाक्षुषी विद्या के अहिर्बुध्न्य ऋषि हैं, गायत्री छन्द है, सूर्य देवता हैं, नेत्र रोग की निवृत्ति में इस विद्या का विनियोग है।

स्थूल, सूक्ष्म व सूक्ष्मतर चक्षुओं की ज्योति स्थिर रहे, अथवा आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक चक्षुओं में ज्योति सुस्थिर रहे। चाक्षुषी महाविद्या के अधिष्ठातृदेवता जगत् प्रकाशक भगवान् सूर्य नारायण मेरी रक्षा करें, शीघ्र ही मेरे नेत्रगत रोगों का शमन करें, मेरे स्वाभाविक तेज स्वरूप का दर्शन करायें, ऐसी कृपा करें कि मैं अन्धा न बनूँ, मेरा कल्याण करें, जो मेरे पूर्व जन्मार्जित नेत्र ज्योति प्रतिरोधक दुष्कर्म हैं उन सभी को विनष्ट करें, नेत्र ज्योति प्रदाता दिव्य भास्कर को नमस्कार है, करुणाकर अमृतरूप के लिए नमस्कार है, सूर्य के लिए नमस्कार है, भगवान् सूर्य को मैं प्रणाम करता हूँ। नेत्र गोलक मध्यवर्ती ज्योतिस्वरूप सूर्य को नमस्कार, विचरणशील सूर्य को नमन, महान् ऐश्वर्यशाली सूर्य को नमन, रजोगुणात्मा सूर्य को प्रणाम, तमोगुणात्मा सूर्य को प्रणाम, असत् से सत्य की ओर मुझे ले चलें, अज्ञानान्धकार को निवृत्त करके ज्ञान रूप प्रकाश की ओर ले जायें, मृत्यु से अमृत की ओर प्रेरित करें, तेजसम्पन्न भगवान् सूर्य पवित्रता की प्रतिमूर्ति हैं, विश्वरूप, घृणि जातवेद, हिरण्यमय, ज्योतिरूप में तपते हुए जगत्स्रष्टा, तीव्र तापयुक्त सम्मुख ही पूर्व

पूर्वादिक्

३ ईशानः
१२
१२ आदित्याः
४ इन्द्रः
१३ अश्विनौ
५ अग्निः
११
१४
११ रुद्राः
पितृविश्वेदेवाः
उ. दि.
२ सोमः
१ रः ब्रह्मा
६ यमः
द. दि.
१९ नन्दी
१८ स्कन्दः
१५
१०
८ वसवः
७ यक्षाः
८ वरुणः
९
१७
१६
वायुः
गन्धर्वाप्सरसः
मू. ना.
७ निर्ऋतिः

पश्चिमादि.

भद्रकारिकाः

प्रागुदीच्यायता रेखाः कुर्यादिकोनविंशतिः।
खण्डेन्दुस्त्रिपदः कोणे शृङ्खला पञ्चभिः पदैः।।१।।

दिशा से यह सूर्य उदित होते हैं। दिवस के नियामक—दिवस को साथ में लेकर उदित हुए भगवान् आदित्य को नमस्कार हैं और आहुति रूप में अर्घ्य प्रदान करते हैं।

सर्वतोभद्रमण्डल-कारिका

चतुष्कोण काष्ठपीठ (मृत्तिका वेदी) पर श्वेत वस्त्र प्रसारित करके त्रिसूत्री को हरिद्रा-कुंकुमादि से आर्द्रकर उससे पश्चिम पूर्व की ओर, दक्षिण से उत्तर की १९-१९ रेखाएँ खीचें, इस तरह सर्वतोभद्रमण्डल में कुल ३२४ कोष्ठ होते हैं। चारों कोनों में तीन पदों (कोष्ठों)

एकदशपदा वल्ली भद्रं तु नवभिः पदैः।
चतुर्विंशत्पदा वापी परिधिः विंशतिपदैः।।२।।
मध्ये षोडशभिः कोष्ठैः पद्ममष्टदलं स्मृतम्।
श्वेतेन्दुः शृङ्खला कृष्णा वल्ली नीलेन पूरयेत्।।३।।
भद्रारुणा सिता वापी परिधिः पीतवर्णकैः।
ब्रह्मोत्तरदलैः श्वेता कर्णिका पीतवर्णका:।।४।।
परिध्यावेष्टितं पद्मं बाह्ये सत्त्वं रजस्तमः।
तन्मध्ये स्थापयेद्देवान् ब्रह्माद्यांश्च सुरेश्वरान्।।५।।

(गायत्रीपुरश्चरणपद्धतिः)

१. मध्ये कर्णिका। २. वाप्यः ४। ३. खण्डेन्दवः ४। ४. भद्राः ८। ५. वल्लयः ८। ६. परिधयः ३। ७. शृङ्खलाः ४।

का खण्डेन्दु होता है और चारों ओर खण्डेन्दु से मध्य की ओर ५-५ पदों की शृङ्खला होती है।।१।।

चारों शृङ्खलाओं के दोनों ओर ११-११ कोष्ठों में वल्ली का निर्माण होता है और खण्डेन्दु तथा वल्ली से स्पर्श करते हुए नीचे के पाँच कोष्ठ, उससे ऊपर तीन, उसके ऊपर एक इस तरह ९-९ पद के भद्र होते हैं, भद्रपीठ की चारों दिशाओं में २४-२४ पद की वापी होती है और वापी से ऊपर २० कोष्ठों की परिधि है।।२।।

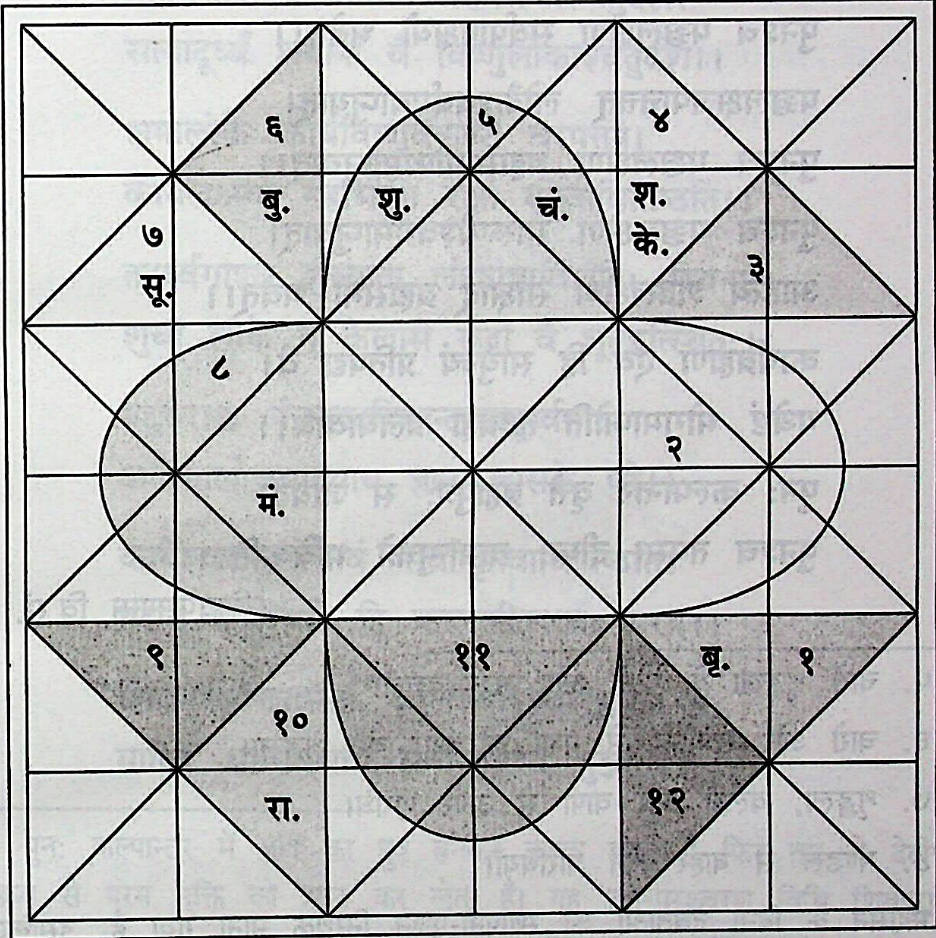
परिधि के ऊपर भद्र के मध्य में षोडश पद में अष्टदल कमल का निर्माण किया जाता है। उपर्युक्त सभी कोष्ठ किस वर्ण से पूरित होंगे इसका प्रकार बताते है—खण्डेन्दु को श्वेत वर्ण से, शृङ्खला को कृष्ण से, वल्ली को नील (हरित) वर्ण से रचित करना चाहिए।।३।।

भद्रों को रक्तवर्ण से, वापी को श्वेत वर्ण से, परिधि को पीत वर्ण से, मध्य में अष्टदल पद्म को श्वेत वर्ण से और कर्णिका को पीत वर्ण से पूरित करे।।४।।

इस तरह मध्य स्थान (अष्टदल कमल) परिधि से आवेष्टित हो जायेगा। मण्डल के बाहर पहले सत्त्व (श्वेत वर्ण) परिधि, फिर रजः (रक्त वर्ण) परिधि तदनन्तर तमः (कृष्ण वर्ण) परिधि बनानी चाहिए।

इस प्रकार सर्वतोभद्रमण्डल का निर्माण करके उसके मध्य में ब्रह्मा आदि देवताओं की स्थापना करनी चाहिए।।५।।

सं. १९७३ विक्रमी



सूर्यः-गुरुः, चन्द्रः-सप्तमं, भौमः-शुक्रः, बुधः-८, गुरुः-३, शनिः-राहुः। ३,१०-पादह.शनेःपू.ह.। ५,९-द्विप.ह.गु.पू.ह.। ८,४-त्रि.पा.ह.म.पू.ह.।

इस तरह सर्वतोभद्रमण्डल में विशेष रूप में ये अंग हैं—

१. मध्य में कर्णिका (अष्टदल कमल)।

२. चारों दिशाओं में चार वापी।

३. चारों कोनों में चार खण्डेन्दु।

४. चारों खण्डेन्दु (वल्ली का स्पर्श करते हुए) के दोनों ओर आठ भद्र।

पुरश्चरणमेवं तु कृत्वा मन्त्री भवेन्नरः।
पुनश्च पञ्चलक्षेण सर्वपापक्षयो भवेत्।।
पञ्चलक्षजपात्तत्तत् लोकैश्वर्यमवाप्नुयात्।
पुनश्च पञ्चलक्षेण ब्रह्मसामीप्यमाप्नुयात्।।
पुनश्च पञ्चलक्षेण सारूप्यैश्वर्यमाप्नुयात्।
आहत्य शतलक्षेण साक्षाद् ब्रह्मसमो भवेत्।।
कार्यब्रह्मण एवं हि सायुज्यं प्रतिपद्य वै।
यथेष्टं भोगमाप्नोति तद्ब्रह्म प्रलयावधि।।
पुनः कल्पान्तरे वृत्ते ब्रह्मपुत्रः स जायते।
पुनश्च तपसा दीप्तः क्रमान्मुक्तो भविष्यति।।

(शिवपुराणम् वि.सं. १७)

---

५. चारों शृङ्खला के दोनों ओर आठ वल्ली।

६. चारो ओर खण्डेन्दु से मध्य की ओर चार शृङ्खला।

७. शृङ्खला, वल्ली और वापी से ऊपर परिधि।

८. मण्डल से बाहर तीन परिधियाँ।

भद्रासन के बिना देवताओं का स्थापना-पूजन निरर्थक माना गया है, इसलिए भद्र मण्डल की रचना अनिवार्य है। वैसे तो गणेश आदि देवताओं के पृथक्-पृथक् भद्र हैं, किन्तु यह सर्वतोभद्रमण्डल देवताओं को प्रिय है, इसलिए भी इस का नाम सर्वतोभद्र मण्डल है। यह अन्यान्य भद्रों का प्रकृतिरूप है।

पुरश्चरण

इस प्रकार विधिपूर्वक पुरश्चरण करके मनुष्य को मन्त्र सिद्ध हो जाता है, फिर पाँच लाख जप करने से सभी पाप क्षीण हो जाते हैं, पुनः पाँच लाख जप से तत्तत् लोकों का ऐश्वर्य प्राप्त हो जाता है। पुनः पाँच लाख जप करने से ब्रह्मसामीप्य प्राप्त हो जाता है, फिर पाँच लाख जप से सारूप्य ऐश्वर्य की सम्प्राप्ति होती है और एक करोड़ जप करने से साक्षात् ब्रह्म की समानता प्राप्त हो जाती है। इस तरह निश्चित ही कार्य ब्रह्म के साथ सायुज्य मुक्ति पा जाता है, ब्रह्मा के प्रलयपर्यन्त अभीष्ट भोगों की प्राप्ति होती

पातालादि च सत्यांतं ब्रह्मलोकाश्चतुर्दश।
सत्यादूर्ध्वं क्षमान्तं वै विष्णुलोकाश्चतुर्दश।।

क्षमालोके कार्यविष्णुर्वैकुण्ठे वरपत्तने।
कार्यलक्ष्म्या महाभोगि रक्षां कृत्वाधितिष्ठति।।

तदूर्ध्वगाश्च शुच्यन्ता लोकाष्टाविंशतिः स्थिताः।
शुचौ लोके तु कैलासे रूद्रो वै भूतहृत्स्थितः।।

षडुत्तराश्च पंचाशदहिंसान्तास्तदूर्ध्वगाः।
अहिंसालोकमास्थाय ज्ञानकैलासके पुरे।।

कार्येश्वरस्तिरोभावं सर्वान्कृत्वाधितिष्ठति।
तदन्ते कालचक्रं हि कालातीतस्ततः परम्।।

शिवेनाधिष्ठितस्तत्र कालश्चक्रेश्वराह्वयः।
माहिषं धर्ममास्थाय सर्वान्कालेन युञ्जति।।

है। वह पुनः कल्पान्तर में ब्रह्म का पुत्र बनकर उत्पन्न होता है फिर तप से देदीप्यमान होकर क्रम से परम मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। यह जप-पुरश्चरण विधि शिवपुराण में वर्णित है।

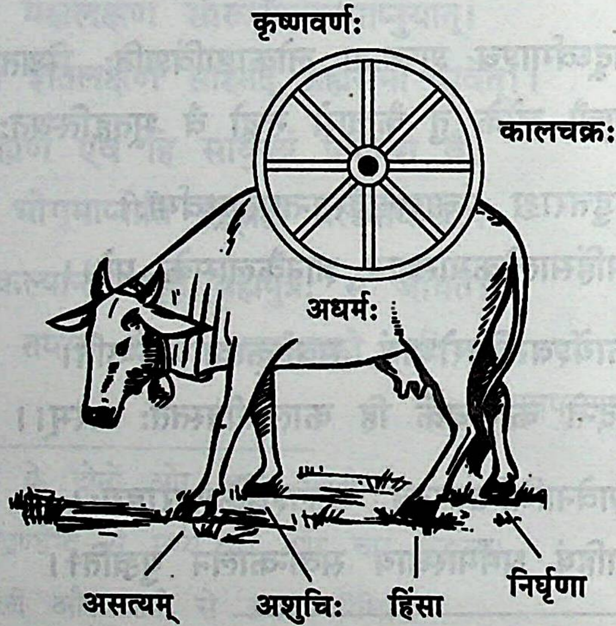
विविध दिव्य लोक

पाताल से लेकर सत्य लोक पर्यन्त चौदह ब्रह्मलोक हैं, सत्य लोक से ऊपर क्षमालोक पर्यन्त चौदह विष्णु लोक हैं। क्षमालोकस्थ सर्वश्रेष्ठ वैकुण्ठ में कार्य विष्णु कार्य लक्ष्मी के साथ रमण करते हुए लोक-रक्षण करते हैं। उससे भी ऊपर शुचि लोक पर्यन्त अट्ठाईस लोक हैं, वहाँ पवित्रतम कैलाश लोक में सर्वभूतात्मा रुद्र रहते हैं। इससे ऊपर अहिंसा लोक पर्यन्त छप्पन लोक हैं, उस अहिंसा लोकस्थ ज्ञान कैलाशपुर में कार्येश्वर सदाशिव सभी का तिरोभाव करके स्थित रहते हैं।

कालचक्र

तदनन्तर कालचक्र है, उसके बाद कालातीत है; वहाँ भगवान् शिव द्वारा नियुक्त काल चक्रेश्वर माहिष रूप से सभी को कालचक्र के प्रति सम्बद्ध करते हैं।

असत्यादिचतुष्पादः सर्वांशः कामरूपधृक्।
नास्तिक्यलक्ष्मीर्दुःसंगो वेदबाह्यध्वनिः सदा।।
क्रोधसंगः कृष्णवर्णो महामहिषवेषवान्।
तावान्महेश्वरः प्रोक्तस्तिरोधास्तावदेव हि।।



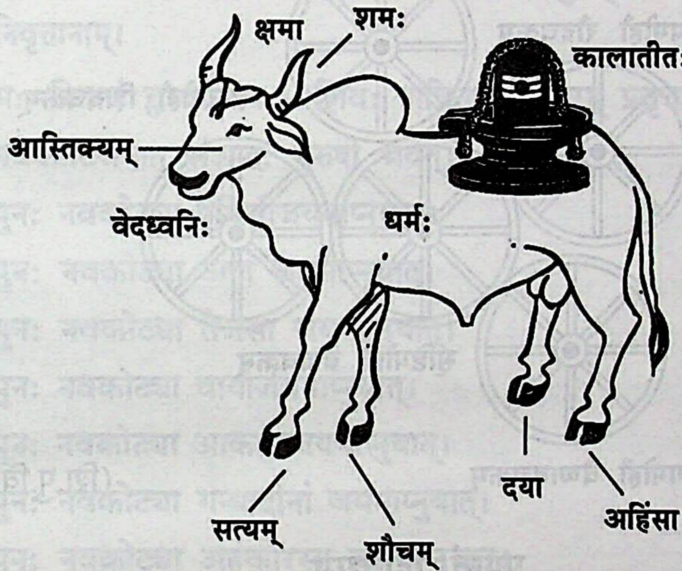
तदर्वाक्कर्मभोगः। तदूर्ध्वं ज्ञानभोगः। तदर्वाक्कर्ममाया। तदूर्ध्वं ज्ञानमाया।
शिवैकनिरता ये च तदूर्ध्वं संप्रयान्ति ते।
तदर्वाग्जीवकोटिः स्यात्तदूर्ध्वं परकोटिका।।
अधर्ममहिषारूढं कालचक्रं तरन्ति ते।
सत्यादिधर्मयुक्ता ये शिवपूजापराश्च ये।। (शिवपु.वि.सं. १७)

महिषारूढ़ अधर्मरूप कालचक्र

सर्वथा कामरूपधारी, नास्तिकता (अनीश्वरवादिता) अलक्ष्मी (दरिद्रता) दुःसङ्ग (कुसंगति) वेदविरुद्धाचरण, नित्य क्रोधाग्नि दग्ध, कृष्णवर्ण महिष (भैंसा) पर आरूढ़ यह कालचक्र है। उस महिष का शरीर अधर्ममय है। उसके चारों चरण (पैर) असत्य, अशुचि, हिंसा और निर्घृण हैं। जैसा कि चित्र में दर्शाया गया है।

इस कालचक्र के नीचे कर्म भोग है और इसके ऊपर ज्ञान भोग है। नीचे कर्ममाया है और ऊपर ज्ञानमाया है। इस कालरूपी दुस्तर सागर से वे ही पार पा सकते है जो

तदूर्ध्वं वृषभो धर्मो ब्रह्मचर्यस्वरूपधृक्।
सत्यादिपादयुक्तश्च शिवलोकाग्रतः स्थितः।। (शिवपु.वि.सं. १७)



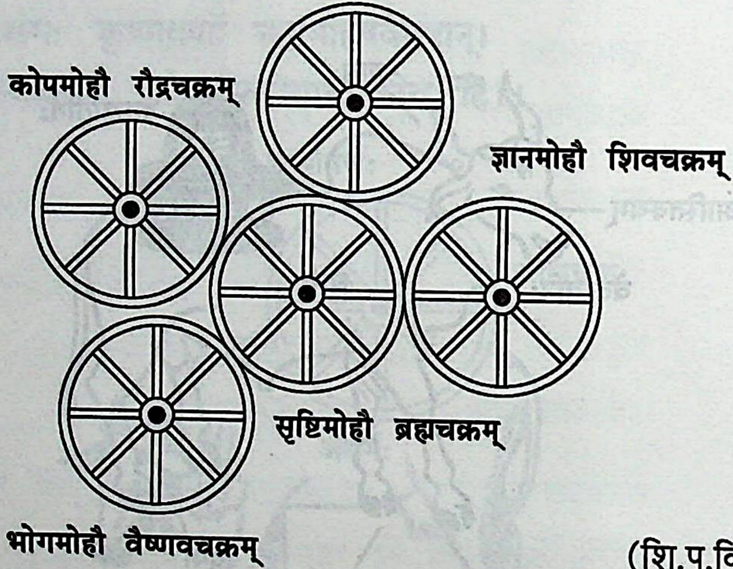
सदाशिव के चरणकमलों में अपने आपको समर्पित कर देते हैं, वे इस दुस्तर कर्मभोग व कर्ममाया से परे ज्ञान भोग व ज्ञानमाया को पार कर जाते है। जो जीव कोटि के सामान्य प्राणी हैं वे इस कालचक्र के नीचे तथा पर कोटि के महापुरुष होते हैं; वे इस काल चक्र से ऊपर पहुँच जाते हैं। अधर्म महिषारूढ़ कालचक्र को अर्थात् असत्य अशुचि, हिंसा, निर्घृणा आदि को वे ही पार कर सकते हैं जो सत्य, शुचिता, अहिंसा और दया से युक्त होकर भगवान् शिव की उपासना में संलग्न हैं।

वृषभरूप धर्म

इस कालचक्र के ऊपर ब्रह्मचर्य का व्रत धारण किये हुए वृषभाकृतिरूप धर्म है। यह शिव-लोक से आगे स्थित है तथा सत्य आदि चार पैरों से युक्त है।

इस वृषभरूप धर्म के आगे का दक्षिण पाद सत्य रूप है, वाम पाद शौच (पवित्रता) है, पीछे का दक्षिण पाद दया है और वाम पाद 'अहिंसा' है, अर्थात् धर्म, सत्य, शुचिता, दया और अहिंसा रूप चार पैरों से चलता है। जहाँ सत्यादि हैं वहाँ धर्म है। इसके मुख में वेदध्वनि सुशोभित है, आस्तिकता की दृष्टि (नेत्र) है, क्षमारूपी सींग वाला है, शम- रूपी कान हैं। धर्म के ऊपर कालचक्र नहीं, कालातीत शिव-लिङ्ग स्थित है। धर्म पर कालचक्र का अधिकार नहीं है। इस तथ्य को चित्र के माध्यम से सुस्पष्ट किया है।

कालचक्रं पञ्चचक्रम्



(शि.पु.वि.सं. १७)

प्रणवं द्विविधम्

१. सूक्ष्ममेकाक्षरम्। २ स्थूलं पञ्चाक्षरम्।

जीवन्मुक्तस्य सूक्ष्मं हि सर्वसारं हि तस्य हि।
मन्त्रेणार्थानुसंधानं स्वदेहविलयावधि।।
स्वदेहे गलिते पूर्णं शिवं प्राप्नोति निश्चयः।
केवलं मन्त्रजापी तु योगं प्राप्नोति निश्चयः।।

पाँच प्रकार का कालचक्र

यहाँ चित्र के माध्यम से यह बताया गया है कि यह कालचक्र पञ्चचक्रात्मक है। अर्थात् पाँच चक्रों का समूह कालचक्र नाम से जाना जाता है। यथा—१. भ्रमणात्मक ईश्वराधिष्ठित चक्र, २. क्रोधमोहात्मक रुद्राधिष्ठित चक्र, ३. भोगमोहात्मक वैष्णव चक्र, ४. सृष्टिमोहात्मक ब्राह्म चक्र, ५. ज्ञानमोहात्मक शिव चक्र।

दो प्रकार का प्रणव

प्रणव दो प्रकार का है—सूक्ष्म प्रणव (ॐ) एकाक्षर है और स्थूल प्रणव (अ उ म नाद) पञ्चाक्षरात्मक है। जीवन्मुक्त प्राणी को सूक्ष्म एकाक्षर प्रणव है। इस मन्त्र का अनुसन्धान

षट्त्रिंशत्कोटिजापी तु निश्चयं योगमाप्नुयात्।
सूक्ष्मं तु द्विविधं ज्ञेयं ह्रस्वदीर्घविभेदतः।।

१. दीर्घं–अः उः मः नादः शब्दकालकलायुतम्। योगिनामेव हृद्गतम्। निवृत्तानाम्।

२. मः–त्रितत्वं ह्रस्वप्रणवः। शिवः शक्तिस्तयोरैक्यम् प्रवृत्तानाम्।।

नवकोटिजपात् संशुद्धः पुरुषो भवेत्।
पुनः नवकोट्या पृथिवीजयमाप्नुयात्।
पुनः नवकोट्या अपां जयमाप्नुयात्।
पुनः नवकोट्या तेजसां जयमाप्नुयात्।
पुनः नवकोट्या वायोर्जयमाप्नुयात्।
पुनः नवकोट्या आकाशजयमाप्नुयात्।
पुनः नवकोट्या गन्धादीनां जयमाप्नुयात्।
पुनः नवकोट्या अहंकारस्य जयमाप्नुयात्।

सहस्रमन्त्रजप्तेन नित्यशुद्धो भवेत्पुमान्। ततः परं स्वशुद्ध्यर्थं जपो भवति।

तब तक करें जब तक देहाध्यास गलित न हो जाय। देहाध्यास के विनष्ट होते ही निःसन्देह शिवतत्त्व की प्राप्ति हो जाती है। छत्तीस करोड़ प्रणव जप करने वाला निश्चित ही योग (जीवात्मा परमात्मा की युति) को प्राप्त हो जाता है।

सूक्ष्म प्रणव भी दो प्रकार का है—ह्रस्व और दीर्घ भेद से। दीर्घ—अ उ म नाद, शब्द काल व कला से युक्त है। वह निवृत्तात्मा योगियों के हृदय में ही भासित होता है। ह्रस्व-प्रणव (ॐ) में शिव शक्ति दोनों का ऐक्य है, यह प्रवृत्तिमार्ग के साधकों के लिए है।

९ करोड़ प्रणवजप से पुरुष सकल कल्मष शून्य हो जाता है। पुनः ९ करोड़ जप से पृथिवी को जीत लेता है। पुनः ९ कोटि जप से जल को जीत लेता है। पुनः ९ कोटि जप से तैजस् तत्व पर विजय प्राप्तकर लेता है। पुनः ९ कोटि जप करने से वायु तत्व पर विजय पा लेता है। पुनः ९ कोटि जप से गन्धादि पञ्च तन्मात्राओं को जीत लेता है। पुनः ९ कोटि प्रणवजप से अहङ्कारादि पर विजय पा जाता है।

तदनन्तर एक हजार प्रणव मन्त्र जप से नित्य शुद्ध हो जाता है। इसके उपरान्त स्वत्व शुद्ध्यर्थ जप होता है।

एवमष्टोत्तरशतकोटिजप्तेन प्रबुद्धः शुद्धयोगमवाप्नुयात्। तेन जीवन्मुक्तः।।

सदा जपन्सदा ध्यायञ्छिवं प्रणवरूपिणम्।
समाधिस्थो महायोगी शिव एव न संशयः।।

ऋषिच्छन्दोदेवतादि न्यस्य देहे पुनर्जपेत्।
प्रणवं मातृकायुक्तं देहे न्यस्य ऋषिर्भवेत्।। (शिवपु.वि.सं. १७)

शिवलोकं पञ्चमावरणाद्बहिः। शतकोटिमनुं जप्त्वा पञ्चोत्तरमतन्द्रितः। तत्प्राप्नोति। राजसं मण्डपं तत्र नन्दीसंस्थानमुत्तमम्।

तपोरूपश्च वृषभः। सद्योजातस्य तत्स्थानम् पञ्चमावरणं परम्। वामदेवस्य स्थानं चतुर्थावरणम्। अघोरनिलयं तृतीयावरणम्। पुरुषस्य साम्बस्य द्वितीयं शुभम्। ईशानस्य परस्य प्रथमम्। ध्यानधर्मस्य स्थानं पञ्चमं मण्डपम्। तत्र बलिनाथस्य पूर्णामृतप्रदं स्थानं चतुर्थं मण्डपम्। पश्चाच्चन्द्रशेखरमूर्तिमत् सोमस्कन्दस्य स्थानं तृतीयं मण्डपम्। द्वितीयं नृत्यमण्डपम्।

इस प्रकार १०८ करोड़ जप करने पर प्रबुद्ध साधक शुद्ध योग को प्राप्त कर लेता है, जिससे वह जीवन्मुक्त हो जाता है।

प्रणवरूप शिव का सदा जप करता हुआ—ध्यान करता हुआ समाधिस्थ हो जाता है, तब वह महायोगी सदाशिव ही है; इसमें कोई सन्देह नहीं।

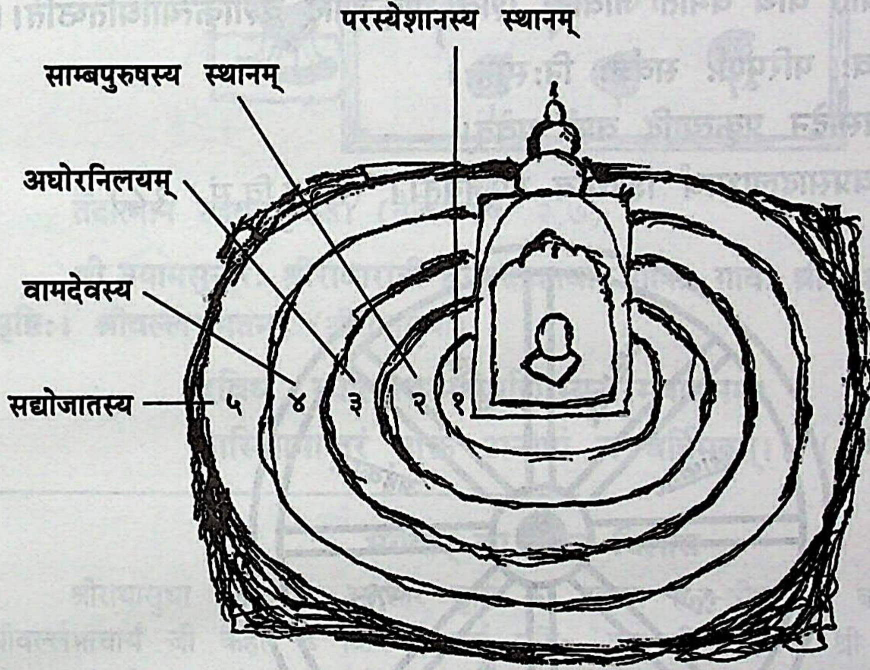
प्रणव मन्त्र के ऋषि, छन्द और देवता आदि का विनियोग में स्मरण करके, ऋष्यादिन्यासपूर्वक जप करे। मातृकायुक्त प्रणव का देह में न्यास करने मात्र से साधक ऋषि हो जाता है।

नन्दी-संस्थान की प्राप्ति व नन्दीश्वर का प्रणव-जप

तन्द्रा, प्रमाद आलस्यादि से रहित होकर १०५ करोड़ प्रणव जप करने से जहाँ राजस मण्डप है उत्तम नन्दी संस्थान की प्राप्ति हो जाती है।

वहाँ तपरूप वृषभ स्थित है, वहाँ पञ्चम आवरण से परे सद्योजात देवता का स्थान है। चतुर्थावरण वामदेव का स्थान है। तृतीय आवरण अघोर का निलय है। सुन्दर द्वितीयावरण साम्बपुरुष (तत्पुरुष) का स्थान है। प्रथमावरण पर देवता ईशान का स्थान है। ध्यान धर्म का स्थान पञ्चम मण्डप है। वहाँ बलिनाथ का पूर्ण अमृतप्रद स्थान चतुर्थ मण्डप है। तदनन्तर चन्द्रशेखर मूर्ति वाला सोम स्कन्द का स्थान तृतीय मण्डप है। द्वितीय नृत्य मण्डप है।

प्रथमं मूलमायायाः शोभनं स्थानम्।
ततः परं शुभं लिङ्गस्थानं गर्भगृहम्।
नंदीश्वरो बहिः स्थित्वा पञ्चाक्षरमुपासते।। (शि.पु. १७)



प्रकृत्याद्यष्टबन्धेन बद्धो जीवः स उच्यते।
प्रकृत्याद्यष्टबन्धेन निर्मुक्तो मुक्त उच्यते।।

प्रकृत्याद्यष्टजो देहः, देहजं कर्म। पुनः कर्मजो देहः।

प्रथम मूल माया का सुन्दर स्थान है, उसके बाद अत्यन्त शोभायुक्त लिङ्ग स्थान गर्भ ग्रह है, उसके बाहर बैठ कर नन्दीश्वर पञ्चाक्षर का जप करते रहते हैं।

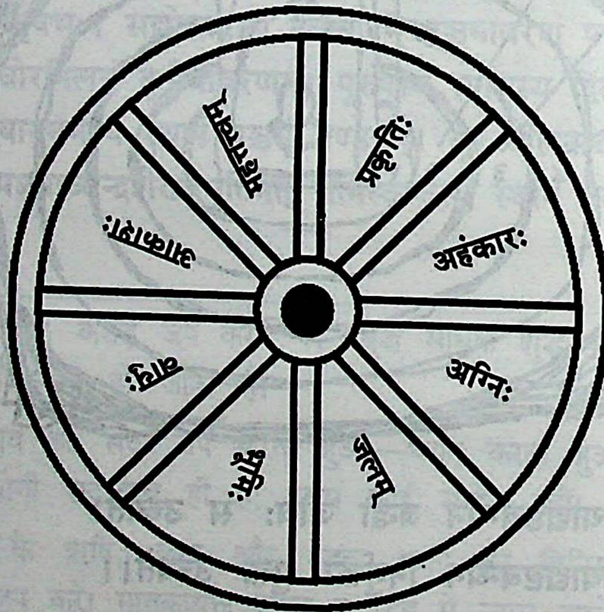
उपर्युक्त पञ्च आवरण (मण्डप) और उनके अधिष्ठातृदेवों का स्थान चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है।

प्रकृति आदि आठ बन्धनों में जो आबद्ध है उसे 'जीव' कहते हैं और प्रकृति आदि आठ बन्धनों से जो निर्मुक्त है उसे मुक्त कहते हैं। प्रकृत्यादि आठ संसाधनों के द्वारा ही शरीर की उत्पत्ति होती है, देह से कर्म की उत्पत्ति है और फिर कर्म वश पुनः पुनः देह की उत्पत्ति होती रहती है। इस तरह जन्म-मरण का क्रम चलता रहता है।

शरीरं त्रिविधम्—

१. स्थूलं-व्यापारदम्। २. सूक्ष्ममिन्द्रयभोगदम्। ३. कारणम्-आत्मभोगार्थम्।

प्रकृत्यादिमहाचक्रं प्रकृतेः परतः शिवः।
पिबति वाथ वमति जीवान्; शिवः प्रकृत्यादि वशीकृत्याधितिष्ठति।।
शिवः परिपूर्णः सर्वज्ञः निःस्पृहः।
तत्प्रसादेन प्रकृत्यादि वशं भवेत्।
शिवप्रसादलाभार्थं शिवमेव प्रपूजयेत्।। (शि.पु.वि.सं. १८)

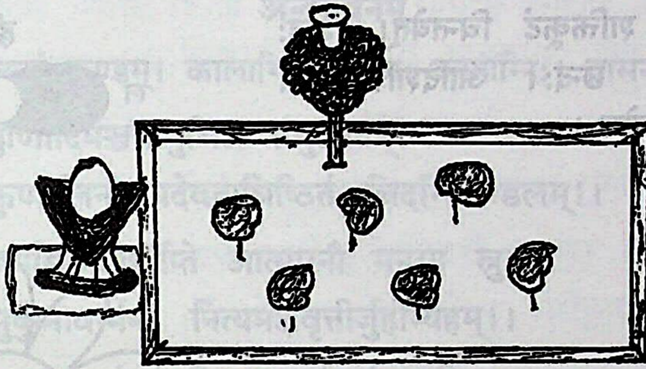


यह शरीर तीन प्रकार का होता है—

१. स्थूल शरीर—यह बाह्य व्यापार सम्पादन के निमित्त है।
२. सूक्ष्म शरीर—यह इन्द्रियों को भोग प्रदान करता है।
३. कारण शरीर—यह आत्म भोग के लिए है।

प्रकृति आदि महाचक्र से परे सदाशिव हैं जो प्रकृति को वश में करके जीवों का पान व वमन करते हैं। वे सर्वज्ञ, निस्पृह और परिपूर्ण हैं। उनकी परम कृपा से ही ये प्रकृत्यादि वश में आ पाते हैं। उनका मङ्गलमय प्रसाद पाने के लिए श्रीसाम्ब सदाशिव का ही पूजन करना चाहिए।

यह प्रकृति आदि क्या हैं? इसको ही चक्रात्मक चित्र के द्वारा प्रदर्शित किया है।



तदात्मानं स्वयमकुरुत। (तैत्तिरीयोप. २.७)

श्री श्यामसुन्दरः श्रीराधाराज्ञी श्रीवृन्दावनधाम गोपाः गावः श्रीगोपाङ्गनाः, आत्मार्था सृष्टिः। श्रीवल्लभमतम्। (श्रीराधासुधा)

द्विविधं स्याल्लब्धमनोर्बाह्याभ्यन्तरमुपासनम्।
न्यासिनामान्तरं प्रोक्तं अन्येषां च बर्हिमतम्।। (अगस्त्यः)

भगवान् का लीला-विलास

श्रीराधासुधा निधि के अनुसार सृष्टि का उद्देश्य है—श्रीभगवान् का लीला-विलास। श्रीवल्लभाचार्य जी कहते हैं कि आत्मार्था सृष्टिः—एक ही तत्त्व ने श्री श्याम सुन्दर व श्रीराधारानी के रूप में स्वयं को व्यक्त किया। यही 'तदात्मानं स्वयमकुरुत (तै.उप.) आदि श्रुति वचनों का कथन है, परमात्मा ने लीलार्थ स्वयं को स्वयं ही क्रीडास्थल, क्रीडक व क्रीडनक के रूप में साकार किया।

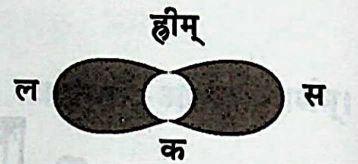
वही परब्रह्म श्रीश्याम सुन्दर, श्रीराधारानी, श्रीवृन्दावन धाम, गोप, गौ और गोपियों के रूप में अभिव्यक्त हो गया। रमणलीला के लिए वह अव्यक्त से व्यक्त हो गया। निराकार से साकार, निर्गुण से सगुण, अलक्ष्य से लक्ष्य, अदृश्य से दृश्य और द्रष्टा से दर्शन बन गया।

वह पूर्ण ब्रह्म परमात्मा ही श्रीश्यामसुन्दर, श्रीराधा आदि रूपों में स्वयं ही अवतरित हो गया—इस तथ्य को यहाँ चित्र द्वारा दर्शित किया गया है।

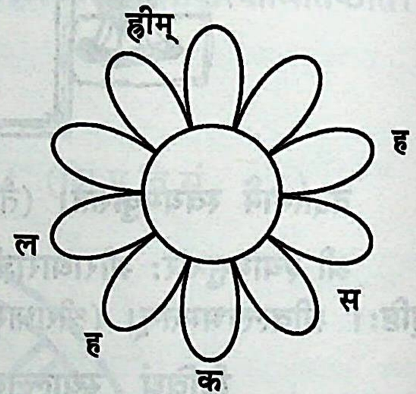
बाह्य एवं आन्तरिक उपासना

मन की वृत्ति के आधार पर बाह्य एवं आन्तरिक भेद से उपासना दो प्रकार की होती है, जिसमें संन्यासियों की उपासना आन्तरिक अर्थात् अलक्षित होती है जब कि अन्यों की उपासना का विस्तार बाहर दिखायी देता है।

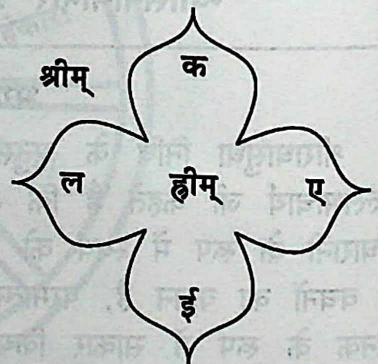
आज्ञाचक्रे शक्तिकूटं चिन्तयेत्। शिवः ऋषिः। पङ्क्तिः छन्दः। आदिशक्तिर्देवता। चतुर्वर्गाप्तये विनियोगः।



हृदये कामराजकूटं चिन्तयेत्। सम्मोहनः ऋषिः। गायत्री छन्दः। कामेशी देवता। वशीकरणे विनियोगः।



मूलाधारे वाग्भवकूटं चिन्तयेत्। ब्रह्मा ऋषिः। गायत्रं छन्दः। वागधीश्वरी देवता। वाक्सिद्ध्यै विनियोगः। (श्रीविद्यार्णवः ५)



आज्ञाचक्रादि में त्रिकूट-चिन्तन

१. द्विदलात्मक भ्रूमध्य में स्थित आज्ञाचक्र में शक्तिकूट—'स क ल ह्रीम्' का चिन्तन करे। इस शक्तिकूट मन्त्र के ऋषि शिव हैं, पङ्क्ति छन्द है, आदि शक्ति देवता है, चतुर्विध पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की सिद्धि में इसका विनियोग है।

२. द्वादश दलात्मक हृदयस्थ अनाहत चक्र में कामराज कूट—'ह स क ह ल ह्रीम्' का चिन्तन करे। इस कामराज कूट मन्त्र के सम्मोहन ऋषि हैं, गायत्री छन्द है, कामेशी देवता है और वशीकरण में इसका विनियोग है।

३. चतुर्दलात्मक मूलाधार चक्र (गुदप्रदेशस्थ) में वाग्भव कूट—'क ए ई ल ह्रीं श्रीम्' का चिन्तन करे। इस वाग्भवकूट मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा हैं, गायत्री छन्द हैं, वागधीश्वरी देवता है, इस मन्त्र का विनियोग वाक्सिद्धि के लिए है।

अन्तर्हवनम्

मूलाधारे त्र्यस्त्रं कुण्डम्। कालाग्निरुद्रोऽग्निः कामाग्निः। वासना इन्धनम्।

प्राणादिपञ्चवायुभिः संधुक्षितम्।

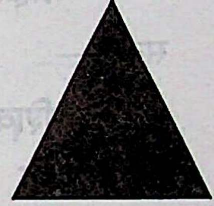
कुण्डलिनीरूपदेवताधिष्ठितं चिदग्निमण्डलम्।।

धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्त्रुचा।

सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्।।

पुण्यपापकृत्याकृत्यसंकल्पविकल्पधर्मात्मकं हविः सप्तकं हुत्वा अधर्मं जुहोमि स्वाहा इति पूर्णाहुतिः।

(श्रीविद्यार्णवः १०)



कामकलामातृका स्वराणामेव

श्रद्धा प्रीतिः रतिर्धृतिः कान्तिर्मनोरमा मनोहरा मनोरथा मदनोन्मादिनी मोहिनी शङ्खिनी

अन्तर्हवनविधि

दृष्ट जगत् में जैसे समिधा-घृत-कुण्ड-होता-हव्य-हुताशन की आवश्यकता होती है, ठीक वैसे ही आन्तरिक दिव्यतम होम में मूलाधार में ही त्र्यस्र (त्रिकोण) हवन कुण्ड में कालाग्नि रुद्र को अग्निरूप में अङ्गीकार कर अथवा कामाग्नि को प्रज्वलित करके वासना रूपी ईंधन (समिधा) का हवन करें, उस अग्नि को प्राणादि पञ्च वायु से उद्दीप्त करें। वहाँ कुण्डलिनीरूप देवता द्वारा अधिष्ठित चैतन्य अग्निमण्डल में धर्म-अधर्म रूप हवि को प्रदीप्त आत्माग्नि में मनरूपी स्त्रुवा द्वारा सुषुम्णा मार्ग से नित्य इन्द्रिय वृत्तियों का होम करता हूँ— ऐसी भावना होनी चाहिए।

पुण्य-पाप, कृत्य-अकृत्य, संकल्प-विकल्प और धर्मात्मक सप्त हवि का हवन करके अन्त में अधर्मं जुहोमि स्वाहा—अधर्म का भी होम करता हूँ, इस प्रकार पूर्णाहुति प्रदान करे।

षोडश स्वरों में कामकला मातृका

सोलह कामकला मातृकाएं सोलह स्वरों से ही सम्बद्ध हैं। इनको क्रमशः स्वरों के साथ संयुक्त करके यजन करना चाहिए। यथा—

१. ॐ अं श्रद्धायै नमः। २. आं प्रीत्यै नमः। ३. इं रत्यै नमः। ४. ईं धृत्यै नमः। ५. उं कान्त्यै नमः। ६. ऊं मनोरमायै नमः। ७. ऋं मनोहरायै नमः। ८. ॠं मनोरथायै

शोषिणी वशंकारी शिञ्जिनी सुभगा। कामस्येताः कलाः प्रोक्ताः स्वराणां षोडशेष्टदाः। स्वरषोडशसंयुक्ता एताः कामकला यजेत्। (श्रीविद्यार्णवे ३)

अन्तर्यागनम्

दृष्टादृष्टफलप्रदम्। गुरोर्ध्यानम्। स्नानम्–हृदयाश्रिते पुष्करे।

इडा सुषुम्ना शिवतीर्थकेऽस्मिन् ज्ञानाम्बुपूर्णे वहतः शरीरे।
ब्रह्माम्बुभिः स्नाति सदा तयोर्यः किं तस्य गांगैरपि पुष्करैर्वा।।

सन्ध्या—

शिवशक्त्योः समावेशो यस्मिन्काले प्रजायते।
सा सन्ध्या कुलनिष्ठानां समाधिस्थैः प्रतीयते।।

तर्पणम्—

चन्द्रार्कानलसम्बन्धगलितपरामृतेन दिव्येन परदेवतातर्पणम्।

नमः। ९. ॐ ऌं मदनायै नमः। १०. ॡं उन्मादिन्यै नमः। ११. एं मोहिन्यै नमः। १२. ऐं शङ्खिन्यै नमः। १३. ओं शोषिण्यै नमः। १४. औं वशङ्कर्यै नमः। १५. अं शिञ्जिन्यै नमः। १६. अः सुभगायै नमः।

अन्तर्याग

यह अन्तर्याग अर्थात् आन्तरिक समर्चन दृष्ट (इहलौकिक) और अदृष्ट (पारलौकिक) फल प्रदान करने वाला है।

स्नान—सर्व प्रथम ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर स्वरूप गुरुदेव का ध्यान करे फिर हृदयदेशवर्ती दिव्य पुष्कर तीर्थ में मलमोचन स्नान सम्पन्न करे। हृदयदेश में प्रवहित ज्ञानाम्बु से परिपूर्ण, इडा सुषुम्णा रूप पावन शिवतीर्थ में अवगाहन-स्नपन करे। इस ब्रह्मद्रव में स्नान करने से समस्त असद् वासनाएं विनष्ट हो जाती हैं।

सन्ध्या—जिस काल में शिव और शक्ति का समावेश (सम्मिलन) होता है, वह समय गुरुपरम्पराप्राप्त दीक्षा से सम्पन्न, समाधिनिष्ठ यतियों के लिए सर्वोत्तम प्रतीति वाला जाना जाता है अर्थात् उस वेला में सन्ध्या करनी चाहिए।

तर्पण—चन्द्र, सूर्य और अग्नि के पारस्परिक तैजस् सम्बन्ध से द्रवीभूत दिव्य परामृत से परम देवता का तर्पण करे अर्थात् इडा, पिंगला और सुषुम्णा के सविधि सम्प्रयोग से सहस्रार चक्रस्थ दिव्यातिदिव्यामृत स्रोत के आस्वाद से दिव्य तर्पण होता है।

अर्घ्यम्—

ब्रह्मरन्ध्रादधोभागे यच्चान्द्रं पात्रमुत्तमम्।
कलासारेण सम्पूर्य तर्पयेत्तेन खेचरीम्।।

अन्तर्मातृकान्यासः

आधारे लिङ्गनाभावित्यादिना।।

ध्यानम्—

शक्तिद्वयपुटान्तःस्थं कमलद्वयशोभितम्।
ज्योतिस्तत्त्वमयं ध्यायेत् कुलाकुलनियोजनात्।।

अर्घ्य—ब्रह्मरन्ध्र के नीचे के भाग में जो शीतांशु सम्पन्न चन्द्र सम्बन्धी पात्र है उसे कला सार से भरकर खेचरी मुद्रा करे, उस सार तत्त्व का आस्वाद ले अर्थात् खेचरी, को इस दिव्यार्घ्य से तर्पित करे—यही अर्घ्य प्रक्रिया है।

खेचरी मुद्रा में जिह्वा को पलट कर तालु मूल में ले जाने पर जब जिह्वा सतत अभ्यास व उपक्रम द्वारा भ्रूमध्य तक जाने लगे तब खेचरी मुद्रा का वैधानिक प्रारम्भ है। वहाँ तक जिह्वा के पहुँचने पर ब्रह्मरन्ध्र से अमृततत्त्व का स्राव होता है, उसके बिन्दुमात्र आस्वाद से क्षुधा-पिपासा, जरा, रोग, निद्रा, आलस्य, चिन्ता, क्लेशादि विनष्ट हो जाते हैं और एक अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है जिसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। जैसे गूँगा गुड़ के स्वाद को व्यक्त नहीं कर सकता, वैसे उस आनन्द को व्यक्त करने का प्रयास मात्र भी साधक के पतन का कारण हो जाता है।

अन्तर्मातृकान्यास

आधारे लिङ्गनाभौ.—के आधार पर अन्तर्मातृकाओं का न्यास भी अन्तर्याग में विहित है। यथा—ॐकार पूर्वक अनुस्वार सहित षोडश स्वरों के कण्ठ देशस्थ षोडश दलात्मक विशुद्धिचक्र में न्यास करे।

आदि में ॐ पूर्वक अनुस्वार सहित क से ठ पर्यन्त द्वादश वर्णों को हृदयस्थ द्वादश दलात्मक अनाहतचक्र में न्यास करे।

ड से फ पर्यन्त दश वर्णों को नाभिस्थ दश दलात्मक मणिपूरचक्र में न्यास करे।

ब से ल पर्यन्त छः वर्णों को लिङ्गस्थ षड् दलात्मक स्वाधिष्ठानचक्र में न्यास करे।

व से स पर्यन्त चार वर्णों को गुदप्रदेशस्थ चतुर्दलात्मक मूलाधारचक्र में न्यास करे।

ॐ हं क्षं—इन दो वर्णों को ललाटस्थ द्विदलात्मक आज्ञाचक्र में न्यास करे।

अर्चनम्—

अर्चयन्विषयैः पुष्पैः तत्क्षणात्तन्मयो भवेत्।
न्यासस्तन्मयताबुद्धिः सोऽहंभावेन चिन्तयेत्।।

सुमनांसि—

अमायमनहंकारमरागममदं तथा।
अमोहकमकर्मत्वमद्वेषाक्षोभकौ ततः।।
अमात्सर्यमलोभं च दमोऽहिंसा दया ज्ञानं क्षमा चेत्यष्टसप्त।।

माला—

माला पञ्चाशिका प्रोक्ता सूत्रं शक्तिशिवात्मकम्।।
ग्रथिता कुण्डलीशक्तिः कलान्ते मेरुसंस्थितिः।
जप्त्वा जपं परं धाम्नि तेजोरूपे निवेदयेत्।।

इस प्रकार अन्तःशरीर में सुषुम्णास्थ षट्-चक्रों में मातृका-न्यास करना चाहिए। उक्त श्लोक में न्यासविधिपूर्वक सकलदलगत वर्णरूपा अन्तर्मातृका का ध्यान है। पूरा श्लोक यह है—

आधारे लिङ्गनाभौ प्रकटितहृदये तालुमूले ललाटे, द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदशदले द्वादशार्धे चतुष्के। वासान्ते बालमध्ये ड फ क ठ सहिते कण्ठदेशे स्वराणां, हं क्षं तत्त्वार्थयुक्तं सकलदलगतं वर्णरूपं नमामि।

उपर्युक्त अन्तर्मातृका-न्यास करके दो शक्ति पुटों के मध्य दो कमल पुष्पों से शोभित ज्योतितत्त्वात्मक ध्येय का ध्यान कुलागत विधि से करे।

अर्चन—विषय पुष्पों से पूजा करते हुए उस समय उपास्य के साथ तादात्म्य (तन्मयता) स्थापित करे। तन्मयता भाव से सज्जित बुद्धि ही न्यास है। इसीलिए ही कहा गया है—देवो भूत्वा देवं यजेत्।

पुष्प—अमायत्व, अनहंकार, अराग, अमद, अमोह, अकर्मकत्व, अद्वेष, अक्षोभ, अमात्सर्य, अलोभ, दम, अहिंसा, दया, ज्ञान और क्षमा को क्रमशः अष्ट-सप्त पुष्पों को इष्ट देवता के श्रीचरणों में समर्पित करे।

माला—पञ्चाशत् वर्णभेद से पचास मणियों की माला कही गयी है, जिसमें शिव शक्त्यात्मक-सूत्र है। यह दिव्य माला कुण्डलिनी-शक्ति द्वारा ग्रथित है और कलान्त में मेरु की स्थिति है। ज्योतिरूप परम धाम में अवस्थित होकर जप सम्पादित कर उपास्य देवता

यागः—

अमूलमपरिच्छिन्नं विभाव्यात्मान्तरात्मकम्।
परमात्मस्वरूपं च शुद्धज्ञानात्मरूपकम्।।
चतुरस्रं च चित्कुण्डमानन्दमेखलायुतम्।
नाभौ विभाव्य तन्मध्ये जुहुयात्साधकोत्तमः।।

मूलाग्नौ नाभिचैतन्यहविषा मनसा स्रुचा।
ज्ञानप्रदीपिते नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्।। स्वाहा।।१।।

ततो मूलान्ते—

धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्।। स्वाहा।।२।।

प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुचम्।
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णामग्नौ जुहोम्यहम्।। स्वाहा।।३।।

(श्रीविद्यार्णवः १८)

को निवेदित कर दे। यही अन्तर्याग में जप विधान है। जब इस यजन के समस्त उपचार अलौकिक हैं तो यह माला भी दिव्य है।

याग—स्वयं को शुद्ध ज्ञानरूप, परमात्मस्वरूप, अमूल और अपरिच्छिन्न समझ कर आनन्दरूप मेखला से युक्त चतुरस्र चित्कुण्ड की नाभिप्रदेश में भावना कर उसके (चैतन्य कुण्ड) मध्य में उत्तम साधक होम-क्रिया सम्पादित करे। उस नाभि चैतन्य मूलाग्नि में जो नित्य ज्ञान से प्रदीप्त है हविरूप मन के श्रुवा से 'अक्षवृत्तीर्जुहोम्यहं स्वाहा' मैं इन्द्रियों की वृत्तियों को आहुति रूप में (इस दिव्याग्नि में) प्रदान करता हूँ।

धर्म-अधर्म रूप हवि से प्रदीप्त आत्माग्नि में मन रूपी श्रुक् के द्वारा सुषुम्णा मार्ग का अवलम्बन कर नित्य विषयों की ओर दौड़ने वाली इन्द्रियों की वृत्तियों का हवन करता हूँ—ऐसा कह कर दूसरी आहुति आत्माग्नि में प्रदान करे।

प्रकाश और आकाश रूपी हाथों से उन्मनी मुद्रारूपी श्रुवा का आश्रय लेकर धर्मकला और अधर्म कलारूपी घृत को पूर्णाग्नि में होम करता हूँ। इस प्रकार तीसरी आहुति को पूर्णाग्नि में दे।

अन्तर्निरन्तरनिरिन्धनमेधमाने
मोहान्धकारपरिपन्थिनि संविदग्नौ।
कस्मिंश्चिदद्भुतमरीचिविकासभूमौ
विश्वं जुहोमि वसुधादिशिवावसानम्।। स्वाहा।।४।।

ह्रीम्

अशेषतो जगत्कृत्स्नं हृल्लेखात्मकमीरितम्।
व्योम्ना प्रकाशमानत्वं ग्रसमानत्वमग्निना।
तयोर्विमर्शमीकारो बिन्दुना तन्निफालनम्।। (श्रीविद्यार्णवः २१)

वेणुः

गुद्मेढ्रान्तरे यद्वै वेणुकन्दं तदुच्यते।
सुषुम्ना सा च षट्चक्रवती मूलाधारदण्डान्त-
विवरगता मूर्धानं भित्त्वा ब्रह्मलोकान्तं निर्गता।। (श्रीविद्यार्णवः २१)

बिन्दुर्विधुमयो ज्ञेयो रजः सूर्यमयस्तथा।
उभयोर्मेलनं कार्यं स्वशरीरे प्रवेशयेत्।। (शिवसंहिता ४.८६)

तदुपरान्त अन्तर् में ईंधनरहित, निरन्तर प्रज्वलित, मोहान्धकार-विनाशक ज्ञानाग्नि में किसी अद्भुत प्रकाश से विकसित दिव्य भूमि पर अवस्थित होकर अखिल जगत् प्रपञ्च का होम करता हूँ—यह कह कर भावनात्मक चौथी आहुति प्रदान कर दे।

ह्रीम्

तत्त्व-ग्रन्थों में यह सम्पूर्ण जगत् हल्लेखात्मक कहा गया है अर्थात् ह्रींकारात्मक है। यह व्योम से अर्थात् आकाश बीज ह कार से प्रकाशमान है। अग्निबीज र कार से ग्रसमान है और ई कार इन दोनों (हकार और र कार) का विमर्शक है अर्थात् ह कार और र कार का संयोजन करता है तथा बिन्दु (अथवा म्) ह् र् ई—ह्री का मुकुट है।

वेणुकन्द

गुद और मेढ्र के मध्य में जो है, उसे वेणुकन्द कहते हैं। वह वेणु अर्थात् सुषुम्णा षटचक्रों से युक्त है, वह मूलाधार से दण्डपर्यन्त विवरगत होती हुई मूर्धा का भेदन करके ब्राह्म लोक तक गमन करती है।

बिन्दु और रज

ऐसा जानना चाहिए कि बिन्दु विधु (चन्द्रमा)-मय है और रज सूर्यमय है, अर्थात्

धारणासिद्धये सुषुम्नायां प्राणमनसोः प्रवेशः कर्तव्यः। तत्रोपायः—

मूलोड्याणजालन्धरबन्धैः शक्तिचालनेन
अपानमूर्ध्वमाकुञ्च्य तेन देहमध्येऽग्निं प्रज्वाल्य
तेन कुण्डलिनीं प्रताप्य उद्बोध्य ब्रह्मनाडी-
द्वारमुद्घाट्य तत्र वायुमनोवह्नीन् प्रवेशयेत्।।

शक्तिचालने—

सव्यासनस्थस्य फणावती सा प्रातश्च सायं प्रहरार्धमात्रम्।
प्रपूर्य सूर्यात्परिधानयुक्ता प्रदह्य नित्यं परिचालनीया।।

(श्रीविद्यार्णवः २१)

पारदलिङ्गविधानम्—

निष्कत्रयं हेमपत्रं रसेन्द्रं नवनिष्ककम्।
अम्लेन मर्दयेद्यामं तेन लिङ्गं तु कारयेत्।।

बिन्दु चन्द्र है और रज सूर्य है। इन दोनों का मेलन करके स्वकीय शरीर में प्रवेश कराये। इन दोनों के परस्पर मिलन से शरीर की सृष्टि होती है। उसे इस प्रकार भी समझा जाय कि पिंगला सूर्य-तत्त्व है और इडा चन्द्र-तत्त्व, इन दोनों की युति से ही देह में अद्भुत शक्ति का संचार लेता है।

धारणासिद्धि

धारणा की सिद्धि के लिए सुषुम्णा नाड़ी में प्राण व मन को प्रविष्ट करे। इसका उपाय बताते हैं—मूल में उड्याण बन्ध व जालन्धर बन्धों से शक्तिचालन द्वारा अपान वायु का ऊपर आकुञ्चन कर उससे देह के मध्य में अग्नि प्रज्वलित करके उससे तपाकर व उद्बोधित कर ब्रह्मनाड़ी के द्वार को अनावृत्त करके वहाँ वायु, मन व वह्नि (अग्नि) को प्रविष्ट करे।

शक्ति-चालन

सव्य आसनस्थ उन फणयुक्त सर्पिणी जैसी कुण्डलिनी शक्ति को प्रातः-सायं आधे प्रहर तक सूर्यशक्ति से प्रपूरित करके परिधानयुक्त शक्ति को प्रज्वलित कर नित्य शक्ति चालन करना चाहिए।

पारद-लिङ्ग-विधान

तीन निष्क (परिमाण) हेमपत्र (लता विशेष-स्वर्णपत्र) नौ निष्क रसेन्द्र (पारद) उन

दोलायन्त्रे सारनाले जम्बीरस्थं दिनं पचेत्।
तल्लिंगं पूजयेन्नित्यं सहस्रगुणितं फलम्।। (श्रीविद्यार्णवः १९)

ताक्ष्र्यमनुः

त्रयोविंशार्णको मन्त्रः उपरागे सुसाधितः।
फणिदंष्टान् पिशाचाद्यैः क्लिष्टान्नयांश्च रोगिणः।।

पालयेच्छतजप्तेन तोयेनाभ्युक्षणात्क्षणात्।
कुर्वतस्ताण्डवं शम्भोः अग्रे मेरुसमं विभुम्।।

अहितानि च खादन्तं, स्मरन्स्ताक्ष्र्यमनुं जपेत्–ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं वैरिमोहे गरुडपक्षी हंस हंस हिंस हिंस स्वाहा।

पद्माक्षवीजतैलेनाप्याशु नस्येन नाशयेत्।
गरलं भुजगानां च समस्तानामयत्नतः।। (श्रीविद्यार्णवतंत्रे २१)

दोनों को अम्ल पदार्थ के साथ एक प्रहर तक मर्दन करे (घोटे)। फिर उससे लिङ्ग का निर्माण करे। दोला यन्त्र में सारनालस्थ नीबू के रस में उस को दिन भर पचाये। इस प्रकार निर्मित पारदलिङ्ग की नित्य पूजा करने से अन्य लिङ्गों की अपेक्षा हजारों गुना फल प्राप्त होता है।

गारुडी विद्या

यह ताक्ष्र्य मन्त्र अर्थात् गारुड विद्या मन्त्र २३ अक्षरों का है, इसे ग्रहण-काल में सिद्ध किया जाता है। मन्त्र को सिद्ध कर लेने वाला साधक सौ बार गारुड़ मन्त्र अभिमन्त्रित जल से अभ्युक्षण द्वारा सर्प से दंष्ट, पिशाचपीड़ित और भी अन्यान्य तीव्रतर रोगों से आर्त प्राणियों का परिपालन करे। इस प्रक्रिया में विशुद्ध रूप से लोक-कल्याण की भावना होनी चाहिए, न कि आर्थिक आदि लाभ के लिए।

मन्त्र जापक सिद्धि व प्रयोग-काल में ऐसी भावना करे कि सम्मुख ही मेरु समान व सर्वव्यापक भगवान् शिव समस्त अहितों का भक्षण करते हुए ताण्डव कर रहे हैं, इसके पश्चात् उपर्युक्त ताक्ष्र्य मन्त्र का जप करे।

पद्माक्ष बीजों के तेल से शीघ्र ही नासिका के द्वारा नस्य (आघ्राण) करने से भी बिना किसी अन्य प्रयत्न के समस्त सर्पों का विष शान्त हो जाता है।

शक्तिचालनमुद्रा

आधारकमले सुप्तां चालयेत्कुण्डलीं दृढाम्।
अपानवायुमारुह्य बलादाकृष्य बुद्धिमान्।।
शक्तिचालनमुद्रेयं सर्वशक्तिप्रदायिनी।
विहाय निद्रां भुजगी स्वयमूर्ध्वं भवेत्खलु।।
(शिवसंहिता ४.१०५,१०६)

आयुवृद्धिः रोगनाशः—

कण्ठकूपादधःस्थाने कूर्मनाड्यस्ति शोभना।
तस्मिन्योगी मनो दत्वा चित्तस्थैर्यं लभेद् भृशम्।।
(शिवसंहिता ५.६२)

पातालादि च सत्यान्तं ब्रह्मलोकाश्चतुर्दश।
सत्यादूर्ध्वं क्षमान्तं वै विष्णुलोकाश्चतुर्दश।।
क्षमालोके कार्यविष्णुर्वैकुण्ठे वरपत्तने।
तदूर्ध्वगाश्च शुच्यन्ता लोकाष्टाविंशतिः स्थिताः।।
शुचौ लोके तु कैलासे रुद्रो वै भूतहृत्स्थितः।
षडुत्तराश्च पञ्चाशत् अहिंसान्तास्तदूर्ध्वगाः।।

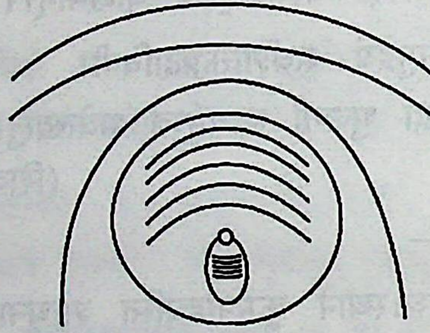
शक्तिचालन मुद्रा

बुद्धिमान् व्यक्ति मूलाधारस्थ कमलनालवेष्टित सुप्तावस्था में स्थित उस दृढ़ कुण्डलिनी शक्ति का अभ्युत्थान करे, अपान वायु पर आरुढ़ कर बलपूर्वक आकृष्ट करके इस शक्ति चालनी मुद्रा का प्रयोग करे। यह मुद्रा सर्वशक्ति प्रदायिनी है। 'हुं' बीज मन्त्र की हुंकार भर कर वाँयी एड़ी से मलद्वार का निष्पीडन कर अपान के आकर्षण के साथ सुषुप्त इस शक्ति को जागृत करे। सर्पाकृति इस कुण्डलिनी-शक्ति के निद्रा त्याग कर ऊर्ध्वगामी हो जाने से आयु की वृद्धि और समस्त रोगों का विनाश हो जाता है।

कण्ठ-कूप के नीचे के स्थान में शोभन कूर्म नाड़ी है। उस कूर्म नाड़ी में मन एकाग्र करने पर योगी चित्त की स्थिरता प्राप्त कर लेता है।

नोट—पृ. ४९ पर अङ्कित—पातालादि से लेकर ५० पृ. अंकित अधितिष्ठति तक अनुवाद पूर्व में पृ. २९ पर किया जा चुका है।

अहिंसालोकमास्थाय ज्ञानकैलासके पुरे।
कार्येश्वरस्तिरोभावं सर्वान्कृत्वाधितिष्ठिति।। (शिवपु.विद्ये. १७)



तत्त्वमसि-जहल्लक्षणा। अहं शब्दः-अहंकारवाची। ब्रह्म शब्दः-साभासाज्ञानवाची। एकतायां-जहात्यहं साभासाज्ञानं चैतन्ये ऐक्यं निराबाधम्। यथा–नौः रौति। लौहं दहति–अत्र नावि रावोऽनुपपन्नः-तत्स्थजनेषु लक्षणा। तप्तलौह-दहनं लक्ष्ये अग्नौ।

(संक्षिप्तशारीरकम् १.१६९)

तत्त्वमसि अहं ब्रह्म

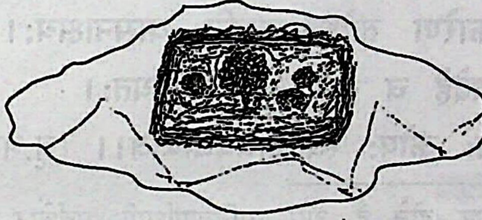
तत्-त्वम्-असि—यहाँ जहत् लक्षणा है। अपने अर्थ का त्याग करके अन्यार्थ को प्रतिबोधित करने वाली लक्षणा शक्ति को जहल्लक्षणा कहते हैं। तत् = वह, त्वम् = तुम, असि = हो—उस देश में रहने वाले विप्रकृष्ट वह ब्रह्म इस देश में सन्निकट सम्प्राप्त तुम ही हो। अब वहाँ दूर यहाँ पास के बोधक तत्-त्वम् के हटाते ही ऐक्य हो गया। यही जहत् लक्षणा है। एतत् देशविशिष्ट व एतत् कालविशिष्ट देवदत्त, तत् देशविशिष्ट देवदत्त व तत् कालविशिष्ट देवदत्त जब एक ही है तब इनको दूर करने वाली देश-काल की उपाधि से मुक्त करके जानें तो देवदत्त एक ही है।

अहम् शब्द अहङ्कार का वाची है और ब्रह्म शब्द साभासा ज्ञान का वाचन करता है। इन दोनों की एकता में अहम् अपने अहङ्कार को, ब्रह्म अपने साभासा ज्ञान को त्याग दे तो चैतन्य में तो ऐक्य ही है, निर्बाध एक ही तत्त्व है। जैसे—'नौका शब्द करती है'—लोहा जला रहा है, यह आदि शब्द व्यवहार में प्रयुक्त होते हैं जो कि असङ्गत प्रतीत होते है, क्योंकि निर्जीव नौका शब्द करने में नितान्त असमर्थ है तथा लोहा भी दाहकता शक्ति शून्य होने से जलाने में समर्थ नहीं है। तो फिर उससे अर्थ का अनुभव कैसे होता है? यहाँ नौका में स्थित मनुष्यों के शब्द करने से तात्पर्य है, वैसे ही लोहे में अग्नि के संसर्ग से दाहकत्व है। जैसे यहाँ नौका व लोहा से नौकारूप यात्री व अयोगोलकगत अग्नि ही लक्ष्य है, ठीक वैसे ही तत्त्वमसि में भी तत् और त्वम् पद से ब्रह्म ही लक्ष्य है।

अखण्डवस्तुप्रतिपादने पक्षान्तरम्

साभासाज्ञानवाची यदि भवति पुनर्ब्रह्मशब्दस्तथाहं-
शब्दोऽहंकारवाची भवति तु जहती लक्षणा तत्र पक्षे।
नौरेषा रौति लौहं दहति विषधरो रज्जुरग्रेतवासा
वित्यत्रेवात्मवस्तुन्यपि भवतु जहल्लक्षणा को विरोधः।।

गुणाः शमादयो ज्ञानाच्छमादिभ्यस्तथा ज्ञता।
परस्परं विवर्धेते द्वे पद्मसरसी इव।। योगवाशिष्ठ।



ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः।
क्रमाच्छ्रेष्ठाः अतिवर्णाश्रमी गुरुः। (सूत सं. मुक्ति खं. ५)
व्योमवत्सर्वदा व्याप्तः सर्वसम्बन्धवर्जितः।
एकरूपो महादेवः स्थितः सोऽहं परामृतः।।

श्रुति या वेदवेदान्तैः सोऽतिवर्णाश्रमी भवेत्।।

अखण्ड वस्तुप्रतिपादन में अन्य पक्ष

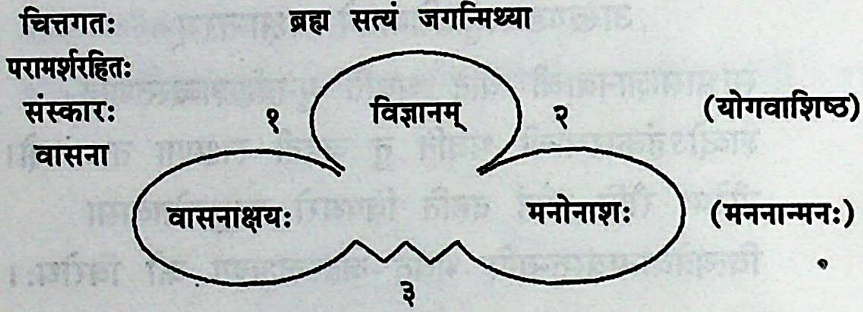
सभासा ज्ञानवाची यदि ब्रह्म शब्द है और अहम् शब्द अहङ्कार वाची है तो यहाँ जहल्लक्षणा है। नौका बोलती है, लोहा जलाता है, रज्जु सर्प है, इत्यादि प्रयोगों के समान यहाँ आत्मवस्तु में भी यदि जहत् लक्षणा हो जाये तो क्या विरोध है?

शमादि गुण और ज्ञान

शम आदि गुणों की वृद्धि ज्ञान से होती है तथा शम, दम, उपरति, तितिक्षा आदि गुणों से ज्ञान की अभिवृद्धि होती है। ये परस्पर पद्म और सरोवर की तरह एक-दूसरे के परस्पर पोषक व वर्धक हैं। इसे चित्र के द्वारा समझाया गया है।

आश्रम-श्रेष्ठता व अतिवर्णाश्रमी

ब्रह्मचारी से गृहस्थ श्रेष्ठ है, गृहस्थ से वानप्रस्थ, वानप्रस्थ से भिक्षुक अर्थात् संन्यासी



समकालं चिराभ्यस्ता भवन्ति फलदायिनः।
व्युत्थानसंस्कारनिरोधः मनोनाशः।।

शमादिशुद्धसंस्कारेण क्रोधाद्यनुत्पत्तिः-वासनाक्षयः।
रिपौ बन्धौ स्वदेहे च समैकात्म्यं प्रपश्यतः।
विवेकिनः कुतः कोपः स्वदेहावयवेष्विव।। (वृ.भा.वार्तिके)

श्रेष्ठ है। ये क्रमशः उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होते हैं और अतिवर्णाश्रमी सर्वश्रेष्ठ है। अतिवर्णाश्रमी गुरु पद बोध्य है। अतिवर्णाश्रमी का लक्षण करते हैं—जो आकाश के समान सर्वव्यापक, सर्वसंग-विवर्जित है, परामृत व एक रूप महादेव हूँ मैं—इस स्थिति में स्थित है, इस प्रकार के वेदान्त वाक्य के अनुभव से सम्पन्न है, वह अतिवर्णाश्रमी होता है। अर्थात् विधि-निषेध से ऊपर स्थित देहाध्यासशून्य, नित्य ब्रह्मानन्द उदधि में निमग्न परमहंस महापुरुष ही अतिवर्णाश्रमी है।

ब्रह्म सत्य है—जगत् मिथ्या है। ब्रह्म सत्य है, तदतिरिक्त कुछ भी सत्य नहीं। प्रातीतिक सत्ता वाला, अवभासित यह जगत् स्वप्न के समान मिथ्या ही है।

वासना का क्षय और मन का नाश ही विज्ञान (ब्रह्मज्ञान) में हेतु है।

वासना क्या है?

चित्त में परामर्शरहित संस्कार विशेष को वासना कहते हैं।

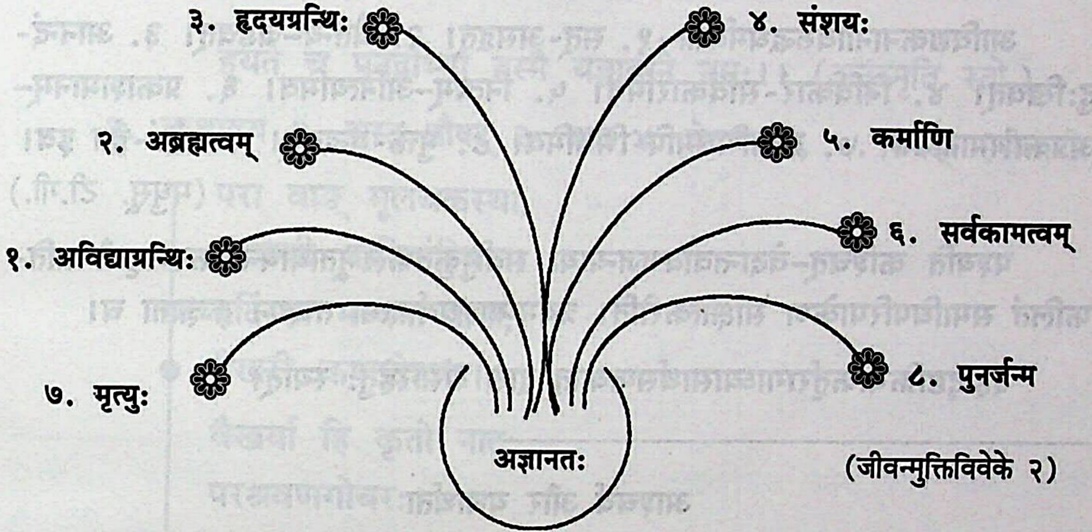
मन क्या है?

मनन करने की क्षमता वाला संकल्प-विकल्प युक्त मन है।

निरन्तर दीर्घ काल के अभ्यास से ये फलप्रदायक हो जाते हैं।

उत्थित संस्कारों के निरोध से ही मन की चञ्चलता का शमन होता है। शम आदि शुद्ध संस्कार से क्रोधादि की उत्पत्ति नहीं होती, फलतः वासना का क्षय हो जाता है।

शत्रु में, मित्र में और अपनी देह में समान रूप से एकत्व भाव सम्पन्न विवेकी पुरुष को क्रोध कहाँ? वह तो अपने शरीर के अवयवों की तरह सभी में आत्मभाव रखता है।



(जीवन्मुक्तिविवेके २)

१. यो वेद सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरति। २. ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति। ३. भिद्यते हृदयग्रन्थिः। ४. छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। ५. क्षीयन्ते चास्य कर्माणि। ६. सोऽश्नुते सर्वान्कामान्। ७. अतिमृत्युमेति। ८. यस्माद् भूयो न जायते।

बन्धन और मोक्ष

अज्ञानरूपी वृक्ष पर अविद्याग्रन्थि आदि आठ पुष्प हैं—१. अविद्याग्रन्थि, २. अब्रह्मत्व, ३. हृदयग्रन्थि, ४. संशय, ५. कर्म, ६. सर्वकामत्व, ७. मृत्यु, ८. पुनर्जन्म।

इन आठों के मूल में अज्ञान ही है। यह सब अशन के अंकुर-वृक्ष-पुष्पादि हैं। उपर्युक्त बन्धनों का उच्छेत्ता ज्ञान ही है—

१. जो जानता है अर्थात् ज्ञानवान् है, वह अविद्या को विच्छिन्न कर देता है।

२. अब्रह्मत्व को तिरोहित करके ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म ही हो जाता है।

३. हृदयग्रन्थि का भेदन हो जाता है अर्थात् खुल जाती है।

४. समस्त संशय छिन्न हो जाते हैं।

५. सभी कर्म क्षीण हो जाते हैं।

६. वह सभी कामनाओं को पूर्ण कर लेता है, तृप्त हो जाता है।

७. मृत्यु को जीत लेता है।

८. जिससे पुनः पुनः जन्म नहीं होता, मुक्त हो जाता है। श्रुतिगम्य विषय का कितना सुन्दर प्रतिपादन यहाँ चित्र द्वारा हुआ है।

आश्चर्यवत्

आविद्यकनानाविरुद्धधर्मवत्ता–१. सत्-असद्वत्। २. चैतन्यं–जडवत्। ३. आनन्दं-दुःखिवत्। ४. निर्विकारं-सविकारमिव। ५. नित्यम्–अनित्यमिव। ६. प्रकाशमानम्–अप्रकाशमानमिव। ७. ब्रह्माभिन्नमपि-भिन्नमिव। ८. मुक्तं-बद्धवत्। ९.अद्वैतं-द्वैत इव।
(मधुसू. टी.गी.)

पश्यति कश्चित्–वेदान्तवाक्यजन्यायां सर्वसुकृतफलभूतायामन्तःकरणवृत्तौ प्रतिफलितं समाधिपरिपाकेण साक्षात्करोति। त्रयमप्याश्चर्यमात्मा तज्ज्ञानं तज्ज्ञाता च।

देहादृष्टक्रियाकर्तृरागाध्यासार्थसप्तकात् द्वारा संसारहेतुः स्यात्।

आश्चर्य और यथार्थता

अविद्यमान होने पर भी विविध विरुद्ध धर्मवत्ता की प्रतीतियाँ—

१. सत् में असत्वत् प्रतीति। २. चैतन्य में जडवत् प्रतीति। ३. आनन्द में दुःखवत् प्रतीति। ४. निर्विकार में सविकारवत् प्रतीति। ५. नित्य में अनित्यवत् प्रतीति। ६. प्रकाशमान में अप्रकाशमानवत् प्रतीति। ७. ब्रह्माभिन्न में भी ब्रह्मभिन्नवत् प्रतीति। ८. मुक्त में बद्धवत् प्रतीति। ९. अद्वैत में द्वैतवत् प्रतीति।

ये सब असत् प्रतीतियाँ ज्ञानाभावापन्न अज्ञानी को बनी रहती हैं, किन्तु ज्ञानी इन्हें यथार्थ रूप में देखता है। वह तो वेदान्त वाक्यों को हृदयङ्गम करने से समुत्पन्न होने वाली व समस्त सुकृतों की फलभूता अन्तःकरण की सात्त्विकी वृत्ति में प्रतिफलित समाधि के परिपक्व होने से सत्य स्वरूपता का साक्षात्कार कर लेता है।

वैसे तो ये तीनों ही आश्चर्य हैं—आत्मा, आत्मज्ञान और आत्मज्ञान करने वाला ज्ञाता। एकत्व में त्रित्व की परिकल्पना करना कम आश्चर्य की बात नहीं है। जब वह एक है, अभेद्य है, अछेद्य है तो यह त्रिविध भेद कैसे?

कहते हैं—आत्मतत्त्व (ब्रह्मतत्व) में ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता रूप त्रिविध भेद यथार्थतः नहीं है, मात्र आत्मबोध प्रक्रिया के अन्तर्गत ही ऐसी परिकल्पना है। आत्मबोध होते ही यह त्रितय विमलित हो जाता है, फिर तो ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।

संसार के हेतु

देह, अदृष्ट, क्रिया, कर्त्ता, राग, अध्यास और अर्थ—यह सात संसार के हेतु हैं, इन्हीं के द्वारा संसार की प्रक्रिया चल रही है।

१ २ ३ ४
चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च।
५
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तस्मै यज्ञात्मने नमः।। (अनुस्मृति स्तो.)

१. आश्रावय २. अस्तु श्रौषट् ३. यज ४. येयजामहे, ५. वषट्। (नील.टी.)

परा वाङ् मूलचक्रस्था,
पश्यन्ती नाभिसंस्थिता।
हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया,
वैखरी कण्ठदेशगा।।
वैखर्या हि कृतो नादः,
परश्रवणगोचरः।
मध्यमया कृतो नादः,
स्फोटव्यञ्जक उच्यते।।

यज्ञात्मा को नमस्कार

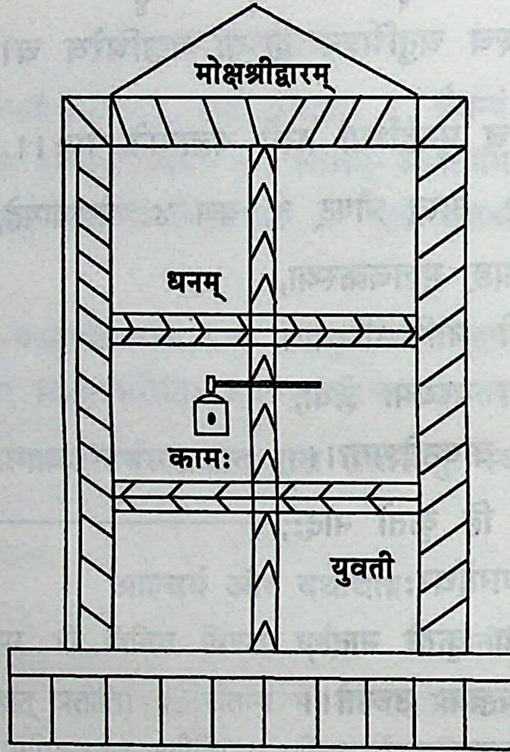
चार वर्णों वाले 'आश्रावय' शब्द के द्वारा, पुनः चार वर्णों से युक्त 'अस्तु श्रौषट्' शब्द के द्वारा, दो वर्णों वाले 'यज' शब्द से, पाँच वर्णों से समन्वित 'येयजामहे' शब्द के द्वारा और पुनः दो वर्णों वाले 'वषट्' शब्द के उच्चारण द्वारा आवाहनपूर्वक जिसे आहुति प्रदान की जाती है, उस यज्ञात्मा—यज्ञपुरुष भगवान् के लिए नमस्कार है।

यह श्रौत यज्ञों की प्रक्रिया के अन्तर्गत आता है। इसका ज्ञान श्रौत याग की इष्टि के दर्शन से ही सम्भव है।

वाणी के चार स्वरूप

वाक् (वाणी) के चार भेद हैं—१. परा वाक्। २. पश्यन्ती वाक्। ३. मध्यमा वाक्। ४. वैखरी वाक्।

चतुर्विधा वाक् की स्थिति कहाँ-कहाँ है, यह स्पष्ट करते हैं—परा वाक् मूल चक्र में स्थित रहती है। गुद द्वार से दो अंगुल ऊपर और लिङ्ग प्रदेश से दो अंगुल नीचे बीच का एक अंगुल भाग मूलाधार कहा जाता है वही देहमध्य भाग भी कहा जाता है। यहीं परा वाक् की स्थिति है। परा वाक् लोकव्यवहार से अतीत, अत्यन्त सूक्ष्म, निरवयव, क्रिया-शून्य है और योगियों की समाधि-अवस्था में निर्विकल्प ज्ञान का कारण है, इसी को ही शब्दब्रह्म कहा जाता है।



नाभि प्रदेश में रहने वाली वाक् पश्यन्ती वाक् है। यह भी व्यवहार के योग्य नहीं है। योगियों की समाधि अवस्था में यह प्रकृति-प्रत्यय आदि विभाग से युक्त होकर सविकल्पक ज्ञान का विषय बन जाती है।

हृदय में रहने वाली वाक् मध्यमा वाक् कही जाती है। इस में भावना के माध्यम से विवक्षित अर्थ का वाचक शब्द निश्चित हो जाता है।

कण्ठदेश में रहने वाली वाक् वैखरी वाक् नाम से जाती जाती है। हृत्प्रदेश से वायु के द्वारा प्रेरित होकर जब यह वाणी कण्ठप्रदेश तक पहुँचती है तब यह सर्वश्राव्य बन जाती है।

नाद तो मध्यमा और वैखरी दोनों में होता है लेकिन मध्यमा का नाद परश्रोत्र ग्राह्य नहीं होता। वैखरी द्वारा किया गया नाद (शब्द) अन्य लोगों के भी श्रवणगोचर होता है और मध्यमा से किया गया नाद स्फोट व्यञ्जक होता है। वस्तुतः स्फोट की अभिव्यक्ति मध्यमा नाद से ही होती है।

मोक्षद्वार

भगवान् के मोक्ष धाम में एक बाह्य द्वार है जिसमें कामिनी और कंचन (धन) रूपी दो कपाट हैं। कामिनी और कंचन की कामना (काम) ही सुदृढ् अर्गला-कीलक हैं, अर्थात् कामरूपी दृढ़तर लौह-शृङ्खला (सांकल) और ताला लगा हुआ है। वह ऐसा द्वार है जो

तस्मै नूनमभिद्यवे, वाचा विरूपनित्यया।
वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम्।। (ऋ.सं. ८.७५.६)

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति।
योजागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्येन्योकाः।।
(सामसं. उत्तरा. ९, ऋ. ५.४४.१४)

तमेकनेमिं [१] त्रिवृतं [२] षोडशान्तं [३] शतार्धारं [४] विंशतिप्रत्यराभिः [५]।
अष्टकैः [६] षड्भिर्विश्वरूपैकपाशं [७] त्रिमार्गभेदं [८] द्विनिमित्तैकमोहम्।।
(श्वेताश्वतरोपनि. १.४)

विषयासक्त प्राणियों के लिए सदा बन्द रहता है, इसे खोल पाना उनके लिए कभी सम्भव ही नहीं है।

बस, एक ही उपाय है कि भगवत्कृपा से कोई सद्गुरु प्राप्त हो जाये और वह कामिनी कंचन की कामना के मोहरूपी अज्ञानान्धकार को हटाकर ज्ञानरूपी कुञ्जी (चाबी) प्रसन्न होकर प्रदान कर दे, तभी इस मोक्षद्वार के खुल पाने की सम्भावना बन सकेगी। अन्यथा विषयासक्त प्राणी इसी तरह भयाटवी में भटकता रहेगा।

इस बात को समझाने के लिए पूज्य महाराजश्री ने चित्र द्वारा कितना सुन्दर व सुस्पष्ट रूपक प्रस्तुत किया है।

सुन्दर स्तुति करो

तस्मै—हे विरूप! (यजमान या होता) तुम प्रसिद्ध अभिगत दीप्ति की प्राप्ति के निमित्त अनेक प्रकार के मनोरथों के अभिवर्षण हेतु अग्नि देव के प्रति उत्पत्ति से रहित मन्त्ररूप नित्य वाणी से सुन्दर स्तुति करे—यो जागार०।

जाग्रत् में प्राप्ति

जो जागृत है, सक्रिय है, सत्कर्मशील है, उसका ऋग्वेद स्वयं वरण करता है, उसको सामवेद प्राप्त करता है। स्वयं सोम उससे कहता है मैं तुम्हारा हूँ, मैं तुम्हारे सख्य में हूँ। तात्पर्य यह है कि जागृत के सभी हितैषी हैं देव और वेद उसका पग-पग पर साथ देते हैं।

विश्वचक्र

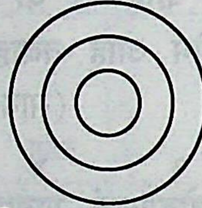
तमेकनेमिं—श्वेताश्वतरोपनिषद् में आया है कि महामनीषियों ने निखिल कारणों के कारणभूत ब्रह्म के अन्वेषण में विचारप्रधान सत्संग किया।

(१)

अज्ञानम्, अनृतम्,

अव्यक्तम्, योनिः, कारणम्,

तमः, शक्तिः,



अव्याकृतम्, आकाशम्,

प्रकृतिः, माया, परमव्योम,

अविद्या, छाया

(२)



इस जगत् का कारण क्या है? ब्रह्मतत्त्व क्या है? कहाँ से हमारी उत्पत्ति है? किसके बल पर जीवन है? किससे प्रेरित होकर सुख-दुख का अनुभव करते हैं? इस पर चर्चा करते हुए कहा गया कि हमने ब्रह्मानुभूति के साथ-साथ एक विश्वचक्र का दर्शन किया, जिसमें रथ की तरह एक नेमि है, तीन घेरा (वृत्त) हैं, सोलह सिरे हैं, पचास अरे हैं, बीस सहायक अरे हैं, छः अष्टकों से युक्त है, विश्वरूप एकपाश वाला है, त्रिविध मार्ग, दो निमित्त और एक मोह है। उक्त तथ्य को चित्र के माध्यम से क्रमशः प्रतिपादित किया जा रहा है—

१. जैसे रथ का पहिया होता है, जिसमें अरे-प्रत्यरे, नाभि आदि स्थित रहते हैं, उसी तरह यह विश्वचक्र है, जिसकी नेमि एक है, इसके अन्तर्गत निम्नाङ्कित आते हैं—

योनि, असत्य, अज्ञान, अव्यक्त, कारण, तम, शक्ति, प्रकृति, माया, अविद्या, छाया, परम व्योम, आकाश और अव्याकृत—ये ही सकल जगत् के आधार हैं।

२. यह विश्वचक्र तीन वृत्तों (घेरों) से आवृत्त है। सत्, रज, तम ही इसके तीन घेरा हैं। यह एकनेमि विश्वचक्र तीन वृत्तों से घिरा हुआ है। जैसे रथ के चक्र (पहिया) पर लोहे की पर्त होती है, उसी तरह इस विश्वचक्र में सत्, रज, तम रूपी तीन पर्तें लगी हुई हैं।

(३)

पञ्च भूतानि अथवा– प्रश्नोपनिषदि | षोडशविकाराऽवसानम् | एकादशेन्द्रियाणि विस्तारसमाप्तिः यत्र

षोडश कलाः प्राणायाः तासामन्तो यत्र

(४)

१- अम्भः
२- सलिलम्
३- ओघः
४- वृष्टिः
९- तुष्टयः

प्रकृतिः[१] उपादानम्,[२] कालः,[३] भाग्यम्[४]

विषयोपरमात्पञ्च-अर्जने,[१] रक्षणे,[२] दोषदर्शने,[३] संगे,[४] हिंसायाम्[५]

दर्शनेनोपरतिः।
१- पारम्।
२- सुपारम्।
३- पारापरम्।
४- अनुत्तमाम्भः।
५- उत्तमाम्भः।



५- विपर्ययाः + महामोहः
अविद्या-तमः। अस्मिता-मोहः।
रागः + तामिस्रः द्वेषः।
अभिनिवेशः अन्धता।
२८-अशक्तिः-एकादशेन्द्रियाणां *
८ सिद्धयः ऊहः[१]-उपदेशं विना-ज्ञानम्। शब्दः[२]- श्रवणमात्राज्ज्ञानम्। अध्ययनम्[३] शास्त्राभ्यासात्। आध्यात्मिकदुःख-[४] विघात् ज्ञानम्। आधिदैविक[५] दुःखविघात्। ६. आधिभौतिकदुःख विघात्।[७] सुहृत्प्राप्तिः। ८-दानम्।
(श्वेताश्वतरोपनि.भा. १)

---

३. इस एकनेमि विश्वचक्र के सोलह सिरे हैं। जैसे रथ की नेमि (पहिया) अलग-अलग सिरों को जोड़कर बनती है उसी तरह विश्वचक्र की नेमि के सोलह सिरे हैं, जो इस प्रकार हैं—**पञ्च महाभूत**—पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश। **पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ**—श्रोत्र, चक्षु, त्वक्, घ्राण, नासिका, जिह्वा। **पञ्च कर्मेन्द्रियाँ**—वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ और मन। प्रश्नोपनिषद् में यहाँ प्राणायामपर्यन्त षोडश कलाएँ ग्रहीत हैं।

४. इस विश्वचक्र के पचास प्रत्यय भेद (अरे) हैं जिसमें पाँच विपर्यय, नौ तुष्टियाँ अट्ठाईस शक्तियाँ और आठ सिद्धियाँ ही प्रत्यय भेद हैं।

*** मूकत्वबधिरत्वप्रभृतयो बाह्याः, पुरुषार्थयोग्यतारूपतुष्टीनां विपर्ययेण नवधा, सिद्धीनां विपर्ययेणाष्टधा, संकलिता अष्टाविंशतिः।**

(५)



पाँच विपर्यय—अविद्या (तम), अस्मिता (मोह), राग (महामोह), तामिस्र (द्वेष) और अन्धता (अभिनिवेश)।

अट्ठाईस शक्तियाँ—ग्यारह इन्द्रियों की—मूकत्व, बधिरता, अन्ध, अगन्ध, अनस्पर्श, रसाबोध, पंगुत्व, हस्तवैकल्य, औपथ्य, पायुविकार और मन अवस्थान।

नौ तुष्टियाँ—प्रकृति, उपादान, काल, भाग्य, अर्जन, रक्षण, दोषदर्शन, संग और हिंसा।

आठ सिद्धियाँ—ऊह = उपदेश, (बिना ज्ञान स्वतः स्फूर्त कल्पना), शब्द (श्रवणमात्र से ज्ञान), अध्ययन (शास्त्राभ्यास), आध्यात्मिक दुःख विघात ज्ञान, आधिदैविक दुःख विघात ज्ञान, आधिभौतिक दुःख विघात ज्ञान, सुहृत् प्राति और दान।

अम्भादि चार—अम्भ, सलिल, ओघ और वृष्टि।

परादि पाँच—पार, सुपार, पारापार, अनुत्तमाम्भ और उत्तमाम्भ—इस प्रकार यह पचास अरों के भेद हैं।

५. इस विश्वचक्र के बीस प्रत्यरे (सहायक अरे) हैं जो इस चक्र की दृढ़ता के लिए कीलक का काम करते हैं। दस इन्द्रियाँ और इन इन्द्रियों के विषय ही प्रत्यरे के रूप में बोध्य हैं—

दस इन्द्रियाँ—वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, घ्राण, जिह्वा, चक्षु, त्वक् और श्रोत्र।

दस इन्द्रियों के विषय—वाणी, आदान, गमन, विसर्ग, आनन्द (भोग), गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द।

(६)

अष्टकैः षड्भिः युक्तम्

१. प्रकृत्यष्टकम्–भूमिरापोऽनलो वायुः, खं मनो बुद्धिरेव च। अहंकारः...।।गी.७।।

२. धात्वष्टकम्–त्वक्चर्ममांसरक्तमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि।

३. ऐश्वर्याष्टकम्–अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्तिः, प्राकाम्यं, यथा-कामावसायित्वं, वशित्वम्।

४. भावाष्टकम्–धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याधर्माज्ञतावैराग्यानैश्वर्याख्याः।

५. देवाष्टकम्–ब्रह्मप्रजापतिदेवगन्धर्वयक्षराक्षसपितृपिशाचाः।

६. गुणाष्टकम्–दया, क्षान्तिः, अनसूया, शौचम्, अनायासः, माङ्गल्यं, अकार्पण्यम्, अस्पृहा।

(७)

नानाकामरूपा विषयाः

विश्वरूपैकपाशम् पाशाः यस्य तम्।

---

६. विश्वचक्र छः अष्टकों से युक्त है। इसमें आठ-आठ तानों के छः अष्टक हैं, जो इस प्रकार हैं—

अष्ट प्रकृति—भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार।

अष्ट धातु—त्वचा, रस, मांस, रक्त, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र।

अष्ट ऐश्वर्य—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व।

अष्ट भाव—धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य।

अष्ट देवजाति—ब्रह्म, प्रजापति, देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितर और पिशाच।

अष्ट गुण—दया, शान्ति, अनसूया, शौच, अनायास, माङ्गल्य, अकार्पण्य और अस्पृहा।

७. यह विश्वचक्र (सम्पूर्ण विश्व) बस एक ही पाश में बँधा हुआ है। अनेकानेक प्रकार की कामना के प्रति प्रबल आसक्तियाँ ही ऐसा जाल है कि इससे मुक्त हो पाना बहुत ही कठिन है।

(८)

धर्म-अधर्म-अज्ञानम्
मार्गभेदा यस्य तं त्रिमार्गभेदम्

(९)

पुण्यापुण्ययोर्निमित्तयोर्मोहो देहादिषु
यस्य तम्

ऋषयः अपश्यन्

सिद्धयः—

१. अध्ययनम्–अक्षरस्वरूपग्रहणं-तारम्। २. शब्दः–अर्थज्ञानम्-सुतारम्। ३. ऊहः–तर्कः-तारतारम्। ४. सुहृत्प्राप्तिः–सत्सङ्गः-रम्यकः। ५. दानम्–विवेकज्ञानस्य–'दैवशोधने' सदा मुदितम् (अमुख्याः साधन-सिद्धयः) मुख्याः–साध्याः तिस्रः।

---

८. जैसे रथ ऊँचे, नीचे और समान पथ पर चलता है, उसी प्रकार यह विश्वचक्र तीन मार्गों पर चलता है। वे तीन मार्ग हैं—धर्ममार्ग, अधर्ममार्ग और ज्ञानमार्ग। इन तीन मार्गों की भी उपनिषद् में चर्चा की गयी है—पितृलोक, देवलोक और मर्त्यलोक।

९. इस विश्वचक्र के दो निमित्त हैं—पुण्य और अपुण्य। पुण्य पाप निमित्तक देह गेहादि के प्रति मोह है जिसमें इस प्रकार का है वह विश्वचक्र। चक्रवत् नाभि-स्थानीय यहाँ मोह है। जैसे रथचक्र का केन्द्र नाभि होती है वैसे ही मोहात्मक अज्ञान ही इस जगत् रूपी चक्र का केन्द्र है।

इस उपर्युक्त विश्वचक्र को ऋषियों ने देखा।

सिद्धियाँ क्या हैं? सिद्धियाँ अष्टविध हैं—

अध्ययन—अक्षर स्वरूप का ग्रहण ही तार कहा जाता है।

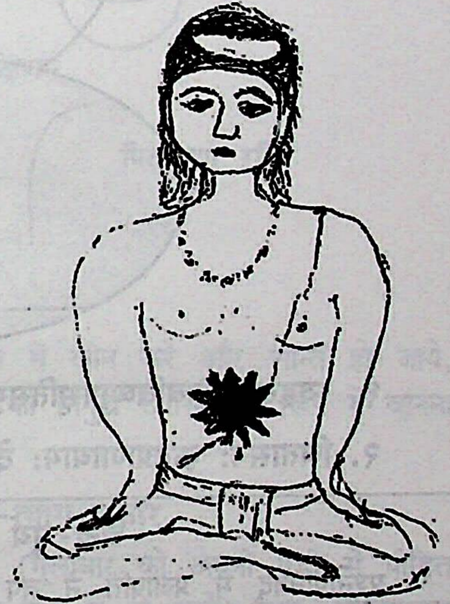
शब्द—अर्थ का विधिवत् ज्ञान होना ही गृहीत अक्षर स्वरूप के सुतार हैं।

ऊह—तर्क—कैसे? क्या? क्यों? आदि प्रश्नों की उत्थापना ही तार-तार कहा जाता है।

सुहृत्प्राप्ति—यह सत्संग के द्वारा होने वाली सम्प्राप्ति है, इसलिए इसे रम्यक कहा गया है।

१. (शब्दः) प्रमोदः। २. मुदितः। ३. मोदमानाः। (सांख्यतत्त्वकौमुदी) (६६९)

३१२ ३१ ३१२ ३१ ३१र २र ३ १ ३२र २र
ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः।
१२ ३२ ३ १ १ ३ २ १२३ २३१ २ ३२ ३२
दधाति पुत्रः पित्र्योरपीच्यां ३ नामतृतीयमधि रोचनं दिवः।।२।।
(सामसं. उत्तरा. १/५)



या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता,
या श्रोत्रे या च चक्षुषि।
या च मनसि सन्तता,
शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः।।

इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता।
त्वमंतरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः।।
(प्रश्नोपनि. २)

दान—विवेक व ज्ञान का दान, इससे दैव का शोधन होता है, इसी को सदामुदित कहते हैं।

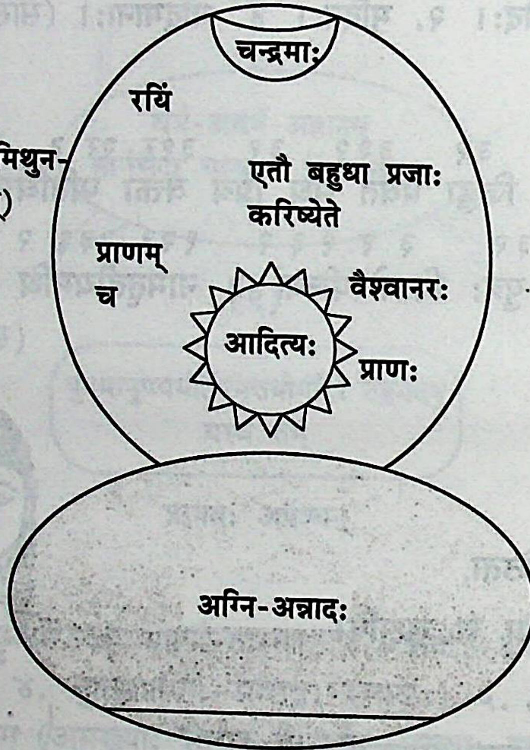
ये उक्त पञ्चविध सिद्धियाँ अमुख्य हैं, मुख्य साध्य सिद्धियाँ तीन हैं—१. शब्दप्रमोद, २. मुदित, ३. मोदमान।

प्राणस्वरूप

हे प्राण! जो तुम्हारा वाणी, श्रोत्र, चक्षु व इन्द्रियाँ मन में प्रतिष्ठित है—व्याप्त है, उसे आप कल्याणप्रद करो। इनसे (इस शरीर) से उत्क्रमण मत करो।

हे प्राण! तुम सर्वातिशय तेजस्वी इन्द्र हो, रुद्र हो व परिरक्षण शक्ति से युक्त हो। तुम ही अन्तरिक्ष में विचरण करने वाले हो और तुम ही ज्योति-समूह के स्वामी हो।

प्रजापतिः तपस्तप्त्वा मिथुन-मुत्पादयते। (प्रश्नोपनिषत्)



१. स्वहृदये शिवविष्णुप्रभृतिसगुणध्यानम्।

२. जितासनः कृतप्राणायामः देशकालवस्तुभ्यो मनो निरुध्य बुद्ध्या मनो नियम्य

चन्द्र-सूर्य के साहचर्य से सृष्टि

प्रश्नोपनिषद् में प्रजापति ने तप करके मैथुनी सृष्टि को उत्पन्न किया, यह वर्णित है। वहाँ सूर्य और चन्द्रमा के साहचर्य से सृष्टि में चैतन्यता का आधान होता है और अग्नि अन्न को पचाकर अमृत तत्त्व व तैजस तत्त्व के साथ प्राणादि का सृजन करते हैं। सूर्य और चन्द्रमा ये दोनों ही सृष्टि के निर्माणक होते हैं। लोक में भी विद्युत् के संचारार्थ व अनेकानेक कार्य सम्पादन में शीतल व उष्ण (ठण्डा-गर्म) तारों की कल्पना देखी जाती है। यहाँ चित्र द्वारा उक्त विषयक स्पष्टीकरण है।

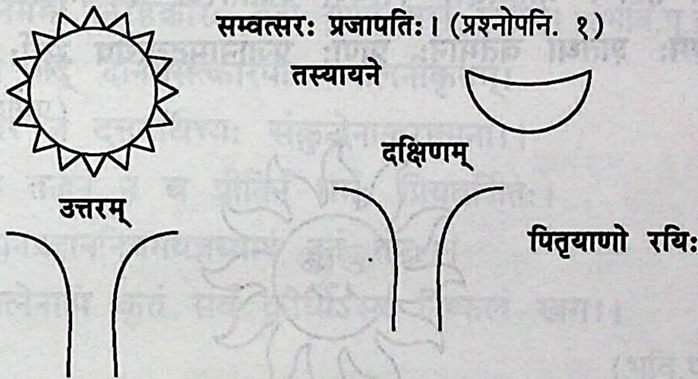
सगुण-निर्गुण उपासना

अपने हृदय में सगुण शिव, विष्णु आदि इष्ट देवता का ध्यान, मनन, चिन्तन, अर्चन व जपादि क्रिया सगुण उपासना के अन्तर्गत है।

जितेन्द्रिय साधक आसनशुद्धि पूर्वक आसन पर बैठकर प्राणायाम द्वारा श्वांस को नियन्त्रित कर देश, काल और वस्तुओं से मन को हटाकर बुद्धि द्वारा मन को वश में

बुद्ध्या सह क्षेत्रज्ञे क्षेत्रज्ञं परमात्मनि लयेत् शान्तो भवेत्। इयं निर्गुणावस्था। एतत् परमं पदम्। (श्रीमद्. २/२)

३. ब्रह्मनिष्ठयोगी निर्वासनः कृतमूलबन्धः प्राणं षट्चक्रभेदनरीत्या ऊर्ध्वं नयेत्। मणिपूरात् अनाहते तत उदानद्वारा विशुद्धे तत आज्ञाचक्रे नयेत् षण्मुखीमुद्रया। तत स्थिरलक्ष्येण सह सहस्त्रारे स्थीयेत्, ततो ब्रह्मरन्ध्रं भित्वा शरीरं त्यजेत्।



करके बुद्धि के साथ क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) को परमात्मा में लीन करे और शान्त हो जाये, यही निर्गुणावस्था है, परमानन्दमयी अवस्था है। इसी को निर्गुण उपासना के रूप में जानना चाहिए।

ब्रह्मनिष्ठ योगी का स्वदेह-त्याग-प्रकार

ब्रह्मनिष्ठ योगी वासनारहित हो मूलबन्ध करके (मूलाधार को अपनी एड़ी से पीड़ित कर) प्राणों को षट् चक्र भेदन पूर्वक ऊर्ध्व सहस्त्रार चक्र में ले जाये। यथा—मणिपूरचक्र (नाभिदेश) से अनाहत चक्र (हृदयदेश) में, वहाँ उदान द्वारा विशुद्धिचक्र (कण्ठदेश) में, वहाँ आज्ञाचक्र (भ्रूमध्य) में षण्मुखी मुद्रा द्वारा प्राणों को ले जाये तदुपरान्त स्थिर लक्ष्य के साथ प्राणों को सहस्त्रार चक्र में स्थापित करे; फिर ब्रह्मरन्ध्र का भेदन करके शरीर त्याग दे।

संवत्सर प्रजापति, उत्तरायण-दक्षिणायन

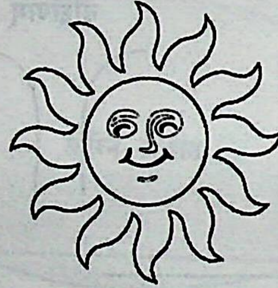
संवत्सर प्रजापति (प्रजापालक) है। सम् पूर्वक वस् धातु से संवत्सर शब्द निष्पन्न होता है। (सम्-वस्-सर (प्रत्यय)-धातु के सकार को तकार) सम्वसन्ति ऋतवो यत्र—जहाँ समस्त ऋतुएँ निवास करती हैं, सम्वसन्तेऽस्मिन् भूतानि—जिसमें सभी प्राणी निवास करते हैं-रहते हैं। सम्वत्सर सभी का परिपालन करता है अतः इसे प्रजापति कहा गया है।

उस प्रजापति संवत्सर के दो मार्ग हैं—उत्तरायण और दक्षिणायन।

तपसा ब्रह्मचर्येण
श्रद्धया विद्यया
आदित्यमभिजयन्ते।

इष्टापूर्ते—
अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चानुपालनम्।
आतिथ्यं वैश्वेदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते।
वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च।
अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते।।

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्।
सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः।।
(प्रनोपनि. १.८)



वैकर्तनो विवस्वांश्च मार्तण्डो भास्करो रविः।
लोकप्रकाशकः श्रीमान् लोकचक्षुर्ग्रहेश्वरः।।

उत्तरायण पक्ष का साक्षात् सम्बन्ध सूर्य के साथ है। यह दिवसरूप षाण्मासिक है, इस मार्ग से जाने वाला ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म को ही प्राप्त हो जाता है। तप के द्वारा, ब्रह्मचर्य के द्वारा, श्रद्धा और विद्या के द्वारा प्रकाशरूपात्मक आदित्य पथ पर विजय प्राप्त कर लेते हैं।

दक्षिणायन मार्ग का सम्बन्ध चन्द्रमा से है। यह रात्रिरूप षाण्मासिक है। इष्टा-पूर्ति कर्म कर्ता इस पथ के अधिकारी है। अग्निहोत्र, तप, सत्य, वैदिक विधानों का अनुपालन, अतिथि-सेवा और बलिवैश्व देव आदि सत्कर्म इष्ट कर्म कहे जाते हैं और वापी, कूप, तडाग व देवालय आदि का निर्माण, अन्न-दान और वृक्षारोपण—बाग-बगीचा लगाना—ये कर्म पूर्त नाम से कहे गये हैं।

चित्र द्वारा उक्त सन्दर्भ का यहाँ प्रकाशन किया गया है।

विश्वरूप भगवान् सूर्य

विश्वात्मा साक्षात् नारायण, जातवेद, लोककल्याणार्थ सहस्रों रश्मियों से तपते हुए, शतधा ज्योतिरूप, प्रजामात्र के प्राण भगवान् भुवन भास्कर उदित हो रहे हैं। जिनके ये

लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्ता हर्ता तमिस्रहा।
तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्ववाहनः।।
गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च सर्वदेवनमस्कृतः।। (भवि.पु.ब्रा.प. १२८)

चित्तस्यातिप्रसादेन भाति कर्म शुभाशुभम्।
शुभाशुभविनिर्मुक्तो निर्द्वन्द्वो निष्प्रतिग्रहः।।
निर्ममो निरहंकारः ततो याति परां गतिम्। (भवि.पु.ब्रा.प. १४५)

न तद् दानमसत्कारपारुष्यमलिनीकृतम्।
वरं न दत्तमर्थिभ्यः संक्रुद्धेनान्तरात्मना।।
न तद्धनं न च प्रीतिर्न धर्मः प्रियवर्जितः।
दानप्रदाननियमयज्ञध्यानं हुतं तपः।।
यत्नेनापि कृतं सर्वं क्रोधोऽस्य निष्फलं खग।।

(भवि.पु.ब्रा. १८९)

एकविंशति नाम हैं—वैकर्तन, विवस्वान्, मार्तण्ड, भास्कर, रवि, लोकप्रकाशक, श्रीमान्, लोकचक्षु, ग्रहेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, कर्ता, हर्ता, तमिस्रहा तपन, तापन, शुचि, सप्ताश्ववाहन, गभस्तिहस्त, ब्रह्मा और सर्वदेवनमस्कृत।

शुभाशुभ कर्म और परमात्मप्राप्ति

चित्त की प्रसन्नता व अप्रसन्नता ही शुभ और अशुभ कर्मों की प्रकाशिका है। मुख की अभिनयात्मक प्रसन्नता नहीं, अपितु अन्तःकरण से समुद्भूत वास्तविक प्रसन्नता जिससे शरीर का रोम-रोम पुलकित हो उठे—ऐसा कोई सत्कर्म हो तो वह शुभ कर्म है। संसार चाहे नहीं जान पाये किन्तु किसी अपकर्म से चित्तग्लानि से भर उठे तो वह अशुभ कर्म है।

किन्तु योगी शुभाशुभ कर्मों से विनिर्मुक्त, निर्द्वन्द्व, परिग्रहशून्य और ममता व अहंता से रहित होता हुआ परम गति (परमात्मा) को प्राप्त कर लेता है।

असत्कारपूर्वक किया गया दान व्यर्थ है

असम्मान, कठोरतापूर्वक क्रोधाग्निदग्ध अन्तःकरण वाले मनुष्य का किया दान मालिन्ययुक्त होने के कारण व्यर्थ ही है। वह धन धन नहीं, वह प्रीति प्रीति नहीं और वह धर्म भी धर्म नहीं जिसमें आत्मीयता का अभाव हो। दान, प्रकृष्ट दान, नियम, यज्ञ, ध्यान, हुत और तप—इन्हें यत्नपूर्वक करने पर भी यदि यह क्रोध (असम्मान, अनात्मीय भाव) पूर्वक किये गये हैं, तो वे सब निष्फल है।

यमपुरी
८६०८० योजनम् १९२
भवि.पु.ब्रा.

देवद्विजश्रेष्ठवीरगुरुबृद्धतपस्विंनः।
यद्वदन्ति नरं स्वप्ने सत्यमेवेति तद्विदुः।।

(भवि.पु.ब्रा. १९४)

आदित्यस्य परा स्तुतिः

ॐ उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
चत्वारि वाक्यपरिमिता पदानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।।
गुहा त्रीणिनिहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति।
इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु रथोदिव्यः ससुपर्णो गरुत्मान्।।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

यमपुरी का परिमाप

भविष्य पुराण में यमपुरी का परिमाप छियासी हजार अस्सी योजन बताया गया है।

स्वप्न की सत्यता

यदि मनुष्य को स्वप्न में देवता, द्विज, श्रेष्ठ वीर, गुरु, वृद्ध और तपस्वी कोई सन्देश दें तो वह स्वप्न शीघ्र ही सत्य हो जाता है—ऐसा जानना चाहिए।

आदित्य की परा स्तुति

रसों से फलों का सेचन करने वाली, शुक्लवर्णा सोम वल्ली का वीरों-ऋत्विजों के अभिषव के द्वारा सम्पादित किये वे अनुष्ठान (यज्ञ कर्म) प्रकृष्ट फल प्रदान करने में प्रसिद्ध रहें।

वाणी के चार भेद हैं—परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। इनको मनीषी-मेधावी ब्राह्मण जानते हैं। इन चारों में तीन गुहा में निहित हैं, वे किसी तरह की चेष्टा नहीं करते जिनका कदाचित् प्रत्यक्ष योगियों को होता है, चतुर्थ पद जो वैखरी वाणी है, उसे ही मनुष्य बोलते हैं। आदित्य को ऐश्वर्यादि विशिष्ट होने से इन्द्र कहते हैं, मृत्यु से रक्षण करने से मित्र, पापों का वारण करने से वरुण, तेजस्वी होने से अग्नि, स्वर्गस्थित होने

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुपतन्ति।।
त आववृत्रन्त्सदनाद् ऋतस्यादिद् धृतेन पृथिवी व्युद्यते।
योरत्नधा वसुविद्यः सुपत्रः सरस्वति तमिह धातवेकः।।
(ऋ.वे. १/१६४)

श्रीपाणिनिः

पिता-सामः—

कणादशिष्यैः पराजितः सर्वतीर्थाटनं कृत्वा केदारक्षेत्रे गतवान्। तत्राष्टाविंशतिदिनं कठोरं तपः कृतवान् शिवध्यानं कुर्वन्।

भगवान् शिवो दर्शनमदात्, वरं ब्रूहि इति श्रुत्वा स्तुतिं कृतवान्। मूलां विद्यां परमं शास्त्रज्ञानमयाचत्, महादेवेन अ इ उ ण् प्रभृतिमङ्गलमयीसर्ववर्णरूपा विद्या सूत्रैः प्रदत्ता। (भविष्यपु. प्रतिस.प ३१)

से दिव्य, कल्याणार्थक, परिभ्रमण करने से सुपर्ण, पक्षवान् होने से गरुड। इस प्रकार एक ही आदित्य-तत्त्व को तत्तत् कार्य कारण रूप से अग्नि, यम, मातरिश्वा (वायु) आदि नाम रूप से कहते हैं।

नियमपूर्वक गमनशील कृष्ण वर्ण के मेघों को सुन्दर पतनशील रश्मियाँ उन मेघों में जलों को स्थापित करती हुई आदित्यलोक में ले जाती हैं फिर वे रश्मियाँ जलस्थान आदित्यमण्डल से पृथिवी-लोक में आती हैं। तब पृथ्वी जल से भींग जाती है।

(हे देवि! तुम्हारा यह स्तन) बहुविध रमणीय रसों को धारण करने वाला है, धनों का ज्ञाता व कल्याणकर्ता है। हे सरस्वति! वह हमारे पान के लिए करो।

श्रीपाणिनि

साम-पुत्र पाणिनि कणाद के शिष्यों से शास्त्रार्थ में पराजित होकर तीर्थाटन करते हुए केदार क्षेत्र में पहुँचे। उन्होंने वहाँ अट्ठाईस दिन तक भगवान् शिव का ध्यान करते हुए कठोर तप किया। पाणिनि जी की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने उन्हें दर्शन दिया, भगवान् के मुख से यह सुनकर कि 'वरं बूहि'—वर माँगो! पाणिनि जी ने स्तुति की और उन्होंने मूल विद्या परम शास्त्र का ज्ञान माँगा। महादेव शिव ने अइउण् आदि (चतुर्दश सूत्र) मङ्गलमयी सर्ववर्णरूपा विद्या सूत्ररूप में प्रदान की। तदनन्तर पाणिनि जी ने सूत्रपाठ, धातुपाठ, गणपाठ और लिङ्गसूत्र (अष्टाध्यायी) का निर्माण करके परम निर्वाणपद प्राप्त किया।

सूत्रपाठं धातुपाठं गणपाठं तथैव च।
लिङ्गसूत्रं तथा कृत्वा परं निर्वाणमाप्तवान्।।

मानसतीर्थम्, ब्रह्मसाक्षात्कारसमर्थः
ज्ञानसरः
सत्यं जलं, रागद्वेषमलहरः

पितृशर्मा, तस्य वंशजाः–व्याडिः, पाणिनिः, वररुचिः। पुत्राः–विशारदाः। व्याडिः ऋक्, न्यायशास्त्रविशारदः, यजुः, मीमांसकः। लोकविश्रुतः पाणिनिः सामज्ञः वैयाकरणः। अथर्वा वररुचिः।

मगधेशचन्द्रगुप्तसभायां पित्रा सह गताः, राज्ञः प्रश्नाः–भोद्विजाः! कतमद् ब्रह्मचर्यं श्रेष्ठम्?

व्याडिः–देवार्चनं तर्पणादिपूर्वकं परमपुरुषमाराधयति स ब्रह्मचारी श्रेष्ठः।

मीमांसकः–यज्ञादिकर्त्ता वटुः श्रेष्ठः।

मानस तीर्थ

मानस तीर्थ का ज्ञान रूपी सरोवर सत्य रूपी जल से प्रपूरित है, इसमें अवगाहन करने से राग-द्वेष आदि मलों का विनाश हो जाता है। यह मानस तीर्थ ब्रह्म-साक्षात्कार कराने में सर्वथा समर्थ है। यहाँ इस दिव्य मानस तीर्थ का चित्रण किया गया है।

पितृशर्मा और उसके वंशज

पितृशर्मा के वंशज हैं—व्याडि, पाणिनि, वररुचि आदि। ये सब विविध विद्या विशारद थे। व्याडि ऋग्वेद और न्यायशास्त्र के पण्डित थे, यजुर्वेदी और मीमांसक थे, लोक-विश्रुत पाणिनि सामवेद और व्याकरण के ज्ञाता थे, वररुचि अथर्ववेद में रुचि रखते थे।

एक बार ये अपने पिता के साथ मगध के राजा चन्द्रगुप्त की सभा में गये। वहाँ राजा ने प्रश्न किया—हे ब्राह्मणों! कैसा ब्रह्मचारी श्रेष्ठ है?

व्याडि ने उत्तर दिया—राजन्! देवार्चन तर्पणादि पूर्वक जो परमगुरु की आराधना करता है वह ब्रह्मचारी श्रेष्ठ है।

मीमांसक ने कहा—राजन्! वेदविहित यज्ञ आदि सत्कर्म करने वाला ब्रह्मचारी श्रेष्ठ है।

पाणिनिः–उदात्तादिस्वरैः परापश्यन्त्यादिवाणीद्वारा शब्दब्रह्माराधकः श्रेष्ठः।

वररुचिः–उपनीतो गुरुकुले वसन् दण्डकेशनखधारी भिक्षाशी वेदाध्ययने तत्परः गुर्वाज्ञापरः ब्रह्मचारी वरः। पितृशर्मा–यो गृहे पितृदेवातिथिसम्मानकारी जितेन्द्रियः ऋतुकालाभिगामी ब्रह्मचारी श्रेष्ठः। (भविष्यपु. प्रति सं. ३०)

वाल्मीकिः

मरामरामरेत्येवं सहस्राब्दं जजाप ह। (भविष्यपु. प्रति सं. ४.१०)

परं दृष्ट्वा निवर्तते। (गी. २.५९)

कामः? संकल्पात् जायते।

पाणिनिजी बोले—उदात्त, अनुदात्त, स्वरित भेदपूर्वक स्वरों से एवं परा, पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी वाणी द्वारा शब्दब्रह्म का आराधक ब्रह्मचारी ही श्रेष्ठ है।

वररुचि ने उत्तर दिया कि हे राजन्! उपनीत होकर गुरुकुल में रहता हुआ दण्ड-मेखला, नख-केशधारी, भिक्षान्नभोक्ता, वेदाध्ययन में तत्पर तथा गुरु की आज्ञा का पालन करने वाला ब्रह्मचारी श्रेष्ठ है।

अन्त में पितृशर्मा ने उत्तर दिया—जो घर में रहकर माता-पिता की आज्ञा के पालन में दत्तचित्त है, देवताओं का समर्थक व अतिथियों का सम्मान करने वाला है, जितेन्द्रिय है और जो ऋतुकाल में ही अभिगमन करता है, वह सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मचारी है।

वाल्मीकि

मरा मरा मरा...इस तरह इस राममन्त्र का वाल्मीकि जी ने एक हजार वर्ष पर्यन्त जप किया। प्रारम्भ में मरा शब्द कहने मात्र से ही उन्हें परम शान्ति की अनुभूति हुयी, (मं-शान्तिं राति इति मरा) मरा शब्द के उच्चारण मात्र से उन्हें अपना कल्याण दिखायी देने लगा, यह शब्द कल्याणकारी हो गया—मं-शिवं राति-प्रददाति इति मरा। यह उल्टा नाम मरा मरा...कहते, जपते-जपते सीधा हो गया—राम राम राम...। इस नाम मन्त्र के जपने से वाल्मीकि जी ब्रह्म की समानता को प्राप्त हो गये अर्थात् उन्हें ब्रह्मत्व की प्राप्ति हो गयी।

स्थितप्रज्ञ मनुष्य की विषय-रस-निवृत्ति

इन्द्रियों को विषयों से हटाने वाले मनुष्य के विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, पर रस निवृत्त नहीं होता। परन्तु स्थितप्रज्ञ मनुष्य का तो रस भी परमात्मतत्त्व का अनुभव होने से निवृत्त हो जाता है अर्थात् परमात्मा का अनुभव हो जाने पर रसबुद्धि निवृत्त हो जाती है।

काम क्या है? सांसारिक विषय भोगों की प्राप्ति के लिए किया गया संकल्प ही काम का जनक होता है अर्थात् संकल्प से काम की उत्पत्ति होती है।

ब्रह्मचारी.........स दाधार पृथिवीं दिवं च। (अथर्ववे. ११/५/१)

हठयोगः

षट्कर्मासनमुद्राः प्रत्याहारश्च प्राणसंयमः।
ध्यानसमाधी सप्तैवाङ्गानि स्युर्हठस्य योगस्य।।

षट्कर्मणा शोधनं च आसनेन भवेद् दृढम्।
मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता।।

प्राणायामाल्लाघवं च ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनः।
समाधिना त्वलिप्तत्वं मुक्तिश्चैव न संशयः।।

लययोगः

प्रकृतेः पुरुषे लयः-लययोगः। तस्य नवाङ्गानि-

यमश्च नियमश्चैव स्थूलसूक्ष्मक्रिये तथा।
प्रत्याहारो धारणा च ध्यानं चापि लयक्रिया।
समाधिश्च।।

ब्रह्मचारी—ब्रह्म का अनुसन्धाता, ब्रह्मचर्यपालक, वेदोक्त सत्कर्मों का कर्ता ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यरूप तप के बल पर भूलोक और द्युलोक को धारण करता है, वह मृत्यु का अतिक्रमण करता हुआ ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है। ब्रह्मचर्य की महिमा अति विशिष्ट है।

हठयोग

हठयोग के सात अङ्ग हैं—षट्कर्म (नेति, नौली वस्ती, धौती, गजकर्णी और वज्रौली), आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि। षट्कर्म से देह का शोधन होता है, आसनों से शरीर में दृढ़ता आती है, मुद्राओं से स्थिरता, प्रत्याहार (इन्द्रियों को विषयों से हटाना) से धीरता आती है, प्राणायाम से लाघव, ध्यान से आत्मसाक्षात्कार होता है और समाधि से अलिप्तता का भाव जागृत हो जाता है—इसमें कोई सन्देह नहीं; इससे मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

लययोग

प्रकृति का पुरुष में लय हो जाना ही लययोग है। इस लययोग के नौ अङ्ग हैं—यम, नियम, स्थूल क्रिया, सूक्ष्म क्रिया, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, लयक्रिया और समाधि।

स्थूलदेहप्रधाना वै क्रियास्थूलाभिधीयते।
वायुप्रधाना सूक्ष्मा स्याद् ध्यानं बिन्दुमयं भवेत्।।

लयलयोगानुकूला हि सूक्ष्मा या लभ्यते क्रिया।
जीवन्मुक्तोपदेशेन प्रोक्ता सा हि लयक्रिया।।

लयक्रिया साधनेन सुप्ता सा कुलकुण्डली।
प्रबुध्य तस्मिन्पुरुषे लीयते नात्र संशयः।।
समाधिर्येन निरतः कृतकृत्यो हि साधकः।।

राजयोगः

सृष्टिस्थितिविनाशानां हेतुता मनसि स्थिता।
तत्सहायात्साध्यते यो राजयोग इति स्मृतः।।

कलाषोडशकोपेतेराजयोगस्य षोडश।
सप्त चाङ्गानि विद्यन्ते सप्त भूम्यनुसारतः।।

विचारमुख्यं तज्ज्ञेयं साधनं बहु तस्य च।
धारणाङ्गे द्विधा प्रोक्ते ब्रह्मप्रकृतिभेदतः।।

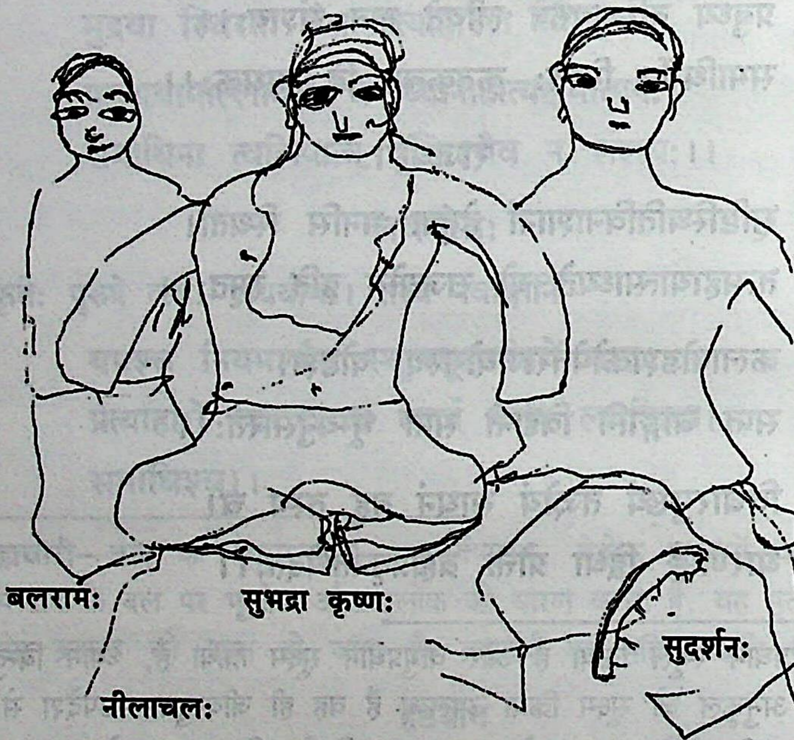
स्थूल देहप्रधान स्थूल क्रिया है और वायुप्रधान सूक्ष्म क्रिया है, ध्यान बिन्दुमय होता है, लययोग के अनुकूल जो सूक्ष्म क्रिया उपलब्ध है वह ही जीवन्मुक्त—उपदेश से लयक्रिया कही गयी है। लयक्रिया के साधन से प्रसुप्त कुण्डलिनी-शक्ति प्रबुद्ध होकर षट् चक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार चक्रस्थ परम पुरुष में लीन हो जाती है, जिससे समाधिनिरत साधक कृतकृत्य हो जाता है।

राजयोग

मन में स्थित सृष्टि, स्थिति और विनाश की हेतुता के सहयोग से जो सिद्ध होता है, उसे राजयोग कहते हैं। षोडश कलाओं से युक्त होने से इस राजयोग के षोडश भेद हैं। सप्त भूमि के अनुसार इसके सात अङ्ग हैं। राजयोग के बहुत से साधनों में विचार मुख्यत्वेन ग्राह्य है। ब्रह्म और प्रकृति—ये धारणा के दो अङ्ग हैं। ध्यान के तीन अङ्ग हैं—ब्रह्मध्यान, विराड्ध्यान और ईशध्यान। अन्य भी ध्यान हैं किन्तु वे सब ब्रह्मध्यान में समाहित

ध्यानस्य त्रीणि चाङ्गानि—

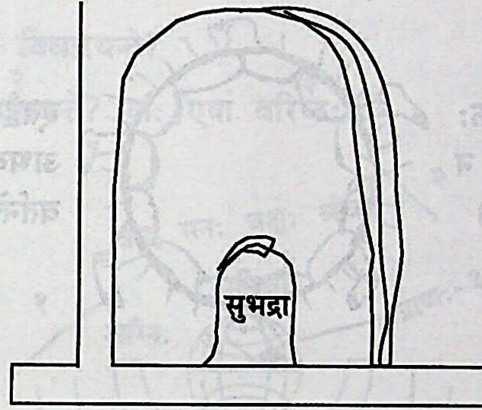
ब्रह्मध्यानं विराड्ध्यानं चेशध्यानं यथाक्रमम्।
ब्रह्मध्याने समाप्यन्ते ध्यानान्यन्यानि निश्चितम्।।
चत्वार्यङ्गानि समाधेः सविचारं द्विधा तथा निर्विचारम्।
पूर्णाधिकारमाप्नोति राजयोगपरो नरः।।



हो जाते हैं। समाधि के चार अङ्ग हैं, दो भेद सविचार के और दो भेद निर्विचार के। सविधि राजयोगपरायण पुरुष ब्रह्मप्राप्ति का पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेता है।

जीवात्मा, परमात्मा, भक्ति और सद्गुरु

यहाँ चित्राङ्कन के माध्यम से बलराम, सुभद्रा, कृष्ण और सुदर्शन को दर्शाया गया है। इन्हें प्रतीक मान लेने पर—बलरामरूपी जीवात्मा, भक्ति के आश्रय से भगवान् के सुन्दर दर्शन कराने में समर्थ—सुदर्शनरूपी सद्गुरुदेव द्वारा प्रदत्त ज्ञान के द्वारा परमात्मा कृष्ण को सम्प्राप्त कर लेता है अर्थात् इस संसारसागर से उत्तीर्ण हो जाता है।











योगः (चरके, शा. १/४४)

आमेन्द्रियमनोऽर्थानां संनिकर्षात् सुखं दुःखम्।
निवर्तते तदुभयं आत्मस्थे मनसि स्थिरे।।
वशित्वं चोपजायते।।

जीव का परम लक्ष्य मुक्ति

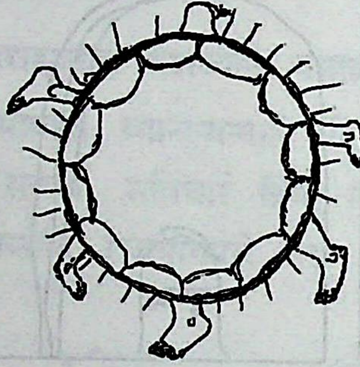
यहाँ चित्र में सर्वोच्च स्थान पर अवस्थित सुभद्रा, उससे नीचे बलराम, कृष्ण और सुदर्शन और सबसे नीचे नारद हैं—ये सब प्रतीकात्मक प्रतीत होते हैं।

भक्ति-रस-रसिक नारदरूपी जीव, सुदर्शनरूपी गुरु के साहचर्य से अज्ञानान्धकार विनाशक कृष्णरूपी ज्ञान और उसके भ्राता बलरामरूप वैराग्य से सम्पन्न होकर सुभद्रा—सुष्ठु कल्याणमयी मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

सुख-दुःख और निवृत्ति

आत्मा, इन्द्रिय और मन का इन्द्रियों के विषयों के साथ सन्निकर्ष होने से सुख और दुःख की अनुभूति होती है, किन्तु जब मन आत्मा में स्थिर हो जाता है तब ये दोनों

तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोकः येषु न जिह्ममनृतं न माया च। (प्र.उ. १.१६)



एतद्वै प्राणानामायतनं अमृतम् अभयम्। एतस्मान्न पुनरावर्तन्ते एष निरोधः।
(प्र.उ. १.१०)

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं
दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्।
अथेमेऽन्य उ परे विचक्षणं
सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितम्।। (प्रश्नोपनिषद् १.११)

(सुख-दुःख) ही निवृत्त हो जाते हैं जिससे वशित्व की सिद्धि होती है, फिर सब कुछ उसके वश में हो जाता है।

ब्रह्मलोक का अधिकारी

जिनका कौटिल्य, असत्य और मायाभाव सर्वथा नष्ट हो गया है तथा जो रजोगुण से शून्य, शुद्ध सतोगुणयुक्त हैं, वे ही ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं। (प्रश्नो. १/१६)

प्राणों का आश्रय आत्मा

यह आत्मा ही प्राणों का आश्रय है, अमृततत्त्व व अभयतत्त्व भी यही है। इस आत्मतत्त्व को जानकर पुनः-पुनः जन्म और मरण का भय नहीं रहता, आवागमन छूट जाता है। यही निरोध है। ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म ही हो जाता है। उत्कृष्ट तप, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा और विद्या के द्वारा ही आत्मसाक्षात्कार सम्भव है, जो आत्मा को जान जाता है वह आदित्यलोक को जीत लेता है। (प्र.उ. १/१०)

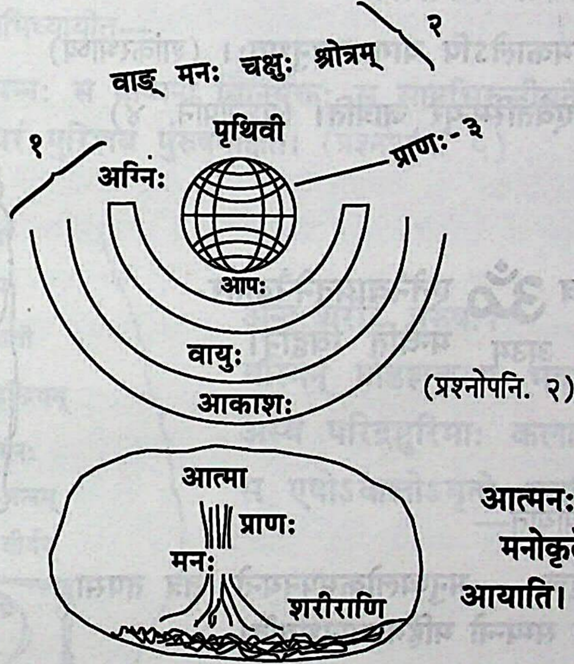
आदित्यस्वरूप

यह पाँच पैरों वाला है, यहाँ पाँच ऋतुएँ ही पञ्च पाद हैं। (हेमन्त और शिशिर को एक मानकर ही पाँच ऋतुएँ कही गयी हैं) सबको उत्पन्न करने के कारण इन्हें पितर कहा जाता है, द्वादश मासात्मक इनकी (द्वादश) आकृतियाँ हैं, ये स्वर्ग से ऊपर जल़युक्त देश में हैं। अन्य कुछ मनीषी इन्हें षड् ऋतु वाला भी कहते हैं। (प्र.उ. १/११)

कति देवाः [१] प्रजां विधारयन्ते?

कतरे एतत् [२] प्रकाशयन्ते? कः [३] एषां वरिष्ठः?

तस्मै उवाच।



(प्रश्नोपनि. २)

आत्मनः प्राणो जायते
मनोकृतेनास्मिन्शरीरे
आयाति। (प्रश्नो. ३/३)

प्रजाधारक देवता

कितने देवता प्रजा को धारण करते हैं? इसके उत्तर में कहते हैं कि पृथिवी, जल, अग्नि (तेज), वायु और आकाश—ये पाँच तत्त्व और इनके अधिष्ठातृदेवता प्रजा को धारण करते हैं।

कौन देवता इसको प्रकाशित करते हैं?

वाङ्, मन, चक्षु और श्रोत्र इसको प्रकाशित करते हैं। तीसरा प्रश्न उपस्थित होता है कि इन सब में श्रेष्ठ कौन है?

कहते हैं—इन सबमें वरिष्ठ प्राण हैं।

उक्त तीन प्रश्नों के उत्तर चित्र द्वारा यहाँ प्रतिपादित हैं। (प्र.उ. २)

आत्मा की शरीर में स्थिति

यहाँ चित्र के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि आत्मा से प्राण की उत्पत्ति है। वह आत्मा प्राण के साहचर्य से मन के मार्ग द्वारा इस शरीर में आती है।

(प्र.उ. ३/३)

गार्हपत्यं। दक्षिणा.। होता। आहवनीय। इष्टफलम्।

१. अपानः। २ व्यानः। ३. समानः ४. प्राणः। ५. उदानः। ६. मनः-यजमानः।

विदुषः श्रोत्राद्युपरमकालेऽपि यागकलानुभवः। (शांकरभाष्य)

प्राणाग्नय एवैतस्मिन्पुरे जाग्रति। (प्रश्नोपनि. ४)



एतद्वै परमपरं च ॐ एतेनैवायतनेनैकतर-
ब्रह्म। अउम् मन्वेति विद्वान्।

यः एकमात्रमभिध्यायीत—

अः - ऋचः - मनुष्यलोकमुपनयन्ते, तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति।

सुषुप्तिकाल में विद्वान् को यागफलानुभूति

वैदिक विद्वान् (ब्रह्मज्ञानी) को सुषुप्तावस्था में भी अग्निहोत्रादि यज्ञों के फल का अनुभव होता रहता है, क्योंकि श्रोत्र आदि के शान्त रहने पर भी प्राणाग्नि जागृत रहती हैं। चित्र (सुषुप्तिकालिक) में यह स्पष्ट किया गया है कि इस अवस्था में भी पञ्चाग्नि प्रज्वलित हैं, इनके गार्हपत्याग्नि अपान है, दक्षिणाग्नि व्यान है, होता समान है, आहवनीय प्राण है, इष्टफल उदान है और यजमान मन है।

एकमात्रिक, द्विमात्रिक, त्रिमात्रिक प्रणवजप और फलप्राप्ति

यह ॐ (प्रणव) ही पर और अपर ब्रह्म है। विद्वान् ज्ञाता आत्मा के द्वारा इस प्रणव के साथ ऐक्य स्थापित कर लेता है। ॐ कार में तीन अक्षर हैं—अ, उ, म्।

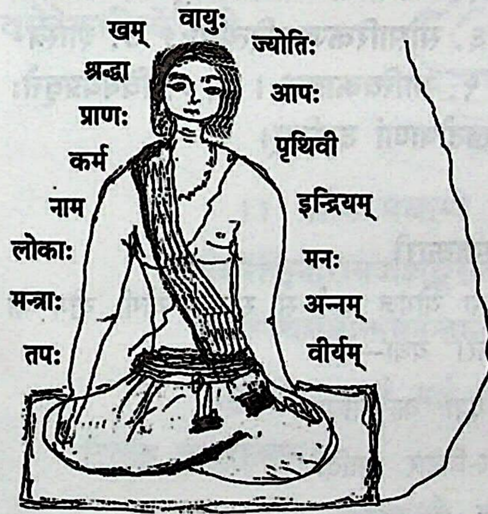
एकमात्रिक प्रणव मन्त्र के जप से साधक मनुष्यलोक प्राप्त कर लेता है और वह तप, ब्रह्मचर्य तथा श्रद्धा से सम्पन्न होकर महत्ता का अनुभव करता है।

यःद्विमात्रेण अभिध्यायीत—

उः–सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते सोमलोकम्। स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्तते।

यः त्रिमात्रेण परं पुरुषमभिध्यायीत—

मः–स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकम्। स एतस्माज्जीवघनात् परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते। (प्रश्नोपनि. ५)



अन्तःशरीरे पुरुषः।
यस्मिन् षोडशकला भवन्ति।
अस्य परिद्रष्टुरिमाः कलाः पुरुषायणाः।
स एषोऽकलोऽमृतो भवति।

(प्रश्नोपनि. ६)

द्विमात्रिक प्रणवजप से यजुर्वेद के साथ अन्तरिक्ष को जाता है और सोमलोक को प्राप्त करता है, वह सोमलोक की विभूतियों का अनुभव करके पुनः इह लोक में आता है।

त्रिमात्रिक जप के द्वारा परम पुरुष का ध्यानकर वह सूर्यतेज से सम्पन्न हो समस्त पापों से विमुक्त हो जाता है और सामवेद के साथ ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लेता है। वहाँ पर वह परात्पर पूर्णब्रह्म परम पुरुष का साक्षात्कार करता है। प्रणवजप की यह प्रक्रिया साधक की अन्तकाल तक चलती रहनी चाहिए।

शरीर में षोडश कलाधारी पुरुष

शरीर के अन्दर सोलह कलाओं से युक्त पुरुष (परमात्मा) सन्निविष्ट है। इस तत्त्व के द्रष्टा को भी ये कलाएँ पुरुषाकाराकारित प्रतीत होती हैं, फलतः वह अकल व अमृत हो जाता है।

चित्रप्रस्तुति में सोलह कलाएँ उल्लिखित हैं—तप, मन्त्र, लोक, नाम, कर्म, प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न और वीर्य। (प्र.उ. ६)

द्वादश योगसहकारिणः

छिन्नदोषो मुनिर्योगान् युक्तो युञ्जीत द्वादश।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७
देशकर्मानुरागार्थानुपायोपायनिश्चयैः।।
८ ९ १० ११ १२
चक्षुराहारसंहारैर्मनसा दर्शनेन च। (महाभार.शा. २३६)

१. निर्जनशुद्धादि। २. आहारविहारादि। ३. परमात्मनि तत्साधनेषु ४. केवल-साधनोपयोगि वस्तु। ५. ध्यानोपयोगि आसनादि। ६. सांसारिकजनादित्यागः। ७. शास्त्र-गुरुषु विश्वासः। ८. नासाग्रादिषु दृष्टिबन्धः। ९. सात्त्विकाहारः। १०. विषयप्रवृत्तेः नाशः। ११. संकल्पनिरोधः। १२. जगति दुःखदोषाणां दर्शनम्।

योग के द्वादश सहकारी

छिन्नदोष—विनष्ट हो गये हैं दोष जिसके ऐसा योगज धर्म से सम्पन्न योगी योग के सहकारी (सहायक) बारह साधनों का अभ्यास करे। यथा—

१. **देश**—निर्जन, शुद्ध, शान्त, निर्भ्रान्त देश का सेवन।

२. **कर्म**—योग के सर्वथा अनुकूल आहार-विहार आदि।

३. **अनुराग**—परमात्मप्राप्त्यर्थ आराधनसाधनों में नितान्त संलग्न रहना।

४. **अर्थ**—केवल साधनोपयोगी वस्तुओं का संग्रह।

५. **अनुपाय**—सांसारिक जनों का परित्याग।

६. **उपाय**—ध्यानोपयोगी आसनादि।

७. **निश्चय**—शास्त्र और गुरुवचनों में विश्वास।

८. **चक्षु**—नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखना।

९. **आहार रखना**—सात्विक आहार करना।

१०. **संहार**—विषयों की प्रवृत्ति का नाश करना।

११. **मन**—संकल्प और विकल्प का विरोध।

१२. **दर्शन**—संसार में दुःख और दोषों का दर्शन।

अर्थात् यह निश्चित समझ लेना कि संसार नितान्त दुःख-दोषों से भरा है अतः असार है।



ब्रह्मामृतं चरेद् भैक्ष्यम्
ध्यानं निर्विषयं मनः
देहो देवालयः प्रोक्तः
त्यजेदज्ञाननिर्माल्यम्
वसेदेकान्तिकेऽद्वैते

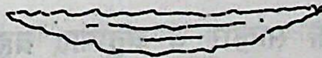
अभेददर्शनं ज्ञानम्।
स्नानं मनोमलत्यागः।
स जीवः परमः शिवः।
सोऽहंभावेन पूजयेत्।
शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

(स्कन्दोपनिषद्)

।। श्रीपरमधाम्ने स्वस्ति चिरायुष्योन्नमः।।

विरिञ्चिनारायणशङ्करात्मकं नृसिंह देवेश तव प्रसादतः।
अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तमव्ययं वेदात्मकं ब्रह्म निजं विजानते।।

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम्।।
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते।।



अद्वैतनिष्ठ तत्त्वदर्शी

ब्रह्मामृतरूप भिक्षा के भिक्षाटन करे। अभेद दर्शन ही ज्ञान पद वाच्य है, मन का निर्विषय होना ही ध्यान है, मन की मलिनता का परित्याग स्नान है। इन्द्रियों का निग्रह पवित्रता है।

देह को देवालय कहा गया है, इसके अन्दर जो जीव है वह परम शिव के रूप में प्रतिष्ठित है, अज्ञानरूपी निर्माल्य को हटाकर 'सोऽहम्' भाव से (वह मैं हूँ, मैं वह है) पूजा करे और ऐकान्तिक अद्वैतनिष्ठ हो जाये।

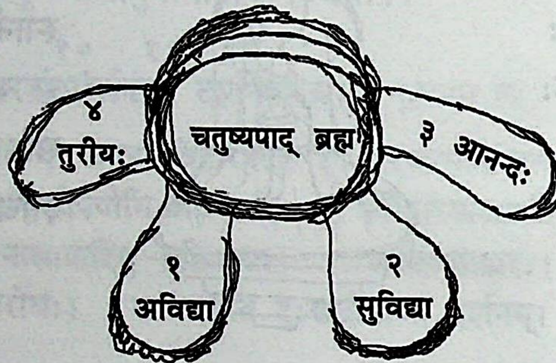
(चित्र में दिव्य देवालय की झाँकी प्रस्तुत की गयी है।)

श्रीपरमधाम स्वस्तिस्वरूप चिरायुष्य के लिए नमन। हे नृसिंह देवेश! आपके कृपाप्रसाद से ही अद्वैतनिष्ठ साधक स्वयं को ब्रह्मविष्णुशिवात्मक, अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्त, अव्यय और वेदात्मक ब्रह्म जानता है।

निरुपाधिकसाकारः

१. ब्रह्मविद्यासाकारः। २. आनन्दसाकारः। ३. उभयात्मकसाकारः।

(त्रिपाद्विभू. महाना. ३.२)



पथ्याशी व्यायामी स्त्रीषु जितात्मा नरो न रोगी स्यात्।
यदि वचसा मनसा वा द्रुह्यति नित्यं न भूतेभ्यः।।

उस सर्वव्यापक विष्णु के परम पद को सदा विद्वान् देखते हैं—अद्वैतनिष्ठ उस ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं, जैसे अन्तरिक्ष (द्युलोक) में विस्तारित मण्डल को हमारे चक्षु देखते हैं।

विष्णु का जो परम पद है, वह अविज्ञात व आनन्दघन है।

निरुपाधिक साकार व चतुष्पाद ब्रह्म

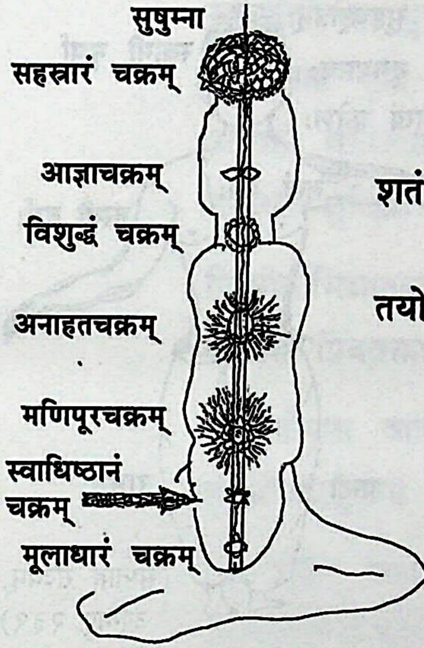
साकार तत्त्व दो प्रकार का है—सोपाधिक साकार और निरुपाधिक साकार। सोपाधिक साकार अविद्या-उपाधि से युक्त होने से सावयव है, अतः अनित्य है। यहाँ निरुपाधिक साकार के विषय में कहते हैं कि यह निरुपाधिक साकार तीन प्रकार का है—

१. ब्रह्मविद्या साकार। २. आनन्द साकार। ३. उभयात्मक (ब्रह्मविद्या-आनन्दात्मक) साकार। वैसे ये तीनों भी द्विविध हैं—नित्य साकार (सनातन) और मुक्त साकार (देहमुक्त)।

ब्रह्म चतुष्पाद है—अविद्या, सुविधा, आनन्द और तुरीय भेद से। यद्यपि ब्रह्म तो अभेद्य-अछेद्य है, तदपि ब्रह्म की पादकल्पना उसको जानने के लिए ही है।

रोगमुक्त कौन?

पथ्य का सेवन करने वाला, नित्य व्यायाम करने वाला, स्त्रियों के मध्य में भी जितेन्द्रिय और मन, वाणी तथा कर्म से जीवमात्र के प्रति जो सर्वथा द्रोहरहित है वह मनुष्य कभी रोगी नहीं हो सकता।



शतं चैका च हृदयस्य नाड्य-
स्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति
विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति।।

(कठोपनिषद् २/३/१६)

सुषुम्ना

इस हृदय की एक सौ एक नाड़ियाँ है; उनमें से एक सुषुम्ना मूर्धा का भेदन करके बाहर को निकली हुई है। उसके द्वारा ऊर्ध्व-ऊपर की ओर गमन करने वाला पुरुष अमृतत्व को प्राप्त होता है, ब्रह्ममय हो जाता है। शेष विभिन्न गतियुक्त नाड़ियाँ उत्क्रमण (प्राणोत्सर्ग) की हेतु होती हैं, अर्थात् संसारप्राप्ति (आवागमन) की कारक हैं।

यहाँ चित्र में षट्चक्रों का भेदन करती हुई सहस्त्रारचक्र तक गमनशील सुषुम्ना की स्थिति प्रतिपादित है।

सब से नाचे गुदप्रदेशस्थ चतुर्दशदलात्मक मूलाधारचक्र है, जहाँ से नीचे को मुख किये हुए सुषुप्त सर्पाकृति कुण्डलिनी जागृत होकर ऊपर को मुख किये ऊर्ध्व गमन करती है।

उससे ऊपर लिङ्गमूल में स्वाधिष्ठानचक्र है जो षड्दलात्मक है।

तदुपरि नाभिस्थ दशदलात्मक मणिपूरचक्र है।

तदुपरि हृदयस्थ द्वादशदलात्मक अनाहतचक्र है।

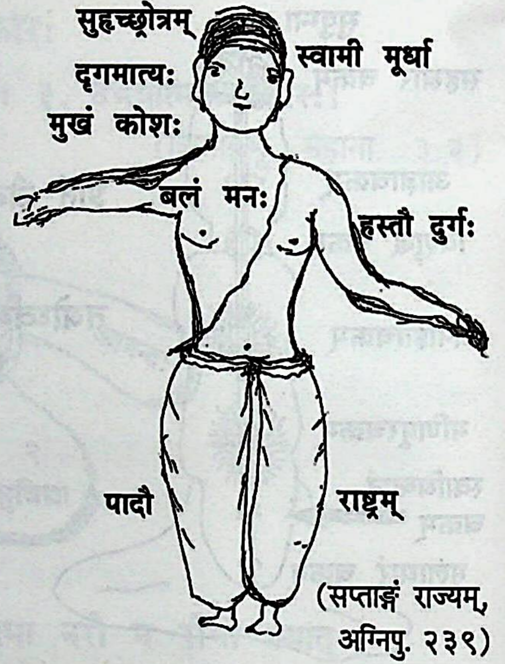
तदुपरि कण्ठदेशस्थ षोडशदलात्मक विशुद्धिचक्र है।

तदुपरि दोनों भ्रुवों के मध्य ललाट में द्विदलात्मक आज्ञाचक्र है। सर्वोपरि सहस्त्रदलात्मक सहस्त्रारचक्र है जहाँ सच्चिदानन्दघन अमृतस्वरूप परमात्मा की अवस्थिति है। यह सुषुम्ना नाड़ी योग में उक्त-षट्चक्रों का भेदन करती हुई अमृत-स्थान सहस्त्रारचक्र में स्थित हो जाती है।

भूयो भूयो भाविनो भूमिपालाः
नत्वा नत्वा याचते रामचन्द्रः।
सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नराणां
काले काले पालनीयो भवद्भिः।।

वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्यं
आपातमात्रमधुरा विषयोपभोगाः।
प्राणास्तृणाग्रजलबिन्दुसमा नराणां
धर्मः सदा सुहृदहो न विरोधनीयः।।

चलदलदललीलाचंचले जीवलोके
तृणलवलघुसारे सर्वसंसारसौख्ये।
अपहरति दुराशः शासनं ब्राह्मणानां
नरकगहनगर्तावर्तपातोत्सुको यः।। (स्कन्दपु. धर्मा. ३४.३८.४०)



(सप्ताङ्गं राज्यम्, अग्निपु. २३९)

भविष्य के राजाओं से श्रीराम की करबद्ध प्रार्थना

अयोध्यानरेश भगवान् श्रीरामचन्द्र जी भविष्य में होने वाले राजाओं से प्रणाम पूर्वक प्रार्थना करते हैं कि हे भावी राजाओं! यह धर्मसेतु मनुष्यों का सामान्य धर्म है। आप लोगों के द्वारा समय-समय पर इसकी रक्षा करनी है, क्योंकि इस वसुन्धरा का साम्राज्य भी वायु द्वारा की गयी बादलों की चित्रकारी जैसा अनित्य है, ये विषय भोग भी कुछ क्षण के लिए ही अच्छे लगने वाले हैं और यह जीवन भी तिनके के अग्र भाग में लगे जल बिन्दु (ओस कण) जैसा है—न जाने किस क्षण समाप्त हो जाये। अतः परम सुहृद् धर्म का विरोध कदापि नहीं करना। धर्म सर्वदा और सर्वथा परिपालनीय है। काँपते हुए पीपल के पत्ते के समान इस जीवलोक (जीवन) में संसार के समस्त सुख अत्यन्त लघु एक तिनके की तरह ही हैं। अतः इस प्रकार के अस्थिर अस्तित्व की दुराशा में जो ब्रह्म शासन का उल्लङ्घन (विनाश) करता है, वह नरक के गहरे गर्त में गिरने को उत्सुक हो रहा है।

मानव शरीर एक सप्ताङ्ग राज्य

यहाँ चित्र के माध्यम से स्पष्ट किया गया है कि सात अङ्गों वाला यह मानव शरीर स्वयं में एक पूर्ण राज्य है। सात अङ्ग इस प्रकार हैं—इस शरीर के आधारभूत अवयव पादद्वय (पैर) राष्ट्र हैं, हस्तद्वय (दोनों हाथ) दुर्गरूप हैं, मन बल है, मुख कोश है, नेत्र अमात्य (मन्त्री) हैं, कान सुहृद् (मित्र) हैं और मूर्धा (उत्तमाङ्ग) इस राज्य का स्वामी है।

सम्पत्तिहेतवः गुणाः कुलं शीलं दमश्चेति
शास्त्रज्ञता धृतिः दाक्ष्यं प्रागल्भ्यं धारयिष्णुता।
उत्साहो वाग्मिता दार्ढ्यं आपत्क्लेशसहिष्णुता
प्रभावः शुचिता मैत्री त्यागः सत्यं कृतज्ञता।। (शुक्रनीतिः १/९२)

प्रियमेवाभिधातव्यं सत्सु नित्यं द्विषत्सु च।
देवास्ते प्रियवक्तारः पशवः क्रूरवादिनः।।

नवनीतोपमा वाणी करुणाकोमलं मनः।
धर्मबीजप्रसूतानां एतत्प्रत्यक्षलक्षणम्।। (पद्मपु. १/५९)

एते वर्णाः स्वधर्मेण यजन्ति स्वगुरुं हरिम्।
श्रद्धयात्मविशुद्ध्यर्थं यज्जाताः सह वृत्तिभिः।। (श्रीमद्भा. ३/६/३४)

सम्पत्ति के हेतुभूत गुण

शास्त्रज्ञान, धैर्य, दक्षता, प्रगल्भता, धारण करने का सामर्थ्य, उत्साह, वाग्मिता (वक्तृत्व शक्ति), दृढ़ता, आकस्मिक क्लेश सहन करने की क्षमता, प्रभाव, शुचिता, मैत्री, त्याग, सत्य, कृतज्ञता, कुल, शील एवं दम (इन्द्रियों का निग्रह)—ये गुण सम्पत्ति समर्चन में हेतु (उपाय) हैं।

मनुष्य में देवत्व और पशुत्व

सज्जन और असज्जन के प्रति प्रिय वाणी का व्यवहार करने वाला देवता है और क्रूरतापूर्वक वाणी का व्यवहार करने वाला मनुष्य पशु होता है।

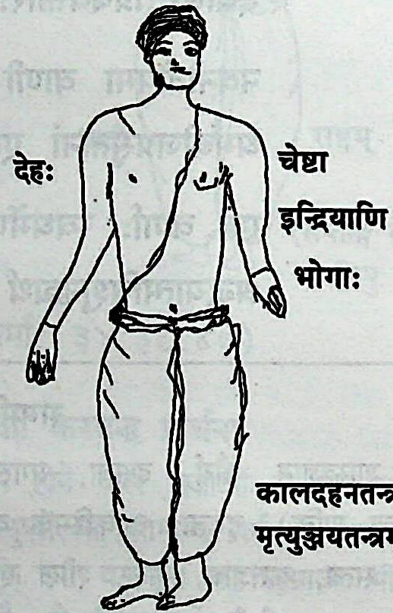
धर्मांश से उत्पन्न मनुष्य का लक्षण

नवनीत के समान मृदु वाणी और करुणा से आर्द्र कोमल मन—यह धर्मबीज से उत्पन्न मनुष्यों का साक्षात् लक्षण है।

स्वधर्म-परिपालन

ये सभी वर्ण अपने-अपने (वर्णानुसार) धर्म के अनुसार स्वकीय गुरुरूप परमात्मा का यजन करते हैं, जिससे आत्मविशुद्धि होती है जो कि सद् वृत्तियों से समुत्पन्न है।

मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म-
व्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः।
प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां
वार्ता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम्।।
(श्रीमद्भा. ७/९/४६)



आतिवाहिको देहः

तत्क्षणादेव गृह्णाति शरीरमातिवाहिकम्।
ऊर्ध्वं व्रजन्ति भूतानि त्रीण्यस्मात्तस्य विग्रहात्।।
केवलं तन्मनुष्याणां नान्येषां प्राणिनां क्वचित्।
(विष्णुधर्मोत्तरपु.)

कालदहनतन्त्रम्-१
मृत्युञ्जयतन्त्रम्-२

श्रेष्ठ पुरुष

मौन, व्रत, वेद, तप, अध्ययन, स्वधर्म-व्याख्यान, एकान्त सेवन, जप और समाधि— ये क्रियाएँ मात्र अपवर्ग-प्राप्ति के लिए जो करते हैं, वे प्रायः पर (श्रेष्ठ) पुरुष हैं। किन्तु इन्द्रियों के दास तथा दम्भी उक्त सात्त्विक क्रियाओं के कर्ता कदापि नहीं होते।

आतिवाहिक देह

तत्क्षण स्थूल शरीर को त्यागते ही जीव आतिवाहक देह धारण करता है। तत्काल तीन भूततत्त्व (तेज, वायु और आकाश) इस शरीर को त्याग कर ऊपर चले जाते हैं। इन तत्त्वों के जाते ही चेष्टा, इन्द्रिय और भोग विनष्ट हो जाते हैं। मात्र शरीर रह जाता है, कुछ काल तक जो पृथिवी और जल तत्त्व रह जाता है वह भी दाह होने से नष्ट हो जाता है।

ग्रहाः

शुभाः सुधारश्मयः	अशुभाः विषरश्मयः
१. पूर्णश्चन्द्रः	१. क्षीणश्चन्द्रः
२. बुधः	२. भौमः
३. गुरुः	३. शनिः
४. शुक्रः	

सूर्यः - तीक्ष्णरश्मिः

आत्मा रविः शीतकरस्तु चेतः सत्वं धराजः शशिजश्चवाणी।
ज्ञानं सुखं देवगुरुः मदश्च शुक्रः शनिः कालनरस्य दुःखम्।।

आत्मादयो गगनगैः बलिभिर्बलवत्तराः।
दुर्बलैर्दुर्बला ज्ञेयाः विपरीतः शनिः स्मृतः।।

कलेर्दशसहस्राणि हरिस्तिष्ठति मेदिनीम्।
देवानां प्रतिमापूजा शास्त्राणि च पुराणकम्।।
तदर्धमपि तीर्थानि गंगादीनि सुनिश्चितम्।
तदर्धं ग्रामदेवाश्च वेदाश्च विदुषामपि।। (ब्रह्मवैवर्ते कृ.ज.ख. १२८)

पूर्ण चन्द्र, क्षीण चन्द्र और ग्रह

शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि से कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि पर्यन्त पूर्ण चन्द्र की स्थिति रहती है, इसके अन्तर्गत बुध, गुरु और शुक्र हैं। इस काल में सुधामयी रश्मियाँ शुभ मानी गयी हैं। क्षीण चन्द्र कृष्ण पक्ष की नवमी से शुक्ल पक्ष की अष्टमी तक है इससे मंगल और शनि सम्बद्ध हैं, इसकी विषमयी रश्मियाँ अशुभ रश्मियों के रूप में कही गयी हैं।

ग्रहरूपता

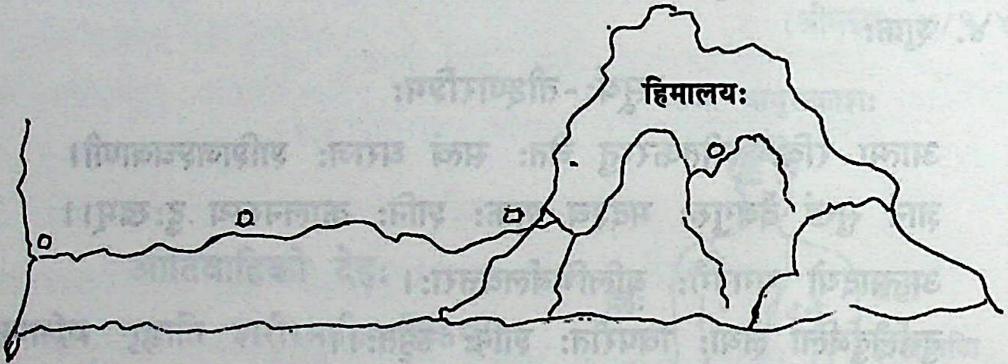
शरीर में जो आत्मा है वह सूर्य है, चन्द्रमा चित्त है, सत्त्व मंगल है, वाणी बुध है, ज्ञान व सुख गुरु है, मद शुक्र है और कालपुरुष का दुःख ही शनि है।

गगनस्थ आत्मादि (सूर्यादि) के बलवान् होने से उपर्युक्त आत्मादि बलवान् होते हैं और दुर्बल होने से दुर्बल रहते हैं, किन्तु शनि की स्थिति विपरीत कही गयी है।

कलिकाल के दस हजार वर्ष

कलि युग के दस सहस्त्र वर्षपर्यन्त श्रीहरि इस पृथिवी पर विराजमान रहेंगे, तभी

क्षेत्राणां पञ्चकं पृथ्व्यां स्थास्यति प्रवरे कलौ।
गंगाद्वारं च केदारं काशी गंगागमस्तथा।।
गंगा च संगता यत्र सागरेण महामते। (स्कान्दकेदा.ख. १०२)



यावच्चन्द्रग्रहेशाद्याः स्थास्यन्त्यम्बरमण्डले।
तावत्कीर्तिर्महाराज भविता ते त्रिलोकके।।
(भगीरथाय शिववरदानम्) (स्कान्दकेदार ख. १७७)
विविक्तदेशे च सुखासनस्थः शुचिः समग्रीवशिरः शरीरः।
अन्त्याश्रमस्थः सकलेन्द्रियाणि निरुध्य भक्त्या स्वगुरुं प्रणम्य।।

तक देवप्रतिमा की पूजा, शास्त्रपुराण की चर्चा रहेगी। कलिकाल के पाँच हजार वर्ष तक गंगादि तीर्थों की अवस्थिति रहेगी और इसके आधे समय (ढाई हजार वर्ष) तक ग्राम-देवता, वेद और तत्वदर्शी विद्वान् रहेंगे।

किन्तु घोर कलिकाल में भी ये पाँच तीर्थक्षेत्र—हदिद्वार, केदार, काशी, गोमुख और गङ्गासागर स्थित रहेंगे

भगीरथ को शिवजी का वरदान

हे राजन्! जब तक आकाशमण्डल में सूर्य और चन्द्रमा स्थित हैं, तब तक तीनों लोकों में तुम्हारी कीर्ति अक्षुण्ण रहेगी।

ब्रह्मप्राप्ति का उपाय

निर्जन व शान्त स्थान पर सुखासन पर स्थित हो शुचितापूर्वक ग्रीवासहित शरीर को सीधा करके संन्यासी समस्त इन्द्रियों का निरोध कर भक्ति से स्वकीय गुरु को प्रणाम

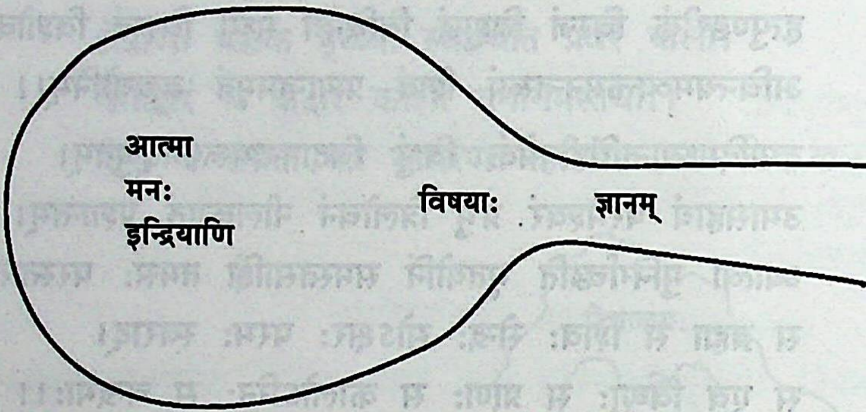
हृत्पुण्डरीकं विरजं विशुद्धं विचिन्त्य मध्ये विशदं विशोकम्।
अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम्।।
तमादिमध्यान्तविहीनमेकं विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम्।
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात्।।
स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः।।

स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम्।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये।।
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
संपश्यन्ब्रह्म परमं याति नान्येन हेतुना।।
(कैवल्योपनि. १)



करके विरज, विशुद्ध हृदयकमल के मध्य में विशद, विशोक, अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्तरूप, शिव, प्रशान्त, अमृत, ब्रह्मयोनि, आदिमध्यान्तहीन, एक, विभु, चिदानन्द, अरूप, अद्भुत, प्रभु, त्रिलोचन, नीलकण्ठ, प्रशान्त परमेश्वर श्रीसाम्बसदाशिव का चिन्तन करता हुआ (ध्यान करके) मुनि अज्ञानान्धकार से परे समस्तसाक्षी, भूतयोनि (ब्रह्मरूपता) को प्राप्त हो जाता है।

वह ब्रह्मा है, शिव है, इन्द्र है, अक्षर है, परम है, स्वराट् है, वह ही विष्णु, प्राण, काल, अग्नि और चन्द्रमा है। जो हो चुका और जो भी होगा वह सब वही है, वह सनातन है। उसको जानकर मृत्यु को पार कर लेता है, विमुक्ति के लिए इससे अतिरिक्त और कोई मार्ग (उपाय) नहीं है। समस्त भूतों को स्वयं में और स्वयं को समस्त भूतों (जीवों) में देखता हुआ परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। किसी अन्य हेतु (उपाय) से यह सम्भव नहीं।



न रात्रौ दधि भुञ्जीत न चाप्यघृतशर्करम्।
नामुद्गयूषं नाक्षौद्रं नोष्णं नामलकैर्विना।। (चरकसं.)

इमांस्तु धारयेद्वेगान् हितार्थी प्रेत्य चेह च।
साहसानामशस्तानां मनोवाक्कायकर्मणाम्।।

लोभशोकभयक्रोधमानवेगान् विधारयेत्।
नैर्लज्ज्येर्ष्यातिरागाणामभिध्यायाश्च बुद्धिमान्।। (चरकसं.)

आत्मा, मन, इन्द्रियाँ, विषय और ज्ञान

आत्मा का मन से संयोग होने पर मन इन्द्रियों को अपने विषयों के प्रति प्रेरित करता है। इन्द्रियों का अपने विषयों से सम्बन्ध होते ही घट-पटादि का ज्ञान होता है।

रात्रि में दधि नहीं खाना चाहिए, बिना घृत के शर्करा न खायें, पथ्य में मूंग की दाल का पानी बिना मधु के सेवन न करे और उष्णवीर्य भक्ष्य पदार्थ को आमलक के बिना ग्रहण नहीं करंना चाहिए।

इहलौकिक और पारलौकिक हित

मनुष्य इस लोक में और परलोक में अपना हित चाहता है तो सहसा उत्पन्न होने वाले अप्रशस्त (निन्दनीय) मन, वाणी और शारीरिक कर्मों और लोभ, शोक, भय, क्रोध और मान के बलवान् वेगों को धारण करें अर्थात् इन वेगों को धैर्यपूर्वक रोक ले, अन्यथा दोनों ही लोक बिगड़ जायेंगे। बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिए कि भोगों के प्रति निर्लज्जतापूर्वक प्रवृत्ति का परित्याग करते हुए अत्यन्त रागों का कदापि चिन्तन न करे।

सर्गो दशविधः प्राकृतो वैकृतश्च

१. महतां सर्गः – गुणवैषम्यमात्मनः		प्राकृताः
२. अहमः सर्गः – द्रव्यज्ञानक्रियोदयः		
३. भूतसर्गः – तन्मात्रो द्रव्यशक्तिमान्		
४. ऐन्द्रियः सर्गः – ज्ञानक्रियात्मकः		
५. देवसर्गः – वैकारिको यन्मयं मनः		
६. तमसः सर्गः – अबुद्धिकृतः		
७. मुख्यसर्गः – स्थावराणां षड्विधः		वैकृताः
८. तिरश्चाम् – अष्टाविंशतिधा		
९. नृणाम् – अर्वाक्स्रोतः		
१०. देवसर्गः – अष्टविधः		

दशविध सर्ग (सृष्टि) प्राकृत और वैकृत

सृष्टि दस प्रकार की है, जिसमें छः भेद प्राकृत और चार भेद वैकृत हैं।

१. **महत्तत्त्व-सर्ग (सृष्टि)**—सत्त्वादि गुण में विषमता होना ही इसका स्वरूप है।

२. **अहङ्कार-सर्ग**—जिसमें पृथ्वी आदि पञ्च महाभूतों, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। द्रव्य, ज्ञान और क्रिया का उदय होता है।

३. **भूत-सर्ग**—जिसमें पञ्च महाभूतों को उत्पन्न करने वाला तन्मात्रवर्ग रहता है।

४. **ऐन्द्रिय-सर्ग**—यह सृष्टि ज्ञान और क्रिया शक्ति से सम्पन्न होती है।

५. **देव-सर्ग**—यह पाँचवीं सृष्टि सात्त्विक अहङ्कार से उत्पन्न हुए इन्द्रियों के अधिष्ठातृदेवताओं की है। मन भी इसी सृष्टि के अन्तर्गत है।

६. **तम-सर्ग**—यह सृष्टि अविद्या की है अर्थात् अबुद्धिकृत है; इसमें तामिस्त्र, अन्धतामिस्त्र, तम, मोह और महामोह—ये पाँच ग्रन्थियाँ हैं जो जीवों की बुद्धि का आवरण और विक्षेप करने वाली हैं। ये छः प्राकृत सृष्टियाँ हैं।

वैकृत सर्ग इस प्रकार हैं—

७. **मुख्य सर्ग**—यह सृष्टि स्थावरों (वृक्षों) की है। जो षड्विध है—वनस्पति, ओषधि, लता, त्वक्सार, वीरुध और द्रुम। इनका संचार नीचे से ऊपर की ओर होता है, इनमें ज्ञानशक्ति प्रकट नहीं रहती, ये भीतर ही भीतर केवल स्पर्श का अनुभव करते है तथा इनमें कोई न कोई विशेष गुण रहता है।

देवसर्गश्चाष्टविधो विबुधाः पितरोऽसुराः।
गन्धर्वाप्सरसः सिद्धा यक्षरक्षांसि चारणाः ।।
भूतप्रेतपिशाचाश्च विद्याध्राः किन्नरादयः। (श्रीमद्भा. ३.१०)

कर्मविपाकः

तपोभिश्चिरकालोत्थैः यमैश्च नियमैरपि।
त्यागैर्दुष्कर्मनाशान्ते मुक्तिराश्वेव लभ्यते।।
यद्रूपं यद्गुणयुतं तद्गुण्यैक्येन लभ्यते।
अन्यत्सर्वजगद्रूपं कर्मभोगपराक्रमम्।।
कर्मभिर्लभ्यते तच्च तत्त्यागेनापि लभ्यते।
दुस्तरस्तु तपो त्यागः सकलैरपि तापस।। (ब्रह्माण्डपु. ललि.ख. ५)

---

८. **तिर्यग्-सर्ग**—यह आठवीं सृष्टि तिर्यग्योनियों (पशु-पक्षियों) की है। यह सृष्टि अट्ठाईस प्रकार की है, जैसे—गौ, बकरा, भैंसा, कृष्ण मृग, सूअर, नील गाय, रुरू मृग, भेड़ और ऊँट—ये दो खुर वाले पशु हैं। गधा, घोड़ा, खच्चर, गौर मृग, शरफ और चमरी—ये एक खुर वाले हैं। कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, बाघ, बिलाव, खरगोश, साही, सिंह, बन्दर, हाथी, कछुआ, गोह, मगर आदि पशु-पक्षी हैं जो पाँच नखों वाले कहे जाते हैं। बगुला, गिद्ध, बटेर, बाज, भास, भल्लूक, मोर, हंस, सारस, चकवा, कौवा और उल्लू आदि उड़ने वाले जीव जो पक्षी कहलाते हैं—वे सब इस सृष्टि के अन्तर्गत हैं।

९. **मनुष्य-सर्ग**—यह सृष्टि मनुष्यों की है, इसके आहार का प्रवाह ऊपर (मुख) से नीचे की ओर होता है। मनुष्य रजोगुणप्रधान, कर्मपरायण और दुःखरूप विषयों में ही सुख मानने वाले होते हैं।

१०. **देव-सर्ग**—देवता, पितर, असुर, गन्धर्व-अप्सरा, सिद्ध, चारण-विद्याधर, भूत-प्रेत-पिशाच और किन्नर-किम्पुरुष-अश्वमुख आदि भेद से यह देव सृष्टि आठ प्रकार की है।

कर्मविपाक

चिरकालसाधित तप के द्वारा तथा यम, नियम और त्याग के द्वारा दुष्कर्मों का नाश हो जाने पर शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है। जो जिस रूप वाला है और जिस गुण से समन्वित है वह वैसे ही गुण वाले से ऐक्य सम्पादित कर लेता है, सम्पूर्ण जगत् व्यवहार तो कर्मभोग व पराक्रम पर चलता है। जो परमात्मा की प्राप्ति अग्निहोत्रादि सत्कर्मरूप तप से होती है, वह त्याग (संन्यास) के द्वारा भी लभ्य हो जाती है; किन्तु तप और त्याग सभी के लिए दुष्कर हैं।

जातिः (कुमारिलभट्टाः)

जातिमेवाकृतिं प्राहुः व्यक्तिराक्रियते यया।
सामान्यं तच्च पिण्डानां एकबुद्धिनिबन्धनात्।।
तन्निमित्तं च यत्किंचित् सामान्यं शब्दगोचरम्।
सामान्यमाकृतिर्जातिः शक्तिर्वा सोऽभिधीयते।।

अभिधेयात्मकप्रपञ्चो-
त्पादनानुकूलशक्त्यवच्छिन्न-
चैतन्यस्य विवर्तोऽव्यक्तेश्वरः।



'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (श्रु.)

अकारो वै सर्वा वाक् (श्रु.)



अभिधानात्मकप्रपञ्चोत्पादनानुकूलशक्त्य-
वच्छिन्नचैतन्यस्य विवर्तः प्रणवः।

(वेदार्थपारिजातः)

जाति

जाति ही आकृति है—ऐसा कहा गया है, क्योंकि जाति से ही व्यक्ति का आक्षेप होता है। जातिगत तत्तत् पिण्डों के सामान्य में एक बुद्धि का निबन्धन होने से अर्थात् एकाकार प्रतीति के कारण को मीमांसकों के मत में सामान्य या जाति कहा जाता है। सामान्य शब्द से ग्रहीत जाति को ही शब्द का प्रवृत्ति-निमित्त मानना उचित है, इसलिए सामान्य-आकृति ही जाति है, वह ही शक्ति नाम से अभिहित है।

अकार, ॐकार, अव्यक्त ईश्वर और शब्दतत्त्व

अकार ही समस्त वाणियों का सूक्ष्म स्वरूप है। अभिधेयात्मक-नामरूपात्मक प्रपञ्च को उत्पन्न करने की शक्ति से युक्त चैतन्य का विवर्त अव्यक्त ईश्वर है। यह जो भी कुछ है सब ब्रह्म ही है।

अभिधानात्मक जगत्-प्रपञ्च के उत्पादन के अनुकूल शक्ति से अवच्छिन्न युक्त चैतन्य का विवर्त प्रणव है।

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।। (वाक्यपदीयम्)

क्रतुः यज्ञः स्वधा औषधं मन्त्रः आज्यम्
अग्निः हुतं पिता माता धाता पितामहः
वेद्यं पवित्रम् ॐ ऋक् साम यजुः गतिः भर्ता
प्रभुः साक्षी निवासः अहम् शरणं सुहृत् प्रभवः प्रलयः
स्थानं निधानं बीजम् अव्ययं

तपामि निगृह्णामि उत्सृजामि अमृतं मृत्युः सत् असत्। (गी. ९)

विश्वतोमुखं मां एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा उपासते।
दृढव्रता नित्ययुक्ता भक्त्या कीर्तयन्तो नमस्यन्तः सततं यतन्तः।।

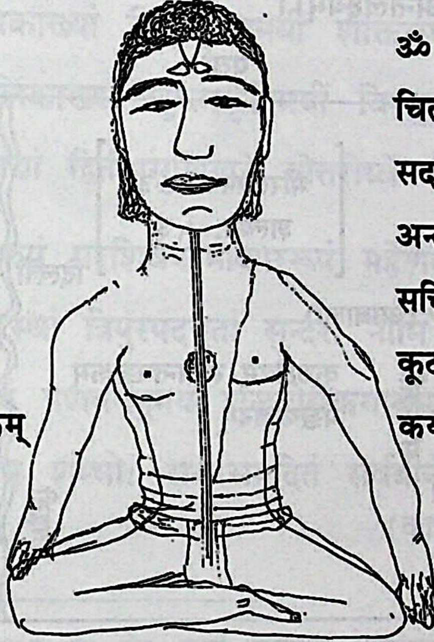
जो उत्पन्न व विनष्ट नहीं होता अत: नित्य है, और जो अक्षर है, ककारादि वर्णों का कारण होते हुए भी अविद्यारूपी बाह्य अर्थों की वासना से घट, पट आदि अर्थ (कार्य) रूप में भासित होता है, जो शब्द और अर्थ उभयरूप है, जिससे जगत् की (समस्त विकारों की) प्रक्रिया (उत्पत्ति या व्यवहार) चलती है वह शब्दतत्त्व ही ब्रह्म है।

अहम्

भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि मैं क्रतु, यज्ञ, स्वधा, औषध, मन्त्र, घृत, अग्नि, हुत, पिता, माता, धाता, पितामह, जानने योग्य परम पवित्र ॐकार, ऋक्, साम, यजु, गति, भर्ता, प्रभु, साक्षी, निवास, शरण, सुहृत्, प्रभव, प्रलय, स्थान, निधान, बीज और अव्यय हूँ, मैं ही सूर्यरूप से तपता हूँ, यमरूप से निग्रह करता हूँ, मेघरूप से उत्सृजन करता हूँ, अमृत भी मैं हूँ, मृत्यु भी मैं हूँ, सत् और असत् मैं ही हूँ। सर्वतोमुख मुझ परमात्मा को प्राणी एक रूप से तथा पृथक्-पृथक् रूप से बहुधा पूजते हैं। दृढ़व्रतयुक्त योगी भक्ति से मेरा कीर्तन करते हुए, मुझे नमस्कार करते हुए निरन्तर यत्नपूर्वक मुझे प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।

अद्वयतारकोपनिषत्

जितेन्द्रियः
शमदमादि-
षड्गुणपूर्णः
गर्भजन्म-
जरामरण-
संसारमहद्भया-
त्तारयतीति तारकम्



ॐ
चित्स्वरूपोऽहम् इति
सदा भावयन्
अन्तर्दृष्ट्या भ्रूदहरादुपरि
सच्चिदानन्दतेजः
कूटरूपं परं ब्रह्मावलो-
कयन् तद्रूपो भवति।।

जीवेश्वरौ मायिकौ विज्ञाय सर्वविशेषं नेति नेतीति विहाय यदवशिष्यते तदद्वयं ब्रह्म। तत्सिद्ध्यै लक्ष्यत्रयानुसंधानम्, देहमध्ये ब्रह्मनाडी सुषुम्ना सूर्यरूपिणी पूर्णचन्द्राभा वर्तते। सा तु मूलाधाराद् ब्रह्मरन्ध्रगामिनी, तन्मध्ये तडित्कोटिसमानकान्त्या मृणालसूत्रवत्सूक्ष्मांगी

तारक और ब्रह्मावलोकन

गर्भजन्म, जरा और मरणरूपी संसार के महाभयों से जो तार देता है उसे तारक (ॐ) कहते हैं।

जितेन्द्रिय होकर शम, दम, उपरति, तितिक्षा आदि षट् गुणों से पूर्ण हो 'मैं चित्स्वरूप हूँ—ऐसी निरन्तर भावना करते हुए अन्तर्दृष्टि से भ्रूमध्य से ऊपर सच्चिदानन्द तेज, कूट रूप परब्रह्म का अवलोकन करता हुआ योगी तद् (ब्रह्म) रूप ही हो जाता है

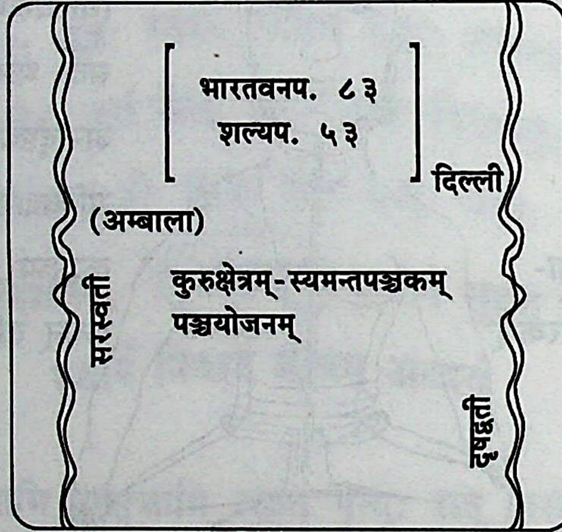
अद्वय ब्रह्म

जीव-ईश्वर को मायायुक्त (मायाकृत) जान कर सर्व विशेष को नेति-नेति (यह नहीं है—यह नहीं हैं) की प्रक्रिया से छोड़ने पर जो शेष बचे वह ही अद्वय ब्रह्म है। इसकी सिद्धि के लिए तीन लक्ष्यों (हृदय में, ललाट में, सुषुम्ना में) का अनुसन्धान करे। शरीर के मध्य ब्रह्मनाड़ी सुषुम्ना जो सूर्यरूपा है और पूर्णचन्द्र की आभा से युक्त मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त जिसकी गति है, उसके मध्य में करोड़ों मेघ विद्युत् की कान्ति के समान

कुण्डलिनीति प्रसिद्धा। तां दृष्ट्वा मनसैव नरः सर्वपापविनाशद्वारा मुक्तो भवति। हृदये ललाटे सुषुम्नायाम्। इति अन्तर्लक्ष्यम्।।

पूर्वा

उत्तरा



दक्षिणा

वेदस्य चेश्वरात्मत्वात् तत्र मुह्यन्ति सूरयः। (श्रीमद्भाग. ११.३.४३)

अनादिनिधना नित्या वाक् (महाभा.शां. २१०.१९)

वेदः

नारायणः साक्षात् (६.१.४०)

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे (गीता४.८)

देवेषु महर्षिषु प्रजापतिषु परमेश्वरे वेदसम्प्रदायाविच्छेदस्य सर्वदा विद्यमानत्वात्। (वेदार्थपारि. पृ. २८३)

कान्ति वाली मृणालतन्तु के सदृश सूक्ष्म कुण्डलिनी-शक्ति प्रसिद्ध है—उसको देखकर मन से ही मनुष्य सर्व-पाप-विनाशपूर्वक मुक्त हो जाता है।

कुरुक्षेत्र-स्यमन्त पञ्चक तीर्थ

उत्तर दिशा में सरस्वती नदी और दक्षिण दिशा में दृषद्वती नदी के मध्य पाँच योजन परिमाप में कुरुक्षेत्रस्थ स्यमन्त पञ्चक नामक पौराणिक तीर्थ भूमि है। यह क्षेत्र के उत्तर में अम्बाला और दक्षिण में इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) है।

वेद ईश्वरात्मक है

वेद के ईश्वरात्मक होने से वह ईश्वरस्वरूप ही है। वेदार्थ-निर्णय में वेद-वेदान्त के रहस्यों के व्याख्याता विद्वान् भी मोह को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् ईश्वरतत्त्व के यथार्थतः

अम्बाख्यां पूर्वपीठे प्रकृतिमयमहाशक्तिरूपामकाराम्
दक्षे पीठेऽम्बिकाख्यां विकृतितनुमयीं शक्तिरूपामुकाराम्।
शक्तिं चाम्बालिकाख्यां शुभमकृतिमयीं विष्णुमायां प्रतीच्याम्
नादे विद्यामविद्यां द्वितीयसुशिखरे चोत्तरोर्ध्वे नमामि।।

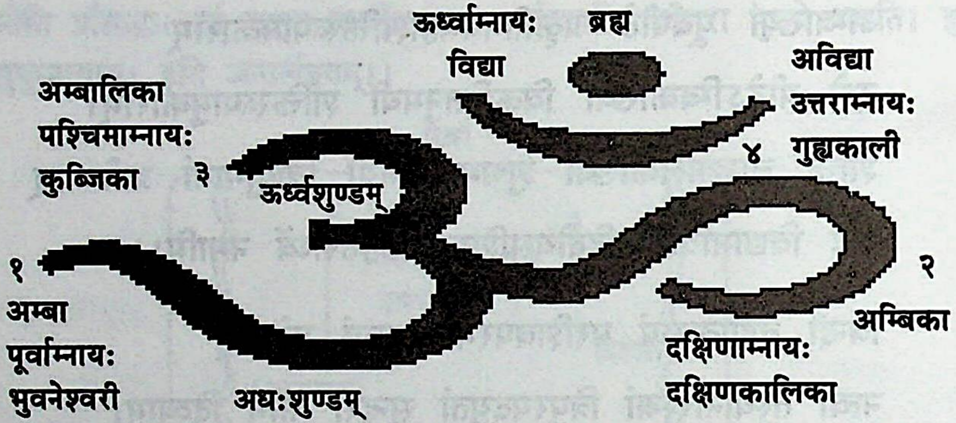
बिन्दौ ब्रह्मात्मरूपं परशिवपरमाकाररूपं महेशम्
नत्वा तस्यान्तरस्थां त्रिपुरपदयुतां सुन्दरीं नौमि दिव्याम्।
एवं पूर्णस्वरूपं प्रणवमनुमयं शुद्धबोधैकगम्यम्
वन्दे शक्त्याश्च शम्भोः समरसमदितं सर्वबीजैकनाथम्।।
(कामकलात्मकपाशुपतस्तोत्रम्)

प्रतिपादन में असमर्थ ही रहते हैं। वेद स्वयं भगवान् (साक्षात् नारायण) के स्वरूप हैं। वे उनके स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास एवं स्वयं प्रकाश ज्ञान है। जो वेदप्रणहित हैं—वेदों ने जिन कर्मों का विधान किया है वे धर्म हैं और जिनका निषेध किया है वे अधर्म हैं। इसलिए धर्म के अभ्युत्थान और अधर्म के विनाश हेतु भगवान् प्रत्येक युग में अवतार ग्रहण करते हैं। यह वेदवाणी नित्या, अनादि और अनिधना है। परम प्रभु परमात्मा वेद-सम्प्रदाय की अविच्छन्नता की सिद्धि हेतु देवों, महर्षियों, प्रजापतियों और परमेश्वररूपा वेदवाणी में सदा विद्यमान रहते हैं।

प्रणवस्वरूपा शक्ति का स्तवन

पूर्व पीठ में अकाररूपा, प्रकृतिमयी अम्बाख्या महाशक्ति, दक्षिण पीठ में उकार-रूपा विकृतितनुमयी-अम्बिका शक्ति, पश्चिम पीठ में शुभ अकृतमयी विष्णुरूपा अम्बालिका शक्ति, उत्तर पीठ में नादरूप सुन्दर दो ऊर्ध्व शिखरों पर विद्या व अविद्या को मैं नमन करता हूँ।

बिन्दु में ब्रह्मात्मस्वरूप परशिव परमाकाररूप महेश को प्रणाम कर, उनके अन्तस् में विराजमान दिव्यरूपा भगवती त्रिपुरपदयुता सुन्दरी (त्रिपुरसुन्दरी) को मैं नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार पूर्णस्वरूप, शुद्ध बोध में एकमात्र गम्य, समस्त कारणों का एक मात्र कारण (स्वामी) शिवशक्त्यात्मक प्रणव की मैं वन्दना करता हूँ।



शंकराचार्यशिष्याश्च चतुर्दश दृढव्रताः।
देव्यात्मानो दृढात्मानो निग्रहानुग्रहक्षमाः।।
मण्डनः पद्मपादाख्यो बोधो गीर्वाण एव च।
आनन्दतीर्थनामा च पञ्चैते भिक्षवः स्मृताः।।
सुन्दरो विष्णुशर्मा च लक्ष्मणो मल्लिकार्जुनः।
त्रिविक्रमः श्रीधरश्च कपर्दी केशवस्तथा।।
दामोदर इति ख्याता गृहिणो नव संख्यकाः।। (श्रीविद्यार्णवः १)

शिवशक्तिस्वरूप प्रणव

यहाँ प्रणवाङ्कित चित्र के माध्यम से तत्तत् दिशाओं में अम्बा-भुवनेश्वरी आदि शक्ति की स्थिति तथा बिन्दु में ब्रह्मरूप शिव की अवस्थिति प्रतिपादित है।

ॐ कार के अधःशुण्ड के अग्रभाग पूर्वाम्नाय में उपर्युक्त स्तवन श्लोक में प्रदर्शित अम्बाशक्ति भुवनेश्वरी का निवास है, दक्षिणाम्नाय में दक्षिण कालिका अम्बिका शक्ति विराजमान हैं, पश्चिमाम्नाय ऊर्ध्व शुण्ड के अग्रभाग में कुञ्जिका शक्ति भगवती अम्बालिका विद्यमान हैं, ऊर्ध्वाम्नायस्थ दक्षिण शिखर पर विद्या और वाम शिखर पर अविद्या विद्यमान हैं और बिन्दु ब्रह्मस्वरूप शिव संशोभित हैं।

भगवान् शङ्कराचार्य का शिष्यमण्डल

श्रीशङ्कराचार्य जी के चौदह शिष्य थे जो बड़े ही दृढ़व्रती, देव्युपासक, दृढ़ात्मा तथा निग्रह और अनुग्रह करने में समर्थ थे; जिनमें मण्डन, पद्मपाद, बोध, गीर्वाण, आनन्द-

द्वादशशक्तिपीठानि

काञ्चीपुरे तु कामाक्षी मलये भ्रामरी तथा।
केरले तु कुमारी सा अम्बानर्तेषु संस्थिता।।
करवीरे महालक्ष्मीः कालिका मालवेषु सा।
प्रयागे ललिता देवी विन्ध्ये विन्ध्यनिवासिनी।।
वाराणस्यां विशालाक्षी गयायां मङ्गलावती।
बङ्गेषु सुन्दरी देवी नैपाले गुह्यकेश्वरी।।
इति द्वादशरूपेण संस्थिता भारते शिवा।। (त्रिपुरारहस्य माहा.ख. ४८)

तृष्णालक्ष्म्यार्तिभीर्निद्रातन्द्रारूपैरसत्सु च।
क्षणे क्षणे विमुह्यन्ति वशिनोऽप्यत्र योगिनः।
सैषाऽनिर्वचनीयार्च्या या ह्यनादिरजा श्रुता।।

अजपा स्तुतिः

शिवोऽपि शक्तियुक्तश्चेत् प्रभुः कार्याय नान्यथा।
स्वमायया विनेशस्य परस्यानुभवात्मनः।।

तीर्थ—ये पाँच भिक्षुक अर्थात् संन्यासी थे। सुन्दर, विष्णुशर्मा, लक्ष्मण, मल्लिकार्जुन, त्रिविक्रम, श्रीधर, कपर्दी, केशव और दामोदर—ये नौ सद्गृहस्थ शिष्य थे।

द्वादश शक्तिपीठ

काञ्चीपुर में भगवती कामाक्षी, मलयाचल पर भ्रामरी, केरल में कुमारी, आनर्त देश में अम्बा संस्थित हैं। करवीर में महालक्ष्मी, मालव में कालिका, प्रयाग में ललिता देवी, विन्ध्याचल पर विन्ध्यवासिनी का वास है। वाराणसी में विशालाक्षी, गया में मङ्गलावती, बंगाल में सुन्दरी देवी, नैपाल में गुह्यकेश्वरी-इस प्रकार भारतवर्ष में बाहर स्वरूपों से शक्ति भक्तों के कल्याणार्थ विराजित हैं।

असज्जनों में ये भगवती जगदम्बा तृष्णा, दरिद्रता, दुःख, भय, निद्रा, आलस्य रूप से रहती है। बड़े-बड़े जितेन्द्रिय योगनिष्ठ महात्मा भी क्षण-क्षण में विमोहित हो जाते हैं। महामाया के मोहपाश से बचना दुष्कर है, अतः अनिर्वचनीया, अनादि, अजा, अश्रुता ये भगवती सदा अर्चनायोग्य है।

अजपा स्तुति महामाया—महिमा

शिव भी शक्तियुक्त होने पर ही कार्यसम्पादन में समर्थ हैं, अन्यथा नहीं। माया के

न घटेतार्थसम्बन्धः ततो माया परावरा।
यस्याः प्रभावं वक्तुं ब्रह्माद्या अप्यलं बलम्।।

वैष्णवीयं महामाया सुरासुरमुनिस्तुता।
शय्यां देवमयीं कृत्वा शेतेऽसाविति गीयते।।

सर्वे देवाश्च मुनयो विषये यां स्तुवन्ति हि।
सृष्टिस्थितिविनाशानां हेतुरेका सनातनी।।

विदुषोऽपि हठाच्चेतो महामोहाय यच्छति।
अभक्तानां बन्धहेतुः भक्तानां मुक्तिदा च सा।।

सर्वेष्वपि हि भूतेषु चेतनेत्युच्यते ततः।
स्वात्मारामः शिवोऽप्यत्र रत्यर्थमनुधावति।।

मायाचतुष्कपर्दासौ युवतिर्नित्यनूतना।
सुपेशा च घृतास्यादौ वस्तेऽस्यवयुनानि च।।
भक्तिः श्रद्धा धृतिर्ह्रीः श्रीर्धीर्मेधाद्यैश्च सत्सु या।
कुर्वन्ति च बहून् मार्गान् तान्हेतुबलमाश्रिताः।
सतां मार्गान्विलुम्पन्ति लोभाज्ञानेषु निष्ठिताः।। (महाभा.शा. १५८)

बिना अनुभवगम्य परमेश्वर का जगत् सृष्ट्यादि प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। उस परावरा माया के प्रभाव और बल का वर्णन करने में ब्रह्मादि देवता भी समर्थ नहीं हो सकते। ऐसा कहा जाता है कि सुरासुरमुनिवन्दित ये वैष्णवी माया महादेव को देवमयी शय्या बना कर शयन करती हैं। समस्त देवता और मुनिजन इनकी स्तुति करते हैं, ये सनातनी सृष्टि, स्थिति और विनाश की हेतु हैं। बड़े-बड़े विद्वानों का चित्त भी बलात् महामोह के प्रति ग्रस्त हो जाता है। ये ही भक्तों को मुक्ति प्रदान करने वाली है और अभक्तों के बन्धन का हेतु हैं। समस्त भूतों में इन्हें चेतनाशक्ति कहा गया है। स्वात्माराम श्रीशिव इनके प्रति रमणार्थ दौड़ लगाते हैं। चतुष्कपर्दरूपा यह माया युवति नित्य नूतना है—अखण्ड सौन्दर्यशालिनी है। सुन्दर शरीर धारिणी, घृतभक्षिणी और ज्ञान को आच्छादित कर देने वाली ये महामाया सज्जनों (उपासकों) के हृदय में भक्ति, श्रद्धा, धृति, ह्रीं, श्री, धी, मेधा आदि रूपों में निवास करती हैं।

लोभ और अज्ञानात्मक मोह

बड़े-बड़े विद्वान् लोग भी ग्रस्त होकर युक्ति-बल का आश्रय लेकर बहुत से असत्

अनर्थानामधिष्ठानं,
यो न पूरयितुं शक्यः **लोभः** समफलौ

मूलं लोभस्य मोहो वै; सर्वदोषा लोभात्

अतः पापमधर्मश्च
तथा दुःखमनुत्तमम्।

एको लोभो
महाग्राहः



मार्ग खड़े कर देते हैं तथा लोभ और अज्ञान में स्थित हो सत्पुरुषों के द्वारा स्थापित किये हुए मार्गों तथा धर्ममर्यादाओं का नाश कर देते हैं।

यह लोभ समस्त अनर्थों-दोषों का अधिष्ठान (आधार) है, जहाँ लोभ है वहाँ समस्त दोष उपस्थित हो जाते हैं। लोभ को पूरित करना सम्भव नहीं है। लोभ एक ऐसा गहरा गर्त है जिसे पाटा नहीं जा सकता। अज्ञान और लोभ ये दोनों एक ही हैं, क्योंकि इनके फल (परिणाम) और दोष समान ही हैं। यह मोहात्मक अज्ञान ही निःसन्देह लोभ का मूल कारण है और लोभ से ही सारे दोष पैदा होते हैं।

लोभ एक महाग्राह है

एकमात्र लोभ ही पाप का अधिष्ठान है, वह मनुष्य को निगल जाने के लिए एक बड़ा ग्राह है। लोभ से ही पाप की प्रवृत्ति बनती है। अतः लोभ से ही पाप, अधर्म तथा महान् दुःख की उत्पत्ति होती है।

बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि धर्म की मर्यादा को स्थिर बनाये रखने वाले महापुरुषों की संगति में रहकर इस लोभरूपी महाग्राह का ग्रास बनने से बचने का प्रयास करे। नारायण की कृपा ही इस जीवरूपी गज को लोभ के इस महाग्राह से मुक्ति प्रदान करने में समर्थ है।

यहाँ चित्र में मोह को महाग्राह के रूप में दर्शाया गया है।

रागो द्वेषस्तथा मोहः हर्षः शोकोऽभिमानता।

कामः क्रोधः दर्पः तन्द्रा समदोषौ



आलस्यम् इच्छा तापः ईर्षा पापक्रिया।
(महाभा.शा. १५९)

पवित्रं परमं प्रशस्तं सर्वधर्मिणाम्

निःश्रेयसं प्राहुः



क्रियासिद्धिः

आश्रमेषु उत्तमं व्रतम्

क्षमा धृतिः अहिंसा समता सत्यम् आर्जवम् इन्द्रियजयः दाक्ष्यं मार्दवं ह्रीः अचापलम् अकार्पण्यम् असंरम्भः संतोषः प्रियवादिता अहिंसा अनसूया एषां समुदयो दमः।

अज्ञान

मोह और अज्ञान के फल और दोष समान हैं। समस्त दुःखों की उत्पत्ति का कारण अज्ञान ही है।

राग, द्वेष, मोह, हर्ष, शोक, अभिमान, काम, क्रोध, दर्प, तन्द्रा, आलस्य, इच्छा, ईर्ष्या, ताप और पापाचरण—इन सबको अज्ञान का कार्य होने से अज्ञान कहा गया है।

दम

संसार में दम (मन और इन्द्रियों का संयम) के समान दूसरा कोई धर्म नहीं है। सभी धर्मवालों के यहाँ दम को परम पवित्र, प्रशस्त और निःश्रेयस-परम कल्याण का साधन बताया गया है; सभी वर्णधर्मों में इसकी स्वीकार्यता श्रेयष्कर है। चारों आश्रमों में दम को ही उत्तम व्रत बताया गया है। दम से ही शुभ कर्मों की यथावत् सिद्धि प्राप्त होती है।

क्षमा, धीरता, अहिंसा, समता, सत्यवादिता, सरलता, इन्द्रिय-विजय, दक्षता, कोमलता, लज्जा, स्थिरता, उदारता, क्रोधहीनता, सन्तोष, प्रियवचन बोलने का स्वभाव, किसी भी प्राणी को कष्ट न देना और दूसरों के दोषों पर दृष्टि न रखना-इन सद्‌गुणों का उदय होना ही दम है।

व्यासः

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात्।

(श्रीमद्भा.)

जातमात्रश्च यः सद्यः इष्ट्या देहमवीवृधत्।

(महाभा.१.५०.३)

मनुरुवाच

अहो कष्टतरं चैतदङ्गजागमनं विभो।
कथं न दोषमगमत् कर्मणानेन पद्मभूः।।

परस्परं च संबन्धः सगोत्राणामभूत्कथम्।
वैवाहिकस्तत्सुतानां छिन्धि मे संशयं विभो।।

मत्स्य उवाच

दिव्येयमादिसृष्टिस्तु रजोगुणसमुद्भवा।
अतीन्द्रियेन्द्रिया तद्वदतीन्द्रियशरीरिका।।

व्यास

सत्रहवें अवतार में भगवान् सत्यवती के गर्भ से पराशरजी के द्वारा व्यास के रूप में अवतीर्ण हुए। उन्होंने उस समय मनुष्यों के ज्ञान और धारणाशक्ति को क्षीण देख कर अपने वेदरूप वृक्ष की अनेक शाखाएँ बना दीं। उत्पन्न होते ही उन्होंने देखते-देखते अपना शरीर बढ़ा लिया।

मत्स्य भगवान् द्वारा मनुजी की शंका का समाधान

मनु ने पूछा—सर्वव्यापी भगवन्! अहो! पुत्री की ओर बार-बार अवलोकन तो अत्यन्त कष्ट का विषय है, परन्तु ऐसा कर्म करने पर भी कमलयोनि ब्रह्मा दोषभागी क्यों नहीं हुए तथा उनके सगोत्र पुत्रों का परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध कैसे हो गया? विभो! मेरे इस संशय को दूर कीजिए।

मत्स्य भगवान् ने कहा—राजन्! रजोगुण से उत्पन्न हुई यह शतरूपा रूपी आदि सृष्टि दिव्य है (इसलिए 'न देवचरितं चरेत्'—'अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्'—की चेतावनी—उपदेश प्रसिद्ध है) जिस प्रकार इस मूल प्रकृति की इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषयों

दिव्यतेजोमयी भूप दिव्यज्ञानसमुद्भवा।
न मर्त्यैरभितः शक्या वक्तुं वै मांसचक्षुभिः।।

यथा भुजङ्गाः सर्पाणामाकाशं विश्वयक्षिणाम्।
विदन्ति मार्गं दिव्यानां दिव्या एव न मानवाः।।

कार्याकार्ये न देवानां शुभाशुभफलप्रदे।
वेदराशिः स्मृतो ब्रह्मा सावित्री तदधिष्ठिता।
अमूर्तं मूर्तिमद्वापि मिथुनं तत्प्रचक्षते।। (मत्स्यपु.आ.स. ४)

देवा ऊचुः कचं प्रति

शीलदाक्षिण्यमाधुर्यैराचारेण दमेन च।
देवयान्यां तु तुष्टायां विद्यां तां प्राप्स्यसि ध्रुवम्।।

से अतीत हैं, उसी प्रकार इस शतरूपा-सहस्ररूपा नारी का शरीर भी अतीन्द्रिय है। यह दिव्य तेज से सम्पन्न एवं दिव्य ज्ञान से समुद्भूत है, अतः मांस-पिण्ड-रूप नेत्रधारी मानवों द्वारा इसका भली भाँति वर्णन नहीं किया जा सकता। जैसे सर्पों के मार्ग को सर्प तथा सम्पूर्ण पक्षियों के मार्ग को आकाशचारी पक्षी ही जान सकते हैं, वैसे ही शतरूपा आदि दिव्य जीवों के अचिन्त्य मार्ग को दिव्य जीव ही समझ सकते हैं, मानव कदापि नहीं जान सकते, राजेन्द्र! क्योंकि देवताओं के कार्य (करने योग्य-उचित) तथा अकार्य (न करने योग्य-अनुचित) शुभ एवं अशुभ फल देने वाले नहीं होते। दूसरा कारण यह है कि जिस प्रकार ब्रह्मा सारे वेदों के अधिष्ठाता हैं, उसी प्रकार शतरूपा रूपी गायत्री ब्रह्मा के अङ्ग से उत्पन्न हुई बतलायी जाती हैं। इसलिए यह मिथुनरूप (जोड़ा) अमूर्त (अव्यक्त) या मूर्तिमान् (व्यक्त) दोनों ही रूपों में कहा गया है।

मृतसञ्जीवनीविद्या–प्राप्ति–उपाय

देवताओं ने बृहस्पति के पुत्र कच से कहा—हे कच! यदि तुम शील, दाक्षिण्य, मधुरता, आचार और इन्द्रियनिग्रह द्वारा शुक्राचार्य जी की पुत्री देवयानी को प्रसन्न कर सकोगे तभी तुम शुक्राचार्य से निश्चित ही सञ्जीवनी विद्या प्राप्त कर सकते हो।

चारों युग राजा के अधीन

राजा ही अपनी शासनप्रणाली द्वारा प्रजा में सत्युग, त्रेता और द्वापर की व्यवस्था का सृजन करता है और यदि राजा ही अधार्मिक है, पापाचार में लिप्त है तो समझ लो

राजा कृतयुगस्त्रष्टा त्रेताया द्वापरस्य च।
विश्वं रसमयं कृत्वा मग्नः सहजसागरे।। (अद्वयवज्रसंग्रहः)

स्वयं देवी स्वयं देवः स्वयं शिष्यः स्वयं गुरुः।
स्वयं ध्यानं स्वयं ध्याता स्वयं सर्वत्र देवता।। (अकुलतन्त्रम्)

दण्ड्ये यः पातयेद्दण्डं दण्ड्यो यश्चापि दण्ड्यते।
कार्यकारणसिद्धार्थावुभौ तौ नावसीदतः।।

(वाल्मीकिरा. कि. १८.६१)

(रामः वालिं प्रति)

कि सत्युग में भी कलियुग का प्रवेश हो गया। इसलिए ही तो कहा गया है—यथा राजा तथा प्रजा।

सहज सागर

सुख-दुःख, मोह स्वभावात्मक इस जगत् को आनन्दमय और रसमय बना कर (राग, द्वेष, लाभ-हानि, मान-अपमान, जय-पराजय से ऊपर उठकर) सहज आनन्द के सागर में निमग्न हो जाना ही मानव जीवन की कृतार्थता है।

स्वयं शिष्य एवं स्वयं गुरु

स्वयं देवी है, स्वयं देव है, स्वयं शिष्य है और स्वयं ही स्वयं का गुरु भी है। ध्याता भी स्वयं है और ध्यान भी स्वयं है—इस तरह भेद में भी अभेद दर्शन करता हुआ स्वयं में ही सर्वत्र सबको देखे। यह उत्कृष्ट भाव होना चाहिए देवता भी मैं स्वयं हूँ, स्वयं से अतिरिक्त परकीय कुछ नहीं। इस अद्वय भाव के जागृत होते ही भव-बन्धन से मुक्ति मिल जाती है।

दण्डनीय और दण्डदाता

श्रीराम बाली से कहते हैं कि जो दण्डनीय पुरुष को दण्ड देता है तथा जो दण्ड का अधिकारी होकर दण्ड भोगता है; उनमें से दण्डनीय व्यक्ति अपने अपराध के फलरूप में शासक का दिया हुआ दण्ड भोग कर तथा दण्ड देने वाला शासक उसके उस फलभोग में निमित्त (कारण) बनकर कृतार्थ हो जाते हैं, अतः वे दुःखी नहीं होते—अर्थात् अपना-अपना कर्तव्य पूरा कर लेने के कारण कर्मरूप ऋण से मुक्त हो जाते हैं।

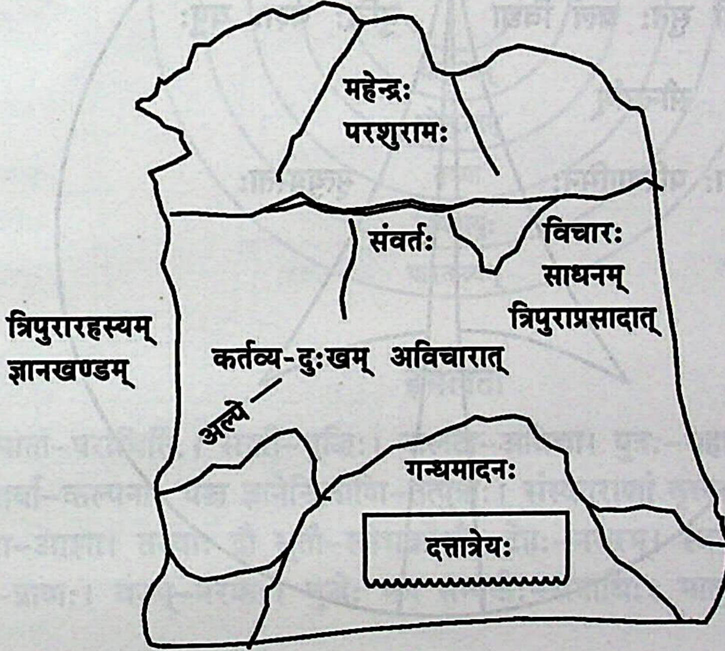


षट् चक्र और मातृका

यहाँ चित्र में सहस्रारचक्र (ब्रह्मरन्ध्र)-सहित षट् चक्रों का और उनमें तत्तत् मातृकाओं का चित्रण है। यह प्रकरण मूल ग्रन्थ के 'अन्तर्याग' (पृ. ४१) शीर्षक में अन्तर्मातृका-न्यास क्रम में आधारे लिङ्गनाभौ.—श्लोक की व्याख्या के अन्तर्गत स्पष्ट हो गया है, इस सन्दर्भ को वहीं देखें।

ख्यातिः

१. असत्ख्यातिः	शून्यवादिनाम्	
२. आत्मख्यातिः	क्षणिकविज्ञानवादिनाम्	
३. अन्यथाख्यातिः	न्यायवैशेषिकानाम्	विचारसागरः
४. अख्यातिः	सांख्यप्रभाकरयोः	
५. अनिर्वचनीया ख्यातिः	वेदान्तिनाम्	



अध्यासविषयक पञ्चख्याति

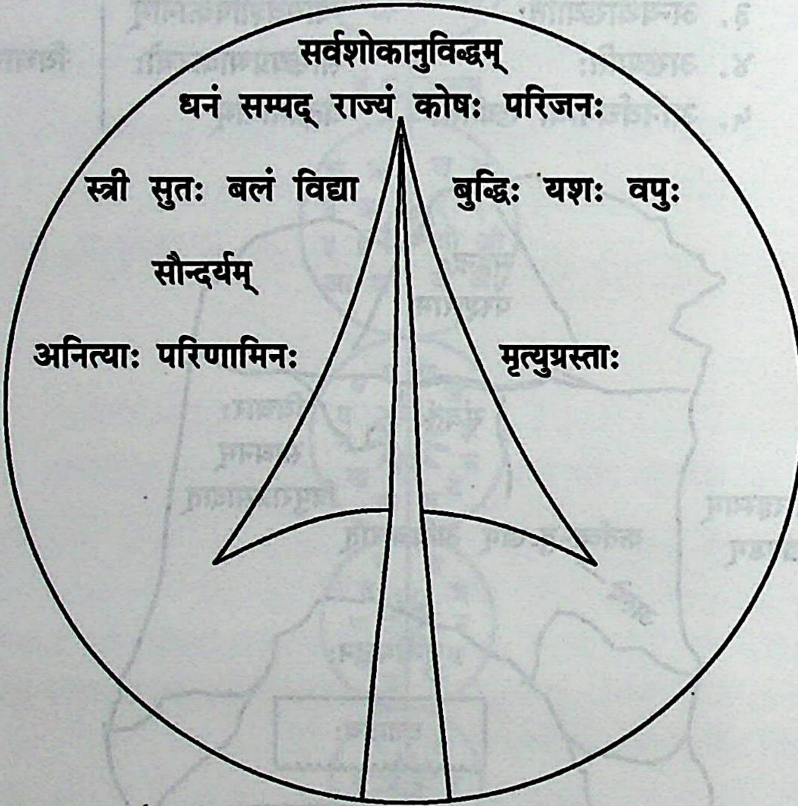
अध्यास से सम्बन्धित यह पाँच प्रकार की ख्याति प्रसिद्ध है—

१. **असत्ख्याति**—यह शून्यवादियों की है। शून्यवादियों-बौद्धों के मत में यह जगत् असत् से उत्पन्न है।

२. **आत्मख्याति**—यह ख्याति क्षणिक विज्ञानवादी-बौद्धों और मीमांसकों की है। इनके मत में रस्सी में सर्प नहीं था, किन्तु अपने हृदय (आत्मा) में ही था जो कि रज्जु में दिखायी देने लगा।

३. **अन्यथाख्याति**—यह नैयायिक और वैशेषिकों की है। जगत् असत् नहीं किन्तु दूसरे रूप में परिणत है। परमात्मा ही संसार के रूप में दिखायी दे रहा है। है तो यह परमात्मा किन्तु उसे संसार के रूप में देखें।

१. अतर्कः	हिते बाधकौ। (त्रिपुरारहस्ये ६)
२. अव्यवस्थिततर्कः	



---

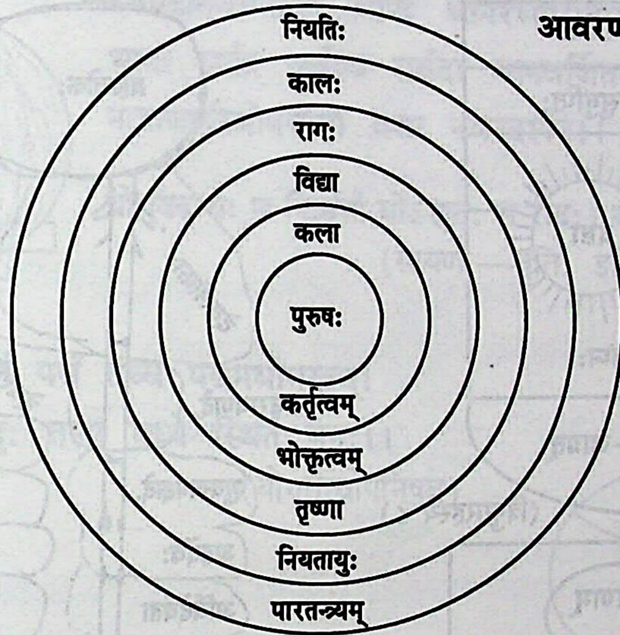
४. **अख्याति**—यह सांख्यवादियों और प्रभाकर आदि मीमांसकों की है। उनके मत में जिसका आख्यान नहीं हुआ उसका वास्तविक रूप दिखायी नहीं दिया। सीप का त्रिकोण व नीलपृष्ठ दिखायी दे जाता तो सीप में चाँदी का भ्रम नहीं होता।

५. **अनिर्वचनीया ख्याति**—यह ख्याति वेदान्तियों की है। उनके मत में इस जगत् को न सत् कहा जा सकता है और न असत् ही; यह अनिर्वचनीय है।

हित में बाधक और शोक से अनुविद्ध

अतर्क और अव्यवस्थित तर्क-ये दोनों ही हित-सम्पादन में बाधक हैं।

धन, सम्पत्ति, राज्य, कोश, परिजन, स्त्री, पुत्र, बल, विद्या, बुद्धि, यश, शरीर, सौन्दर्य-ये सब अनित्य, परिवर्तनशील, मृत्यु से ग्रस्त और शोक से अनुविद्ध हैं?



आवरणानि

(त्रिपुरारहस्ये १४)

हेमलता

माता–पराचितिः। सखी–बुद्धिः। कुलटा–अविद्या। पुत्रः–महामोहः। तत्पुत्रः–मनः। तस्य भार्या–कल्पना। पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि–तत्पुत्राः। संस्काराणां वृत्त्यात्मको भोगः–स्वप्नः। महाशना–आशा। तस्याः द्वौ सुतौ–लोभक्रोधौ। देहः–नगरम्। स्वरूपस्फूर्तिः–महामन्त्रः। प्रचारः–प्राणः। वनम्–नरकः। बुद्धेः मम सम्पर्कः–समाधिः। मातृलोकप्राप्तिः–मोक्षः।

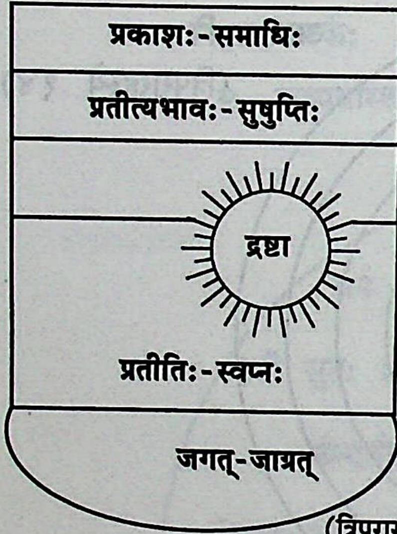
(त्रिपुरारहस्ये ८)

आवरण

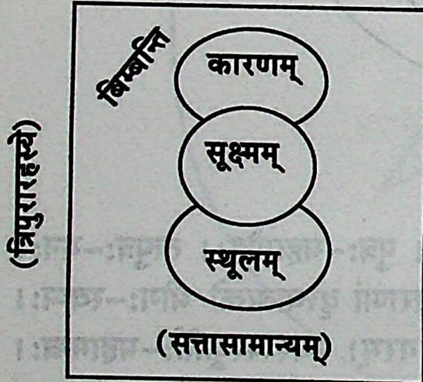
पुरुष कला और कर्तृत्व, विद्या और भोक्तृत्व, राग और तृष्णा, काल और नियतायु, नियति और परतन्त्रता—इन पञ्च आवरणों से आवृत है।

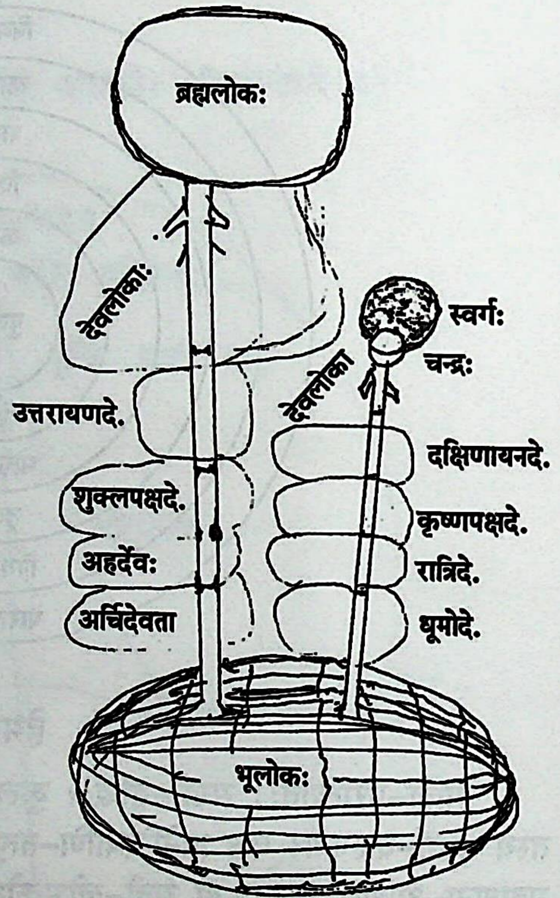
हेमलता

पराचिति इसकी माता है, बुद्धि सखि है, अविद्या कुलटा है, महामोह पुत्र है, पौत्र मन है, कल्पना भार्या है, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ उसके पुत्र हैं, संस्कारों के वृत्तिरूप भोग स्वप्न हैं, महाशना आशा है, आशा के दो पुत्र लोभ और क्रोध हैं, देह नगर है, स्वरूप की स्फूर्ति ही महामन्त्र है, प्राण प्रचार है, वन नरक है, बुद्धि का मम सम्पर्क समाधि है और पराचितिरूप माता के लोक की प्राप्ति ही मोक्ष है।



(त्रिपुरारहस्ये ८)





द्रष्टा

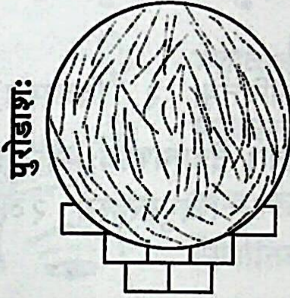
जगत् की स्थिति है तो जाग्रत्रूप प्रथमावस्था है। प्रतीति है तो स्वप्न है—यह द्वितीयावस्था है। प्रतीति का अभाव ही सुषुप्ति है, यह तृतीयावस्था है और प्रकाशपुञ्ज समाधि है जो तुरीयावस्था कही जाती है।

सत्ता—सामान्य

कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर प्रतिविम्बित हैं। कारण से सूक्ष्म और सूक्ष्म से स्थूल विम्बित होने से ये विम्बरूप हैं।

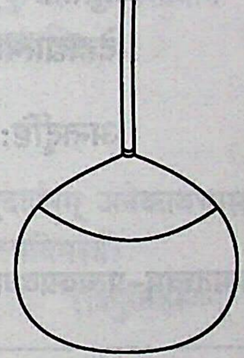
अर्चिमार्ग और धूम—मार्ग

शरीरान्त होने पर भूलोक से जीव के जाने के दो मार्ग यहाँ चित्रित हैं, एक मार्ग ब्रह्मलोक को जाता है और दूसरा मार्ग देवलोक की ओर। जिस मार्ग में प्रकाशस्वरूप अर्चि (अग्नि) का अधिपति देवता, दिन का अधिपति देवता, शुक्ल पक्ष का अधिपति देवता



देवादितिर्यगन्तानां भान्तं भानैरभासितम्।
भान्तं सर्वत्र सर्वस्य सर्वदा भानवर्जितम्।।
नात्राचार्यस्योपयोगो यथा नयनदर्शने।। (त्रिपुरारहस्ये ९)

यो विदग्धः स निर्ऋतो योऽशृतः स रौद्रः। यः शृतः स दैवः।।
(सायणः—श्रुतिः इति तै.आ. ११.२)



हृदि स्थाने स्थितं पद्मं तच्च पद्ममधोमुखम्।
ऊर्ध्वनालमधोबिन्दुः तस्य मध्ये स्थितं मनः।।
(योगतत्त्वोपनिषत्)

और छः महीनों वाले उत्तरायण का अधिपति देवता है, शरीर छोड़कर उस मार्ग से गये हुए ब्रह्मवेत्ता पुरुष ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं।

जिस मार्ग में धूम का अधिपति देवता, रात्रि का अधिपति देवता, कृष्ण पक्ष का अधिपति देवता और छः महीनों वाले दक्षिणायन का अधिपति देवता है, उस मार्ग से शरीर छोड़कर गया हुआ सकाम पुरुष चन्द्रमा की ज्योति को प्राप्त करता हुआ देवलोक स्वर्ग को प्राप्त कर लेता है, किन्तु उसे लौट कर पुनः मर्त्यलोक में आना पड़ता है अर्थात् उसका संसार में आवागमन बना रहता है।

सर्वत्र भासित होते हुए भी अभासित

देवता से लेकर तिर्यक्‌योनिपर्यन्त जो सभी में भासमान है, उस चेतनतत्त्व को अन्य किसी प्रमाण (चक्षु आदि) से भासित नहीं किया जा सकता। वह सभी में सर्वत्र आभासित होता हुआ भी सर्वदा भानवर्जित है। सिद्ध वस्तु में आचार्य की कोई उपयोगिता नहीं होती, जैसे नयन स्वयं दर्शनीय का दर्शन कर लेता है। अथवा नेत्र में स्वयं दर्शन की क्षमता रहते हुए भी वह स्वयं अपना दर्शन करने में सर्वदा असमर्थ है।

मनरूप प्रणव

हृदय स्थान में स्थित कमल पुष्प है और वह पद्म अधोमुख है, उसकी नाल ऊपर की ओर है और बिन्दु नीचे पद्म के अग्र-भाग में है। उस पद्म के मध्य में मन की स्थिति है।

अकारे शोचितं[1] पद्ममुकारेणैव भिद्यते[2]।
मकारे लभते नादं अर्धमात्रा तु निश्चला।।

(१. चलनोचितम्। २. विकसति)

अविद्ययाऽऽच्छादिता चितिः–बुद्धिः। स्वरूपस्थितिः–एकाग्रता। देहात्मभावः–जन्म।
(त्रिपुरारहस्ये २०)

श्रुतितो युक्तितो वापि केवलात्मविभासनम्।
देहाद्यात्मावभासस्य नाशनं ज्ञानमुच्यते।।

अन्तर्दृष्टिः　निःसंकल्पता, निर्वासनता।

आत्मतत्त्वम्–प्रत्यक्प्रवणप्रदीप्तान्तर्दृष्ट्यै-सुज्ञेयम्। बहिर्मुखदृष्ट्यै–अवेद्यम्। (त्रिपुरार. १६)

अकार में उस कमल की चलनोचित शक्ति है, उकार से ही वह विकसित होता है मकार में नाद की सम्प्राप्ति है और उसकी अर्धमात्रा निश्चल है। यहाँ प्रणवमय मन का चित्रण है।

बुद्धि, स्वरूपस्थिति, देहात्मभाव और ज्ञान

बुद्धि का लक्षण करते हैं कि अविद्या से आच्छादित चिति (चित्शक्ति) को बुद्धि कहते हैं। एकाग्रता क्या है? स्वरूप की स्थिति ही एकाग्रता है। देह में आत्मभाव का उत्पन्न होना ही जन्म है, अर्थात् देहात्मभाव ही जन्म-मरण का हेतु है। ज्ञान क्या है? कहते हैं कि श्रुति के द्वारा अथवा युक्ति के द्वारा केवल आत्मतत्त्व को प्रकाशित करने वाला तथा देह को आत्म-भाव से देखने की वृत्ति का विनाशक ही ज्ञान है।

अन्तर्दृष्टि

बाह्य संसार को सत्य मानकर उसे देखने की प्रवृत्ति का सर्वथा परित्याग करते हुए अपने ही अन्दर (हृदय में) सत्यानुसन्धान करना—आत्मतत्त्व का दर्शन करना—यह अन्तर्दृष्टि है। इसमें निःसंकल्पता और वासनाओं का सर्वथा अभाव रहता है। यह चर्मचक्षुओं का विषय नहीं है।

आत्मतत्त्व

प्रत्यक्, प्रवण और प्रदीप्त अन्तर्दृष्टि से ही सुष्ठु रूप में जानने योग्य है, तथा बहिर्मुख दृष्टि द्वारा जो अवेद्य है—वही आत्मतत्त्व है।

स्रवनहु देखि सुनै पुनि नैनहु। जिह्वा सूँघै नासिका बोल।। (सुन्दरविलास)



महावाक्यार्थपरोक्ष ज्ञान।

महावाक्यार्थपरोक्ष ज्ञान।

अन्तःकरण कमलकी
निर्वातिकता सुगन्ध सूँघे।

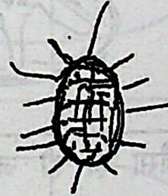
उपनिषद् के ज्ञानरूप
मकरंद का सोऽहम् बोले।



निर्विकल्पसमाधिः शुद्धचितिः ब्रह्मरूपिणी देशकालौ नास्ति प्रतीतिभक्षिका।



सुषुप्तिः अव्यक्तमपि जडशक्तिः



वस्तुदर्शनम् अनेकावभासाः संकल्पविमर्शौ।

(त्रिपुरारहस्यम् १६)

इन्द्रियों द्वारा विपरीत विषयों का ग्रहण

श्रोत्र को विषय श्रवण है, नेत्रों का विषय देखना है, जिह्वा का विषय रसग्रहण है और नासिका का गन्धग्रहण है। देखिये, यहाँ विपरीत है—

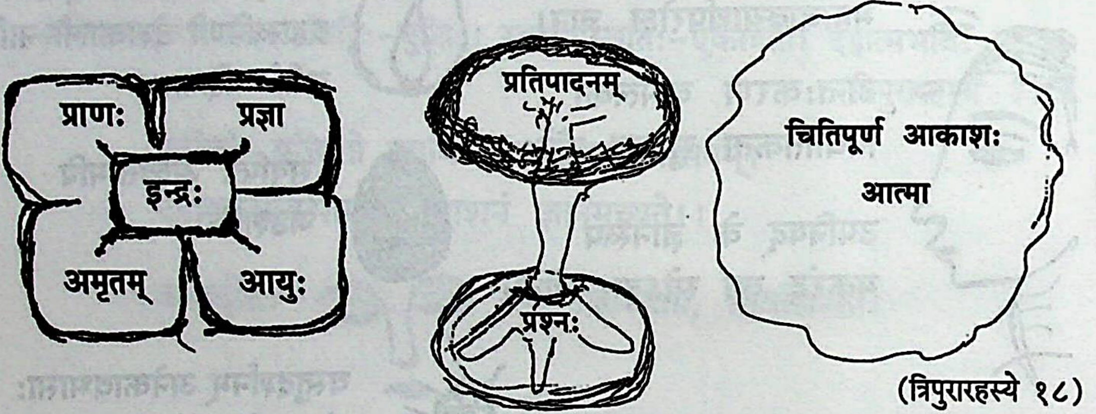
महावाक्यों के अर्थ का अपरोक्ष ज्ञान—साक्षात् दर्शन कानों से हो रहा है, फिर उसी अर्थ को नेत्र देखते हैं। वस्तुतः कान ऐसे सुनें कि मानो देखा ही जा रहा है, आँख ऐसे देखें कि उस अर्थतत्त्व को सुना जा रहा है, जैसे कि श्रीमद्भागवत में कानों द्वारा कथामृत का पान, आँखों से सौन्दर्यामृत का पान वर्णित है। ठीक वैसे ही मन सत् सन्दर्भ को ग्रहण करने में इतना तल्लीन हो जाये कि उसकी सहायक इन्द्रियाँ अपनी-अपनी स्वाभाविक विषयग्राह्यता को भूलकर अतिरिक्त विषय ग्रहण में प्रवृत्त हो जायें—यही अलौकिक आनन्द है। कान आँख की प्रवृत्ति का पोषक और आँख कान की प्रवृत्ति का पोषक होने लगे—यही आनन्दातिरेक है। जिह्वा भी अपनी स्वाभाविकता का त्याग कर सूँघने लगे। यहाँ अन्तस्थ कमल की निर्वातिक सुगन्ध को जिह्वा सूँघ रही है—ऐसी स्थिति हो जाये। नासिका जिह्वामुख के विषय को ग्रहण करने लगे और उपनिषद् ज्ञानरूप मकरन्द से ऐक्य स्थापित करके 'सोहम्' बोल उठे।

निर्विकल्प समाधि, सुषुप्ति और वस्तुदर्शन

निर्विकल्प समाधि अंखण्ड निर्वात दीपकलिका के सदृश है। शुद्धचैतन्य और ब्रह्म, रूपिणी होने से वहाँ देश-काल की प्रतीति का सर्वथा अभाव है। सुषुप्ति तम से आच्छादित

'पुरुषत्वे चाविस्तरामात्मा'। (श्रुतिः)

इन्द्रः-प्रतर्दनाय-'प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा तं मामायुरमृतमित्युपास्व'। (कौषीतक्युपनिषद्)



(त्रिपुरारहस्ये १८)

है, वहाँ अव्यक्त भी जडशक्ति जैसा ही हो जाता है। वस्तुदर्शन में अनेकानेक अवभास, संकल्प और विमर्श रहते हैं।

पुरुषत्व में आत्मा

पुरुषत्व में आत्मा का आविर्भाव है। नाना पुरों—शरीरों में निवास करने वाली आत्मा एक है। अतः इस आत्मा को पुरुष भी कहते हैं।

जब अधिकारी को 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्, रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव'—इत्यादि श्रुतियों के द्वारा सर्वत्र अनुस्यूतता का ज्ञान हो जाता है, तब अपने में व्यापकत्व का आविर्भाव हो जाता है।

प्रतर्दन के लिए इन्द्र का उपदेश

इन्द्र कहते हैं कि मैं प्राण हूँ, मैं ही प्रज्ञा हूँ, मैं आत्मा हूँ, मैं ही अमृत हूँ—ऐसा समझ कर तुम मेरी उपासना करो, क्योंकि जब तक इस शरीर में प्राण रहते हैं तब तक ही आयु रहती है। प्राण से ही अमृतत्व की प्राप्ति होती है, प्रज्ञा से सत् संकल्प की प्राप्ति होती है। जो इस प्रकार मुझको समझकर मेरी उपासना करता है, वह स्वर्ग में अक्षय अमृतत्व की प्राप्ति करता है।

आत्मा क्या है?

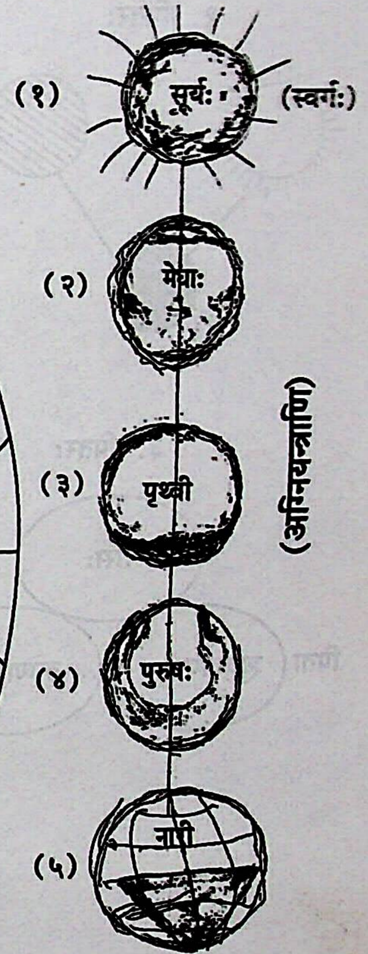
नीचे से प्रश्न उठता है कि आत्मा क्या है? ऊपर को दृष्टि उठायी जाये तो इस प्रश्न के उत्तर का प्रतिपादन स्वतः हो जायेगा—चिति से परिपूर्ण आकाश ही आत्मा है। आकाश व्यापक है, निर्लेप और वास्तविक भेद से रहित है, किन्तु यह आकाश चेतन

(आत्मकल्पद्रुमः)

शंकरनिःश्वसिताः



		१. सत्यलोकः
सम्राट्	ईश्वरः	२. तपोलोकः
राज्ञी	प्रकृतिः	३. जनलो.
राजपुत्रः	जीवः	४. महर्लो.
राजपुत्री	बुद्धिः	५. स्वर्लो.
दासः	मनः	६. भुवर्लो.
दास्यः	इन्द्रियाणि	७. भूलो.
१. दासपुत्री	भुभुक्षा	८. अतल.
२. दासपुत्री	मुमुक्षा	९. वितल.
		१०. सुतल.
		११. तलात.
		१२. रसातल.
		१३. महात.
		१४. पाताल.



नहीं है, बस यह आकाश यदि चिति (चेतनशक्ति) से परिपूर्ण हो जाय तो चिति से परिपूर्ण आकाश ही आत्मा है।

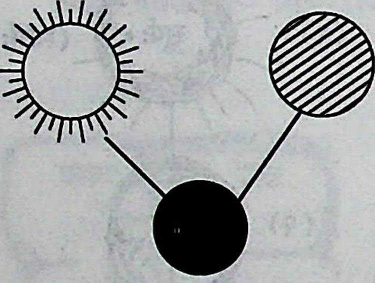
चतुर्दश लोकादि

चित्र में ये जो चतुर्दश लोक अंकित है ये सब शङ्कर के निश्वास से समुद्भूत हैं। इन लोक-लोकान्तरों का जो सम्राट् है वह ईश्वर है, प्रकृति रानी है, जीव राजपुत्र, बुद्धि राजपुत्री, मन दास, इन्द्रियाँ दासियाँ, भुभुक्षा दासपुत्री, मुमुक्षा दासपुत्री है। यह सब चित्र में स्पष्ट ही है।

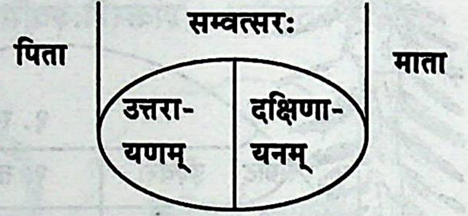
अग्नि–यन्त्र

अग्नि-यन्त्र के अन्तर्गत क्रमशः सूर्य, मेघ, पृथिवी, पुरुष और नारी का ग्रहण है, जिसे चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है।

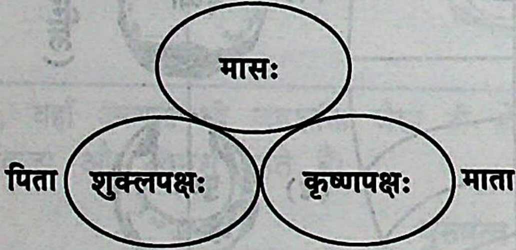
१. पितरः



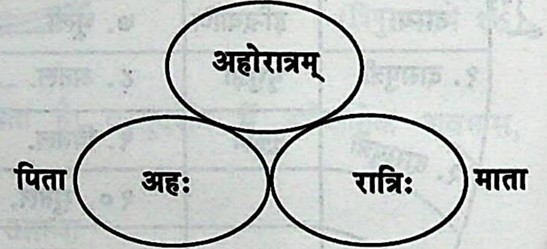
२. पितरः



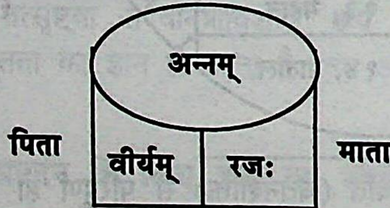
३. पितरः



४. पितरः



५. पितरः



पितर

सूर्य, चन्द्र और पृथिवी पितर ही हैं। संवत्सर भी पितर है, जिसमें उत्तरायण पिता है और दक्षिणायन माता है।

मास भी पितर संज्ञक, इसमें शुक्लपक्ष तो पिता है और कृष्णपक्ष माता है।

अहोरात्र पितर ही हैं—दिन पिता है और रात्रि मातृस्वरूपा है।

अन्न भी पितर है, अन्न में जो वीर्य है वह पिता है और रज माता है।

ये सब सन्तानरूप प्रजा का परिपालन करते हैं।

उपकोसलः कामलायनः

सत्यकामे जाबाले ब्रह्मचर्यमुवास।

अग्नयः समूदिरे–

प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्म। (छा.उ. ४.१०.५)

(सुखाकाशयोरुभयोरपि लौकिकसुखाकाशाभ्यां व्यावृत्तिः)

(शांकरभा.)

खेन विशेष्यमाणं कं-विषयेन्द्रियसंयोगजात् सुखात् व्यावृतं स्यात्। एवं केन-सुखेन विशेष्यमाणं खं, भौतिकादचेतनात्खान्निवर्तितं स्यात् नीलोत्पलवत्।

अथ हैनं गार्हपत्योऽनुशशास–पृथिव्यग्निरन्नमादित्यः य एष आदित्ये पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मि।

उपकोसल को अग्नि द्वारा ब्रह्म विद्या का उपदेश

उपकोसल नाम से प्रसिद्ध कमल का पुत्र सत्यकाम जाबाल ऋषि के शिष्य थे। उसने बारह वर्ष तक गुरुसुश्रूषापूर्वक आचार्य की अग्नियों की सेवा की। अन्य शिष्यों का तो समावर्तन हो गया किन्तु वे आश्रम में ब्रह्मचर्य का पालन करते रहे। अग्नि ने स्वयं वहाँ आकर सत्यकाम को ब्रह्म का उपदेश दिया।

अग्नियों ने कहा—हे सत्यकाम! प्राण ब्रह्म है, कं ब्रह्म है और खं ब्रह्म है।

यहाँ प्राण को ब्रह्म बताया गया है क्योंकि प्राण से ही प्राणी उत्पन्न होते हैं, प्राण से ही जीवित रहते हैं और प्राण में ही लीन हो जाते हैं। कं ब्रह्म-'क' ब्रह्म है, क सुख को कहते हैं, आनन्द का नाम 'क' है अर्थात् आनन्दरूपता ब्रह्म ही है। खं ब्रह्म-'ख' ब्रह्म है, 'ख' नाम है आकाश का। किन्तु यहाँ 'क' शब्द से लौकिक सुख व 'ख' से अचेतन आकाश का ग्रहण नहीं है। जिस प्रकार 'नील' इस विशेषण से युक्त कमल रक्त कमल आदि से विलग कर दिया जाता है उसी प्रकार 'ख' शब्द से विशेषित 'क' विषय और इन्द्रियों के सहयोग से होने वाले सुख से निवृत्त कर दिया जाता है, इस प्रकार नीलोत्पल के समान ही 'क'—सुख से विशेषित किया हुआ ख = आकाश भौतिक व अचेतन ख (आकाश) से निवृत्त कर दिया जाता है। अर्थात् आकाशस्थित सुख ब्रह्म है, अन्य लौकिक सुख नहीं तथा सुख के आश्रित रहने वाला आकाश ब्रह्म है, अन्य भौतिक आकाश नहीं है।

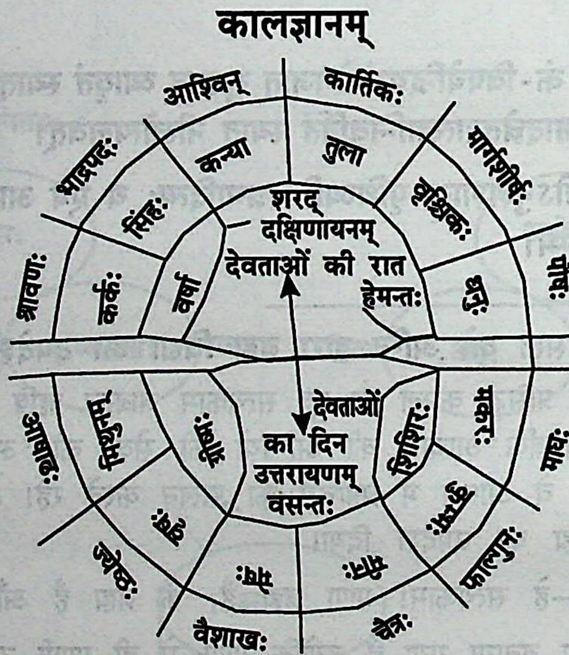
फिर उसे गार्हपत्य नाम अग्नि ने शिक्षा दी—पृथिवी, अग्नि, अन्न और आदित्य-ये मेरे ही स्वरूप हैं, आदित्य के अन्तर्गत जो यह पुरुष दिखायी देता है वह मैं हूँ, वही मैं हूँ।

अथ हैनमत्वाहार्यपचनोऽनुशशासापो दिशो नक्षत्राणि चन्द्रमा इति य एष चन्द्रमसि पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मि।

अथ हैनमाहवनीयोऽनुशशास–प्राण आकाशो द्यौर्विद्युत्। ए एष विद्युति पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मि।

अथाचार्योऽनुशशास–य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते एष आत्मा। तदमृतमभयमेतद् भामनी वामनी संयद्वाम। (छा.उ. ४.१५)

कालज्ञानम्



अन्वाहार्य पचन-दक्षिणाग्नि ने कहा—जल, दिशा, नक्षत्र और चन्द्रमा-ये मेरे चार शरीर हैं, चन्द्रमा में जो पुरुष दिखायी देता है वह मैं हूँ, वही मैं हूँ।

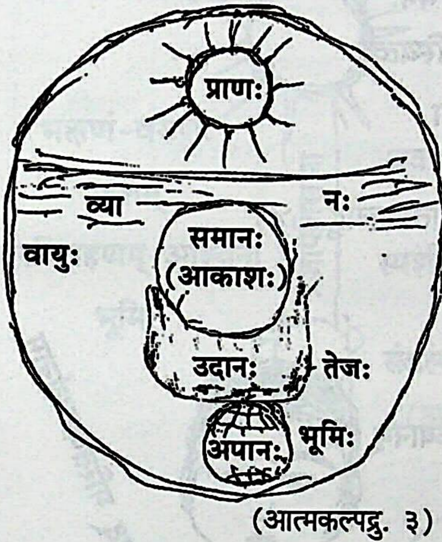
आहवनीयाग्नि ने उपदेश किया—प्राण, आकाश, द्युलोक और विद्युत् ये मेरे चार रूप हैं, यह जो विद्युत् में पुरुष दिखायी देता है वह मैं हूँ, वही मैं हूँ।

तदनन्तर आचार्य बोले—उपकोसल! यह जो नेत्र में पुरुष दिखायी देता है, यह आत्मा है। यह अमृत है, अभय है और ब्रह्म है। यह संयद्वाम है—सम्पूर्ण शोभन पदार्थ सब ओर से इसे प्राप्त होते हैं। यही वामनी है क्योंकि यही सम्पूर्ण वामों—पुण्य कर्म फलों का वहन करता है। यही भामनी है, क्योंकि यही सम्पूर्ण लोकों में भासमान होता है।

काल–ज्ञान

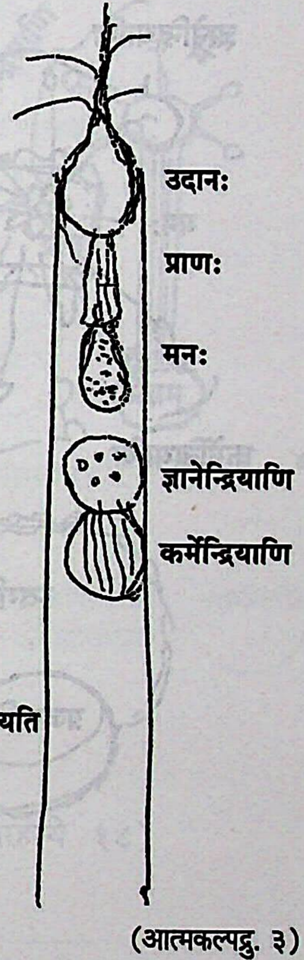
सूर्य के द्वारा वर्गीकृत कालविभाग यहाँ चित्र द्वारा स्पष्ट ही है।

भौतिकमहाप्राणाः



(आत्मकल्पद्रु. ३)

प्रयाणकाले
कर्मेन्द्रियाणि
ज्ञानेन्द्रियाणि च
मनसि लीयन्ते
मनः प्राणे
प्राण उदाने
उदानो यथाकर्म
तथा परलोकं नयति



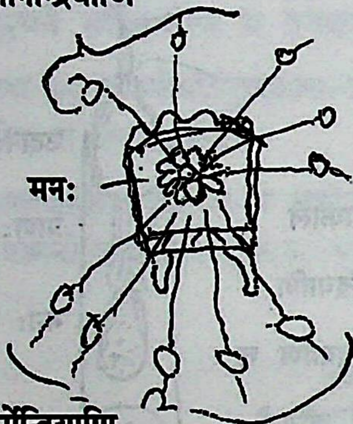
(आत्मकल्पद्रु. ३)

भौतिक महाप्राण

भौतिक रूप से महाप्राणों को चित्र में इस प्रकार दर्शाया गया है कि पृथ्वी (भूमि) अपान नामक प्राण है, तेज (अग्नि) उदान नामक प्राण है, आकाश समान प्राण है, वायु व्यान है और जल प्राण का अवभासक है।

प्रयाणकालिक क्रम

चित्र में सबसे नीचे कर्मेन्द्रियाँ, उसके ऊपर ज्ञानेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियों के ऊपर मन, मन के ऊपर प्राण और तदुपरि अपान की स्थिति है। प्रयाण-काल में (मृत्यु-काल में) कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ मन में विलीन हो जाती हैं, मन प्राण में और प्राण उदान में विलय को प्राप्त हो जाता है। उदान जैसी वासना है और जैसा कर्म है तदनुसार जीव को परलोक ले जाता है।



प्रजापतिसुतो मनः
हृत्सिंहासने स्थित्वा
उभयेन्द्रियाणि
व्यापारयति।
(आत्मकल्पद्रु. ४)

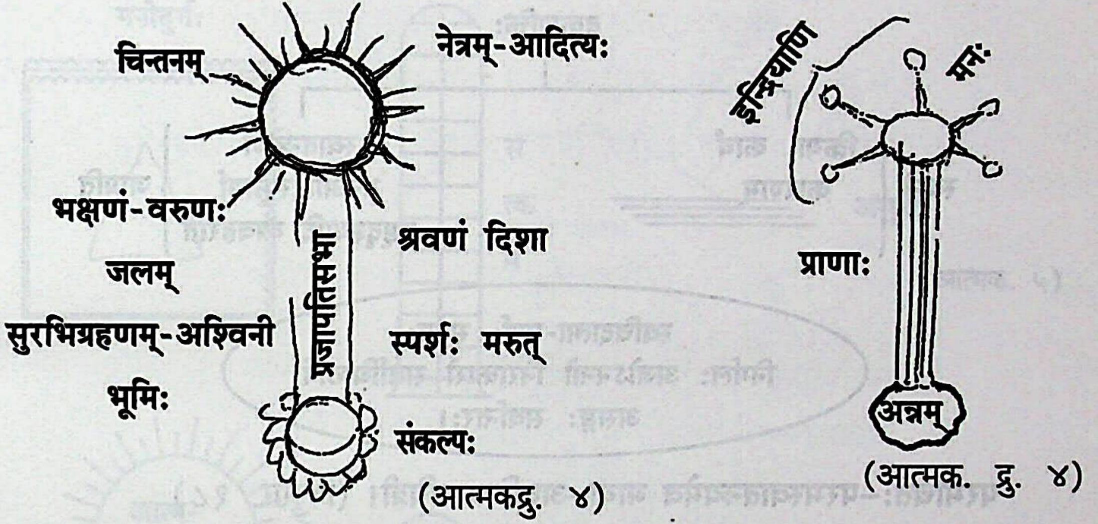


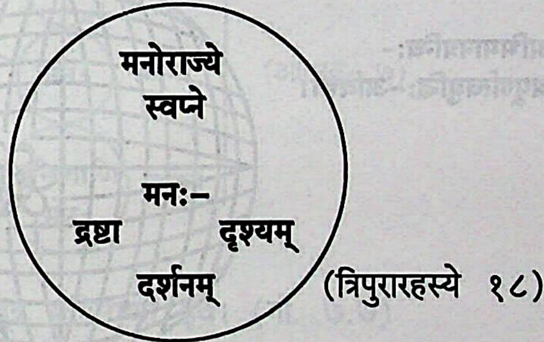


प्रजापतिपुत्र मन

मन प्रजापति का पुत्र है, वह हृदयरूपी सिंहासन पर बैठकर ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को व्यापार में लगाता है अर्थात् तत्तत् कार्यों में नियुक्त करता है। इसलिए मन को इन्द्रियों का स्वामी कहा गया है।

यह मन संकल्प-विकल्पात्मक है। जब मन किसी कार्य हेतु संकल्पित हो उठता है तो उस कार्य हेतु सम्बन्धित इन्द्रिय को नियुक्त कर देता है। मन की सभा हृदय से मस्तिष्क-पर्यन्त विस्तारित है। वैसे मन को चाहिए कि वह असत् वासनाओं से ग्रस्त न होकर इन्द्रियों को सत्कर्मों में प्रवृत्त कर अपने पिता प्रजापति का ध्यान करते हुए जीव को स्वर्गलोक की प्राप्ति कराये।





प्रजापति–सभा

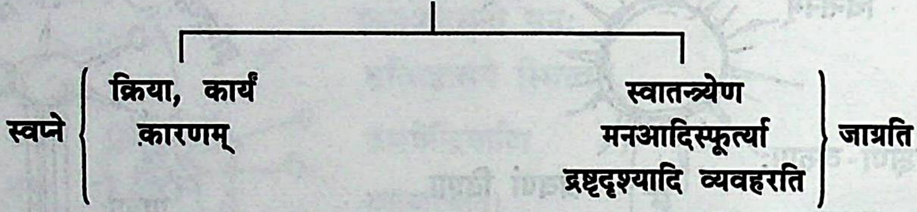
मन से उठा संकल्प प्रजापति-सभा का आश्रय प्राप्त करता हुआ मस्तिष्क से चिन्तन, सूर्य-नेत्र से दर्शन दिशा-कर्ण से श्रवण, मरुत्-त्वचा से स्पर्श, अश्विनी-भूमि से सुरभिग्रहण और वरुण-रूप जल का भक्षण करता है।

अन्न से पोषित व उत्प्रेरित प्राण मन में स्फुरण पैदा करता है और मन इन्द्रियों को विषयव्यापार में नियुक्त करता है।

स्वप्न में मन का राज्य

स्वप्न में मन का राज्य चलता है, उसे किसी अन्य की अपेक्षा नहीं रहती। वह स्वयं द्रष्टा होता है—अर्थात् देखने वाला भी मन है, दृश्य भी वही बनता है, दर्शनीय वस्तु भी स्वयं मन ही रहता है; उस मनोराज्य में दर्शन भी मन है अर्थात् देखने का माध्यम भी मन रहता है।

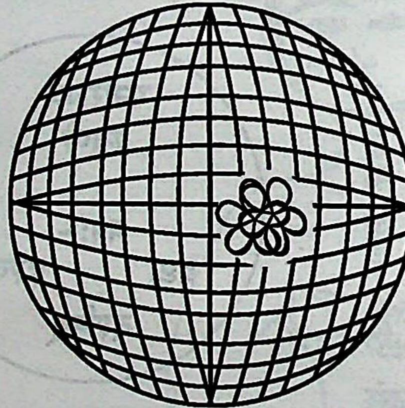
दृक्शक्तिः



स्वचिदात्मा-पूर्णः सूक्ष्मः
निर्मलः अजोऽनन्तो निराकारो सर्वाधिष्ठानं
असङ्गः सर्वान्तरः।

परमचितेः–परमस्वातन्त्र्यमेव माया–अघटितघटयित्री। (त्रिपुरार. १८)

परिच्छेदः- अभिमानग्रन्थिः-
अपूर्णत्वबुद्धिः–अविद्या।



मनोहृदयपद्मे
मायाजाले
बद्धः

(आत्मकल्पद्रु. ४)

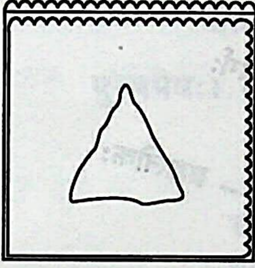
स्वप्न में देखने की क्रिया, देखने का कार्य, देखने का कारण सब कुछ मन ही रहता है। मन स्वयं ही कारण, कार्य और क्रिया का रूप धारण कर लेता है। जाग्रत अवस्था में मन और इन्द्रियों की स्फूर्ति से द्रष्टा और दृश्यादि का स्वातन्त्र्य से व्यवहार होता है।

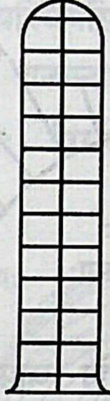
स्वप्न और जाग्रत् का जितना भी व्यापार है—सबका मूल मन ही है। आत्मा तो पूर्ण, चैतन्य, सूक्ष्म, निर्मल, अज, अनन्त, निराकार, सर्वाधिष्ठान, असङ्ग और सर्वान्तर्यामी है।

माया, अविद्या और मन

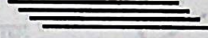
परम चिति की माया भी परम स्वतन्त्र है, वह अघटित घटना को भी घटित कर देने में समर्थ है। अघटित घटना घटित करने में वह परम प्रवीण है। अभिमान ग्रन्थि, अपूर्णता से भरपूर बुद्धि ही अविद्या है। संकल्पविकल्पात्मक मन हृदय-कमल में बैठा हुआ माया के जाल में बँधा हुआ है।

मनोदुर्गः





स
त्क
र्म



असुराः

(आत्मक. ५)



प्राणाः सुषुप्तिः

मनः स्वप्नः (आत्मक. ७)

इन्द्रियाणि मनः जाग्रत्

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव। (गी. ७.७)

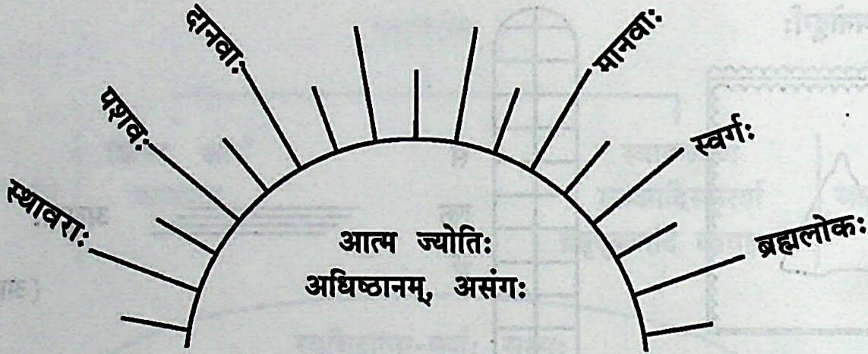
मनोदुर्ग

मन के दुर्ग पर जब तक विजय प्राप्त नहीं होगी, तब तक प्राणी का पराजित जीवन है। उसके लिए सबसे पहले काम-क्रोधादि बलवान् असुरों को परास्त करना होगा और फिर सत्कर्मों द्वारा दुर्ग के बाह्य परकोटे को पार कर मन के दुर्ग पर विजय प्राप्त करना सम्भव है। मन पर विजय करना ही मानव जीवन का चरमोत्कर्ष है।

आत्मज्योति

यह प्राण, मन और इन्द्रियाँ इस आत्मज्योति से ही प्रेरित हैं। सुषुप्ति काल में प्राण, स्वप्नावस्था में मन और जाग्रत् काल में इन्द्रियाँ और मन आत्मज्योति से ही पोषित व अनुप्राणित रहते हैं।

इन सबका कारण परमात्मा है। गीता में भगवान् कहते हैं कि जैसे सूत की मणियाँ सूत के धागे में पिरोयी हुई होती हैं ऐसे ही सम्पूर्ण जगत् मेरे में ही ओत-प्रोत है।



सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते।। (गी. ४)

वचनम्	शब्दः	प्राणनम्
आदानप्रदानम्	स्पर्शः	अपाननम्
गमनम्	रूपम्उदा	ननम्
आनन्दः	रसः	व्याननम्
विसर्गः	गन्धः	समाननम्



यह आत्मज्योति सबका अधिष्ठान-आधार होते हुए भी सबसे निर्लिप्त (असंग) है। स्थावर, पशु, दानव, मानव, स्वर्गादि लोक—ये सब उसकी सत्ता से ही सत्तावान् हैं। सब में रहते हुए भी वह सबसे पृथक् है।

आत्मसंयम योगरूप अग्नि में हवन

योगिजन सम्पूर्ण इन्द्रियों की क्रियाओं को और प्राणों की क्रियाओं को ज्ञान से प्रकाशित आत्मसंयम-योगरूप अग्नि में हवन किया करते हैं—इस गीतोपनिषद् वाक्यार्थ को यहाँ चित्र द्वारा प्रतिपादित किया गया है।

ज्ञान के द्वारा प्रज्वलित आत्मसंयमरूप योगाग्नि—धारणा ध्यान-समाधि-रूप अग्नि में कर्मेन्द्रियों के कार्य—वचन, आदान-प्रदान, गमन, आनन्द और विसर्ग, ज्ञानेन्द्रियों के कार्य—

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिसप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम्।। (शु.य.)

पुरुषमेधः। मानसयागः। विराट् पुरुषः-पशुः। यजमानः-प्रजापतिप्राणाः।





शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, प्राण के कार्य—प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान को आहुतिरूप हवन है।

देवताओं का विराट् यज्ञ

जब देवों ने सृष्टिरूप यज्ञ विस्तारित किया तो इस यज्ञकुण्ड की सात परिधियाँ थीं, त्रिसप्त—इक्कीस समिधाएँ बनायी गई थीं और विराट् पुरुष को ही आलम्भ्य पशु बनाकर बाँधा गया था।

यहाँ उक्त मन्त्रार्थ को सुन्दर रूप से चित्रित किया है। चित्र में इससे पूर्व मन्त्र का भी अंश समाहित है—मध्य में यज्ञकुण्ड बना है, जिसमें अग्नि प्रज्वलित हो रही है। इस कुण्ड की सात परिधियाँ हैं, परिधियों के रूप में ये सात छन्द हैं—गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, पङ्क्ति, त्रिष्टुप्, जगती और बृहती। बारह महीने, पाँच ऋतुएँ, तीन लोक और आदित्य—ये इक्कीस इस यज्ञ की समिधाएँ हैं, जिसमें शरद् हवि (पुरोडाश) है और वसन्त आज्य (घृत) है।

इस मानस यज्ञ का नाम पुरुषमेध यज्ञ है। विराट् पुरुष ही यहाँ पशुरूप में है और इस यज्ञ का यजमान प्रजापति प्राण हैं।

जन्माद्यस्य यतः (ब्र.सू. १/१/२)

अस्य जगतः–नामरूपाभ्यां व्याकृतस्य, अनेककर्तृभोक्तृसंयुक्तस्य, प्रतिनियत-देशकालनिमित्तक्रियाफलाश्रयस्य मनसाप्यचिन्त्यरचनारूपस्य जन्मस्थितिभङ्गा यतः सर्वज्ञात्सर्वशक्तेर्भवन्ति तद् ब्रह्म।। (शांकर भा.)

शब्दवानाकाशः शब्दाकाशाभ्यां भिन्नस्तस्मिन्नाकाशे तिष्ठत्याकाशस्तं न वेद स आत्माऽहं कथं भोक्ता भवामि। (दुर्वासा) (गोपालोत्तर ता.उ.)

इदं हि मनः तेष्वेवं हि मनुते तानिदं गृह्णाति।
विद्यामयो यः स कथं विषयी भवेत्।।
जन्मजराभ्यां भिन्नः स्थाणुः।

ज्ञानम्

श्रुतितो युक्तितो वापि केवलात्मविभासनम्।
देहाद्यात्मावभासस्य नाशनं ज्ञानमुच्यते।। (त्रिपुरारहस्ये २०)

जिससे जगज्जन्मादि होते हैं वह ब्रह्म है

जड़-चेतनात्मक व नाना नामरूपों से व्यवहृत, अनेक प्रकार के कर्तृत्व-भोक्तृत्व से युक्त, नियमित देशकालनिमित्तक क्रिया के फल का आश्रय, मन से भी अचिन्त्य रचना रूप (जिसकी अद्भुत रचना के किसी एक अंश पर भी विचार करने से बड़े-बड़े ज्ञानी व वैज्ञानिकों को आश्चर्यचकित होना पड़ता है और मन की गति क्षीण हो जाती है) इस विलक्षण जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार जिस सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान् से होती है वह परमात्मा ही ब्रह्म है।

आत्मा भोक्ता नहीं हो सकता

शब्द गुण वाला आकाश है, किन्तु जो शब्द और आकाश से भिन्न है उस महाकाश में जो चिदाकाश है, उसे कोई नहीं जानता, वह आत्मा मैं हूँ तो फिर मैं (आत्मा) कैसे भोक्ता बनूँगा। यह उपनिषद्-वाक्य है।

किन्तु यह मन ही सांसारिक विषय-भोगों का मनन करता है, वह ही भोक्ताभाव को प्राप्त हुआ इनको ग्रहण करता है। आत्मा तो ज्ञानमय है, वह कैसे विषयी हो सकता है। वह तो जन्म, जरा, मृत्यु से रहित स्थाणु है अर्थात् सबसे निर्लिप्त है।

ज्ञानम्-श्रुतितो.—यह श्लोक पृ. ११० पर भी है, इसकी व्याख्या पूर्व में की जा चुकी है।

कृते प्रवर्तते धर्मः चतुष्पात्तज्जनैर्धृतः।
सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोर्नृप।।
सन्तुष्टाः करुणा मैत्राः शान्ता दान्तास्तितिक्षवः।
आत्मारामाः समदृशः प्रायशः श्रमणा जनाः।।

(श्रीमद्भा. १२.३.१८)

अधर्मपादाः–अनृतं हिंसा असन्तोषः विग्रहः।

सत्ययुगः
मनोबुद्धीन्द्रियाणि सत्त्वगुणे
ज्ञाने तपसि रुचिः

दृश्यपदार्थाः सदा अन्योऽन्याभावपूर्वका एव भासन्ते। यद्वस्तु अन्यनिरपेक्षं भासते तत्सत्यम्। (त्रिपुरारहस्ये १८)

स्वभावसिद्धं ज्ञानम्। स्वयं प्रकाशचितिर्ज्ञानम्।

सत्ययुग में धर्म के चार चरण

सत्ययुग में धर्म के चार चरण होते हैं—सत्य, दया, तप और दान। उस समय के लोग निष्ठापूर्वक अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं। वे सन्तोषी, दयालु, मित्रता का व्यवहार करने वाले, शान्त स्वभाव, इन्द्रिय और मन को निग्रह में रखने वाले तथा सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों को समान भाव से सहन करने वाले होते हैं, अधिकांश लोग तो समदर्शी और आत्माराम होते हैं, अन्य स्वरूपस्थिति के लिए अभ्यास में तत्पर रहते हैं।

अधर्म के भी चार चरण हैं—अनृत, हिंसा, असन्तोष और विग्रह।

जिस समय मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ सत्त्वगुण में स्थित होकर अपना-अपना कार्य करने लगती हैं, उस समय सत्ययुग समझना चाहिए। सत्त्वगुण की प्रधानता से ज्ञान और तपस्या में मनुष्य की रुचि बढ़ जाती है।

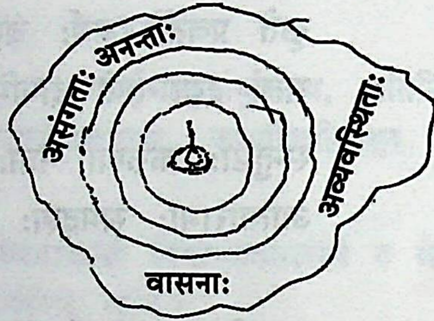
सत्य पदार्थ और ज्ञान—लक्षण

जितने भी दृश्य पदार्थ हैं, वे सभी सदा एक दूसरे के आश्रित होते हुए भासित होते हैं, किन्तु जो वस्तु किसी अन्य की अपेक्षा के बिना ही भासित-प्रकाशित है वस्तुतः वह सत्य है।

ज्ञान स्वभावसिद्ध होता है अतः स्वयं प्रकाशरूपा चिति को ज्ञान कहते हैं।

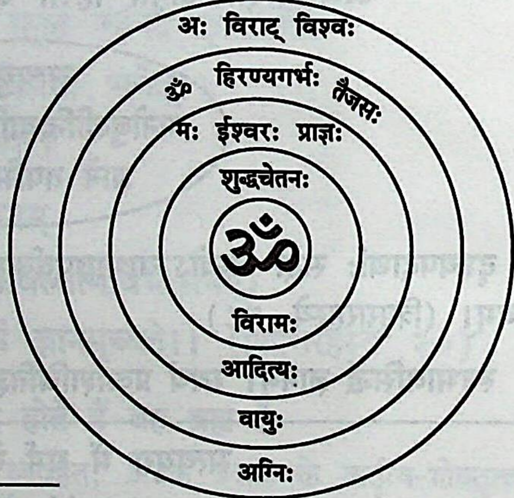
तास्त्रिविधाः-
१. अपराधवासना (अनास्वासवा.)
२. कामवासना
३. कर्मवासना

बुद्धिदोषः



अपराधवासनामूलम्-शास्त्रविरुद्धतर्कमननम् आगमनिगमे अश्रद्धा विपरीतधारणा।

ॐकारस्य भावनीयं चित्रम्।
(पातञ्जलयोगप्रदीपः)



बुद्धिदोष-वासना

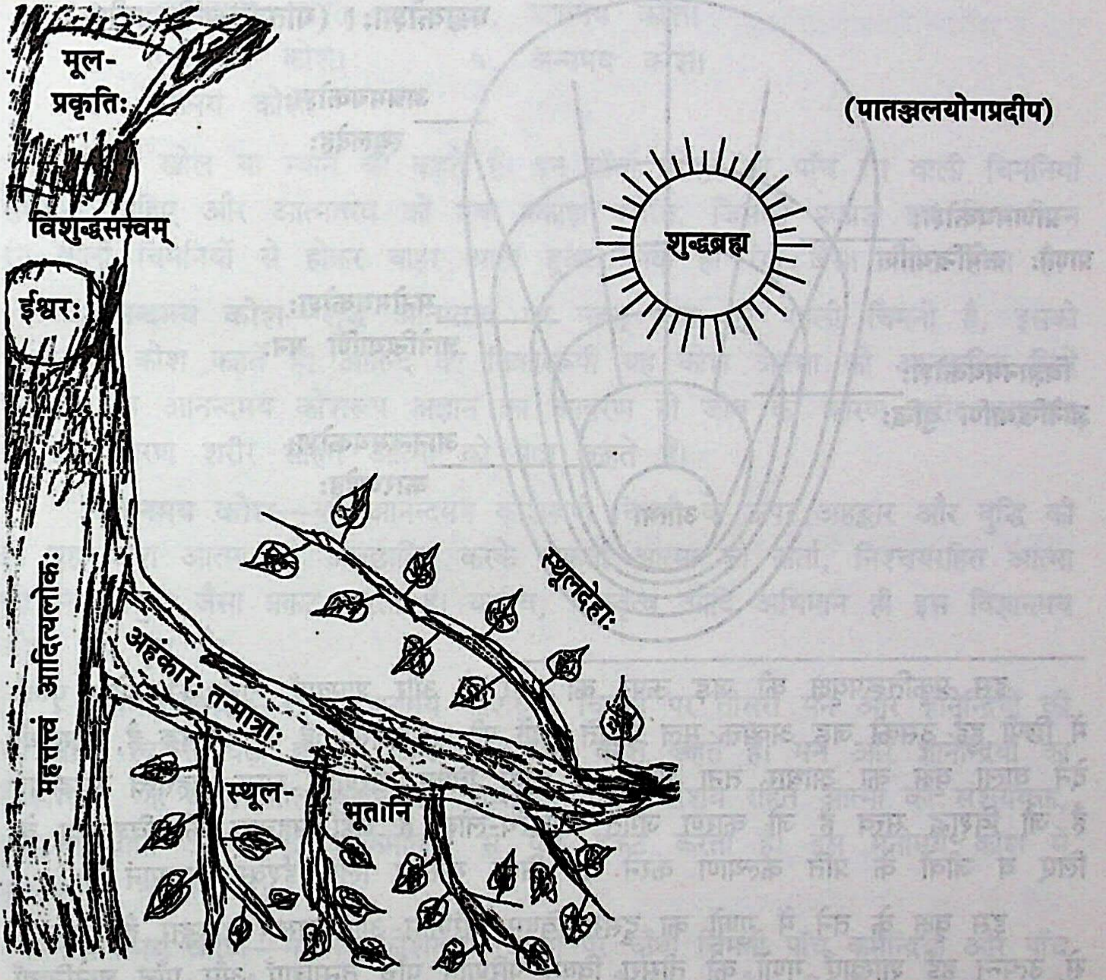
असङ्गति से वासना का प्रस्फुरण होता है और यह अनन्त है, इसकी कोई सीमा नहीं। यह वासना अव्यवस्थित भी है—इसका नियन्त्रण दुष्कर है।

बुद्धि में दोष आ जाने पर वासना का उदय होने लगता है। यह तीन प्रकार की है—अपराधवासना, कामवासना और कर्मवासना। इसमें अपराधवासना का मूल शास्त्रविरुद्ध कुतर्कपूर्वक बुद्धि का मननरूप निश्चय है। इस तरह की बुद्धि आगम-निगम शास्त्रों में अश्रद्धा के द्वारा विपरीत धारणा को धारण करने वाली हो जाती है। इसे अनाश्वास वासना भी कहते हैं। कामनापरक कर्म करने की आशा और तत्परता ही कामवासना है। कर्मवासना में जड़ता रहती है।

ॐ कार का भावनामय चित्र

१. **'अकार'**—चेतन-तत्त्व—समष्टि स्थूल जगत् व व्यष्टि स्थूल शरीर। समष्टि स्थूल जगत् का अधिष्ठाता **'विराट्'** उपास्य तथा स्थूल शरीर का अभिमानी **'विश्व'** उपासक।

२. **'उकार'**—चेतन-तत्त्व—समष्टि सूक्ष्म जगत् और व्यष्टि सूक्ष्म शरीर। समष्टि स्थूल जगत् का अधिष्ठाता **'हिरण्यगर्भ'** तथा व्यष्टि सूक्ष्म शरीर का अभिमानी **'तैजस'**।

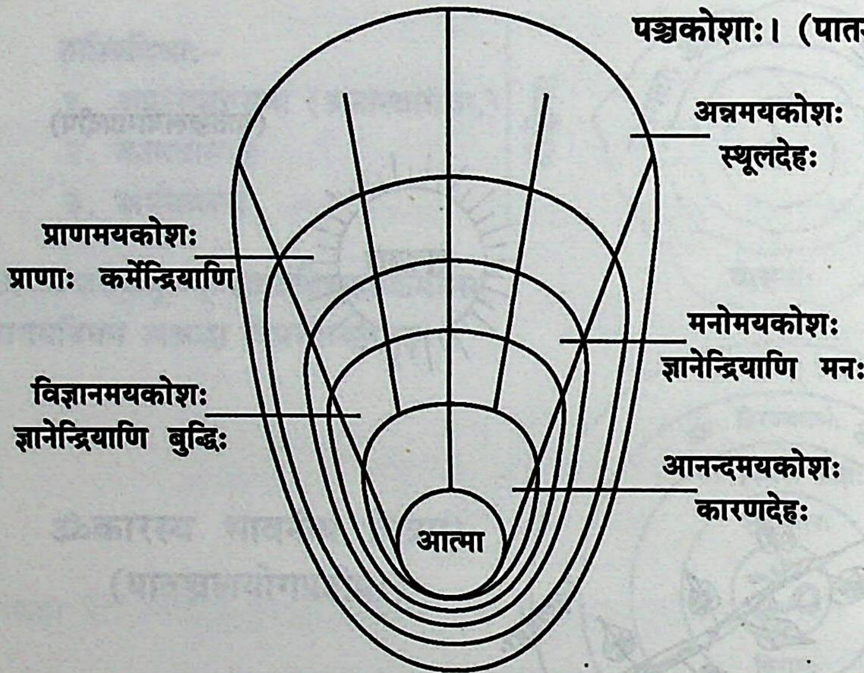


३. **'मंकार'**—चेतन-तत्त्व, समष्टि कारण जगत् तथा व्यष्टि कारण शरीर। समष्टि कारण जगत् का अधिष्ठाता **'ईश्वर'** उपास्य व्यष्टि कारण शरीर का अभिमानी **'प्राज्ञ'** उपासक।

४. **'विराम'**—शुद्ध, निर्गुण, उपाधिरहित चेतन परमात्मतत्त्व **'शुद्ध चेतन'** (चेतन तत्त्व का शुद्ध स्वरूप)।

मूल प्रकृति वृक्ष और शुद्ध ब्रह्म

यह वृक्ष का चित्र 'द्वा सुपर्णा सयुजा'—इस मन्त्र के अर्थ का द्योतक है। जीव और ईश्वररूप दो पक्षी साथ-साथ रहने वाले मित्र हैं, वे दोनों ही त्रिगुणात्मक प्रकृतिरूप वृक्ष का आलिङ्गन किये हुए हैं। उन दोनों में जीवरूपी पक्षी जन्म, आयु, भोग, सुख-दुःख-रूपी स्वाद वाले फल को खाता है और दूसरा ईश्वररूपी पक्षी फल न खाता हुआ केवल साक्षी रूप से रहता है।



इस प्रकृतिरूपवृक्ष की जड़ ऊपर की ओर है और शाखाएँ नीचे की ओर। पृथ्वी में छिपी हुई उसकी जड़ अव्यक्त मूल प्रकृति गुणों की साम्यावस्था है जो अलिङ्ग है, दिखायी देने वाला वृक्ष का आधार तना गुणों का प्रथम विषम परिणाम व्यक्त महत्तत्त्व लिङ्गमात्र है जो विशुद्ध सत्त्व है जो कारण जगत् आदित्य-लोक है जहाँ महत्तत्त्व की विशुद्धता के लिए व जीवों के प्रति कल्याण करने का नित्य संकल्प लिए ईश्वर विद्यमान है।

इस वृक्ष के तने में गुणों का दूसरा विषम परिणाम अविशेषरूप अहङ्कार है। अहङ्कार से उत्पन्न हुई शाखाएँ गुणों को तीसरा विषम परिणाम पाँच तन्मात्राएँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ हैं।

गुणों का चौथा विषम परिणाम स्थूल भूत व स्थूल शरीर है। इस स्थूल जगत् के सम्बन्ध से ईश्वर की संज्ञा विराट् (उपास्य) और जीव की संज्ञा विश्व (उपासक) है।

इस वृक्ष का फल जन्म, आयु और भोग है, उसका स्वाद सुख और दुःख है, जिसको जीवरूपी पक्षी चखता है और वह अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश, क्लेश पाप-पुण्यरूपी कर्म, कर्माशय से जन्म, आयु और भोग के लिए उनके स्थूल शरीररूपी अनन्त अस्थिर पत्तों में घूमता है। योगयुक्त होकर जीवरूपी पक्षी का ईश्वररूपी पक्षी और उसकी महिमा को देखना योग के अंगों का अनुष्ठान तथा ईश्वर-प्रणिधान है।

पञ्च कोश

आत्मा (आत्मज्योति-चेतन तत्त्व) पञ्च कोशो से आवृत है।

१. आनन्दमय कोश। ४. प्राणमय कोश।
२. विज्ञानमय कोश। ५. अन्नमय कोश।
३. मनोमय कोश।

कोश खोल या म्यान को कहते हैं। इन पाँचों कोशों को पाँच रंग वाली चिमनियाँ समझना चाहिए और आत्मतत्त्व को एक प्रकाश ज्योति, जिसका प्रकाश इन भिन्न-भिन्न रंग वाली चिमनियों से होकर बाहर आता हुआ उनके ही रंगों जैसा प्रतीत होता है।

आनन्दमय कोश—शुद्ध आत्मतत्त्व पर महत् तत्त्व की पहली चिमनी है, इसको आनन्दमय कोश कहते हैं। आनन्द का विकाररूपी यह कोश आत्मा को आच्छादित किये हुए है। यह आनन्दमय कोशरूप अज्ञान का आवरण ही जीव का कारण शरीर कहलाता है। इस कारण शरीर सहित आत्मा को प्राज्ञ कहते हैं।

विज्ञानमय कोश—यह आनन्दमय कोशरूपी चिमनी के ऊपर अहङ्कार और बुद्धि की है। यह कोश आत्मा को आच्छादित करके अकर्ता आत्मा को कर्ता, निश्चयरहित आत्मा को निश्चययुक्त जैसा प्रकट करता है। कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अभिमान ही इस विज्ञानमय कोश का गुण है।

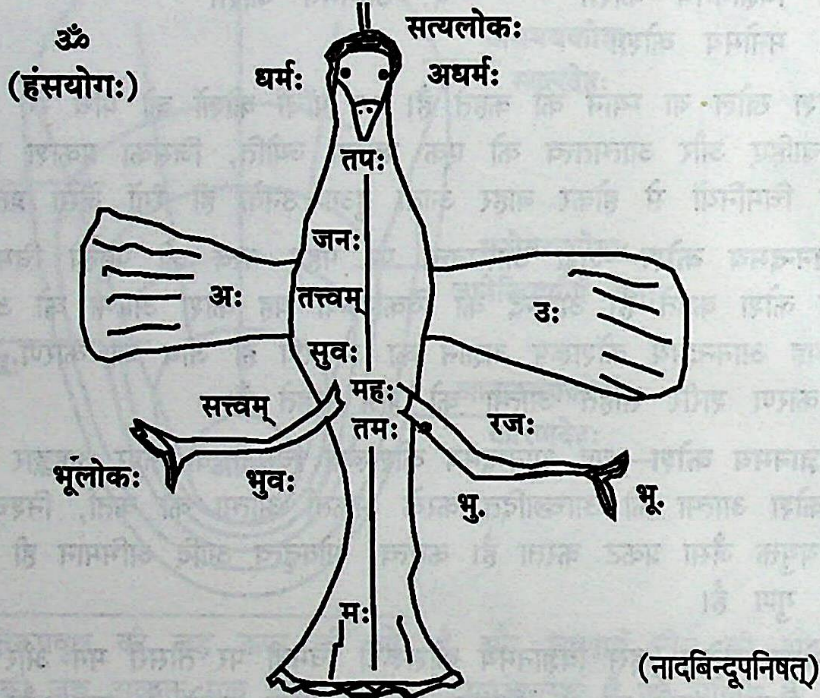
मनोमय कोश—इस विज्ञानमय कोशरूपी चिमनी पर तीसरी मन और ज्ञानेन्द्रियों की रंग वाली चिमनी चढ़ी हुई है, जिसको मनोमय कोश कहते हैं। मन और ज्ञानेन्द्रियों का विकाररूपी यह कोश आत्मस्वरूप को आच्छादित करके संशय रहित आत्मा को संशययुक्त, शोक-मोहरहित आत्मा को शोकमोहादि से युक्त प्रकट करता है। इस मनोमय कोश में इच्छाशक्ति वर्तमान है।

प्राणमय कोश—मनोमय कोशरूपी चिमनी पर चौथी चिमनी पाँच कर्मेन्द्रियों और पाँच प्राणों की चढ़ी हुई है, जिसे प्राणमय कोश कहते हैं। प्राण और इन्द्रियों का विकार रूपी यह प्राणमय कोश आत्मा को आच्छादित करके वक्तृत्वरहित आत्मा को वक्ता, क्षुधा-पिपासारहित आत्मा को क्षुधा-पिपासायुक्त आदि नाना प्रकार के विकारों से युक्त जैसा प्रकट करता है। इस प्राणमय कोश में क्रियाशक्ति होने से यह कार्यरूप होता है।

अन्नमय कोश—चौथी प्राणमय कोशरूपी चिमनी पर पाँचवीं स्थूल शरीर की चिमनी है जो अन्नमय कोश कहलाता है। यह अन्न से बने हुए रजवीर्य से उत्पन्न होता है और अन्न से ही बढ़ता है, इसलिए इसे अन्नमय कोश कहते हैं। इसके कारण अपरिच्छिन्न, अविभक्त आत्मा परिच्छिन्न तथा विभक्त, अजर, अमर, अजन्मा आत्मा जरा, मृत्यु और जन्म से युक्त प्रतीत होता है। इस अन्नमय कोश को ही स्थूल शरीर कहते हैं और स्थूल शरीरसहित आत्मा को विश्व।

इन्हीं उपर्युक्त पञ्चकोशों के स्वरूप को चित्र द्वारा प्रतिपादित किया गया है।

नानन्दाभिव्यक्तिर्मुक्तिर्निधर्मत्वात्। (सांख्यद. सू. ५/७४)



(नादबिन्दूपनिषत्)

आनन्द की अनभिव्यक्ति मुक्ति

आनन्द की अभिव्यक्ति मुक्ति नहीं है, क्योंकि वहाँ अविद्या का लेशमात्र भी स्वीकार नहीं है। वह तो सच्चिदानन्दघनमयत्व है, आनन्दाभिव्यक्ति रूप गुण का वहाँ सर्वथा अभाव है। जब वहाँ द्वैत रह ही नहीं जाता तो कौन किससे आनन्द की अभिव्यक्ति करेगा।

हंसयोग-ॐकार की हंसरूप में उपासना

प्रणवरूपी हंस का अकार दक्षिण पक्ष (दाहिन पंख) और उकार उत्तर पक्ष (बायाँ पंख) माना गया है, मकार ही उसकी पूँछ है तथा अर्धमात्रा शिर है। रजोगुण और तमोगुण उसके दोनों पैर हैं और सत्त्व गुण शरीर कहलाता है। धर्म दक्षिण नेत्र है और अधर्म वाम नेत्र, भूलोक उसके दोनों पैरों में है, भुवर्लोक दोनों जानुओं में है। स्वर्लोक उसके कटि-प्रदेश में है और महर्लोक नाभि-प्रदेश में है, जन-लोक हृदय में है, तपोलोक कण्ठ-देश में। भौंहों और ललाट के बीच में सत्यलोक व्यवस्थित है।

इस प्रकार से वर्णित जो ॐकार रूपी हंस है, उस पर आरूढ़—उसके चिन्तन में निमग्न हुआ हंस-योग-विचक्षण पुरुष-प्रणव की ध्यान-विधि में कुशल उपासक कर्मानुष्ठान करते हुए कोटि-कोटि पापों से छूटकर बन्धनमुक्त हो जाता है। यहाँ उक्त सन्दर्भ चित्र द्वारा प्रतिपादित है।

विशुद्धसत्त्वततस्तु तं पश्यति निष्कलं ध्यायमानः। (श्रुतिरिति भामती ब्र. १.१.१)

ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः। (स्मृतिः)

जन्माद्यस्य यतः। (ब्र.सू. १.१.२.२)

जन्मादि–इति नपुंसैकवचनद्योतितस्य समाहारस्य जन्मस्थितिभङ्गस्य जन्मविशेषणम्। तथा च जन्मनः–समासार्थैकदेशस्य गुणत्वेन सविज्ञानं यस्मिन्बहुब्रीहौ स तद्गुणसंविज्ञानः। जन्मस्थितिभङ्गैर्निरूपितानि त्रीणि कारणानि मिलितानि लक्षणम् इति समाहारो द्योतितः। (रत्नप्रभा)

जन्माद्यस्य–आकाशस्य यतः। (वल्लभाचार्यः)

तदधीनत्वादर्थवत्। (ब्रह्म सू. १.४.३)

परमेश्वराधीना प्रागवस्था जगतो बीजशक्तिरविद्या अव्यक्तं परमेश्वराश्रया मायामयी महासुषुप्तिः क्वचिदाकाशः क्वचिदक्षरं क्वचिन्माया कथ्यते। (शा.भा.)

विशुद्ध सत्त्वसम्पन्न ही ब्रह्मतत्त्व को देखता है

जिसका नित्य-नैमित्तिक-प्रायश्चित्तादि कर्मों से, उपासना व तप के द्वारा अन्तःकरण विशुद्ध हो गया है—ऐसा विशुद्ध सत्त्वसम्पन्न ध्यान की अवस्था में ध्याता निष्कल ब्रह्म-तत्त्व का दर्शन करता है। स्मृति भी कहती है कि समस्त पाप कर्मों का क्षय होने पर मनुष्य के हृदय में ज्ञान का उदय होता है और अविद्या का सर्वथा नाश हो जाता है।

जगज्जन्मादि का कारण परमात्मा

इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय जिससे होते है, अर्थात् जो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और भङ्ग का निमित्त कारण है, वह ब्रह्म है।

यहाँ जन्मादि पद में नपुंसक लिङ्ग-एकवचन से द्योतित समाहार है जो जन्म-स्थिति-भङ्गरूप समाहार का जन्म विशेषण है तथा समासार्थ का एकदेश जन्म गुण है, उसके गुण होने से यहाँ तद्गुण संविज्ञान बहुव्रीहि है। जन्म-स्थिति-भङ्ग द्वारा निरूपित तीन कारण मिलकर ही परमात्मा का लक्षण है—यह समाहार से द्योतित होता है।

वल्लभाचार्य जी के मत में जिससे आकाशादि दृश्य प्रपञ्च की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश होता है, वह ब्रह्म है।

प्रकृति का सार्थकत्व

उस परमात्मा के अधीन होने से वह शक्तिरूपा प्रकृति सार्थक है। सांख्यवादी प्रकृति को स्वतन्त्र व जगत् का कारण मानते हैं, किन्तु वेदान्त में प्रकृति को ब्रह्म-परमात्मा के

ब्रह्म

विद्या–परम्–सर्वोपाधिवर्जितम्।

अविद्या–अपरम्–नामरूपविकारभेदोपाधिविशिष्टम्। (शांकरभाष्यं ब्रह.सू. १.१.१२)

आपो वा इदमासन् सलिलमेव। स प्रजापतिरेकः पुष्करपर्णे समभवत्। तस्यान्तर्मनसि कामः समवर्तत। इदं सृजेयमिति। (तैत्तिरीयारण्यकम् १.१३)

सन्ध्या

यदात्मा प्रज्ञयात्मानं सन्धत्ते परमात्मनि।
तेन सन्ध्या ध्यानमेव तस्मात्सन्ध्याभिवन्दनम्।।

अधीन रहने वाली एक शक्ति बताया गया है। शक्ति होने से ही शक्तिमान् परमेश्वर के द्वारा जगत् के सृष्ट्यादि कार्य सम्भव होते हैं, इस कारण उसकी सार्थकता है।

जगत्-प्राक् अवस्थारूप यह जो प्रकृति है, परमेश्वर के अधीन है, स्वतन्त्र नहीं। यह प्रकृति जगत् का कारण है, यह अविद्यात्मक अव्यक्त शब्द से निर्दिष्ट परमेश्वर के आश्रय में रहने वाली, मायामयी महासुषुप्तिरूपा है, जिसमें अपने स्वरूप के ज्ञान से शून्य संसारी जीव सोते रहते हैं। इसकों कहीं आकाश शब्द से कहा गया है, कहीं अक्षर शब्द से और कहीं इसको माया तथा प्रकृति शब्द से कहा जाता है।

ब्रह्म

ब्रह्म विद्या और अविद्यारूप उभयात्मक है।

परविद्या—मोद-प्रमोदादि नाना नाम-रूप-विकारों से शून्य, सर्वोपाधिवर्जित प्रणवरूपा पर विद्या है, जिससे पर ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

अपर-अविद्या—नाना रूपविकारयुक्त और विविध भेदों की उपाधि से विशिष्ट अपर विद्या (अविद्या) है, इसमें द्वैत रहता है, जबकि पर विद्या में अद्वैत है।

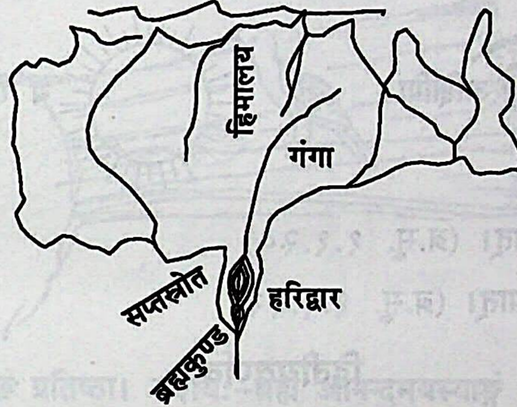
एक से बहुत होने की कामना ही जगत् का मूल है

यह सारा संसार जल रूप में ही था, एक प्रजापति ही कमलपुष्प पर प्रकट हुए, उनके अन्तर्मन में कामना जागृत हुई कि मैं एक से बहुत हो जाऊँ और इस जगत् की रचना करूँ।

सन्ध्या

जब स्वयं प्रज्ञा के द्वारा साधक आत्मा को परमात्मा में समाहित कर लेता है तब वह परमात्मचिन्तनरूप ध्यान ही सन्ध्या है। अतः सन्ध्याभिवन्दन करणीय है। वाणी और

निरोदका ध्यानसन्ध्या वाक्कायक्लेशवर्जिता।
सन्धिनी सर्वभूतानां सा सन्ध्या ह्येकदण्डिनाम्।। (ब्रह्मोपनिषत्)



ध्यानमन्तःपरे तत्त्वे लक्ष्येषु च निधीयते।
अतोऽविशेषविज्ञानं विशेषमुपगच्छति।। (मैत्र्युपनि. २४)
विघ्नविनाशनदक्षं लक्ष्यं भक्तेः शुभमङ्गलाधारम्।
वृन्दाविपिनविहारं श्रीगोपीगणपतिं वन्दे।।

शरीर के क्लेश से वर्जित, जल से रहित, समस्त भूतों में आत्म-भाव से भावित यह सन्ध्या एकदण्ड संन्यासियों के लिए विहित है।

हिमालय, गंगा, सप्तस्रोत, हरद्वार और ब्रह्मकुण्ड

प्रतीकात्मक रूप से अभिहितार्थ चित्र में चित्रित है। सर्वोच्च शिखर पर विराजमान पूर्ण ब्रह्म परमात्मा हिमालय के प्रतीक से कहा गया है, जगत् के कल्याणार्थ ब्रह्मद्रव गंगा के रूप में है, सप्त स्रोतों सम्पूरित करता हुआ वह ब्रह्मद्रव ही ब्रह्मकुण्ड में सुलभता से प्राप्त है। यहीं भगवान् हरि अथवा भगवान् हर का द्वार है।

परम तत्त्व का ध्यान

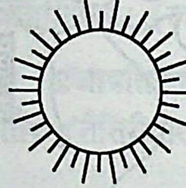
साधक के लिए पहले मनोनुकूल लक्ष्य इष्ट देवता की उपासना में चित्त को एकाग्र करना चाहिए, तदनन्तर उस अभ्यस्त एकाग्रता को परम लक्ष्य परतत्त्व के ध्यान में उपयोग करना चाहिए, क्योंकि अविशेष विज्ञान ही विशेष विज्ञान से परिणत हो जाता है।

श्रीगोपीगणपति की स्तुति

विघ्नों के विनाशन में सुदक्ष, भक्ति के परम लक्ष्य, शोभन मङ्गलों के अधिष्ठान, वृन्दावन में विहार करने वाले श्रीगोपीगणपति को मैं प्रणाम करता हूँ।

याचितायाचिताभ्यां च भिक्षाभ्यां कल्पयेत्स्थितिम्।
माधूकरं याचितं स्यात् प्राक्प्रणीतमयाचितम्।। (दत्तात्रेयः)





अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्। (ब्र.सू. १.१.२०)

आनन्दमयोऽभ्यासात्। (ब्र.सू. १.१.१२)

द्वितीयवर्णकः

अन्याङ्गं स्वप्रधानं वा ब्रह्मपुच्छमिति श्रुतम्।
स्यादानन्दमयस्याङ्गं पुच्छेऽङ्गत्वप्रसिद्धितः।।

याचित अयाचित भिक्षा

साधु को चाहिए कि वह याचित या अयाचित भिक्षा के द्वारा अपने जीवन का निर्वाह करे, उसे संग्रह कदापि नहीं करना चाहिए। घर-घर जाकर रोटी (मधुकरी) माँगने को माधूकरी भिक्षा अर्थात् याचित भिक्षा कहते हैं और पूर्व निर्धारित भिक्षा को अथवा प्रारब्ध से प्राप्त भिक्षा को अयाचित भिक्षा के रूप में जाना जाता है।

अन्तःस्थ हिरणमय पुरुष

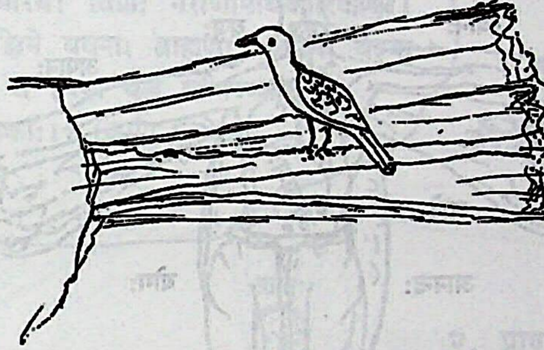
अन्तः—हृदय के भीतर शयन करने वाला विज्ञानमय तथा यह जो आदित्य-मण्डल में उसमें (चित्र में दर्शित तदुपलक्षित आँख के मध्य में) स्थित हिरण्मय पुरुष ब्रह्म है। तद्धर्मोपदेशात्—क्योंकि उसमें उस ब्रह्म के धर्मों का उपदेश किया गया है।

विज्ञानमय पुरुष के लिए ही श्रुतियों में एष सर्वेश्वरः—एष भूतमालः—आदि आदि विशेषण हैं। किसी भी स्थिति को प्राप्त देव-मनुष्यादि योनियों में रहने वाले जीवात्मा के ये धर्म नहीं हो सकते, इसलिए यहाँ परब्रह्म परमेश्वर को ही विज्ञानमय तथा सूर्यमण्डलान्तवर्ती हिरण्मय पुरुष कहा गया है।

परमात्मा आनन्दमय है

किसी बात को दृढ़ करने के लिए पुनः पुनः दुहराने को 'अभ्यास' कहते हैं। तैत्तिरीय, बृहदारण्यक आदि अनेक श्रुतियों-उपनिषदों में 'आनन्द' शब्द का ब्रह्म के अर्थ में बार-

लाङ्गूलासंभवात्तत्र पुच्छेनाधारलक्षणा।
आनन्दमयजीवोऽस्मिन् आश्रितोऽतः प्रधानता।। (वै.न्या.मा.)



विषयः—ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठा। संशयः—ब्रह्म आनन्दमयस्याङ्गं स्वप्रधानं वा

फलम्

पूर्वपक्षः—अङ्गम्—सगुणोपास्तिः। सिद्धान्तः—स्वप्रधानम्—निर्गुणप्रमितिः।

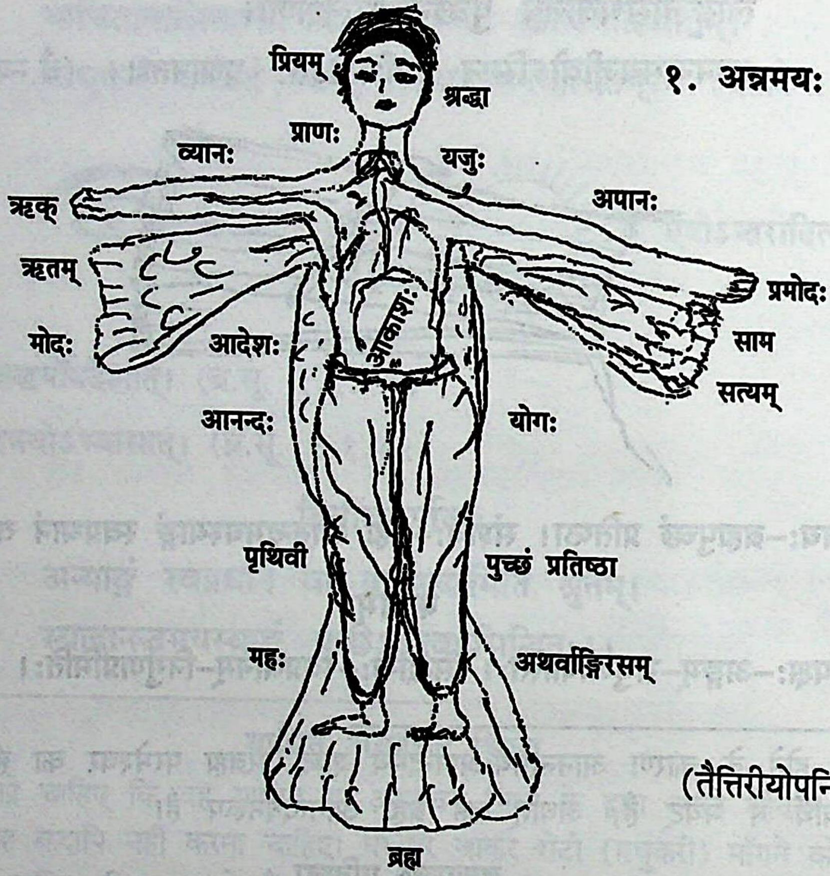
बार प्रयोग होने के कारण आनन्दमयःआनन्दमय शब्द परब्रह्म परमेश्वर का ही वाचक है। यहाँ प्राचुर्यार्थ में मयट् है, अर्थात् वह ब्रह्म आनन्दघनरूप है।

ब्रह्मपुच्छ प्रतिष्ठा

तैत्तिरीयोपनिषद् में पञ्चकोशातीत आत्मा के साक्षात्कार के लिए अन्नमयादि प्रत्येक कोश में अवयव की कल्पना करते हुए आनन्दमय कोश के प्रसङ्ग में 'ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठा ब्रह्मपुच्छ के रूप से उस आनन्दमय की प्रतिष्ठा है—ऐसा कहा गया है।

यहाँ संशय होता है कि क्या, आनन्दमय के अवयव रूप से ब्रह्म को बनाना श्रुति को अभीष्ट है? वह आनन्दमय का अङ्ग है या स्वप्रधानरूप है। यदि अङ्ग है तो सगुणोपासना उसका फल होगा। किन्तु सिद्धान्त-पक्ष में कहा गया है कि आनन्दमय के प्रसङ्ग में ब्रह्मपुछं प्रतिष्ठा—इस वाक्य से स्वप्रधान रूप से ही ब्रह्मज्ञानविषयक उपदेश किया गया है न कि आनन्दमय के अङ्ग रूप से। यदि उसे अङ्ग-अवयव मानेंगे तो पुच्छ शब्द में अङ्गत्व की प्रसिद्धि होगी, जबकि ऐसा नहीं है, ब्रह्म में लाङ्गूल (पुच्छ)-रूप अवयव का अभाव होने से यहाँ पुच्छ शब्द में आधारार्थक लक्षणा है, आनन्दमय जीव ब्रह्म में ही आश्रित है।

अतः 'ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठा'—इस वाक्य के द्वारा स्वप्रधान रूप से ही ब्रह्म का उपदेश किया गया है न कि आनन्दमय के पुच्छ-अवयव रूप से। पुच्छ शब्द का अर्थ यहाँ आधार समझना चाहिए।



(तैत्तिरीयोपनि. ५)

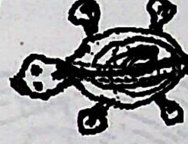
पञ्चकोशात्मक परमात्मपुरुष

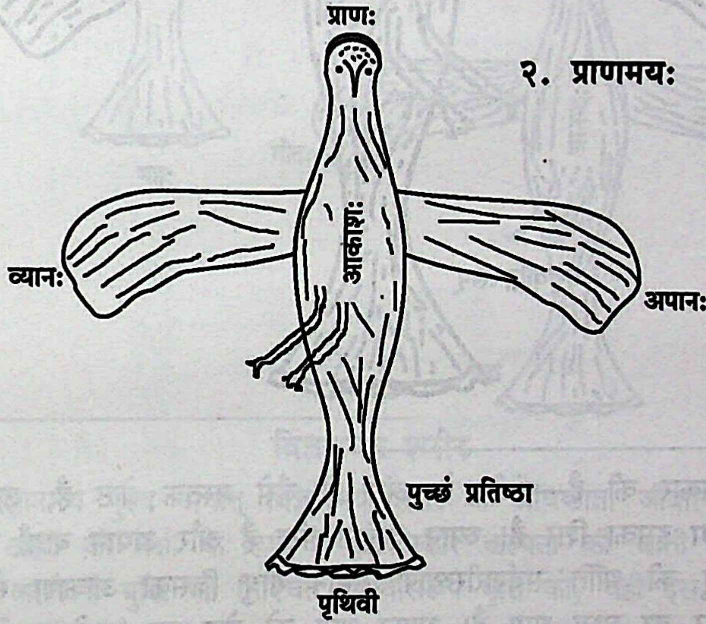
परब्रह्म परमात्मा सत्य-स्वरूप है, वह विशुद्ध आकाश में रहते हुए सबके हृदय की गुफा में छिपा है। सबके आत्मा परमात्मा से आकाशादि-ओषधी-अन्न और अन्न से स्थूल शरीररूप पुरुष उत्पन्न हुआ। जड़-चेतनमय जगत् ईश्वर से परिपूर्ण है। परमात्मा नित्य निरवयव है। उसके चिन्तन, आत्मतत्त्व के दिग्दर्शन व उपासना के लिए ही पञ्चकोशों से आच्छादित उसके तत्तत् अङ्गों और स्वरूप की परिकल्पना एक पुरुष के रूप में पक्षी के रूपक द्वारा की गयी है। उसका सिर ही मानो पक्षी का सिर है, दाहिनी भुजा दाहिना पंख, बायीं भुजा बायाँ पंख है, शरीर का मध्य भाग ही पक्षी का मध्य भाग और दोनों पैर ही पुच्छ (पूँछ) और प्रतिष्ठा-आधार (पैर) हैं।

प्राणमय शरीर का **प्राण**, मनोमय का **यजुर्वेद**, विज्ञानमय का **श्रद्धा**, आनन्दमय का **प्रिय** (प्रियता) शिर है। उसी तरह क्रमशः **व्यान**, **ऋग्वेद**, **ऋत** और **मोद** दाहिना पंख है।

अपान, **सामवेद**, **सत्य** और **प्रमोद** बायाँ पंख है। **आकाश**, **आदेश**, **योग** और **आनन्द** आत्मपुरुषरूप पक्षी का मध्यभाग है।

भारतेषु स्त्रियः पुंसो नानावर्णाः प्रकीर्तिताः। नवयोजन-
साहस्त्रम् कर्मभूमिरियं। विप्राः नराणामधिकारिणाम्।।
पूर्वे किराताः पश्चिमे यवनाः ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः।
मध्ये शूद्रास्तथैव च इज्या युद्धं वणिज्याभिः
सेवाभिश्चैव वृत्तिकाः।। (कूर्मपु.)





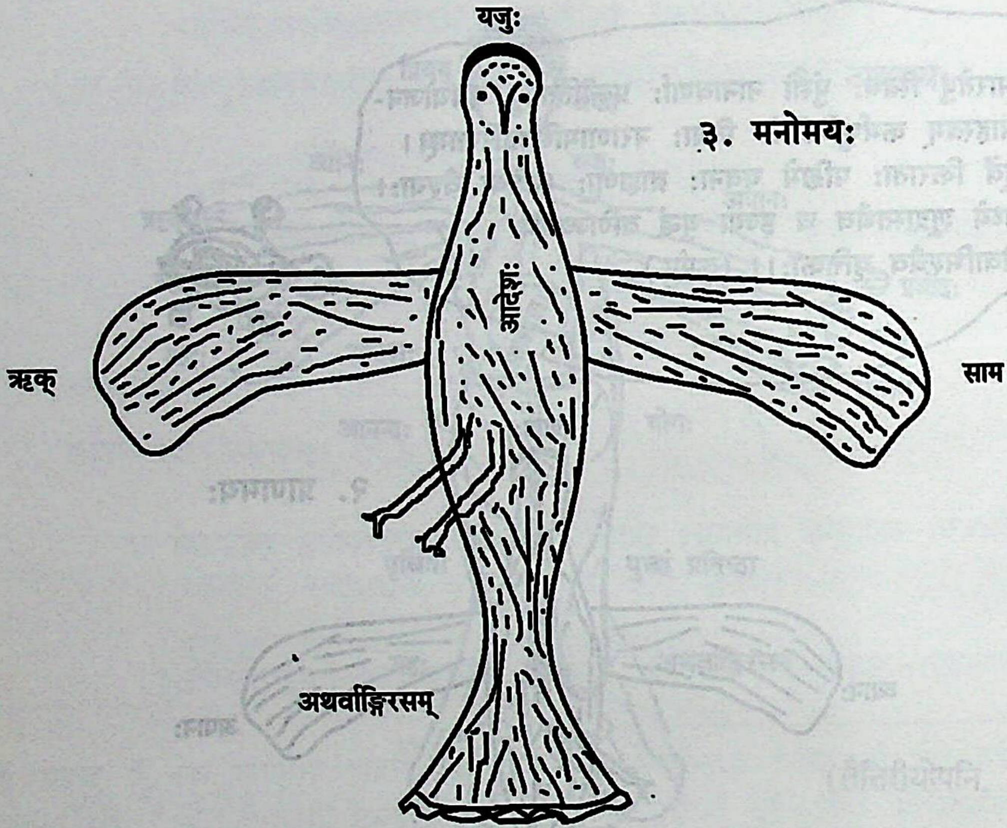
पृथिवी, अथर्वाङ्गिरस, मह और स्वयं ब्रह्म ही पुच्छ व प्रतिष्ठा—पूँछ और दोनों पैर हैं।

भारतवर्ष में विविध वर्ण

भारत में स्त्री-पुरुषात्मक विविध वर्ण हैं। नौ हजार योजन विस्तार वाली अधिकारी मनुष्यों की यह कर्मभूमि कही जाती है। पूर्व में किरात, पश्चिम में यवन और मध्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र रहते हैं तथा वर्णानुरूप ब्राह्मण यज्ञादि, क्षत्रिय युद्धादि, वैश्य वाणिज्यादि और शूद्र सेवा आदि वृत्ति से रहते हैं।

प्राणमय पक्षीरूप आत्मपुरुष

स्थूल शरीर से भिन्न स्थूल शरीर के भीतर रहने वाला एक और शरीर है, जिसको प्राणमय कहते हैं। यह प्राणमय शरीर भी पुरुषाकार कहा जाता है। उसकी पक्षी के रूप

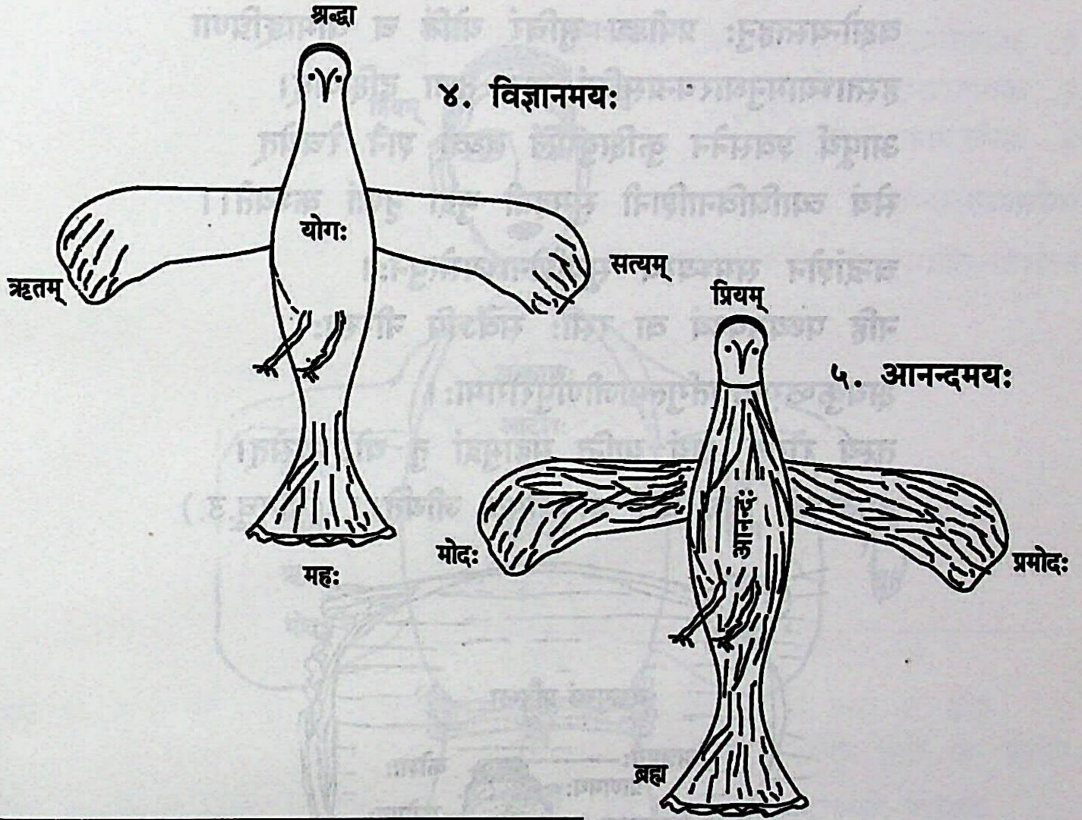


में कल्पना इस प्रकार की है—शरीर के अंगों में जैसे मस्तक श्रेष्ठ है, उसी तरह पञ्च प्राणों में श्रेष्ठ **प्राण** इसका शिर है। **व्यान** दाहिना पंख है और **अपान** बायाँ पंख। आकाश में फैले हुए वायु की भाँति सर्वशरीरव्यापी समान वायु जिसका आकाश से सम्बन्ध है वह **आकाश** शरीर का मध्य भाग है। अपान वायु को रोक कर रखने वाली **पृथिवी** की आधिभौतिक शक्ति ही इसकी पुच्छ और प्रतिष्ठा (आधार) है। जो परमात्मा सर्वेश्वर अन्न के रस से बने हुए स्थूल शरीर धारी पुरुष का आत्मा है वही उस प्राणमय पुरुष का भी शरीरान्तवर्ती अन्तर्यामी आत्मा है।

पक्षीरूपी मनोमय आत्मतत्त्व

यह मनोमय शरीर भी पुरुष के आकार का है। पक्षी के रूप में उसकी परिकल्पना इस प्रकार की गयी है—चित्र में देखें—

मनोमय पुरुष का **यजुर्वेद** शिर है, ऋग्वेद दाहिना पंख और **सामवेद** बायाँ पंख है। **आदेश**-विधिवाक्य मानो शरीर का मध्यभाग है। **अथर्वा** और **अङ्गिरा** ऋषियों द्वारा देखे गये अथर्ववेद के मन्त्र ही इस की पूँछ और दोनों पैर हैं।



विज्ञानमय शरीर

यहाँ विज्ञानमय पुरुष अर्थात् विज्ञानमय शरीर के अधिष्ठाता जीवात्मा का वर्णन है। विज्ञानमय के अङ्गों की पक्षी के रूप में इस प्रकार कल्पना की जाती है—**श्रद्धा** इसका शिर है। श्रद्धा कहते हैं बुद्धि की निश्चित विश्वासरूप वृत्ति को, वही इस विज्ञानात्मा शरीर में प्रधान अङ्गरूप शिर है। **सत्य**—सदाचरण का निश्चय ही इसका दाहिना पंख है, **ऋत**—सत्यभाषण का निश्चय ही इसका बायाँ पंख है। ध्यान द्वारा परमात्मा के साथ संयुक्त रहना ही **योग** विज्ञानमय शरीर का मध्यभाग है। **महः**—नाम से प्रसिद्ध (व्याहृतियों में महः को परमात्मा का स्वरूप बताया गया है) इसका पुच्छ और प्रतिष्ठा है।

आनन्दमय शरीर

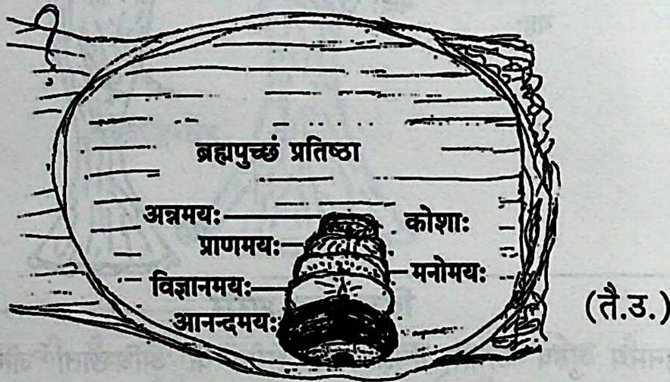
यहाँ चित्र के माध्यम से आनन्दमय पुरुष के अङ्गों का वर्णन भी पक्षी के रूप से इस प्रकार दिया जा रहा है—

प्रिय भाव उसका शिर है, तात्पर्य यह है कि आनन्दमय परमात्मा सबको प्रिय हैं, समस्त प्राणी आनन्द से प्रेम करते हैं, आनन्द को चाहते हैं। यह प्रियता उस आनन्दमय परमात्मा का एक प्रधान अङ्ग है।

वक्षोन्यस्तहनुः प्रपीड्य सुचिरं योनिं च वामाङ्घ्रिणा
हस्ताभ्यामनुधारयन्प्रसरितं पादं तथा दक्षिणम्।
आपूर्य श्वसनेन कुक्षियुगलं बध्वा शनै रेचयेत्
सेयं व्याधिविनाशिनी सुमहती मुद्रा नृणां कथ्यते।।

चन्द्रांशेन समभ्यस्य सूर्यांशेनाभ्यसेत्पुनः।
नहि पथ्यमपथ्यं वा रसाः सर्वेऽपि नीरसाः।।

क्षयकुष्ठगुदावर्तगुल्माजीर्णपुरोगमाः।
तस्य रोगाः क्षयं यान्ति महामुद्रां तु योऽभ्यसेत्।
अतिभुक्तं विषं घोरं पीयूषमिव जीर्यते।। (योगचू.उ.)



(तै.उ.)

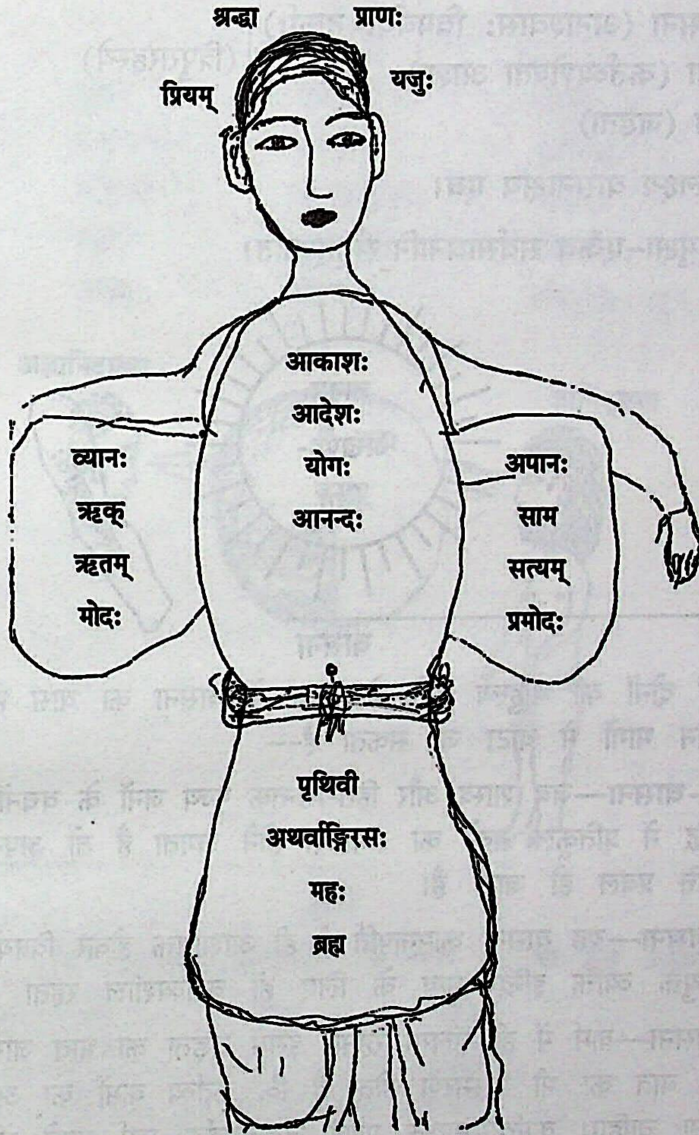
मोद दाहिना पंख और **प्रमोद** बायाँ पंख है और **आनन्द** ही परमात्मा का मध्य भाग है। स्वयं **ब्रह्म** ही इस आनन्दमय शरीर की पूँछ और आधार (दोनों पैर) है। यद्यपि परमात्मा के अवयवरहित होने से उनके स्वरूप और अंगों का वर्णन वास्तविक रूप से नहीं बन सकता, फिर ऐसी कल्पना क्यों की गयी? समाधान करते हुए ब्रह्मसूत्र में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि ब्रह्म के विषय में ऐसी कल्पना मात्र तत्त्वज्ञान व उपासना की सरलता हेतु की जाती है, इसका कोई दूसरा प्रयोजन नहीं। इस प्रकरण में विज्ञानमय का अर्थ जीवात्मा और आनन्दमय का अर्थ परमात्मा लेना चाहिए।

महामुद्रा

इस विषय का विवेचन पूर्व में किया जा चुका है।

ब्रह्मपुच्छ प्रतिष्ठा

यह जो सर्वान्तर्यामी आत्मतत्त्व है वह पाँच कोशों-आनन्दमय कोश, विज्ञानमय कोश,



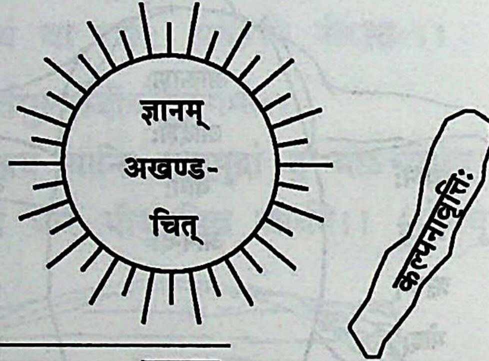
मनोमय कोश, प्राणमय कोश और अन्नमय कोश से आच्छादित है। इन सबका आधार ब्रह्म ही है, पुच्छ-प्रतिष्ठा का तात्पर्य आधार या दोनों पैर है। यह सारा जड़ चेतनात्मक जगत् ब्रह्ममय है। यह ब्रह्म से उत्पन्न है, ब्रह्म से पालित है और ब्रह्म में ही इसका लय हो जाता है।

पृ. १३६ पर अंकित चित्र, पृ. १४१ के चित्र की ही पुनरावृत्ति है, जिसका विश्लेषण पूर्व में हो गया है। यह प्राणादि कोशों से सम्बन्धित समन्वित आत्मपुरुष का पक्षीमय चित्र है।

१. अपराधवासना (अनाश्वासः विपर्ययः तर्काः)
२. कामवासना (कर्तव्यशेषता आशा) (त्रिपुरारहस्ये)
३. कर्मवासना (जडता)

सर्वसाधनानां–लक्ष्यं वासनाक्षय एव।

तत्परता–तीव्रमुमुक्षा–एकैव सर्वसाधनानि संगृह्णाति।



वासना

बुद्धि में दोनों का बाहुल्य होने से हृदय में वासना का वास हो जाता है। इस वासना को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

अपराध-वासना—जब शास्त्र और हित-चिन्तक पूज्य जनों के वचनों में विश्वास नहीं होता और बुद्धि में प्रतिकूल तर्कों का समावेश होने लगता है तो अपराध-निन्दनीय कर्म करने की प्रवृत्ति प्रबल हो जाती है।

काम-वासना—यह वासना कामनापूर्ति में ही आशायुक्त होकर विषयों में प्रवृत्ति वाली है। कामवासनायुक्त व्यक्ति इन्द्रिय-सुख के लिए ही कर्तव्यशील रहता है।

कर्म-वासना—कर्म में ही संलग्न रहना, इसमें जड़ता का भाव जागृत रहता है। इस वासना में इस बात का भी विस्मरण होता है कि कर्तव्य कर्मों का आचरण भगवत्प्रीति के निमित्त होना चाहिए। कर्मवासनायुक्त प्राणी जड़तापूर्वक कर्म करने में लगा रहता है।

जितनी भी श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त साधनाएँ हैं उन सभी का लक्ष्य वासना का क्षय ही है। भगवत्प्राप्ति के निमित्त तत्परता, भव-बन्धन से छूट जाने की तीव्र इच्छा ही सर्वश्रेष्ठ साधन है, इस एक साधन में ही समस्त साधनों का समावेश है।

कल्पना–वृत्ति

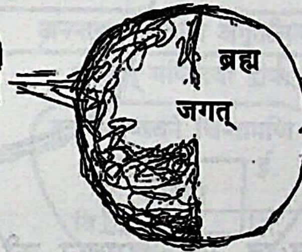
शास्त्रों में जितनी भी कल्पना-वृत्तियों का निर्देश किया गया है वे सब परमात्मा-प्राप्ति के प्रयोजन से ही हैं। जितनी भी कल्पनाओं का विस्तार है वह सब ज्ञाननिष्ठता में मात्र प्रयोजनभूत है? ज्ञान क्या है? अखण्ड चेतनतत्त्व ही ज्ञानस्वरूप है।

ज्ञानी

ब्रह्मा	विष्णुः	शिवः
दत्तात्रेयः	चन्द्रः	दुर्वासा
वशिष्ठः	सनकादयः	नारदः
शुक्रः	बृहस्पतिः	व्यासः
जनकः	भरतः	(त्रिपुरार. १९)

अज्ञानिदृष्ट्या





ज्ञानिदृष्ट्या



ज्ञानी

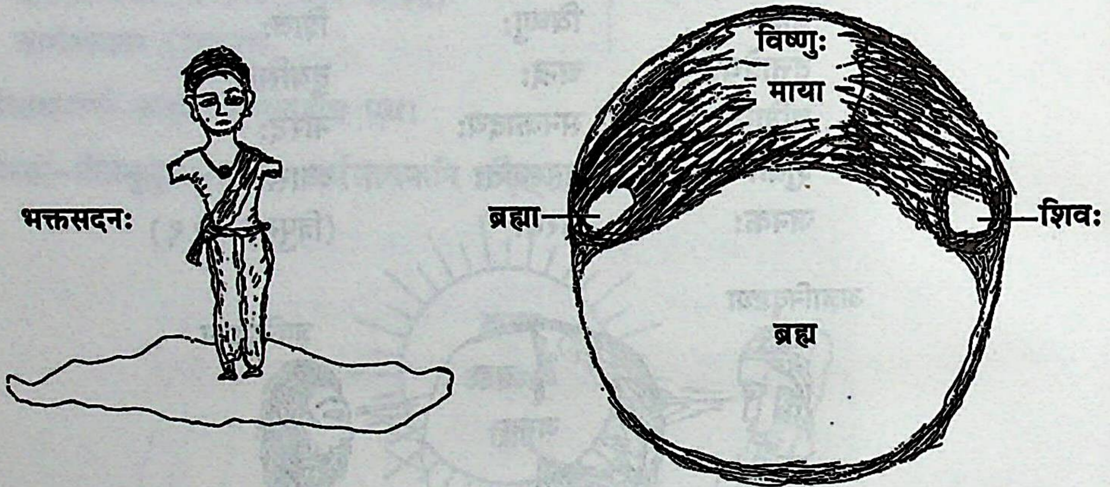
त्रिपुरारहस्य में ज्ञानमय और ज्ञाननिष्ठों की चर्चा है, जो इस प्रकार हैं—

ब्रह्मा	विष्णु	शिव
दत्तात्रेय	चन्द्र	दुर्वासा
वशिष्ठ	सनकादि	नारद
शुक्र	बृहस्पति	व्यास
जनक	भरत	

ज्ञानी और अज्ञानी की दृष्टि में जगत्

विषय-वासनाओं से ग्रस्त, अपने स्वरूप की स्मृति से शून्य अज्ञानी की दृष्टि में यह सुख-दुःख-मोहस्वभावात्मक जगत् सत्य है और वह जन्म-मरणरूप भयाटवी में भटकता रहता है। ज्ञानी की दृष्टि में ज्ञानकाल में तो जगत् के मिथ्यात्व का बोध था किन्तु आत्मसाक्षात्कार होने जाने पर जगत् नाम की मिथ्या वस्तु का भी सर्वथा अभाव हो गया। उसकी दृष्टि में सब कुछ पूर्णतम ब्रह्म ही ब्रह्म है।

नहि दुख यह रघुपति कै दाया। कर्मभुगाय छुड़ावत माया।। (भक्तमाल)

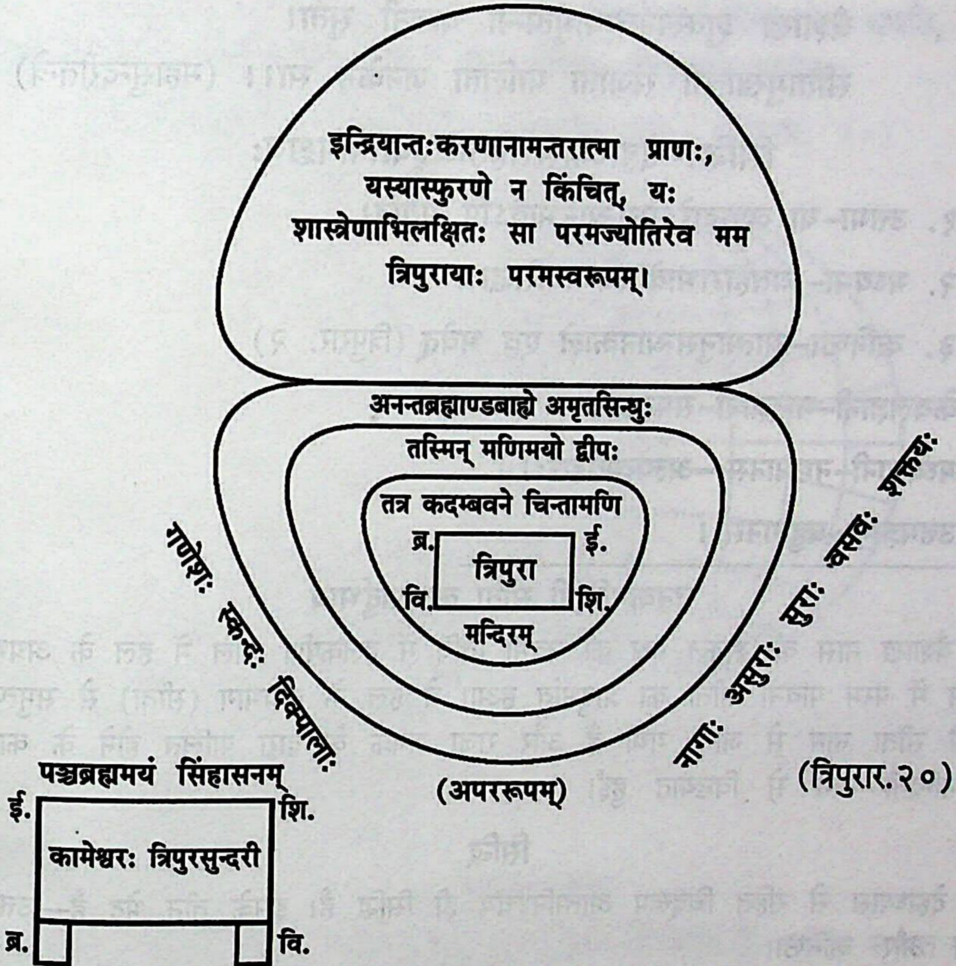


काय–क्लेश दुःख नहीं, भगवान् की कृपा है

चित्र में भक्त सदन दिखाया गया है जिसके दोनों हाथ कटे हुए हैं। किसी झूठे आरोप में निर्दोष भक्त सदन कसाई के दोनों हाथ काट दिये गये, रुधिर की धारा बह चली, उनके मन में तनिक भी रोष नहीं आया-ऐसा विचार करके कि यह कोई दुःख नहीं है, अपितु भगवान् की विशेष कृपा (दया) है, भगवान् जन्म-जन्मान्तरीय कर्म के फल का भोग कराकर मायारूपी इस भव बन्धन से छुड़ा देते हैं। वह भगवन्नाम का कीर्तन करते हुए प्रेमावेश में नृत्य करने लगा और भगवान् के दर्शनार्थ जगन्नाथपुरी को चल दिया। वहाँ पहुँचकर जैसे ही दण्डवत् करके भगवान् की जय-जयकार हेतु अपनी भुजा उठायीं तो दोनों हाथ पूर्ववत् ठीक हो गये। भगवान् के सच्चे भक्त निरपराध कष्ट पाने पर भी इसे अपने स्वामी की दया ही मानते हैं।

ब्रह्मविष्णुशिवात्मक ब्रह्म

पूर्ण परात्पर परब्रह्म परमात्मा अनिर्वचनीया मूल प्रकृति माया के साहचर्य से ब्रह्मा बन कर इस जगत् की सृष्टि करता है, विष्णुस्वरूप से जगत् का पालन करता है और शिवस्वरूप होकर इस जगत् का संहार करता है—अर्थात् ब्रह्म से ही जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार होते हैं। वह इस जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण होते हुए भी कार्य-कारणभाव से सर्वथा परे है। यह जगत् तो उसके चतुर्थांश से निर्मित है, त्रिपाद रूप से तो वह अपने अमृतमय धाम में स्थित है। निर्गुण, निराकार, निरवयव, सवान्तर्यामी, ब्रह्म तो निर्लिप्त है, वहाँ जगत् की सत्ता नहीं है। उसका न तो कोई वर्ण है और न आकार, वह तो शुद्ध चैतन्यस्वरूप सच्चिदानन्दघन है। चित्र इसी भाव को चित्रित करता है।



भगवती श्रीत्रिपुरा

इन्द्रिय और अन्तःकरण की अन्तरात्मा ही प्राण है जिसके स्फुरण के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है, जो शास्त्र द्वारा अभिलक्षित होता है, वह परम ज्योति ही मुझ त्रिपुरा का परम स्वरूप है।

अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड हैं, उनके बाहर अमृत-सिन्धु का विस्तार है। उस अमृत-सिन्धु में एक मणिमय द्वीप है, मणिद्वीप के कदम्ब वन में चिन्तामणि नाम का एक दिव्यातिदिव्य मन्दिर है, वहाँ एक भव्य सिंहासन है जिसमें चार पाये के रूप में ईश्वर, शिव, विष्णु और ब्रह्मा ही स्थित हैं, पीठ फलक पर सदाशिव स्वयं आसन के रूप में विद्यमान हैं। उस पञ्च ब्रह्ममय भव्य सिंहासन पर भगवती कामेश्वरी श्रीत्रिपुरसुन्दरी विराजित हैं। इस मणिमय द्वीप के बाह्य भाग में गणेश, स्कन्द, इन्द्र आदि दश दिग्पाल, नाग, असुर, देवता, वसु और शक्तियाँ रक्षण-कार्य में नियुक्त हैं।

वैशाखे शुक्लनवम्यामुत्पन्ना पावनी सुता।
सीतामुखात्सा संजाता पालिता जनकेन सा।। (महासुन्दरीतन्त्रे)

सिद्धिः–देहाध्यासरहितचिद्रूपात्मनिश्चयः

१. उत्तमा–या व्यवहारेऽनुसन्धानभावेऽपि भवति।

२. मध्यमा–व्यवहाराभावे स्वभावसिद्धा।

३. कनिष्ठा–आत्मानुसन्धानकाले एव भवेत् (त्रिपुरार. २)

केवलज्ञानी–मन्दज्ञानी–समनस्कः।

मध्यज्ञानी–नष्टमानसः–अल्पव्यवहारः।

उत्तमज्ञानी–बहुमानसः।

जनकनन्दिनी सीता का प्रार्दुभाव

वैशाख मास की शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि में हलकर्षण काल में हल के अग्रभाग से भूमि में परम पावनी सीता का प्रादुर्भाव हुआ। वे हल के अग्रभाग (सीता) से समुत्पन्न होने से सीता नाम से जानी गयी हैं और राजा जनक के द्वारा पालित होने के कारण जनक-नन्दिनी नाम से विख्यात हुईं।

सिद्धि

देहाध्यास से रहित चिद्रूप आत्मनिश्चय ही सिद्धि है। इसके तीन भेद हैं—उत्तमा, मध्यमा और कनिष्ठा।

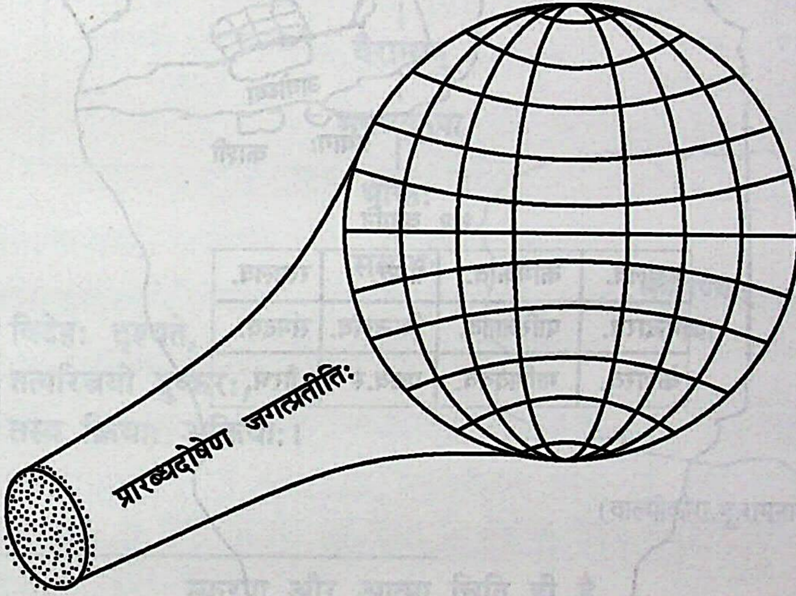
जो व्यवहार में अनुसन्धान भाव में भी होती है वह उत्तमा सिद्धि है। व्यवहार के अभाव में जो स्वभावसिद्ध है वह मध्यमा सिद्धि है, और जो आत्माअनुसन्धान काल में ही होती है वह कनिष्ठा सिद्धि है।

केवल ज्ञानी, मध्य ज्ञानी और उत्तम ज्ञानी

ज्ञानी के तीन भेद दिखाये गये हैं—केवल ज्ञानी, मध्य ज्ञानी और उत्तम ज्ञानी। जिसमें परोक्ष ज्ञान है, 'जगत् असत्य है और ब्रह्म सत्य है'—इस प्रकार का मात्र शब्द ज्ञान है, ऐसा ज्ञान मन्द ज्ञान ही कहा जायेगा, उसके मानसिक व्यवहार यथावत् बने रहेंगे। मध्य ज्ञानी वह है जिसके संकल्प-विकल्पात्मक मानसिक दोष नष्ट हो गये है, संसार को मिथ्या समझकर संसार के प्रति उसका व्यवहार अल्प ही रहता है। उत्तम ज्ञानी वह है जो अन्तर्यामी रूप से सब के मन के भावों को जानता है, जिसको सबके मन से अभेद है, सब में एक ही सूत्रात्मा परमात्मा का दर्शन करता है।

आत्मस्वरूपबोधः व्यवहारेण न बाध्यते। सर्वव्यवहारो बोधाश्रयेण भवति, येन सर्वं प्रतीयते तदेव ज्ञानम्। संकल्पेन ज्ञाने सर्वं भासते। विकल्पो-भ्रान्तिः।

व्यवहारविषयकं ज्ञानं बुद्धस्य प्रमा, अज्ञस्य भ्रमः। (त्रिपुरार. २०)



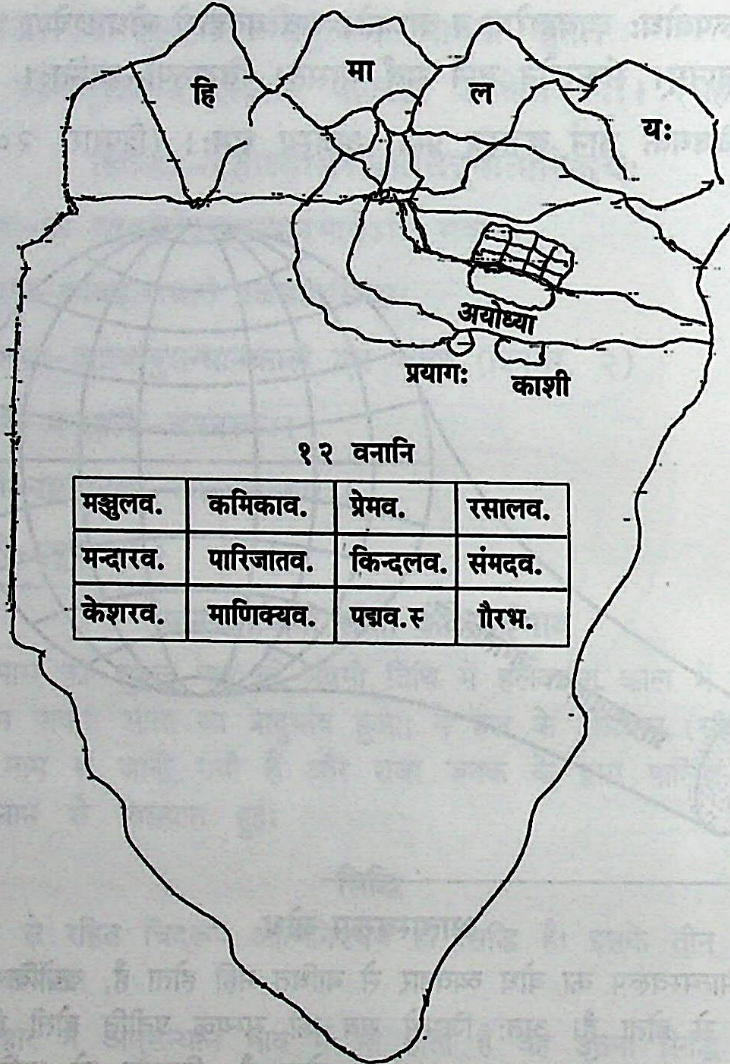
आत्मस्वरूप बोध

वस्तुतः आत्मस्वरूप का बोध व्यवहार से बाधित नहीं होता है, क्योंकि समस्त व्यवहार बोध के आश्रय से होता है। अतः जिससे सब की सम्यक् प्रतीति होती है वह ही ज्ञान है। संकल्पशक्ति से ज्ञान में सब कुछ भासित होता है, विकल्प तो भ्रान्ति उत्पन्न करने वाला होता है। व्यवहारविषयक ज्ञान ज्ञानी के लिए प्रमा है—ज्ञान को और अधिक पुष्ट करता है किन्तु अज्ञानी के लिए व्यावहारिक ज्ञान भ्रमकारक ही होता है।

प्रारब्ध-दोष से जगत् की प्रतीति

माना कि व्यवहार आत्मस्वरूप के बोध में बाधक नहीं है, किन्तु व्यवहारविषयक ज्ञान में निष्ठा होना आत्मबोध में बाधक अवश्य हो सकता है, क्योंकि यदि प्रारब्ध के दोष पुञ्जीभूत हो जायें तो जो आत्मबोध में नानात्व का निरास है वह धूमिल हो जायेगा और जगत् की प्रतीति पुष्ट होने लगेगी।

व्यावहारिकता से अन्दर छिपी हुई—मृतप्राय वासना के अङ्कुर उद्भूत होने लगेंगे, क्योंकि प्रारब्ध के दोषों से जगत् की प्रतीति होती है।



मञ्जुलव.	कमिकाव.	प्रेमव.	रसालव.
मन्दारव.	पारिजातव.	किन्दलव.	संमदव.
केशरव.	माणिक्यव.	पद्मव.रु	गौरभ.

हिमालय, अयोध्या, प्रयाग, काशी और द्वादश वन

यहाँ हिमालय आदि चित्र प्रतीकों से सम्भवतः यह तथ्य प्रकाशित किया जा रहा कि सर्वोच्च शिखर पर सुशोभित भगवान् श्रीराम अपने भक्तों को सदुपदेश कर रहे हैं कि यदि तुम सांसारिक बन्धनों के वशीभूत इतना ऊपर उठकर-चलकर मेरे समीप आने में असमर्थ या असहाय हो तो समान्य प्रयत्न से सुलभ यह अयोध्या मेरा ही धाम है और ये बारह जो दिव्य वन हैं ये भी मेरे ही स्वरूप हैं, मैं इन वनों में अपनी अन्तरङ्ग सहजा शक्ति के साथ विहार करता हूँ। तुम परम पवित्र इस अयोध्या और इन बारह दिव्य वनों का सेवन करो। इससे पूर्व प्रयाग में अपने जन्म-जन्मान्तरीय पाप-पुञ्जों को धोकर आशुतोष भगवान् साम्बसदाशिव के काशी धाम में दर्शन-अर्चनपूर्वक मेरे भक्त बनने के अधिकारी होकर मेरी प्रियता को प्राप्त करो।

स्फुरणम्–आत्मा च–चितिरेव। सर्वकारणत्वात्–वितता। करणानामविषयत्वात् सूक्ष्मा। तस्या उपलब्धिः बुद्धौ भवति। अविद्याच्छादिता चितिरेव बुद्धिः। दृग्दृश्ययोः स्पष्टप्रतीतिः–विचारः। (त्रिपुरारहस्ये २१)

विवेकः
|
वैराग्यम्
|
भगवत्कृपा
|
भक्तिः
|
सत्संगः

धर्मारण्यम्
(गया)

जीवन्मुक्तः | विदेहः दृश्यते,
तत्परिचयो दुष्करः,
तस्य क्रियाः अक्रियाः।

(वाल्मीकीरा.भू.रामनारयणदत्तःशा.)

स्फुरण और आत्मा चिति ही है

पाञ्चभौतिक शरीर में यह जो स्फुरण है, वह आत्मा है और वह आत्मा चिति (चेतन) है। सभी का कारण होने से वितता (व्यापक) है, इन्द्रियरूप करणों का वह विषय न होने से सूक्ष्मा है। उसकी उपलब्धि बुद्धि में होती है, क्योंकि अविद्या से आच्छादित चिति ही बुद्धि है। सत्य-असत्य का विचार-सामर्थ्य भी बुद्धि में रहता है। दृक् और दृश्य की भ्रान्तिरहित स्पष्ट प्रतीति ही विचार कहलाता है, विचार से **विवेक** जागृत होता है।

जीवन्मुक्तावस्था का देहाध्यास-राहित्य दिखायी तो देता है, किन्तु उसका परिचय प्राप्त करना अत्यन्त ही दुष्कर है, क्योंकि उसकी क्रिया अक्रिया ही होती है, जीवन्मुक्त प्राणी का कुछ भी करना न करने के ही समान है। 'कुर्वन्नपि न लिप्यते'—उसे कर्म का लेप नहीं लगता। जब वह क्रिया का कर्ता ही नहीं है तो वह क्रियाफल का भोक्ता भी नहीं है।

सत्संग से भक्ति, भक्ति से भगवत्कृपा, भगवत्कृपाप्रसाद से वैराग्य, वैराग्य से विवेक और विवेक से आत्मोपलब्धि होती है।

गया धर्मारण्य है

गया तीर्थ मात्र धर्म-स्थल ही नहीं अपितु वहाँ पूरा भूभाग ही धर्ममय है। सम्पूर्ण अरण्य-तृण, मूल, वृक्ष, लता, पौधा, जलस्थान, नदी, पर्वत, शिला, वहाँ का कण-कण

साक्षी	विवर्तः
सर्वावभासकः सर्वाधिष्ठानम् चित्, परमानन्दः स्वतन्त्रः, अविषयः, अनन्तः, निर्विशेषः, परमप्रियः, रसो, भूमा	प्रकाश्यः, जडः, असत्, दुःखम्, विविधः, आश्रितः, परिणामी, विषयः, नश्वरः

(त्रि.र.)

विवर्तः

१. आधिभौतिकः–इदं सर्वं–उद्बोधकः। २. आधिदैविकः–शास्ता, प्रेरकः, पोषकः, नियामकः। ३. आध्यात्मिकः–शिष्यः। (त्रि.र.)

भी धर्ममय है। उस भूमि पर स्नान, दान, तर्पण, अर्चन और पिण्डदान करने से पितरों की अक्षय तृप्ति होती है, पूर्वज सद्गति को प्राप्त होते हैं। इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार हो जाता है। वहाँ पितृकर्म करने से पुत्र की पुत्रता की परिपूर्ति होती है। अतः गया निःसन्देह धर्मारण्य ही है।

साक्षी और विवर्त

साक्षीमात्र हृदय होता है। न वह कर्ता है और न भोक्ता ही। वह सभी का अवभासक है, सभी का अधिष्ठान-सर्वाधार है, चैतन्य है, परमानन्दघन है, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र है, अविषय है—इन्द्रियातीत है, अनन्त है, निर्विशेष है—सर्वोपाधिरहित है, परम प्रिय है, रसस्वरूप है, भूमा है—सहजसुखराशि है।

विवर्त विकार है, अन्य के द्वारा प्रकाशित है, जड़ है, असत् है, दुःखस्वरूप है, नाना नाम-रूपों वाला—विविध भेदयुक्त है, आश्रित है, परिवर्तनशील है, विषयरूप और नश्वर है।

इस विवर्त के तीन भेद किये जा सकते हैं—आधिभौतिक विवर्त, आधिदैविक विवर्त और आध्यात्मिक विवर्त।

आधिभौतिक विवर्त—यह जो जगत् प्रपञ्च है इसका उद्बोधक है, अतः इसकी सत्ता का सत्य मान लेना आधिभौतिक विवर्त है।

यह शास्ता है, प्रेरक है, पोषक और नियामक है—ऐसा मान लिया जाना आधिदैविक विवर्त है। यह शिष्य है, यह प्रशिष्य है—ऐसा भाव हो जाना ही आध्यात्मिक विवर्त है।

यं पालयसि धर्मं त्वं प्रीत्या च नियमेन च।
स वै राघवशार्दूल धर्मस्त्वामभिरक्षतु।। (वाल्मीकिरा.अयो. २५.३)

(कौशल्या)



अहं ब्रह्म अस्मि

विशेषणानां सम्बन्धो यतो न प्रत्यगात्मनि।
लक्ष्यलक्षणता तस्मात् प्रतीच्यध्यवसीयते।।१४२७।।
अनन्यापेक्षिप्रत्यक्त्वमहंरूपेण लक्ष्यते।
तथैव ब्रह्मरूपेण प्रतीचोऽप्यद्वयात्मता।।१४२८।। (वृ.उ.अ.वा. १.४)
अनात्माब्रह्मताहेतौ प्रत्यग्ध्वान्ते निवर्तिते।
पदार्थ एक एव स्यात् ब्रह्माहं पदयोः परः।।१४३०।।

वह धर्म तुम्हारी रक्षा करे

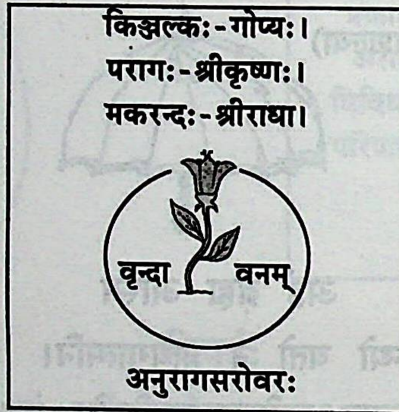
वन-गमनार्थ प्रस्तुत श्रीराम को कौशल्या माता आशीर्वाद देती हुई कहती हैं कि हे रघुकुलकेसरी! तुम नियमपूर्वक प्रसन्नता के साथ जिस धर्म का पालन करते हो, वही धर्म सब ओर से तुम्हारी रक्षा करे। वनवासकाल में उपस्थित होने वाले कष्ट-सन्तापों से वह धर्म छत्र बन कर तुम्हारी छाया करे अर्थात् धर्म की छत्र-छाया निरन्तर तुम्हारे साथ हो।

मैं ब्रह्म हूँ

वस्तुतः प्रत्यगात्मा (शुद्ध चैतन्य) में परोक्ष या अपरोक्ष रूप से 'नीलोत्पल' की तरह विशेष्य-विशेषण भाव सम्बन्ध न होकर लक्ष्य-लक्षणभाव सम्बन्ध है इसलिए (विरुद्ध अंशों का त्याग करने पर) शुद्ध चैतन्य ही शेष रह जाता है। अहम् और ब्रह्म पदार्थों के अन्योन्य भेद का व्यावर्तन होने से अहम्पदवाच्य ब्रह्म पदवाच्य से भिन्न नहीं है और ब्रह्म पद वाच्य अहं पद वाच्य से भिन्न नहीं है, इस लिए अहम् ब्रह्म ही है—यह लक्षित होता है। अहं ब्रह्मास्मि।

अनात्मा अर्थात् प्रत्यक् आत्मा में जो अज्ञानान्धकार है उसकी निवृत्ति होने पर अनात्मा ब्रह्मरूप हो जाता है। अहं और ब्रह्म में पदार्थ एक ही है, अहं और ब्रह्म पद भिन्न हैं।

अथ चित्ररथस्यापि पुत्रो दशरथोऽभवत्।
लोमपाद इति ख्यातो यस्य शान्ता सुताऽभवत्।। (हरिवं. १.३१.४६)



(राधासुधा)

लिङ्गदेहः प्रमाताऽत्र कामाद्यास्तस्य वृत्तयः।
चैतन्येन वियुक्तास्ता जायन्ते न कदाचन।। (वार्तिक सा.१.प्रा.)
तत्क्षणादेव गृह्णाति शरीरमातिवाहिकम्।
ऊर्ध्वं व्रजन्ति भूतानि त्रीण्यस्मात्तस्य विग्रहात्।।
केवलं तन्मनुष्याणां नान्येषां प्राणिनां क्वचित्।। (विष्णुधर्मोत्तरपु.)

शान्ता दशरथ की पुत्री थी

हरिवंश पुराण के अनुसार राजा चित्ररथ के दशरथ नाम के पुत्र हुए जो लोमपाद नाम से प्रसिद्ध हुए; उनकी शान्ता नाम की पुत्री हुई।

अनुराग सरोवर

अनुरागरूपी सरोवर में एक अद्भुत अद्वितीय कमल-पुष्प खिला हुआ है, उस कमल का नाम है—परमधाम वृन्दावन। उस वृन्दावनरूपी कमल में गोपियाँ किञ्जल्क (कमल की पंखुड़ियाँ) रूप में हैं, उस दिव्य कमलपुष्प के परागरूप में स्वयं श्रीकृष्ण सुशोभित हैं और उस पराग में मकरन्दरूप में विराजमान हैं श्रीराधाजी।

चैतन्य से ही सारी वृत्तियों की सत्ता

यहाँ लिङ्गशरीर प्रमाता है, काम, क्रोध आदि उसकी वृत्तियाँ हैं, सबका मूल चैतन्य ही है। चैतन्य से वियुक्त होते ही वे सभी वृत्तियाँ सामर्थ्यशून्य हो जाती हैं।

(‘तत्क्षणादेव...प्राणिनां क्वचित्’ यह पृ. ८४ पर भी अंकित है; इसकी व्याख्या पूर्व में की जा चुकी है—आवश्यकतानुसार वहीं देखें।)

श्रीरामसदृशः शिष्यः वशिष्ठसदृशो गुरुः।
वाशिष्ठं सदृशं शास्त्रं न भूतो न भविष्यति।।

रागत्यागात् सुखी भव। (अवधूतगी.)

रामः (वा.रा.सु. ३५)

समः सुविभक्तांगो वर्णश्यामं समाश्रितः।
[१]त्रिस्थिरः [२]त्रिप्रलम्बश्च [३]त्रिसमस्त्रिषु [४]चोन्नतः।।
[५]त्रिताम्रस्त्रिषु च [६]स्निग्धो [७]गम्भीरस्त्रिषु नित्यशः।
[८]त्रिवलीमान् [९]त्र्यवनतः [१०]चतुर्व्यंग्यस्त्रिशीर्षवान्।
[११]चतुष्कलः [१२]चतुर्लेखश्च[१३]तुःसमः।।
[१४]चतुर्दशसमद्वन्द्वः [१५]चतुर्दंष्ट्रश्[१६]चतुर्गतिः।
[१७]महोष्ठ[१८]हनु[१९]नासश्च [२०]पंचस्निग्धो[२१]ऽष्टवंशवान्।।
[२२]षड्डुन्नतो [२३]नवतनुः [२४]त्रिभिर्व्याप्नोति राघवः।
[२५]दशपद्मो [२६]दशवृहत् [२७]त्रिभिर्व्याप्तो [२८]द्विशुक्लवान्।।

१. ऊरू, मणिबन्धो, मुष्टिः। २. भ्रू, मुष्को, वाहू। ३. केशाग्रं, वृषणौ, जानू। ४. अंशौ, उरः, ललाटः।, ५. नेत्रकोणौ, नखाः, पादतले। ६. पदरेखाः, केशाः,

---

न भूतो न भविष्यति—भगवान् श्रीराम जैसा शिष्य, ब्रह्मर्षि श्रीवशिष्ठजी जैसा गुरु और गुरु वशिष्ठजी द्वारा प्रणीत योगवाशिष्ठ (महारामायण) जैसा शास्त्र न कभी हुआ है, न है और न आगे कभी होगा। इन तीनों की संगति त्रिकाल में भी सर्वदा असम्भव है।

राग के त्याग में सुख

इस नश्वर संसार तथा संसार के सम्बन्धों के प्रति जब तक राग है तब तक प्राणी दुःखाग्नि में दग्ध होता रहेगा। कभी भी दुःख से निवृत्ति नहीं होगी, क्योंकि संसार तो दुःख का भण्डार है। अतः यदि सुख की इच्छा है तो राग को त्यागो और सुखी बनो। राग-त्याग के अतिरिक्त सुखोपलब्धि का दूसरा कोई उपाय नहीं है।

भगवान् श्रीराम के शरीरावयवों का वर्णन

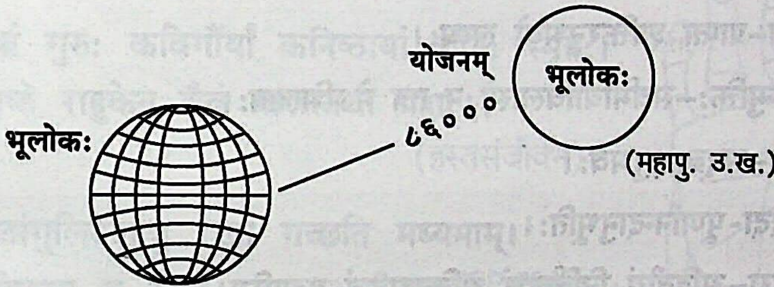
सीता जी के पूछने पर (यह रामभक्त हनुमान् है, इस विश्वास की पुष्टि में) लंका में हनुमान् जी के द्वारा श्रीराम के शारीरिक अवयवों-चिह्नों का इस प्रकार वर्णन किया गया है—

शिश्नाग्रम्। ७. स्वरः, नाभिः, गतिः। ८. उदरे कण्ठे च ९. पादरेखाः, स्तनौ। १०. ग्रीवा, पृष्टं, शिश्नं, पृष्ठः। ११. ललाटे, अंगुष्ठमूले, देहे, वाहू, उरू, गण्डःवृत्ताः। १२. भ्रू, नासाछिद्रं, नेत्रे, कर्णौ। १३. मणिबन्धौ, जानू, वृषणौ हस्तौ। १४. भ्रुवौ, नासासुषिरौ, नयने, कर्णौ, औष्ठौ, स्तनौ, कूर्परौ, करतलौ, मणिबन्धौ, जानू, वृषणौ, हस्तौ, पादौ, नितम्बौ। १५. दन्तपंक्तिषु विशिष्टाः। १६. सिंहगजवृषभहंसानाम्। १७. मांसलः। १८. पूर्णः १९. दीर्घा। २०. वाक्य-मुख, लोम, नख, चर्म पंच स्निग्ध हैं। २१. अष्ट अंग २ बाहें, २ कनिष्ठका २ ऊरु, २ अंगूठा। २२. कक्ष, कुक्षि, छाती, नासिका, कंधे और ललाट छः उन्नत अंग हैं। २३. पोरुवे, केश, रोम, नख, त्वचा, शिश्न, श्मश्रु, दृष्टि, और बुद्धि नौ पदार्थ सूक्ष्म हैं। २४. यश, बुद्धि और पराक्रम तीनों से व्याप्त हैं। २५. मुख, नेत्र, जीभ, ओष्ठ, तालु, स्तन, नख, मुख का विवर, हाथ और चरण ये दस पद्म के समान हैं। २६. वक्षःस्थल, मस्तक, ललाट, ग्रीवा, बाहु, कंधा, नाभि, चरण, पीठ और कर्ण–ये दस विशाल हैं। २७. श्री, यश, तेज उनमें वर्तमान है। २८. भगवान् राम का पितृकुल व मातृकुल शुक्लवान् है।

भगवान् श्रीराम के सभी अंग सुडौल और बराबर हैं, उनकी कान्ति श्याम है। उनके तीन अंग—वक्षःस्थल, कलाई और मुट्ठी स्थिर (सुदृढ़) हैं, भौंहे, भुजाएँ और मेढ्र—ये तीन अंग लम्बे हैं, केशों का अग्रभाग, वृषण और घुटने—ये तीन समान बराबर हैं, वक्षःस्थल, नाभि के किनारे का भाग और उदर—ये तीन उभरे हुए हैं, नेत्रों के कोने, नख और हाथ-पैर के तलवे—ये तीन लाल हैं, दोनों पैरों की रेखाएँ, शिश्नाग्र और शिर के बाल—ये तीन चिकने हैं तथा स्वर, चाल, और नाभि ये तीन गम्भीर हैं। उनके उदर तथा गले में तीन रेखाएँ हैं। तलवों के मध्य भाग, पैरों की रेखाएँ और स्तनों के अग्र भाग—ये तीन धँसे हुए हैं। गला, पीठ और दोनों पिण्डलियाँ—ये चार अङ्ग छोटे हैं। मस्तक में तीन भँवरें हैं, पैरों के अंगूठे के नीचे तथा ललाट में चार-चार रेखाएँ हैं। वे चार हाथ ऊँचे हैं। उनके कपोल, भुजाएँ, जाँघें और घुटने-ये चार अंग बराबर हैं। शरीर में दो-दो की संख्या वाले चौदह अंग होते हैं—भौंहे, नथुने, नेत्र, कान, ओष्ठ, स्तन, कोहनी, कलाई, जाँघ, घुटने, वृषण, कमर के दोनों भाग, हाथ और पैर—वे भी उनके परस्पर सम हैं। उनकी चारों कोनों की चारों दाढ़ें शास्त्रीय लक्षणों से युक्त हैं। वे सिंह, हाथी, बाघ और साँड़—इन चारों के समान चार प्रकार की गति से चलते हैं। उनके होठ, ठोढ़ी और नासिका—सभी प्रशस्त हैं। नेत्र, केश, दाँत, त्वचा और पैर के तलवे—इन पाँचों अंगों में स्निग्धता भरी है। दोनों भुजाएँ, दोनों जांघें, दोनों पिण्डलियाँ, हाथ और पैरों की अंगुलियाँ—ये आठ अङ्ग उत्तम लक्षणों से सम्पन्न हैं। उनके नेत्र, मुखविवर, मुखमण्डल, जिह्वा, ओष्ठ, तालु, स्तन, नख, हाथ और पैर—ये दस अंग कमल के समान हैं। छाती,

अयोध्या (शिव-संहिता ५.२०)

अष्टचक्रा नवद्वारा नगरी धर्मसम्पदाम्।
दृष्ट्वैव ज्ञाननेत्रेण ध्यातव्या सरयूस्तथा।।
भोगस्थानं पराऽयोध्या लीलास्थानं त्वियं भुवि।
भोगलीलापती रामो निरङ्कुशविभूतिकः।।



त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। (अर्थवसं. २०.१०८.६)

मस्तक, ललाट, गला, भुजाएँ, कंधे, नाभि, चरण, पीठ और कान—ये दस अंग विशाल हैं। वे श्री, यश और प्रताप—इन तीनों से व्याप्त हैं। उनके मातृकुल और पितृकुल दोनों अत्यन्त शुद्ध हैं।

अयोध्या

अष्ट चक्रों से समन्वित, नौ द्वारों वाली तथा धर्म की सम्पदा से युक्त यह नगरी है; इसको ज्ञानचक्षुओं से देखते हुए ही सरयू का ध्यान करना चाहिए।

परा अयोध्या दिव्य भोग स्थान है और भू-मण्डल पर स्थित अयोध्या लीला स्थान है, इन दोनों ही भोग और लीलास्थानीय अयोध्या के पति सर्वतन्त्रस्वतन्त्र ऐश्वर्यशाली भगवान् श्रीराम हैं।

भूलोक से यमपुरी की दूरी

भूलोक से दक्षिण दिशा में यमपुरी स्थित है। पृथिवीलोक से इसकी दूरी छियासी हजार योजन है।

तुम माता और पिता हो

अथर्ववेदीय ऋत्विक्, यजमान कहता है कि हे बसु! तुम ही हमारे पिता हो, हे इन्द्र! तुम हमारी माता हो अर्थात् आप दोनों ही माता-पिता के रूप में हम पुत्रों का पालन-पोषणपूर्वक अभिरक्षण करें।

निगमोद्बोधके क्षेत्रे स्नानमत्र पितः कुरु।
दुर्लभं प्राप्स्यते ज्ञानं पूर्वजन्मस्मृतिप्रदम्।। (पद्मपु. २००.५७)

राजयोगसंहितायां–ज्ञानभूमयः

१. ज्ञानदा–ज्ञातव्यं ज्ञातमित्यनुभूतिः।
२. संन्यासदा–त्याज्यं त्यक्तं मया।
३. योगदा–प्राप्ता शक्तिरनुभवो लब्धः।
४. लीलोन्मुक्तिः–सर्वमायाविलासो न तत्र मेऽभिलाषः।
५. सत्यदा–सद्ब्रह्मानुभवः।
६. आनन्ददा-पूर्णानन्दानुभूतिः।
७. परात्परा–अद्वितीयं निर्विकारं सच्चिदानन्दं ब्रह्मास्मि।

अप्सु मे सोमोऽब्रवीदन्तर्विश्वानि भैषजम्।
अग्निं च विश्वसम्भुवं आपश्च विश्वभेषजीः।। (ऋग्वेद सं. १.२३.२०)

निगमबोधक तीर्थक्षेत्र

यहाँ निगमबोधक क्षेत्र (तीर्थ) में हे पिताजी! आप स्नान करें। इस वेदबोधित तीर्थ में स्नान करने मात्र से पूर्व जन्मों की स्मृति दिलाने वाला दुर्लभ ज्ञान प्राप्त होगा।

ज्ञान-भूमियाँ

राजयोगसंहिता में सात ज्ञान-भूमियाँ वर्णित हैं—ज्ञानदा, संन्यासदा, योगदा, लीलोन्मुक्ति, सत्यदा, आनन्ददा और परात्परा। ज्ञानदा नामक ज्ञानभूमि में ज्ञात और ज्ञातव्य दोनों की अनुभूति रहती है, संन्यासदा में—जो त्याज्य था वह मैंने त्याग दिया, यह भाव पुष्ट रहता है। योगदा प्रत्याशक्ति अनुभव से लब्ध है, यह सब महामाया का विलास मात्र है, इसमें मेरी यत्किञ्चित् भी अभिलाषा नहीं हैं (यह सब माया का खेल है—इससे मेरा मेल नहीं) लीलोन्मुक्ति में इस भाव की परिपुष्टि है। सत्यस्वरूप ब्रह्म का अनुभव—यह सत्यदा की स्थिति है और मैं अद्वितीय, विकारशून्य सच्चिदानन्दघन ब्रह्म हूँ—यह सुदृढ़ ब्रह्मनिष्ठा ही परात्परा नामक ज्ञानभूमि है।

जल विश्व की औषधि है

जल के मध्य में सम्पूर्ण ओषधियों क़ा निवास है, यह मेरे लिए (मन्त्रद्रष्टा ऋषि) सोम देवता ने कहा है। इन जलों में सम्पूर्ण विश्व का कल्याण करने वाला अग्नि भी

दानाद्भोगमवाप्नोति सौख्यं तीर्थस्य सेवनात्।
सुभाषणात् परे लोके विद्वांश्च धर्मवित्तमः।। (गरुडपु. २.१४.१८)

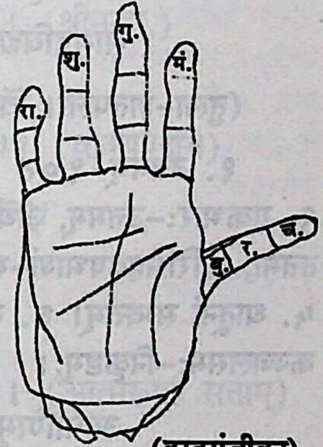
हस्ते ग्रहाः

रविरङ्गुष्ठमध्यस्थः तन्नखं चन्द्रमाः स्फुटः।
मङ्गलस्तर्जनीशीर्षे नृपासनगतो बुधः।।

लक्ष्म्यां गुरुः कविर्गौर्यां कनिष्ठायां शनिः स्मृतः।
हस्तपृष्ठे राहुकेतू चैवं वारास्तथा ग्रहाः।।

(हस्तसंजीवन)

कनिष्ठांगुलिदेशात्तु रेखा गच्छति मध्यमाम्।
अविच्छिन्ना तु रेखा स्यात् अशीत्यायुर्विनिर्दिशेत्।।



(हस्तसंजीवन)

रहता है। सोम ने जलों से भी कहा—तुम संसार की ओषधि हो, तुममें सम्पूर्ण ओषधियों का निवास है।

दान से उत्तम भोगों की प्राप्ति

दान करने से उत्तम भोगों की प्राप्ति होती है, तीर्थों का सेवन करने से सर्वविध सुख की प्राप्ति होती है और धर्मवेत्ता विद्वान् शास्त्राभ्यास व व्यवहारकाल में शब्दों के सुष्ठु प्रयोग से अमृतत्व को प्राप्त करता है।

हस्ततल में ग्रह-वार स्थिति

अंगूठे के मध्य पर्व पर रवि स्थित है और उससे ऊपर चन्द्रमा है, तर्जनी के शीर्ष पर्व पर मङ्गल, नृपासन पर बुध अवस्थित है, अंगुष्ठ का मूल पर्व नृपासन कहलाता है। मध्यमा का शीर्ष पर्व लक्ष्मीसंज्ञक है—वहाँ गुरु का वास है, गौरीस्थानीय अनामिका के उच्च पर्व पर शुक्र और कनिष्ठा पर्वस्थित शनि हैं हाथ-कर तल के पृष्ठ भाग में राहु-केतु का स्थान है।

रेखा द्वारा अस्सी वर्ष की आयु का निर्देश

कनिष्ठ अंगुली के मूल से मध्यमा मूल पर्यन्त यदि अविच्छिन्न रेखा गमन कर रही है तो वह मनुष्य की अस्सी वर्ष की आयु होने का निर्देश करती है।

सामुद्रम् (वृहत्संहिता-६८-१)

उन्मानमानगतिसंहतिसारवर्ण -

स्नेहस्वरप्रकृतिसत्त्वमनूकमादौ।

क्षेत्रं मृजां च विधिवत्कुशलोऽवलोक्य,

सामुद्रविद्वदति यातमनागतं वा।।

(तुला-शतपला। विंशतितुला-भारः)

१. उत्तमम्-१०८ अंगुलम्, मध्यमम्-१०० अंगुलम्, निकृष्टम्-९० अंगुलम्। २. एकभारः-उत्तमम्, अर्धभारः-मध्यमम्, ततोनम्-निकृष्टम्। ३. गतिः-हंसगृद्धशुकानां-उत्तमा, करिसिंहवृषभाषां-मध्यमा, कृकलासशशमृगाणाम्-अधमा। ४. अंगानां सुघटनम्। ५. धातूनां सम्क्तम्। ६. कमलकिंजल्कवर्णः-उत्तमः, समवर्णः प्रियंगुपुष्पसमः-मध्यमः, कज्जलसमः-निकृष्टमः।

आपाणिमूलभागात् निःसृत्याङ्गुष्ठतर्जनीमध्ये।

आद्या भवन्ति तिस्रो गोत्रद्रव्यायुषो रेखाः।। (सामुद्रिकशा. १४३)

सामुद्रिक शास्त्रज्ञ के प्रथमतः ज्ञातव्य विषय

सामुद्रवित् को चाहिए कि सबसे पहले कुशलतापूर्वक उन्मान, मान, गति, संहति, सार, वर्ण, स्नेह, स्वर, प्रकृति, सत्त्व, अनूक, क्षेत्र और मृजा को विधिवत् देखकर भूत-भविष्य का कथन करे।

एक सौ आठ अंगुल का उन्मान उत्तम है, सौ अंगुल का मध्यम और नब्बे अंगुल का निकृष्ट। एक भार मान उत्तम, आधा भार मध्यम और आधे से भी कम भार निकृष्ट। सौ पल की एक तुला होती है और बीस तुला का एक भार होता है। हंस, गृद्ध और शुक की गति उत्तम; हाथी, सिंह और वृषभ की गति मध्यम और कृकलास (गिरगिट), शश (खरगोश) व मृग की गति अधम। अंगों के सुन्दर गठन को संहति कहते हैं। धातुओं की अपेक्षित समता का नाम सार है। कमल-किञ्जल्क जैसा वर्ण उत्तम है, प्रियंगु पुष्प सदृश वर्ण मध्यम और कज्जल जैसा वर्ण निकृष्ट माना गया है।

गोत्र, द्रव्य और आयुरेखा

पाणि-मूल से निकल कर अंगुष्ठ और तर्जनी मध्य तक जाने वाली जो तीन रेखाएँ होती हैं वे क्रमशः गोत्र, द्रव्य और आयुरेखा के रूप में ख्यात हैं। आयुरेखा से अनामिका

आयुर्लेखानामङ्गुलिमूलान्तर्गता भवेदूर्ध्वा।
यस्य व्यक्ता रेखा स धर्मरतो नरः सततम्।। (,, १६३)

जातश्रद्धो मत्कथासु निर्विण्णोऽन्येषु कर्मसु।
वेद दुःखात्मकान् कामान् परित्यागेऽप्यनीश्वरः।
ततो भजेत मां प्रीत्या श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः।। (श्रीमद्भा.)

सत्यं वस्तु तदाकारैरसत्यैरवधार्यते।
असत्योपाधिभिः शब्दैः सत्यमेवाभिधीयते।। (वाक्यपदीये)

यत्र द्रष्टा च दृश्यं च दर्शनं चाविकल्पितम्।
तस्यैवार्थस्य सत्यत्वमाहुस्त्रयन्तवेदिनः।।

विकारापगमे सत्यं सुवर्णं कुण्डले यथा।
विकारापगमो यत्र तामाहुः प्रकृतिं पराम्।। (आत्मरूपां सत्ताम्)

के मूल तक ऊपर जाने वाली रेखा से यह व्यक्त होता है कि वह मनुष्य निरन्तर धर्म में तत्पर रहने वाला होता है।

श्रद्धालु होकर भगवान् की भक्ति करे।

दुःखात्मक कामनाओं के परित्यागपूर्वक अन्य समस्त कर्मों के प्रति उदासीन होकर दृढ़ निश्चयी श्रद्धालु साधक प्रीति-प्रसन्नतापूर्वक मेरा भजन करे।

विकार के दूर होते ही सत्य का प्राकट्य

सत्य वस्तु को तदाकार असत्य पदार्थों के द्वारा अवधारित करना चाहिए, क्योंकि असत्योपाधियुक्त शब्दों से ही सत्य को कहा जाता है। जहाँ द्रष्टा, दृश्य और दर्शन—ये तीनों ही कल्पित हैं—जहाँ यह त्रिपुटी समाप्त हो जाती है, उसी अर्थ को वेदान्तवेत्ता सत्य कहते हैं।

कर्ता, करण और क्रिया

विकार के दूर होते ही सत्य प्रकट हो जाता है जैसे स्वर्ण का विकार कुण्डलाकृति के नष्ट होते ही सत्यस्वरूप स्वर्ण सत्ता विद्यमान रहती है। जहाँ विकारों का विनाश है उसको परा प्रकृति अर्थात् आत्मसत्ता कहा जाता है, अर्थात् नामरूपादि उपाधियों के हट जाने से पराप्रकृति-रूप आत्मसत्ता रह जाती है।

**अनामिकापर्व यदा विलङ्घ्यते कनिष्ठिकाग्रेण शतं स जीवति।
समे त्वशीतिं विषमे तु सप्ततिं पर्वार्धहीने खलु षष्टिमादिशेत्।।**

पुष्पकोशे आमोद इव। सागरे महोर्मिरिव। आदित्ये रश्मिजालमिव। मनो ब्रह्मणि। कनके केयूरादयः। पावके ज्वालापंक्तिः।

जगद्विवर्तभावेन, केवलं ब्रह्म जृम्भते।
(योगवाशि.नि.पू. ११३)

ब्राह्मं तथेदं विततं, मनोराज्यं विराजते।
(योगवाशि.नि.पू. ११४)

अनामिका और कनिष्ठा से आयु का ज्ञान

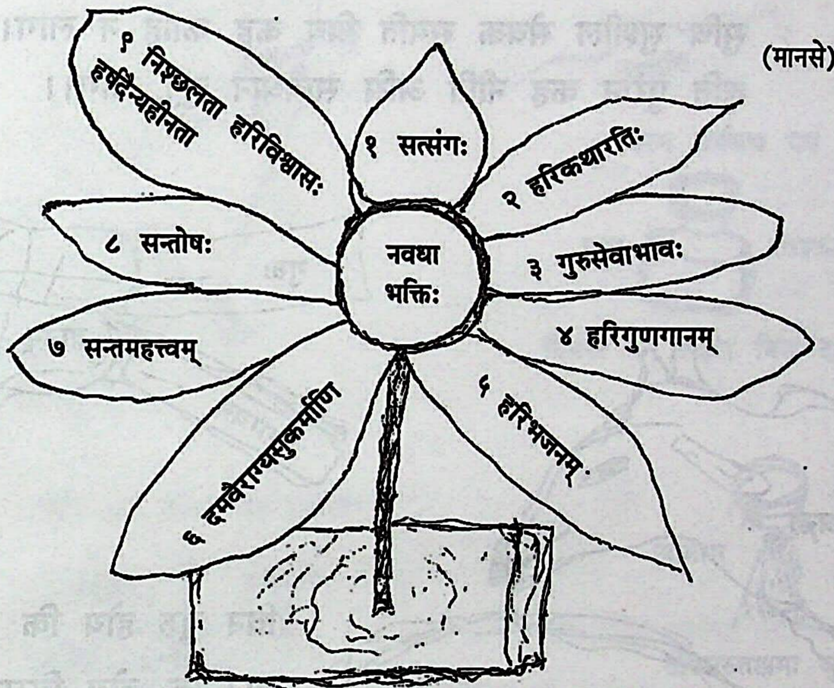
कनिष्ठिका अंगुली के अग्रभाग से अनामिका का पर्व स्थान ऊपर उठा हो तो वह व्यक्ति सौ वर्ष जीता है, समान हो तो अस्सी वर्ष, विषम अर्थात् सम से नीचे हो तो सत्तर वर्ष और पर्वार्ध से भी हीन होने पर मनुष्य की आयु साठ वर्ष की होती है।

निर्मल चिन्मय ब्रह्म ही विवर्तभाव से जगत् रूप से भासित है

यह जगत् विवर्तभाव से ही मिथ्या प्रतीत हो रहा है, जब कि है यह ब्रह्म ही। एक, आद्यन्तरहित, परम निर्मल, चिदाकाश परमात्मा ही सत्य वस्तु है। विवर्तभाव से ही यह जगत् सत्य प्रतीत होता है। उसकी सत्यप्रतीति में एकमात्र अज्ञान ही कारण है। जबकि सर्वत्र वह विज्ञानानन्दघन परमात्मा उसी प्रकार प्रकाशित हो रहा है जिस प्रकार समुद्र की चञ्चल तरंगों में जल।

परब्रह्म से ही संकल्पविकल्पात्मक यह समष्टि मन उत्पन्न हुआ। वह उस परब्रह्म में स्थित हुआ ही भिन्न-भिन्न कल्पनाओं का निमित्त बन कर मनोराज्य में विराजमान है। जैसे फूलों में सुगन्ध, सागर में बड़ी-बड़ी तरंगें, सूर्य में किरणें स्वाभाविक ही रहती है वैसे ही ब्रह्म में मन भी स्वाभाविक ही रहता है।

जो पुरुष इन किरणों की आदित्य से अलग भावना करता है, उसके लिए ये किरणें आदित्य से अलग ही हैं, उसकी दृष्टि में सुवर्ण से पृथक् ही केयूर प्रतीत होता है, क्योंकि उसकी भावना में केयूर सुवर्ण नहीं है। जिसने तरंग की जलभिन्न रूप से भावना की उसमें तरंगबुद्धि ही स्थित रहती है, जलबुद्धि नहीं। ज्वालापङ्क्ति अग्नि से भिन्न है, जो पुरुष ऐसी



भक्तिवन्त अति नीचहु प्राणी। मोहि परम प्रिय असि मम वाणी।

भावना करता है उसे अग्निबुद्धि उत्पन्न नहीं होती, केवल ज्वालाबुद्धि ही रहती है। किन्तु ज्वाला की पंक्ति अग्नि से भिन्न नहीं है, इस प्रकार जो भावना करता है उसको केवल अग्निबुद्धि ही रहता है और उसे निर्विकल्पक कहा जाता है, जो निर्विकल्प है उसने प्राप्तव्य वस्तु परमात्मा को प्राप्त कर लिया।

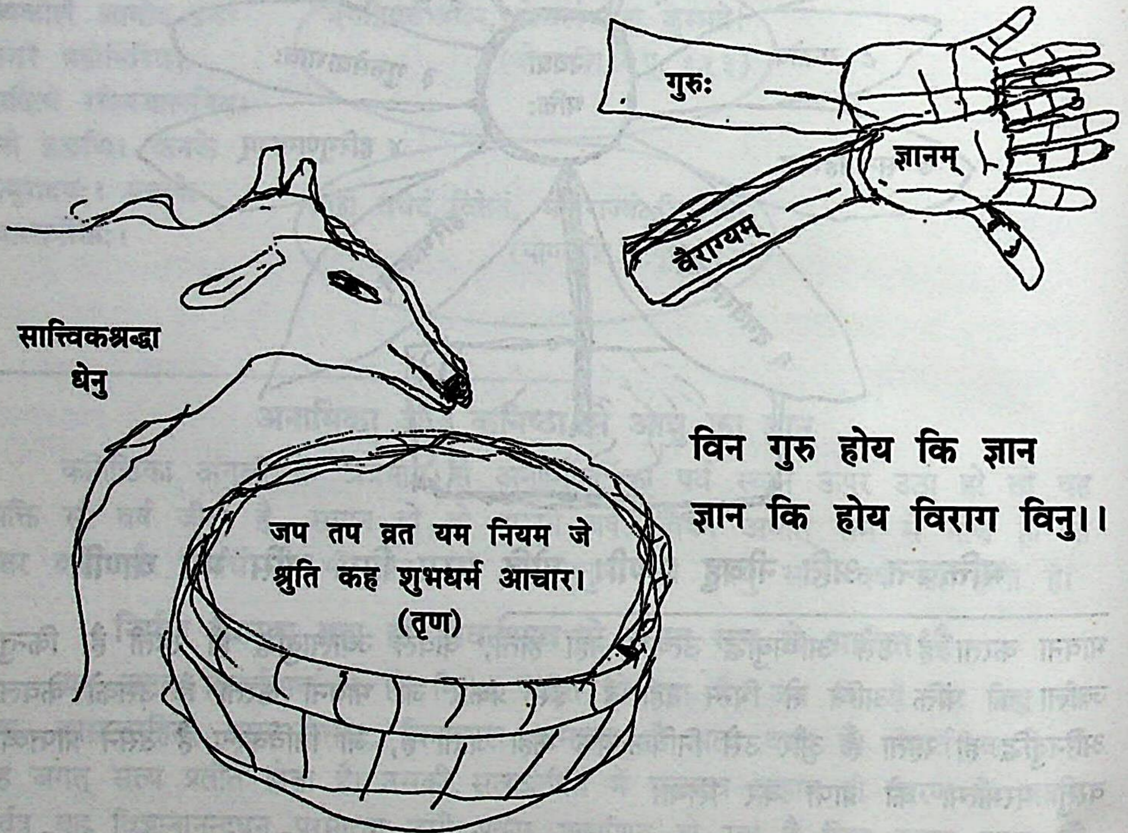
ब्रह्म ही जगत् के रूप में वृद्धि को प्राप्त हो रहा है, इसलिए उस ब्रह्म से भिन्न कुछ भी नहीं है। जगत् परब्रह्म-स्वरूप है—इस प्रकार की भावना करने पर यह दृश्यमान जगत् ब्रह्म में विलीन हो जाता है।

मानस में नवधा भक्ति

चित्र में नव-दल-कमल के माध्यम से नौ प्रकार की भक्ति का स्वरूप प्रतिपादित किया गया है। भगवत्प्राप्ति में सहायक भक्ति का प्रथम भेद सत्संग है, दूसरा भेद भगवान् की लीला-कथाओं के श्रवण में अत्यन्त रुचि, इसी प्रकार क्रमशः—गुरुसुश्रूषापूर्वक अमान भावना, हरिगुणगान, हरिभजन, दम, वैराग्य और सत्कर्म, सन्त महत्त्व, सन्तोष, भगवान् में दृढ़ विश्वास और हर्ष व दैन्य की शून्यता तथा निश्छलता।

भगवान् कहते हैं कि अत्यन्त नीच प्राणी भी यदि मेरी भक्ति से युक्त है तो वह

सुचि सुशील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग।
श्रुति पुरान कह नीति असि सावधान सुनु काग।।



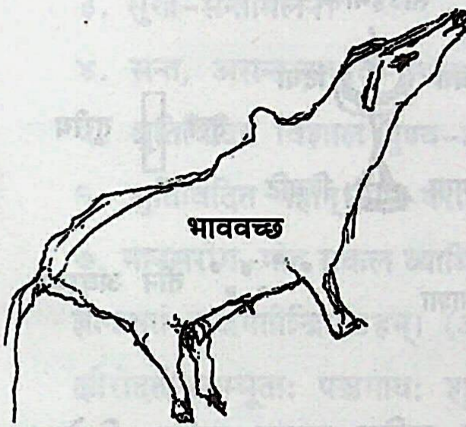
मुझे परम प्रिय है। पवित्र, सुशील और सुन्दर मति से युक्त सेवक किस स्वामी को अच्छा नहीं लगता।

गुरु, ज्ञान और वैराग्य

ज्ञान के दो जनक हैं—गुरु और वैराग्य। जब तक शिष्य पर गुरु की कृपा नहीं होगी तक तक ज्ञान की प्राप्ति सम्भव नहीं, यदि ज्ञान में वैराग्य का अभाव है तो वह ज्ञान टिकने वाला नहीं है, अतः वैराग्य के बिना भी ज्ञानोत्पत्ति नहीं होती।

सात्त्विक-श्रद्धारूपी गौ

गुणभेद से श्रद्धा भी तीन प्रकार की है, जिसमें सात्त्विक-श्रद्धा सर्वश्रेष्ठ और पवित्र है। यहाँ चित्र में सात्त्विक श्रद्धा को धेनु के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह धेनु तृणरूप





परम धर्ममय पय



पात्र विश्वास

निर्मल मन अहीर निज दास

धृति सम जामन देइ जमावै।



तोषमरुतक्षमा जुड़ावै।



नवनीत विमल विराग

शुभ अशुभ कर्म

योग अग्नि

से जप, तप, व्रत, यम, नियम, श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त शुभ धर्मों का आचरण ही ग्रहण करती है, इनसे अतिरिक्त वह संसार के समस्त पदार्थों की ओर से मुख फेर लेती है, उन्हें कदापि ग्रहण नहीं करती क्योंकि जपादि के सेवन से ही सत्यस्वरूप गोपाल श्रीकृष्ण से अभिरक्षणपूर्वक सान्निध्य प्राप्त होता है।

ज्ञान—घृत

पूर्वोक्त जप, तप, व्रत आदि का सतत सेवन करने वाली सात्त्विक श्रद्धारूपा धेनु हो, निर्मल भाव ही बछड़ा हो, निवृत्ति रूपी रज्जु बिना बन्धन के दूर स्थित हो, विश्वास के पात्र में परम धर्ममय दुग्ध का दोहन करने वाला निर्मल मनरूपी अहीर नियन्त्रण में रहने वाला हो। उस दूध को निष्कामरूपी अग्नि पर गर्म करे, क्षमा से समन्वित संतोष रूपी शीतल वायु से दूध को ठण्डा करके धृति और समता का जामन लगाकर जमा दे, वह दूध दिव्य दधि के रूप में परिणत हो जायेगा। फिर उस दधि का विचाररूपी मथानी पर मुदिता और सत्य की नेति से दमरूपी दधिपात्र (मटका) में मन्थन करे। फिर नवनीत

ज्ञान घृत  बुद्धि सिरावै
ममता मल जरि जाइ।

सोऽहमस्मि





तीन गुण



तव भवमूल भेद भ्रम नाशा



कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन विवेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक।।

सप्त प्रश्न–रा.च. मानस

१. सबते दुर्लभ शरीर–नर तन। २. बड़ दुःख–दरिद्र।

(मक्खन) रूपी विमल विराग को शुभाशुभ कर्मरूप ईंधन के जलने से प्रदीप्त हुई योगाग्नि में तपावे, फलतः ममतारूपी मल के जल जाने पर बुद्धि के द्वारा शीतल किया गया ज्ञान-घृत प्राप्त हो जायेगा। इस अद्भुत तथ्य को चित्र द्वारा प्रतिपादित किया गया है।

दिव्य दीपक

समतारूपी दीपाधार दीवट पर चित्तरूपी दीपपात्र में तुरीयावस्थारूपी रूई की बत्ती बनाकर, इस दिव्य दीपक को जलाने पर चित्त की वृत्तियों का परम प्रकाशस्वरूप पूर्ण ब्रह्म परमात्मा से तादात्म्य स्थापित हो जायेगा। फलतः आत्मानुभवरूप आनन्दमय परम प्रकाश की सम्प्राप्ति से भवबन्धनमूलक भेद और भ्रमात्मक अज्ञान का विनाश होगा। यद्यपि यह सब कहना और समझना कठिन है और विवेक की प्राप्ति के साधन भी कठिन हैं। यह सुगम भी हो जाये तो घुणाक्षर-न्याय से पुनः अनेक प्रत्यूह-बाधक तत्त्वों के आगमन की सम्भावना बनी रहती है।

रामचरितमानस के सात प्रश्नोत्तर

१. सब से दुर्लभ शरीर क्या है?
—सर्वोत्तम और सबसे दुर्लभ यह नर तन है।

२. बड़ा दुःख क्या है?
—सबसे असहनीय दुःख दरिद्रता (निर्धनता) है।

३. सुख–सन्तमिलन।

४. सन्त, असन्तस्वभाव–परोपकार-सन्तस्वभाव। पर अपकार-असन्तस्वभाव।

५. श्रुतिविदित विशाल पुण्य–अहिंसा।

६. श्रुतिविदित महान् अघ-परनिन्दा।

७. मानसरोग–मोह सकल व्याधि कर मूला। काम–वात। कफ–लोभ। क्रोध-पित्त

ज्ञानामृतं शुद्धमतीन्द्रियोऽहम्। (अवधूत गी.१)

क्षीरोदतोयसम्भूताः पञ्चगावः शुभाः–नन्दा सुभद्रा सुरभिः सुशीला बहुला।
(भविष्यपु.)

---

३. सुख क्या है?

—इस जगत् के भ्रम में भटकते हुए प्राणी का सही मार्ग का उपदेश करने वाले सन्त से मिलन हो जाय—यही सुख है।

४. वेदोक्त सबसे बड़ा पुण्य क्या है?

—सबसे बड़ा पुण्य कर्म अहिंसा (मन, वाणी, कर्म से हिंसा न करना) है।

५. सन्त और असन्त के स्वभाव में भेद क्या है?

—सन्त का स्वभाव दूसरों का उपकार करने वाला होता है और दूसरों का अपकार करना ही असन्त का स्वभाव है।

६. पाप क्या है?

—दूसरों की निन्दा करते रहना की अघ (पाप) है।

७. मानसिक रोग क्या है?

—मोह सबसे बड़ा मानसिक रोग है जो समस्त व्याधियों का मूल है। काम (वात), लोभ (कफ) और क्रोध (पित्त)—ये मानसिक रोगों के अन्तर्गत ही आते हैं।

आत्मस्वरूप

देहाध्यासविरहित होकर इस भाव में अवस्थित हो जाना कि, 'मैं शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञानामृत स्वरूप हूँ', यही आत्मस्वरूप से साक्षात्कार है।

क्षीरसागर से उत्पन्न पाँच गायें

नन्दा, सुभद्रा, सुरभि, सुशीला और बहुला—ये शोभाशालिनी पाँच गायें क्षीर सागर से समुद्भूत हुईं।

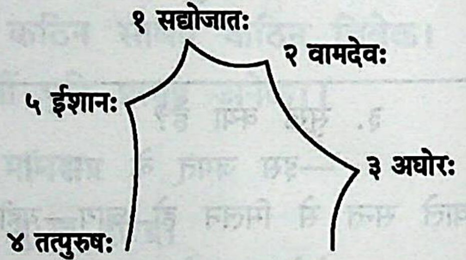
हिरण्यवर्णां[१] हरिणीं[२] सुवर्णरजतस्रजाम्[३]।
चन्द्रां[४] हिरण्मयीं[५] लक्ष्मीं जातवेदो[६] म आ[७] वह।।१।।

१. कुटज। २. मजीठ। ३. स्वर्णक्षीरी। ४. तुत्थ। ५. गन्धक। ६. पारद। ७. ताम्र। (डॉ. ना. श्रीमा. स्व. सि.)

गो-(ताण्ड्यब्राह्मणे)

गवा वै देवा असुरान् एभ्यो लोकेभ्योऽनुदन्त। तद्गोर्गोत्वम्। 'प्राणा वव देवताः' ते सप्तधाः-ऋषि-पितर-देव-असुर-गर्न्धव-मनुष्य-पशवः। सत्यं श्रीर्ज्योतिरमृतं सुराः। असत्यं पाप्मा तमो मत्युरसुंराः।

नन्दा[१] भद्रा[२] च सुरभिः[३] सुशीला[४] सुमनास्तथा[५]।
पञ्च गावो विभोर्जाताः सद्योजातादिवक्त्रतः।।
(सिद्धान्तशिखामणिः ७.४६)



हिरण्यवर्णा

यहाँ हिरण्यवर्णा—इस श्रीसूक्त के प्रथम मन्त्र का अर्थ ओषधिपरक किया गया है। हिरण्यवर्णा पद से कुटज, हरिणी पद से मजीठ, रजतस्रजा से स्वर्णक्षीरी, चन्द्रा से तुत्थ, हिरणमयी से गन्धक, जातवेद पद से पारद और आवह पद से ताम्र का ग्रहण किया गया है।

गो—महत्व

गौ के द्वारा देवताओं ने असुरों को इन लोकों से भगा दिया। यही गौ का गौरव है, जिससे असुर दूर भागते हैं। प्राण ही देवता है, जो प्राणवान् हैं वे सप्तविध हैं—ऋषि, पितर, देव, असुर, गन्धर्व, मनुष्य और पशु। इनके असुरभाव गौ से पलायित-पराभूत होते हैं। गो-सेवा, गो-दर्शन, गव्य पान से आसुरी स्वभाव नष्ट हो जाते हैं। सत्य, श्री, ज्योति और अमृत-ये सुर हैं और असत्य, पाप, तम और मृत्यु असुर पद वाच्य हैं। सर्वदेव-मयी-वेदमयी गोसेवारूप सत्य से असत्य, पुण्यश्री से पाप, ज्योति से अन्धकार, अमृत से मृत्युरूप असुर पराभव को प्राप्त होते हैं।

शिव के पाँच मुखों से उत्पन्न पाँच गायें

भगवान् शिव के सद्योजात आदि पाँच मुखों से पञ्च गायें समुत्पन्न हुईं। सद्योजात नामक मुख से नन्दा, वामदेव से भद्रा, अघोर से सुरभि, तत्पुरुष से सुशीला और ईशान नामक मुख से सुमना नाम की गौ का प्रादुर्भाव हुआ।

एकां गां धारयेन्मासं दद्यात्तस्यास्तथा यवान्।
गोमयांस्तांस्तथाश्नीयात् मासमेकमतः शुचिः।।

मासान्ते तां तथा धेनुं दद्याद्विप्राय भक्तिमान्।
व्रतमेतत्समुद्दिष्टं सर्वकल्मषनाशनम्।।

राजसूयाश्वमेधाभ्यां व्रतमेतत्तथाधिकम्।
विमानेनार्कवर्णेन ब्रह्मलोकं च गच्छति।।

विनापि गोप्रदानेन व्रतमेतन्महत्फलम्।
त्रिरात्रं सप्तरात्रं वा शक्तिं ज्ञात्वा तथा स्वकाम्।।

गवां निर्हारनिर्मुक्तैर्वृत्तिं कृत्वा तथा यवैः।
पापमोक्षमवाप्नोति पुण्यं च महदश्नुते।। (विष्णुधर्मोत्तरपु.)

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
एकरात्रोपवासश्च श्वपाकमपि शोधयेत्।।

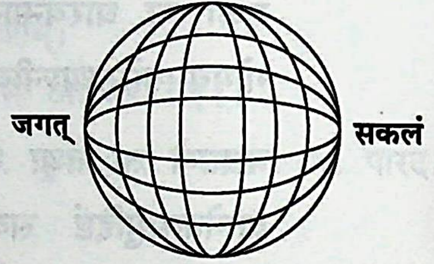
गो—व्रत

एक मासपर्यन्त गौ को यव (जौ) खिलाये, जब जौ गोबर के साथ बाहर आयें उन्हीं यवों को एक मासपर्यन्त खाये, एक मास के बाद उस गाय को भक्तिपूर्वक किसी ब्राह्मण को दान कर दे। यह जो गोव्रत का कथन किया गया है इसका आचरण समस्त प्रकार के पापों का विनाश करने वाला है। इस व्रत को करने वाला राजसूय और अश्वमेधादि यज्ञों से भी अधिक फल प्राप्त करता है और इस व्रत के प्रभाव से वह व्रती अन्तकाल के पश्चात् अर्कवर्णीय विमान के द्वारा ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है। उस गौ को ब्राह्मण को दान बिना किये भी यह फल महान् फलदायी है।

तीन रात्रि या सात रात्रि—तीन दिन या सात दिन भी जैसी अपनी शक्ति हो, अन्य कोई भी आहार न लेते हुए मात्र गोमय में से यव निकाल कर खान से समस्त पापों से विनिर्मुक्त होता हुआ मोक्ष को प्राप्त होता है, महापुण्यस्वरूप अमृत पान करता है।

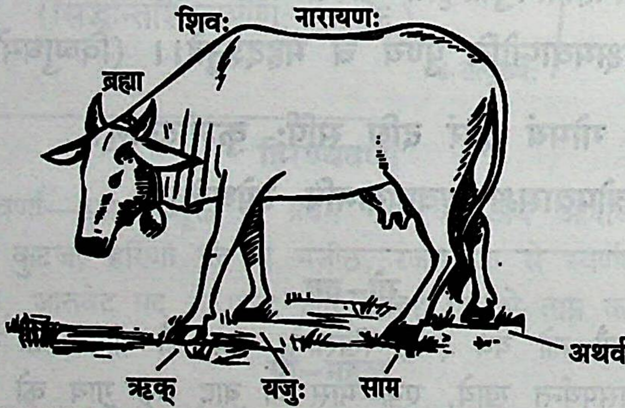
गो-मूत्र, गो-मय, गो-दुग्ध, गो-दधि, गो-घृत और कुशोदकपानपूर्वक अहोरात्र का उपवास चांण्डाल तक को शुद्ध कर देता है।

गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं वृत्तिं कुर्याच्च गोरसैः।
गोभिर्वजेच्च भुक्तासु भुञ्जीताथ च गोव्रती।।
मासेनैकेन निष्पापो गोलोकी स्वर्गगो भवेत्।।
(अग्निपु.)



देवब्राह्मणगोसाधुसाध्वीभिः धार्यते वै सदा तस्मात् सर्वे पूज्यतमा मताः।

यस्याः शिरसि ब्रह्मास्ते स्कन्धदेशे शिवः स्थितः।
पृष्ठे नारायणस्तस्थौ श्रुतयश्चरणेषु च।।
या अन्या देवताः काश्चित् तस्या लोमसु ताः स्थिताः।
सर्वदेवमया गावः तुष्येत्तद्भक्तितो हरिः।। (वृ. पराशरस्मृ.)



गो-मूत्र से स्नान, गोरस-वृत्ति, गो के चलने पर चलने वाला, गो के खा लेने पर खाने वाला गोव्रती एक मास में ही निष्पाप होकर गोलोक व स्वर्ग गमन की योग्यता प्राप्त कर लेता है।

यह जगत् पाँच के द्वारा धारित है

यह सम्पूर्ण चराचर जगत् इन पाँच—देव, ब्राह्मण, गौ, साधु और सती साध्वी पतिव्रता स्त्रियों के पातिव्रत धर्म पर आधारित है। ये उक्त पृथिवी के आधार हैं—इन पर पृथिवी टिकी हुई है। इसलिए पाँचों परम पूजनीय हैं, सदैव इनकी पूजा-वन्दना—सम्मान करना चाहिए।

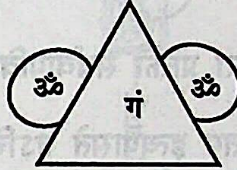
गौ के शरीर में देवताओं का वास

गौ के शरीर में समस्त देवताओं का निवास है। शिर में ब्रह्मा, स्कन्ध देश में भगवान् शिव स्थित हैं, पृष्ठ भाग में भगवान् नारायण विराजमान हैं, श्रुतियाँ-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद

यशोदा—

न सुतासि कीर्तिदायाः किन्तु ममैवेति तथ्यमाख्यामि।
प्राणिभिर्वीक्ष्य मुखं ते कृष्णस्येवेति किं त्रपसे।। (उज्ज्व.नी.म.)

सैषा गणेशविद्या। गणक ऋषिः। निचृद् गायत्री छन्दः। श्रीमहागणपतिः देवता।



नादः संधानम्

(गणपत्युपनिषत्)

धारणा–पुरुषे सर्वशास्तारं बोधानन्दमयं शिवम्। धारयेद् बुद्धिमान्नित्यं सर्वपापविशुद्धये। (जाबालदर्शनोपनि.)

और अथर्ववेद चारों पैरों में आधाररूप से स्थित हैं और अन्यान्य देवता गाय के रोमों में विद्यमान रहते हैं। इसलिए गाय देवदेवमयी है। भक्तिपूर्वक गौ की सेवा करने से भगवान् श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं। अर्थात् गो की प्रसन्नता ही श्रीहरि की प्रसन्नता है।

श्रीराधा यशोदा की सुता

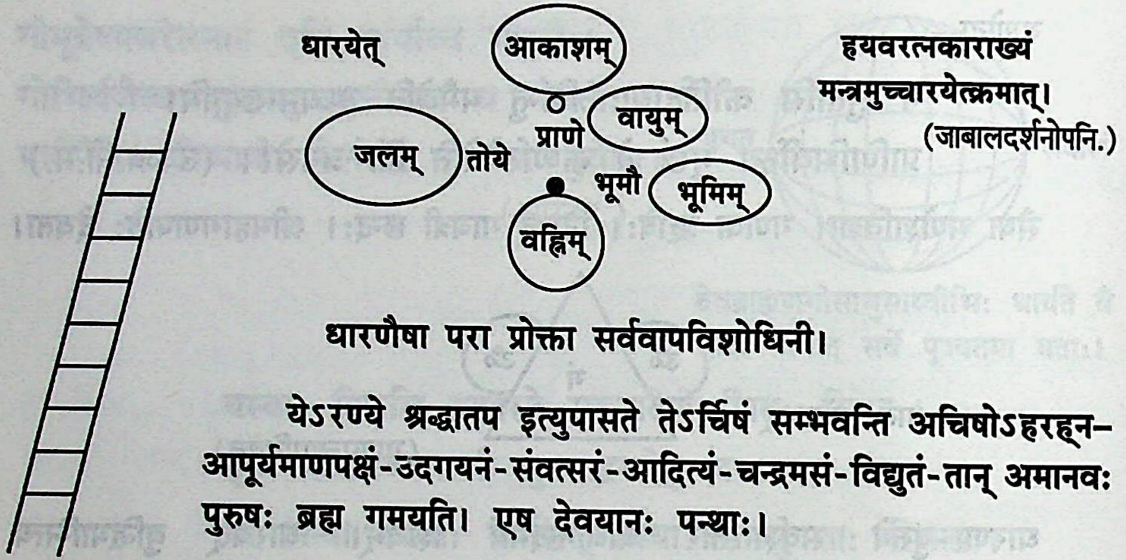
यशोदा कहती हैं कि हे राधे! तुम कीर्ति की पुत्री न होकर मेरी ही पुत्री हो, कैसे? मैं यह तथ्य बताती हूँ कि प्राणियों के द्वारा तुम्हारा मुख देखे जाने पर तुम कृष्ण को देखने के समान क्यों हो जाती हो।

गणेश-विद्या

वह ऐसी गणेश विद्या है, जिसके (इस महामन्त्र के) गणक ऋषि हैं, निचृद् गायत्री छन्द है, श्रीमहागणपति देवता हैं। इसमें पहले ग् का उच्चारण, फिर वर्णों का आदि वर्ण 'अ' इसके बाद अनुस्वार उच्चारित होता है। इस प्रकार अर्धचन्द्र से सुशोभित यह बीज ॐ कार से अवरुद्ध है। इस महामन्त्र ('ॐ गं'-गणपतये नमः) में ग कार पूर्वरूप है, अकार मध्यम रूप है, अनुस्वार अन्त्य रूप और बिन्दु उत्तररूप है, नाद सन्धान, संहिता सन्धि है। ऐसी यह गणेश-विद्या है।

सर्वपापविशोधन हेतु धारणा

धारणा समस्त पापों का विशोधन करने के लिए है। बुद्धिमान् पुरुष अन्तर्यामी पुरुष आत्मा के में सब पर शासन करने वाले रूप बोधमय, आनन्दमय एवं कल्याणस्वरूप परमात्मा की प्रतिदिन धारणा करे, इससे सब पापों की शुद्धि हो जाती है। अर्थात् ये साक्षात् पूर्ण



धारणैषा परा प्रोक्ता सर्ववापविशोधिनी।

येऽरण्ये श्रद्धातप इत्युपासते तेऽर्चिषं सम्भवन्ति अचिषोऽहरह्न-आपूर्यमाणपक्षं-उदगयनं-संवत्सरं-आदित्यं-चन्द्रमसं-विद्युतं-तान् अमानवः पुरुषः ब्रह्म गमयति। एष देवयानः पन्थाः।

ब्रह्म परमात्मा ही अन्तर्यामी आत्मा के रूप में विराजमान हैं, ऐसा निश्चय करे। इस प्रकार आत्मधारणा करते हुए अपने मन को सम्पूर्ण कलाओं से युक्त प्रणवस्वरूप आत्मा में स्थापित कर दे, साथ ही मन के द्वारा समस्त इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों से हटा कर आत्मा में संयुक्त करे।

धारणा का द्वितीय प्रकार

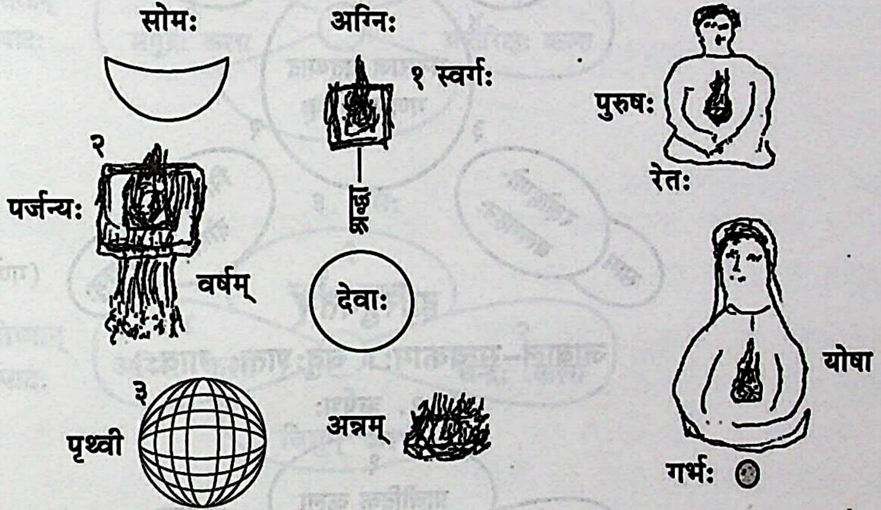
अपने शरीर के भीतर जो आकाश है, उसमें बाह्य आकाश की धारणा करे, इसी प्रकार प्राण में बाह्य वायु की, जठरानल में बाह्य अग्नि की, शरीरगत जल के अंश में ही बाह्य जलतत्त्व की तथा शरीर के पार्थिव भाग में ही समस्त पृथिवी की धारणा करे और प्रत्येक तत्त्व की धारणा के समय हं, यं, रं, वं, लं—इन बीज मन्त्रों का उच्चारण करे। यह धारणा सर्वश्रेष्ठ बतायी गयी है और समस्त पापों का नाश करने वाली है। यह भी ज्ञातव्य है कि पैर से लेकर घुटने तक का भाग पृथिवी अंश, घुटने से गुदा तक जल अंश, गुदा से हृदय तक अग्नि अंश, हृदय से दोनों भौहों के मध्य तक वायु अंश और मस्तक का भाग आकाश का अंश माना गया है। पृथिवी के भाग में ब्रह्मा, जल अंश में विष्णु, अग्नि अंश में महादेव, वायु अंश में ईश्वर तथा आकाश अंश में सदाशिव का ध्यान करे।

जीव की गति–अर्चिमार्ग, धूममार्ग और अधम स्थान

जो अरण्य में श्रद्धा और तप इनकी उपासना करते हैं वे प्राणप्रयाण के अनन्तर अर्चि के अभिमानी देवताओं को प्राप्त करते हैं। क्रमशः अर्चि अभिमानी देवताओं से दिवसाभिमानी देवताओं को, दिवस के अभिमानियों से शुक्लपक्षाभिमानी देवताओं को, शुक्लपक्षाभिमानियों



ये ग्रामे इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते–ते धूमं-रात्रिं-कृष्णपक्षं-दक्षिणायनं-पितृलोकं-आकाशं चन्द्रमसम्। तस्मिन्यावत्संपातमुषित्वा पुनर्निवर्तन्ते। जायस्व म्रियस्वेति तृतीयं स्थानम्। तानि क्षुद्राण्यसकृदावर्तीनि। (छा.उ.५)



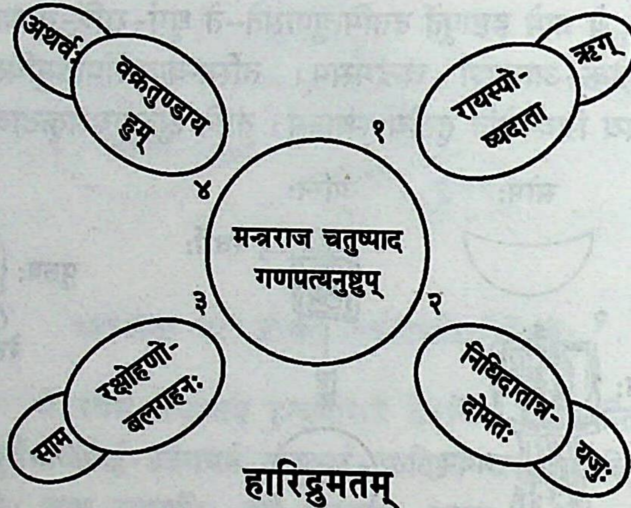
से जिन छः महीनों में सूर्य उत्तर की ओर जाता है उन छः महीनों को, उनसे संवत्सर को, संवत्सर से आदित्य को, आदित्य से चन्द्रमा को और चन्द्रमा से विद्युत् को प्राप्त होते हैं। वहाँ एक अमानव पुरुष है, वह उन्हें ब्रह्म को प्राप्त करा देता है।

जो गृहस्थ लोग ग्राम में इष्ट, पूर्त और दत्त—ऐसी उपासना करते हैं वे धूम को प्राप्त होते हैं। धूम से रात्रि को, रात्रि से कृष्ण पक्ष को, कृष्ण पक्ष से दक्षिणायन को, ये लोग संवत्सर को प्राप्त नहीं होते। दक्षिणायन के महीनों से पितृलोक को, पितृलोक से आकाश को, आकाश से चन्द्रमा को प्राप्त होते हैं। वहाँ कर्मों का क्षय होने तक रह कर वे फिर इसी मार्ग से जिस प्रकार गये थे उसी प्रकार लौट आते हैं।

तृतीय श्रेणी के ऐसे क्षुद्र जीव होते हैं जो इनमें से किसी मार्ग द्वारा नहीं जाते। वे बार-बार आने-जाने वाले प्राणी होते हैं। "उत्पन्न होओ और मरो" यही उनका तृतीय स्थान होता है।

धूममार्ग से गये प्राणी का पुनरागन

श्रद्धा-तप उपासक तो ब्रह्मलोक को प्राप्त हो जाते हैं, जिनका अर्चिमार्ग-देवयान से गमन होता है। धूम मार्ग से गये हुए इष्टापूर्त-सत्कर्मों के प्रभाव से सोम राजा चन्द्रमा पर पहुँच कर पुण्यपर्यन्त देवान्न का भक्षण कर पुनः पृथिवीलोक को पुनरावर्तित होते हैं। पहले चन्द्रलोक से आकाश को प्राप्त होते हैं, आकाश से वायु को, वायु होकर धूम होकर अभ्र बन जाते हैं।

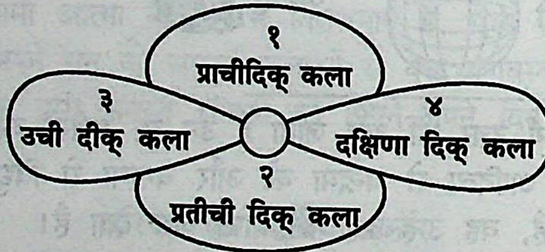


(गणेशपूर्वतापिनी १)

हारिद्रुमतम्

जाबाल–सत्यकामः। चतुःशताः गावः।

१. ऋषभः



चित्र में दिखाया गया हैं कि अभ्र से पर्जन्य (मेघ) होकर बरसता है, पृथिवी पर आकर अन्न के रूप में उत्पन्न होते हैं। यह निष्क्रमण अत्यन्त कष्टप्रद है। इस अन्न को पुरुष भक्षण करता है, अन्न से रेत (वीर्य) बनता है, उस वीर्य को स्त्री में सेचन करने से गर्भधारण होता है और उस गर्भ से जीव की इस जगत् में पुनः उत्पत्ति हो जाती है।

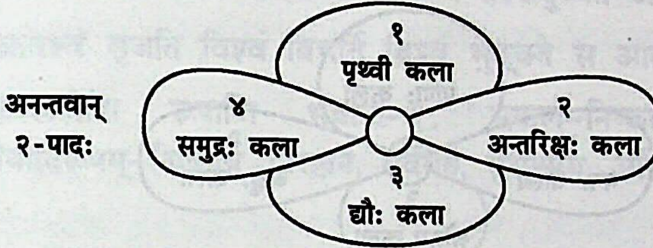
चतुष्पाद गणपति महामन्त्र

अनुष्टुप् छन्दयुक्त गणपति मन्त्रराज चार पाद वाला है। चित्र में स्पष्ट है कि रायष्पोस्य दाता. मन्त्रयुक्त ऋग्वेद उसका प्रथम पाद है, निधिदातान्नदोमतः—मन्त्र समन्वित यजुर्वेद द्वितीय पाद है, रक्षोहणो बलगहनः—मन्त्रयुक्त साम वेद तृतीय पाद है और वक्रतुण्डाय हुम्—समाहित अथर्ववेद चतुर्थ पाद है।

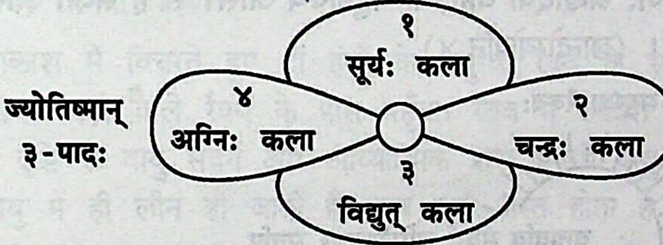
जाबाल-सत्यकाम

जाबाल ऋषि ने अपने शिष्य सत्यकाम को चार सौ कृश गौएँ देकर कहा कि वत्स! जाओ, जब ये गौएं एक हजार हो जायें तो लौट आना तब हम तुम्हें ब्रह्मोपदेश करेंगे। जब तक वे गौएँ एक सहस्र हुईं वह बहुत वर्षों तक वन में ही रहा।

२. अग्निः



३. हंसः



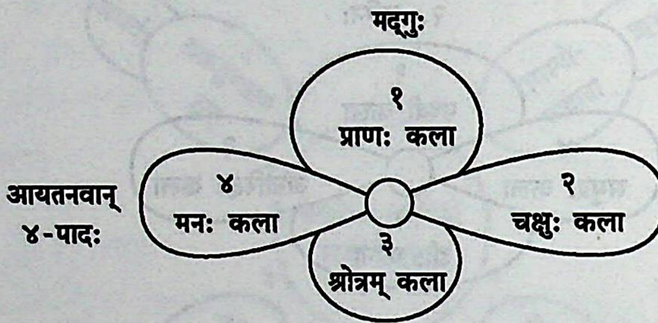
वहाँ वृषभ ने सत्यकाम को ब्रह्म के एकपाद का उपदेश किया। प्राची दिक् कला, २. प्रतीची दिक् कला, ३. उदीची दिक् कला, ४. दक्षिण दिक् कला—इन चार कलाओं वाला ब्रह्म का प्रकाशवान् पाद है। इसे जानने व वाला प्रकाशवान् होता है और प्रकाशवान् लोकों को जीत लेता है।

अग्नि द्वारा द्वितीय पाद का उपदेश

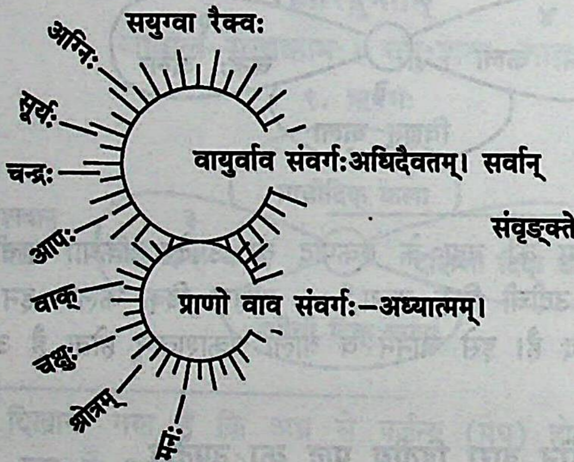
अग्नि तुम्हें दूसरा पाद बतायेगा ऐसा कहकर वृषभ मौन हो गया। गौ एक हजार संख्या में हो ही गयी थीं, सत्यकाम ने गौओं को लेकर गुरुकुल ओर चल दिया। सायंकाल होने पर गौओं को रोक कर सायंकालीन समिदाधान से निवृत्त हो अग्नि की ओर मुख करके बैठ गया। तब अग्नि ने ब्रह्म के द्वितीय पाद का उपदेश दिया—१. पृथिवी कला, २. अन्तरिक्ष कला, ३. द्युलोक (द्यौः), ४. समुद्र कला है—यह ब्रह्म का चतुष्कल पाद 'अनन्तवान्' नाम वाला है। इसको जानने वाला जो पुरुष इसकी उपासना करता है वह अनन्तवान् होता है और अनन्तवान् लोकों को जीत लेता है।

हंस द्वारा ब्रह्म के तृतीय पाद का उपदेश

अग्नि ने कहा कि सत्यकाम! तृतीय पाद तुम्हें हंस बतायेगा। गायें गुरुकुल की ओर बढ़ा दीं, सायंकाल हुआ, समिधान करके अग्नि के पश्चिम पूर्वाभिमुख होकर सत्य-काम बैठ गया। तब हंस ने उसके पास उतर कर कहा—१. अग्नि कला है, २. सूर्य कला है, ३. चन्द्र कला है, ४. विद्युत् कला है—यह ब्रह्म का चतुष्कलपाद ज्योतिष्मान्, नाम वाला है, जो इसकी



जानश्रुतिः पौत्रायणः श्रद्धादेयो बहुदायी बहुपाक्य आस। स ह सर्वत आवसथान्चक्रे सर्वत एव मेऽस्यन्तीति। (छान्दोग्योपनि.४)



उपासना करता है वह लोक में ज्योतिष्मान् होता हुआ ज्योतिष्मान् लोकों को जीत लेता है। अब मद्गु तुम्हें चौथा पाद बतायेगा—यह कह कर हंस चला गया।

मद्गु द्वारा चतुर्थपाद का उपदेश

फिर दूसरे दिन उसी क्रमानुसार सत्यकाम अग्नि के अभिमुख बैठ गया। मद्गु ने उसके पास आकर कहा सत्यकाम! १. प्राण कला है, २. चक्षु कला है, ३. श्रोत्र कला है, ४. मन कला है—यह ब्रह्म का चतुष्कलपाद 'आयतवान्' नाम वाला है। जो ऐसे गुण युक्त ब्रह्म के चतुर्थ पाद की उपासना करता है वह इस लोक में आयतवान् होकर आयतवान् लोकों को जीत लेता है।

जानश्रुति राजा को रैक्व का उपदेश-वायु और प्राण की उपासना

जानश्रुत सन्तानपरम्परा में उत्पन्न एवं उसके पुत्र का पौत्र जानुश्रुति राजा श्रद्धापूर्वक देने वाला व बहुत दान करने वाला था। उसके यहाँ बहुत सा अन्न पकाया गया था,

यस्मात्सर्वमाप्नोति सर्वमादत्ते सर्वमत्ति च तस्मादुच्यते आत्मेति। (शाण्डिल्योप.)

यश्चविश्वं सृजति विश्वं बिभर्ति विश्वं भुङ्क्ते स आत्मा।

ब्रह्मणस्त्रीणि रूपाणि भवन्ति-१. सकलं-निष्कलम्, सकलनिष्कलम्। २. दत्तात्रेयादिरूपम्-निष्क्रियं, निरञ्जनं, सर्वगतं, सुसूक्ष्मम्, अनिर्देश्यम्। ३. मूलप्रकृति-मायावान्।

उसने इस आशय से कि सब जगह लोग मेरा ही अन्न खायेंगे सर्वत्र निवास स्थान (धर्मशालाएँ) बनवा दिये।

आकाश में विचरते हुए दों हंसों के सयुग्वा रैक्व के सादृश्य का उपालम्भ वचन सुनकर राजा गाड़ी वाले रैक्व के पास पहुँचा। रैक्व ने उपदेश दिया कि दो संवर्ग हैं—अधिदैवत दृष्टि से वायु संवर्ग और आध्यात्मिक प्राण संवर्ग। वायु संवर्ग—जब अग्नि बुझती है तो वायु में ही लीन हो जाती है, जब सूर्य अस्त होता है तो वायु में ही लीन हो जाता है, जब चन्द्रमा अस्त होता है तो वायु में ही लीन हो जाता है, जिस समय जल सूखता है वह वायु में ही लीन हो जाता है। वायु ही इन सब जलों को अपने में लीन कर लेता है। यह अधिदैवत सृष्टि है।

प्राण संवर्ग—प्राण ही संवर्ग है, जिस समय पुरुष सोता है, प्राण को ही वाक् इन्द्रिय प्राप्त हो जाती है, प्राण को ही चक्षु, प्राण को ही श्रोत्र, प्राण को ही मन प्राप्त हो जाता है। प्राण ही इन सब को अपने में लीन कर लेता है। ये ही दो संवर्ग हैं; देवताओं में वायु और इन्द्रियों में प्राण।

आत्मा क्या है?

जो सब में अभिव्याप्त है, सभी को अपने स्वरूप में आत्मसात् कर ले, सभी को समेट ले अर्थात् जिससे सर्वप्राप्ति होती है, जिससे सब कुछ ग्रहण किया जाता जिससे सर्वभक्षण होता है उसको आत्मा कहते हैं। जो विश्व का सृजनकर्ता है, विश्व का भरण-पोषणकर्ता और विश्व का संहारकर्ता है, जो जगत् की तीनों अवस्था का साक्षी है वह आत्मा है।

ब्रह्म के तीन रूप

परब्रह्म परमात्मा के तीन रूप होते हैं—सकल ब्रह्म, निष्कल ब्रह्म और सकल-निष्कल ब्रह्म। चलना-फिरना ब्रह्म सकल ब्रह्म है दत्तात्रेय आदि के रूप में। निष्क्रिय, निरञ्जन, सवगर्त, अत्यन्त सूक्ष्म, अनिर्देश्य ब्रह्म निष्कल ब्रह्म है। मूल प्रकृति से युक्त ब्रह्म सकल-निष्कल ब्रह्म है।

आत्मानं सच्चिदानन्दमनन्तं ब्रह्मास्मीति ध्यायेन्विमुक्तये। (अन्नपूर्णोप. ५)

शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नरवराधिप। (श्रवणो दशरथाय) (वाल्मीकिरा. अयो. ६४)

सीतान्वेषणम्

पूर्वदिशि—**विनतो यूथपः। शतसहस्रवानरयुतः। नदी-भागीरथी, सरयू, कौशिकी, कालिन्दी, सरस्वती, कलिन्दगिरिः, सिन्धुनदः, शोणनदः, महीनदी, कालमही, शैलाः, काननानि, ब्रह्ममालदेशाः, विदेहाः, काशी, कोशलः, मागधाः, पुण्ड्रदेशः, अङ्गदेशः, कोशकारभूमिः, रजताकरा भूमिः।**

पूर्वमेतत्कृतं द्वारं पृथिव्या भुवनस्य च।
सूर्यस्योदयनं चैव पूर्वा ह्येषा दिगुच्यते।। (वाल्मीकिरा. किष्कि. ४०)

मुक्तिप्रद ध्यान

अपनी आत्मा को ऐसा मनकर कि सच्चिदानन्द, अनन्त तथा सर्वव्यापक ब्रह्म मैं हूँ—इस प्रकार साधक विमुक्ति हेतु ध्यान करे।

श्रवण का दशरथ को अपनी जाति का परिचय देना

राजन्! मुझसे ब्रह्महत्या हो गयी है—इस चिन्ता को अपने हृदय से निकाल दो। मैं वैश्य पिता द्वारा शूद्र-जातीय माता के गर्भ से उत्पन्न हुआ हूँ।

सीताजी की खोज

वानरराज सुग्रीव ने पूर्व दिशा में सीता को खोजने के लिए शत सहस्र वानरों के साथ विनत नामक यूथपति को आज्ञा देते हुए कहा—

भागीरथी गंगा, सरयू, कौशिकी, कालिन्दी (यमुना), सरस्वती, कलिन्दगिरि, सिन्धु नद, शोण नद, मही नदी, काल मही आदि नदियों के किनारे, पर्वत, कानन, ब्रह्ममाल देश, विदेश, काशी, कोशल, मागध, पुण्ड्र देश, अङ्ग देश आदि देशो में, कोशकार भूमि—रेशम के कीड़ों की उत्पत्ति के स्थानों की भूमि, रजताकार भूमि—चाँदी के खानों की भूमि आदि-आदि स्थानों पर श्रीरामचन्द्र जी की पत्नी सीता जी का अन्वेषण करो।

सूर्य के उदय का यह स्थान सबसे पहले ब्रह्मा जी ने बनाया था, अतः यही पृथ्वी एवं ब्रह्मलोक का द्वार है। ऊपर के लोकों में रहने वाले प्राणी इसी द्वार से भूलोक में प्रवेश करते हैं तथा भूलोक के प्राणी इसी द्वार से ब्रह्म लोक में जाते हैं, पहले इसी दिशा में इस द्वार का निर्माण हुआ, इसलिए इसे पूर्व दिशा कहते हैं।

दक्षिणस्यां दिशि—**नीलः हनुमान् जाम्बवान् सुषेणादयः अङ्गदप्रमुखाः। हिमालयात् पितृलोकपर्यन्तं यमस्य राजधानी तमसावृता अगम्या।** (वा.रा.कि.४१)

पश्चिमदिशि—**सुषेणः अन्ये बहवो वानराः।**

उत्तरस्यां दिशि—**शतबलिः वृतः सहस्रेण।**

शतकोटिसहस्राणि लङ्कायां किल रक्षसाम्।
अयुतानि च षट्त्रिंशत्सहस्राणि शतानि च।।
एवमाख्यातवान् वाली सह्यभिजो हरीश्वरः।।

(तारा लक्ष्मणाय) १० खरब ३ला. ९९ह. ६ सौ। (१०००००३९९६००)
(वाल्मीकिरा. किष्कि. ३५.१५)

पञ्चभ्रमाः-अन्नपूर्णोपनिषदि

१-जीवेश्वरौ भिन्नरूपौ। २. आत्मनिष्ठं कर्तृगुणं वास्तवं वा। ३. शरीरत्रय-संयुक्तजीवः सङ्गी। ४. जगत्कारणरूपस्य विकारित्वम्। ५. कारणाद् भिन्नजगतः सत्यत्वम्। तेषां निवर्तकाः पञ्च दृष्टान्ताः।

दक्षिण दिशा में नील, हनुमान्, जाम्बवान्, वानयूथपति सुषेण आदि अङ्गद प्रमुख वीरों को भेजा। हिमालय से पितृलोकपर्यन्त और यम की राजधानी जो अन्धकार से आच्छादित व अगम्य है वहाँ तक सब जगह सीता को खोज निकालने का आदेश दिया।

पश्चिम दिशा में सुषेण (पहले से अन्य वीर वानर) सहित और भी बहुत से वानरों को भेजा।

उत्तर दिशा में शतबलि नामक वीर वानर को एक लाख वानरों के साथ सब जगह सीता जी की खोज के लिए भेजा गया।

लंका में रहने वाले राक्षसों की संख्या

तारा लक्ष्मण से कहती है कि लंका में सौ हजार करोड़ छत्तीस अयुत, छत्तीस हजार, छत्तीस सौ राक्षस रहते हैं। वानर राज बाली लंका के राक्षसों की इस संख्या से परिचित थे, उन्होंने ही मुझे उनकी इस तरह गणना बतायी थी। आधुनिक गणना के अनुसार यह संख्या—दस खरब तीन लाख निन्यानवे हजार छः सौ होती है।

पाँच भ्रम

१. जीव और ईश्वर भिन्न रूप हैं। २. कर्तृत्व का भाव (गुण) आत्मा में है और

१. बिम्बप्रतिबिम्बदर्शनम्। २. स्फटिकलोहितदर्शनम्। ३. घटमठाकाशदर्शनम्। ४. रज्जुसर्पदर्शनम्। ५. कटकरुचकदर्शनम्।

निर्विकारतया वृत्त्या ब्रह्माकारतया पुनः।
वृत्तिविस्मरणं सम्यक् समाधिरभिधीयते।।
इमं चाकृत्रिमानन्दं तावत्साधु समभ्यसेत्।
लक्ष्यो यावत्क्षणात्पुंसः प्रत्यक्त्वं सम्भवेत्स्वयम्।।
ततः साधननिर्मुक्तः सिद्धो भवति योगिराट्।। (तेजोबिन्दूपनिषत्)

वास्तविक है। ३. तीन शरीरों से युक्त जीव सङ्गी है। ४. जगत् निर्माणकर्ता का रूप विकारी है। ५. कारण से भिन्न जगत् सत्य है।

पाँच भ्रमों के निवर्तक पाँच दृष्टान्त

१. ईश्वर और जीव भिन्न-भिन्न नहीं, अपितु बिम्ब प्रतिबिम्ब रूप दर्शन है।

२. जैसे स्फटिक में लोहित रंग की किसी अन्य वस्तु की प्रभा दिखायी देने लगती है वैसे ही कर्तृत्व आत्मा का गुण न होते हुए भी आत्मा में प्रतीत होने लगता है जो कि अवास्तविक है।

३. सर्वव्यापक आकाश घटाकाश और मठाकाश में एक ही है, उसका वैविध्य मान लिया जाता है वैसे ही जीव का यह त्रैविध्य औपाधिक है।

४. जगन्निर्माता को विकारी मानना रज्जु में सर्पदर्शन जैसा है जो कि मिथ्या प्रतीति है, परमात्मा तो निरवयव और निर्विकारी ही है।

५. कनक और कुण्डल एक ही हैं, भिन्न नहीं, वैसे परमात्मा और जीव का ऐक्य है।

समाधि और सिद्धि

यम नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यानपूर्वक निर्विकार वृत्ति व मैं ब्रह्म ही हूँ—इस ब्रह्माकाराकारित वृत्ति के फलस्वरूप अन्य समस्त वृत्तियों का विस्मरण ही समाधि है। समाधि की इस प्रारम्भिक अवस्था में एक आनन्द की प्रतीति होती है जो कि अकृत्रिम आनन्द है। इसका तब तक अभ्यास किया जाय जिस क्षण (समय) तक लक्ष्यप्राप्ति—अद्वय सिद्धि नहीं हो जाती। फिर वहाँ आनन्द की अनुभूति नहीं होती। अपितु वह आनन्दमय हो जाता है इसके बाद साधन की आवश्यकता नहीं रहती, साधन-विनिर्मुक्त होता हुआ योगिराज सिद्ध हो जाता है।

शमो निरीहावस्थायां स्वात्मविश्रामजं सुखम्। (साहित्यदर्पणम् ३)

रतिर्मनोऽनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणायितम्।

अलक्ष्यवाक्प्रलापः स्यात् चेतसो भ्रमणाद् भृशम्।।

दानवीरः परशुरामः—

त्यागः सप्तसमुद्रमुद्रितमहीनिर्व्याजदानावधिः।

धर्मवीरः युधिष्ठिरः—

राज्यं च वसु देहश्च भार्या भ्रातृसुताश्च ये।

यच्च लोके ममायत्तं तद्धर्माय सदोदितम्।।

शान्तः शमस्थायिभाव उत्तमप्रकृतिर्मतः।

कुन्देन्दुसुन्दरच्छायः श्रीनारायणदैवतः।।

शम

निस्पृह (निरीह) अवस्था में जीव के परमात्मा में होने वाले विश्राम से उत्पन्न सुख को 'शम' कहते हैं।

रति

मन के अनुकूल पदार्थ में मन की तत्परता को रति कहते हैं।

प्रलाप

चित्त की अत्यन्त अस्थिरता से विषयरहित वचन को प्रलाप कहते हैं।

दानवीर परशुराम

सात समुद्रों से वेष्टित पृथिवी को निश्छल भाव से दान कर देना परशुराम के त्याग की सीमा है।

धर्मवीर युधिष्ठिर

धर्मवीर युधिष्ठिर कहते हैं कि, राज्य, धन, शरीर, पत्नी, भाई और पुत्र आदि लोक में जो मेरे अधीन हैं, वे सब धर्म के लिए सदा तैयार हैं।

शम शान्त रस का स्थायी भाव

शान्त रस में स्थायी भाव 'शम' है, उत्तम जन इसका आश्रय होता है। कुन्द पुष्प और चन्द्रमा के समान इसकी कान्ति सुन्दर होती है, इसके देवता श्रीनारायण हैं।

न यत्र दुःखं न सुखं न चिन्ता न द्वेषरागौ न च काचिदिच्छा।
रसः स शान्तः कथितो मुनीन्द्रैः सर्वेषु भावेषु समप्रमाणः।। (नागानन्दे)

वृत्तीनां विश्रान्तेरभिधा[1]तात्पर्य[2]लक्षणाख्यानाम्।
अङ्गीकार्या तुर्या वृत्तिर्बोधे रसादीनाम्।।

१. पदार्थः २. वाक्यार्थः (साहित्यद. ५)

नानुमानं रसीदानां व्यङ्ग्यानां बोधनक्षमम्।
आभासत्वेन हेतूनां संवृतिर्न च रसादिधीः।।

सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः।
वेद्यान्तरसंस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः।।
लोकोत्तरचमत्कार-प्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः।
स्वाकारवदभिन्नत्वे नायमास्वाद्यते रसः।।

शान्त रस

जिसमें न दुःख, न सुख, न चिन्ता, न द्वेष, न राग और न किसी प्रकार की इच्छा ही रहती है। अतः समस्त पदार्थों में तुल्य प्रतीति वाले उसको भरत आदि मुनीन्द्रों ने 'शान्त रस' कहा है।

व्यञ्जना वृत्ति

अभिधा, लक्षणा और तात्पर्य नाम की वृत्तियों के अपने-अपने अर्थ का बोधन कर 'शब्दबुद्धिकर्मणां विरम्य व्यापाराभावात्—इस नियम से विश्रान्त होने पर वस्तु, अलङ्कार और रसरूप व्यङ्ग्य अर्थ का बोध करने के लिए व्यञ्जना नाम की चौथी वृत्ति को स्वीकार करना चाहिए।

अनुमान से रस आदि पदार्थों का बोध नहीं होता

हेतुओं का व्यभिचार आदि दोष से युक्त होने से अनुमान (व्याप्तियुक्त पक्षधर्मता का ज्ञान) रस आदि व्यङ्ग्य पदार्थों का प्रतिपादक नहीं हो सकता है। इसी तरह स्मृति (संस्कार मात्र जन्य ज्ञान) भी हेत्वाभास होने से रसादि व्यङ्ग्य पदार्थों का बोध कराने में असमर्थ है।

रस के स्वरूप का कथन और आस्वादन—प्रकार

सत्त्व गुण के आधिक्य से अखण्ड, स्वतः प्रकाश वाला, आनन्दमय, चिन्मय-ज्ञान स्वरूप, दूसरे वेद्य पदार्थों के सम्पर्क से शून्य, ब्रह्मसाक्षात्कार के सदृश, अलौकिक चमत्कार

रजस्तमोभ्यां स्पृष्टं मनः सत्त्वमिहोच्यते।

ततः सम्मिलितः सर्वो विभावादिःसचेतसाम्।
प्रपानकरसन्याया चर्व्यमाणो रसो भवेत्।।

न्यक्कारो ह्ययमेव मे यदरयस्तत्राप्यसौ तापसः
सोऽप्यत्रैव निहन्ति राक्षसकुलं जीवत्यहो रावणः।
धिग्धिक्छक्रजितं प्रबोधितवता किं कुम्भकर्णेन वा
स्वर्गग्रामटिकाविलुण्ठनवृथोच्छूनैः किमेभिर्भुजैः।।

(रावणस्येर्ष्याजन्यो निर्वेदः, सा.द.)

स्वरूप प्राण वाला रस कुछ रसज्ञ विद्वानों के द्वारा अपने आकार के समान अभिन्न रूप से आस्वादन किया जाता है।

सत्त्व—रजोगुण और तमोगुण से अस्पृष्ट मन को सत्त्व कहते हैं।

रस आस्वाद से अतिरिक्त नहीं है, आस्वादस्वरूप ही है। रसः आस्वाद्यते—रस का आस्वादन किया जाता है, ऐसा न मानकर कर्मकर्ता में रसः आस्वाद्यते-स्वयमेव आस्वाद्यते—रस स्वयं ही आस्वादित होता है यह मानना चाहिए।

विभावादि की एक रस के रूप में परिणति

विभाव, अनुभाव और सञ्चारी भाव रस निष्पत्ति में पृथक्-पृथक् कहे अवश्य जाते हैं, किन्तु वे सब विभावादि सम्मिलित होकर प्रपाणक रस (प्रपाणक रस न्याय से) के समान सहृदयों को आस्वाद्यमान होकर रस बन जाते हैं।

जैसे मिश्री, मरीच, नीबू आदि पदार्थों को मिलाने से शर्बत में उन सम्मिलित पदार्थों से भिन्न कोई अपूर्व आस्वाद पैदा होता है, उसी तरह विभाव आदि के सम्मेलन से यहाँ भी विभाव आदि से विलक्षण रस की प्रतीति होती है।

रावण का ईर्ष्याजन्य निर्वेद

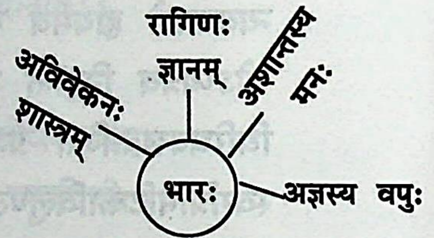
रावण कहता है—मेरे लिए शत्रुओं का होना ही तिरस्कार है, उस पर भी यह तपस्वी मेरा शत्रु है, उस पर भी यहाँ लङ्का में ही राक्षसों के कुल का विनाश कर रहा है, रावण जी रहा है—आश्चर्य है, इन्द्र को जीतने वाले मेघनाद को धिक्कार है, जगाये गये कुम्भ कर्ण से भी क्या हुआ? स्वर्गरूप छोटे से गाँव को लूटने से व्यर्थ में फूले हुए मेरे इन हाथों से भी क्या हुआ?

तत्त्वज्ञानापदीर्ष्यादेर्निर्वेदः स्वावमाननम्। (दशरूपके)

दिगीशदर्पोद्दलनान् सुरद्विषो निहन्त्यहो मानुष एष तापसः।
विकुण्ठिताः स्वर्गविलुण्ठनोद्भटा भुजाश्च मे हन्त दुरत्ययो विधिः।।

न निजं निजवद् भाति अन्तःकरणजृम्भणात्।
अन्तःकरणनाशेन संविन्मात्रस्थितो हरिः।।
(स्कन्दोपनिषत्)

विरञ्चिरूपान्मनसः कल्पितत्वाज्जगत्स्थितेः।
तावत्स्थितिरियं प्रोक्ता तन्नाशे नाशमाप्नुयात्।।
(महोपनिषत्)



(महोपनिषत्)

निर्वेद के अन्यान्य हेतु

तत्त्व-ज्ञान से निर्वेद हो जाता है, आपत्तिग्रस्तता भी निर्वेद का कारण बनती है और ईर्ष्या से निर्वेद उत्पन्न होता है। स्व की अवमानना (तिरस्कार) ही निर्वेद है।

आपत्तिग्रस्तता और ईर्ष्या से युक्त निर्वेद

इन्द्रादि दिग्पालों के दर्प का दलन करने वाले लङ्कापुरी के बलवान् राक्षसों को यह साधारण मनुष्य तापस मार रहा है। स्वर्ग के लूटने से अभिमान से इतरा रहीं ये मेरी भुजाएँ भी कुण्ठित हो रही हैं। अहो! भाग्य बड़ा ही दुरत्यय है, क्या से क्या हो गया! यह रावण के मन में निर्वेद-स्व अवमानता के भाव जागृत हो रहे हैं।

अन्तःकरण का चाञ्चल्य आत्मसाक्षात्कार में बाधक

अन्तःकरण—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार की विकारयुक्त हलचल से अपना भी अपना प्रतीत नहीं होता। (जैसे कि कीचड़ से युक्त जल में अपना प्रतिबिम्ब दिखायी नहीं देता।) अन्तःकरण के शान्त होने पर संवित्—ज्ञानरूप हरि ही स्थित रहते हैं अर्थात् अपने स्वरूप का दर्शन होने लगता है।

मन से जगत् की उत्पत्ति

ब्रह्मारूप मन की कल्पना से जगत् प्रपञ्च उत्पन्न होता है। जब तक मन में जगत् कल्पित है तभी तक जगत् की स्थिति है, मन के संकल्प का नाश होते ही इस जगत् प्रपञ्च भी नाश हो जाता है।

भारस्वरूप

अविवेकी पुरुष के लिए शास्त्र भार-स्वरूप हैं। रागी पुरुष के लिये ज्ञान भार-स्वरूप

प्रत्याहारः पञ्चविधः (शाण्डिल्योपनिषद् १)

१. विषयेभ्य इन्द्रियाणां बलादाहरणम्। २. यद्यत्पश्यति तत्सर्वमात्मैवेति। ३. नित्यविहितकर्मफलत्यागः। ४. सर्वविषयपराङ्मुखत्वं। ५. अष्टा-दशमर्मस्थानेषु क्रमाद् धारणम्।

तानि च-पादाङ्गुष्ठगुल्फजङ्घाजानूरुपायुमेढ्रनाभिहृदयकण्ठकूपतालुनासाक्षि-भ्रूमध्यललाटमूर्धास्थानानि।

धारणा त्रिविधा–१. आत्मनि मनोधारणम्। २. दहराकाशे बाह्याकाशधारणम्। ३. पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशेषु पञ्चमूर्तिधारणम्।

मूर्तयः–वामदेव-सद्योजात-अघोर-तत्पुरुष-ईशानरूपाः।

ध्यानं द्विविधम्–१. सगुणम्-मूर्तिध्यानम्। २. निर्गुणम्–आत्मयाथात्म्यम्।

है। अशान्त पुरुष के लिए मन भार-स्वरूप है और जो आत्मज्ञ नहीं है (अज्ञानी है) उसके लिए यह शरीर भार-स्वरूप है।

पञ्च प्रत्याहार

१. तत्तत् विषयों में विचरणशील इन्द्रियों को विषयों से बलपूर्वक आहरण करना (हटाना)। २. जो कुछ भी दिखायी दे रहा है वह सब आत्मा ही है—यह भाव रखना। ३. नित्य विहित कर्मों के फल का त्याग। ४. समस्त विषयों से मन की पराङ्मुखता। ५. अट्ठारह मर्म स्थानों में क्रमबद्ध धारणा। अट्ठारह मर्म स्थान—पादाङ्गुष्ठ, गुल्फ, जंघा, जानु, ऊरु, पायु, मेढ्र, नाभि, हृदय, कण्ठकूप, तालु, नासा, अक्षि, भ्रूमध्य, ललाट और मूर्ध्ना—इनमें क्रम से आरोह—अवरोह से प्रत्याहरण करे।

धारणा त्रिविधा

१. आत्मा में मन की धारणा। २. अन्तःआकाश में बाह्य आकाश की धारणा। ३. पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश पञ्च तत्त्वों में वामदेव, सद्योजात, अघोर, तत्पुरुष और ईशान रूप इन पाँच मूर्तियों की धारणा।

दो प्रकार का ध्यान

१. सगुण ध्यान, २. निर्गुण ध्यान। मूर्ति में इष्ट देव का ध्यान सगुण ध्यान है और आत्मा में परमात्मा का तादात्म्य निर्गुण ध्यान है।

समाधिः–जीवात्मपरमात्मैक्यावस्था त्रिपुटीरहिता परमानन्दरूपा शुद्धचैतन्यात्मिका।

यदि ते नेन्द्रियार्थश्रीः स्पन्दते हृदि वै द्विज।
तदा विज्ञातविज्ञेयः समुत्तीर्णो भवार्णवात्।। (महोपनि. ५.१७४)

निराशता, निर्भयता, नित्यता, समता, ज्ञता, निरीहता
निष्क्रियता, सौम्यता, निर्विकल्पता, धृतिः, मैत्री,
तुष्टिः, मृदुता, मृदुभाषिता-(१४)। (महो. ६)

हेयोपादेयनिर्मुक्ते ज्ञे तिष्ठन्त्यपवासनम्।

इदमस्तु मम-इतीच्छा प्रार्थनायुता, दुःखजन्मभयप्रदा तीक्ष्णा शृङ्खला।
(म.उ.६.५१)

समाधिलक्षण

जीवात्मा और परमात्मा की ऐक्यावस्था का नाम समाधि है। यह त्रिपुटी ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय से शून्य परमानन्दस्वरूपा शुद्ध चैतन्यात्मिका होती है।

ज्ञातव्य पदार्थ

महर्षि ऋभु निदाघ नामक मुनि बालक से कहते हैं कि हे ब्राह्मण! यदि ऐन्द्रिय विषयों का विभव तुम्हारे हृदय में स्पन्दित नहीं होता, तो तुम ज्ञातव्य पदार्थ को जानकर संसार सागर से समुत्तीर्ण हो गये। उच्च पद की प्राप्ति की अर्हता तुम्हें प्राप्त हो गयी।

हेय और उपादेय से मुक्त ज्ञानी

महर्षि ऋभु कहते हैं कि हे निदाघ! हेय पदार्थों के लिए खेद मत करो, उपादेय पदार्थों में अनुरक्त मत होओ। हेय और उपादेय दृष्टि को त्याग कर शेष में स्थित होकर सुस्थिर हो जाओ।

संसार की ओर से निराशा, निर्भयता, नित्यता, समता, अभिज्ञता, निरीहता, (निष्कामता) निष्क्रियता, सौम्यता, निर्विकल्पता, धृति, मैत्री, तुष्टि-सन्तोष, मृदुता तथा मृदुभाषिता आदि गुण वासना से विहीन तथा हेयोपादेय से मुक्त ज्ञानी पुरुष में रहते हैं।

तीक्ष्ण शृङ्खला

जो तृष्णा बाह्य विषयों की वासना से उत्पन्न होती है वह बन्धनकारक होती है और जो तृष्णा सब प्रकार के विषयों की वासना से मुक्त होती है, वह मोक्षकारक होती है।

चैत्यनिर्मुक्तचिद्रूपं पूर्णज्योतिःस्वरूपकम्।
संशान्तसर्वसंवेद्यं संविन्मात्रमहं महत्।। (म.उ. ८१)

ईश्वरस्य महामाया तदाज्ञावशवर्तिनी। तत्संकल्पानुसारिणी। विविधानन्त-महामायाशक्तिसंसेवितानन्तमहामायाजालजननमन्दिरा। महाविष्णोः कीडाशरीररूपिणी। (त्रिपाद्विभूति ३.४)

संसाराडम्बरमिदं कथमभ्युत्थितं गुरो। कथं प्रशममायाति।।

मनोविकल्पसंजातं तद्विकल्पपरिक्षयात्।
क्षीयते दग्धसंसारो निःसार इति निश्चितः।। (महोपनि.२)

'मुझे अमुक वस्तु प्राप्त हो'—इस प्रकार की प्रार्थना से युक्त इच्छा दुःख, जन्म और भय प्रदान करने वाली होती है। वह दृढ़ बन्धनरूप तीक्ष्ण शृङ्खला है।

महान् संवित्

विषयों से निर्मुक्त पूर्ण ज्योतिस्वरूप, समस्त संवेदनों से पूर्णतया मुक्त, चित्स्वरूप तथा महान् संवित् (ज्ञान) मात्र मैं हूँ। महर्षि ऋभु कहते हैं कि हे ब्राह्मण। इस प्रकार सारे संकल्पों को पूर्णतः शान्त करके और समस्त एषणाओं का परित्याग कर निर्विकल्प पद में जाकर आत्मस्थ हो जाओ।

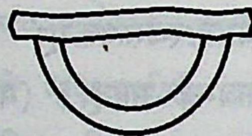
ईश्वर की महामाया

ईश्वर की महामाया ईश्वर के संकल्प के अनुसार कार्य करने वाली, विविध प्रकार की अनन्त महाशक्तियों से संसेवित, अनन्त महामायाजाल की उत्पत्तिस्थान और महाविष्णु की लीला-शरीर-रूपिणी है। वह अनिर्वचनीया और अगोचर है। जो भगवान् विष्णु का भजन करते हैं, वे इस महामाया के मोहपाश से मुक्तप्राय रहते हैं।

मन के विकल्प से संसार की उत्पत्ति

यहाँ श्रीशुकदेव प्रश्नकर्त्ता हैं और राजा विदेह उत्तरदाता हैं। हे गुरुवर! यह जागतिक प्रपञ्च कैसे उत्पन्न होता है और किस प्रकार विलीन हो जाता है?

राजा उत्तर देते हैं कि हे ज्ञानिश्रेष्ठ! मन के विकल्प से यह जगत् प्रपञ्च उत्पन्न होता है और उस विकल्प का नाश होने पर इसका नाश हो जाता है । निन्दनीय संसार असार है, यह निश्चित है।





हृदयकमल में स्थित चार नाड़ियाँ

हृदय के मध्य में मांसमय एक कमल है, जो अनेक प्रकार से विकसित है। उसके कोश में चार नाड़ियाँ है—रमा, अरमा, इच्छा और अपुनर्भवा। जैसा कि चित्र द्वारा स्पष्ट है—रमा पुण्य के द्वारा पुण्यलोक हो जाती है। अरमा पाप के द्वारा पाप की ओर (नरक) में ले जाती है। इच्छा से जो स्मरण किया जाता है, उसकी प्राप्ति हो जाती है।

अपुनर्भवा सर्वप्रथम कोश का भेदन करती है, कोश को भेदकर शीर्षकपाल का, फिर पृथ्वी का, क्रमशः जल, तेज, वायु, आकाश, मन, भूतादि, महत्, अव्यक्त, अक्षर—इन

मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी।
ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी। (देव्यथर्वशीर्षोपनि.)

महाकालीश्च विद्महे सर्वसिद्धिश्च धीमहि। तन्नो देवी प्रचोदयात्।।

भगः शक्तिर्भगवान् काम ईश उभौ दातारविह सौभगानाम्।
समप्रधानौ समसत्त्वौ समोजौ तयोः शक्तिरजरा विश्वयोनिः।।
(ॐ ह्रीमों ह्रीम्) (त्रिपुरोपनि.)

यज्जगद्भासकं भानं नित्यं भाति स्वतः स्फुरत्।
स एव जगतः साक्षी सर्वात्मा विमलाकृतिः।। (कठरुद्रोपनि.)

सबको भेदती हुई मृत्यु का भेदन करती है। मृत्यु से परे देव एकीभूत होता है। वहाँ न सत् है, न असत्, वह निर्वाण पद है।

भगवती दुर्गा

जगज्जननी पराम्बा समस्त मन्त्रों में 'मातृका'—मूलाक्षर में रहने वाली देवी हैं, शब्दों में अर्थ (ज्ञान) रूप से रहने वाली हैं, ज्ञानों में 'चिन्मयातीता' है और शून्यों में 'शून्य-साक्षिणी' हैं।

महाकाली गायत्री

तत्तत् विशिष्ट गुणों से युक्त—हम महाकाली को जानते हैं, सर्वसिद्धिस्वरूपा का हम ध्यान करते हैं; वे देवी हमें उस विषय (ज्ञान-ध्यान) में प्रवृत्त करें।

शक्ति और शक्तिमान् (शिव-शक्ति)

'भग' शक्ति है और भगरूप शक्ति से युक्त कामेश्वर सदाशिव हैं। दोनों ही समन्वित रूप से सौभाग्य प्रदाता हैं, इन दोनों में कोई एक प्रधान या अप्रधान नहीं हैं, अपितु दोनों ही समान रूप से प्रधान हैं, बल और ओज भी दोनों का समान ही है, दोनों का नित्य सम्मिलन है, दोनों की अजरा शक्ति ही विश्व के उद्भव का हेतु है।

शक्ति और शक्तिमान् का यह मन्त्रात्मक स्वरूप है—ॐ ह्रीमोम् ह्रीम्।

जगत्प्रकाशक परमात्मा

जो जगत् का प्रकाशक है, नित्य प्रकाश के रूप में अपने द्वारा ही प्रकाशक है, वही जगत् का साक्षी है और निर्मल आकृति वाला सबका आत्मा है।

तद् ब्रह्मानन्दमद्वन्द्वं निर्गुणं सत्यचिद्घनम्।
विदित्वा स्वात्मरूपेण न बिभेति कुतश्चन।।

यतिनिर्वाणम्

१. अनशनम्। २. अपां प्रवेशम्। ३. वीराध्वानम्। ४. महाप्रस्थानम् ५. वृद्धाश्रमं वा गच्छेत्।

चैतन्यं सप्तविधं भिद्यते व्यवहारतः

१. शुद्धम्–मायोपाधिविनिर्मुक्तम्। २. ईशः–मायासम्बन्धतः। ३. जीवः–अविद्यावशः। ४. प्रमाता-अन्तःकरणसम्बन्धात्। ५. प्रमाणम्–वृत्तिसम्बन्धात्। ६. प्रमेयम्-अज्ञातम्। ७. फलम्–ज्ञातं चैतन्यम्। (कठरुद्रोपनि.)

जो साधक उस द्वन्द्वरहित, निर्गुण, सत्यस्वरूप और विज्ञानघन ब्रह्मानन्द को 'यह मेरा ही स्वरूप है'—इस प्रकार जान लेता है उसे कहीं भी भय नहीं रहता।

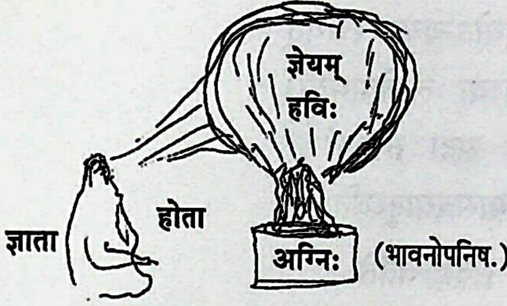
यति-निर्वाण

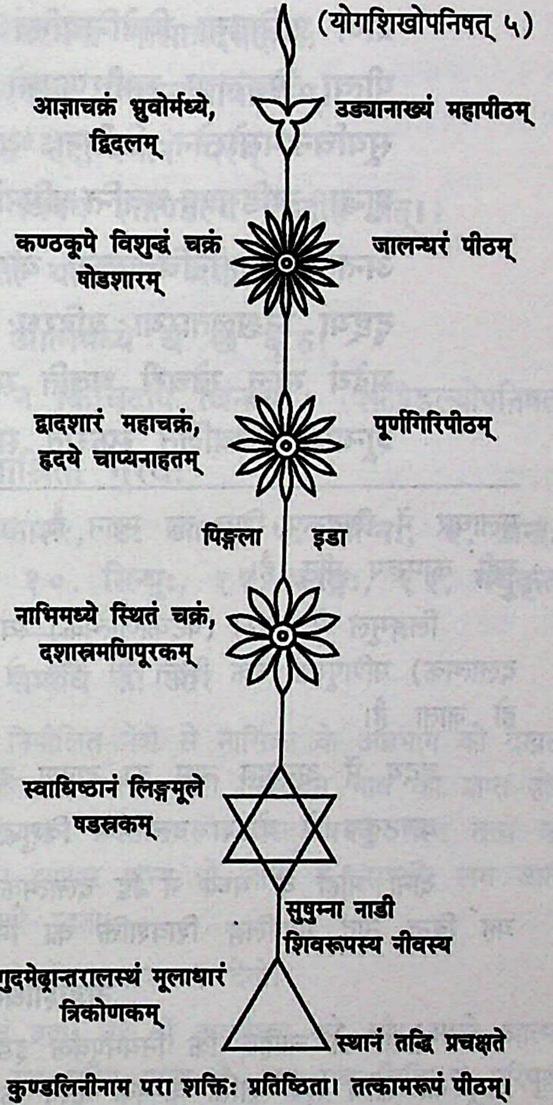
नश्वर शरीर के आधि-व्याधि से ग्रस्त होने पर यदि संन्यासी प्राणोत्सर्ग करना चाहे तो वह अनशन करे—अन्न जल त्याग दे, जल में प्रवेश कर जाय, वीरों के मार्ग का अनुसरण करे—परोपकार में शरीर अर्पित कर दे, योग के माध्यम से शरीर का परित्याग कर दे अथवा ज्ञान-वृद्धों के आश्रय में पहुँच जाये।

व्यवहारभेद से सप्तविध चैतन्य

एक ही परमात्मतत्त्व व्यवहारतः सात प्रकार के भेदों में विभक्त हो जाता है। ये सप्तविध तत्त्व कहे गये हैं—१. शुद्ध—मायाकृत उपाधियों से अत्यन्त मुक्त ब्रह्म शुद्ध चैतन्य कहलाता है। २. ईश—माया के सम्बन्ध से वह ईश है। ३. जीव—अविद्या के वशीभूत वही जीव है। ४. प्रमाता—अन्तःकरण के सम्बन्ध से वही प्रमाता-ज्ञाता कहलाता है। ५. प्रमाण—उस अन्तःकरण की वृत्ति के सम्बन्ध से वह प्रमाण संज्ञा को प्राप्त होता है। ६. प्रमेय—वह चैतन्य जब तक अज्ञात है तब तक प्रमेय कोटि में आता है। ७. फल—वही (चैतन्य) ज्ञात हो जाने पर फल कहलाता है।

अतएव बुद्धिमान् पुरुष अपने आपको 'मैं' समस्त उपाधियों से मुक्त हूँ—इस प्रकार चिन्तन करे। इस प्रकार जो तत्त्वतः जानता है, वह ब्रह्मत्व को प्राप्त करने योग्य हो जाता है।





ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेयानामभेदभावनं श्रीचक्रपूजनम्। (योगशिखोपनिषद् ५)

श्रीचक्रपूजन

ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय—इन तीनों में अभेद की भावना (अभेददर्शन) ही श्रीचक्रपूजन है। वहाँ ज्ञाता होता है, ज्ञान अग्नि है और ज्ञेय हवि है। होतारूप ज्ञाता, ज्ञान-रूप अग्नि और हविरूप ज्ञेय-जब तीनों समाहित हो जाते हैं तब एक ही अव्यक्त, अद्वय तत्त्व हो जाता है। ज्ञाता ज्ञानाग्नि को ही हवि बनाकर होम कर देता है तब ब्रह्मैवाहम् शेष बचता है।

चतुर्पीठात्मक शरीर में शिवरूप जीव का निवास

यह देह शिवालय कहा गया है। गुद और लिङ्गमूल के अन्तराल में त्रिकोणात्मक

प्राणं प्रागिडया पिबेन्नियमितं भूयोऽन्यया रेचयेत्
पीत्वा पिङ्गलया समीरणमथो वध्वा त्यजेद्वामया।
सूर्याचन्द्रमसोरनेन विधिनाऽभ्यासं सदा तन्वतां
शुद्धा नाडिगणा भवन्ति यमिनां मासत्रयादूर्ध्वतः।।

अन्तर्लक्ष्यविहीनचित्तपवनो योगी सदा वर्तते
दृष्ट्या निश्चलतारया बहिरधः पश्यन्नपश्यन्नपि।
मुद्रेयं खलु खेचरी भवति सा लक्ष्यैकताना शिवा
शून्याशून्यविवर्जितं स्फुरति सा तत्त्वं पदं वैष्णवी।।

मूलाधार में शिवरूप शिव का स्थान है, जहाँ कुण्डलिनी नामक परा शक्ति प्रतिष्ठित है, यही कामरूप पीठ है।

लिङ्गमूल में षडस्र (षट्कोणात्मक) स्वाधिष्ठानचक्र है। नाभि के मध्य में दशास्र (दश दलात्मक) मणिपूरक चक्र स्थित है। यहाँ से इडा और पिङ्गला नाड़ी का भी उदय प्रारम्भ हो जाता है।

हृदय में अनाहत नाम का द्वादश दलात्मक महाचक्र है, यही पूर्ण गिरि पीठ है।

कण्ठकूप में षोडश दलात्मक विशुद्ध चक्र है जो जालन्धर पीठ है।

दोनों भौहों के मध्य में द्वि दलात्मक आज्ञाचक्र है जिसे उड्यान महापीठ कहते हैं यह बिन्दु नाद महालिङ्ग शिवशक्ति का निकेतन है।

नाड़ीशोधक प्राणायाम

योगी को चाहिए कि नियमपूर्वक इडा (चन्द्रस्वर बायीं नासिका) के द्वारा सर्वप्रथम वायु को खींचे तथा शक्ति कुम्भक करने के बाद पिंगला (सूर्यस्वर-दायीं नासिका) के द्वारा उस का रेचन करे। पुनः पिङ्गला के द्वारा वायु को खींच कर कुम्भक करे और उस वायु को इडा के द्वारा बाहर निकाले। इस प्रकार सूर्य और चन्द्र स्वर के द्वारा प्राणायाम का अभ्यास करते रहने से तीन मास में सम्पूर्ण नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं।

खेचरी मुद्रा

एकाग्र दृष्टि के द्वारा योगी जब अन्तर्लक्ष्य में मन और वायु को विलीन कर लेता है, तब वह बाहर और भीतर का देखता हुआ भी कुछ नहीं देखता। इस प्रकार लक्ष्याकाराकारित मङ्गलमयी मुद्रा को खेचरी मुद्रा कहते हैं, जिसके द्वारा शून्य-अशून्य से रहित तत्त्व पद (तत् और त्वम्) का स्फुरण होने लगता है। इसे वैष्णवी भी कहते हैं।

अर्धोन्मीलितलोचनः स्थिरमना नासाग्रदत्तेक्षणः
चन्द्रार्कावपि लीनतामुपनयन् निष्पन्दभावोत्तरम्।
ज्योतीरूपमशेषबाह्यरहितं देदीप्यमानं परम्
तत्त्वं तत्परमस्ति वस्तु विषयं शाण्डिल्य विद्धीह तत्।।

तत उन्मनी भवति ततो योगनिद्रा भवति।

खमध्ये कुरु चात्मानं आत्ममध्ये च खं कुरु।
सर्वं च खमयं कृत्वा न किंचिदपि चिन्तय।। (शाण्डिल्योपनिषत्)

बुद्ध्युपाश्रिता गुरवः

१. पृथ्वी, २. वायुः, ३. आकाशः, ४. आपः, ५. अग्निः, ६. चन्द्रः, ७. रविः, ८. कपोतः, ९. अजगरः, १०. सिन्धुः, ११. पतङ्गः, १२. मधुकृत्,

---

खेचरी से समाधि की ओर

तदनन्तर योगी स्थिरमन होकर अर्ध निमीलित नेत्रों से नासिका के अग्रभाग को देखता हुआ चन्द्र और सूर्य स्वर को भी लीन करता (रोकता) हुआ निष्पन्दन भाव को प्राप्त होने पर सम्पूर्ण बाह्य-आभ्यन्तर से शून्य, देदीप्यमान ज्योतिस्वरूप वस्तुविषयक परम तत्त्व का साक्षात्कार कर लेता है। उसके बाद मानस व्यापार शून्य हो जाता है, समाधि लग जाती है फिर उसे काल के वेग का ध्यान नहीं रहता।

आकाशरूप में स्वयं को और स्वयं में आकाशरूप देखे।

योगी अपने मन को आकाशरूप (खं ब्रह्म) ब्रह्म में अवस्थित करे और अपने आत्मा में आकाशोपम ब्रह्म को देखे। जितना भी यह जगत् प्रपञ्च है, यह सब चिति से परिपूर्ण आकाश (ब्रह्म) ही है—ऐसा समझ कर अन्य कुछ चिन्तन न करे।

बुद्धि—उपाश्रित गुरुजन

निर्लेप भाव से भूतल पर विचरण करने वाले ब्रह्मवेत्ता दत्तात्रेयजी से राजा यदु ने पूछा—ब्रह्मन्! आपको यह अत्यन्त निपुण बुद्धि कहाँ से प्राप्त हुई? तब उन्होंने उत्तर दिया—राजन्! मैंने अपनी बुद्धि से बहुत से गुरुओं का आश्रय लिया है। उनसे शिक्षा ग्रहण करके मैं इस जगत् में मुक्त भाव से स्वच्छन्द विचरण करता हूँ। मेरे उन गुरुओं के नाम सुनो—

१. पृथ्वी, २. वायु, ३. आकाश, ४. जल, ५. अग्नि, ६. चन्द्रमा, ७. सूर्य, ८. कबूतर, ९. अजगर, १०. समुद्र, ११. पतंग, १२. मधुकृत् (भौंरा या मधुमक्खी),

१३. गजः, १४. मधुहा, १५. हरिणः, १६. मीनः, १७. पिङ्गला, १८. कुररः, १९. अर्भकः, २०. कुमारी, २१. शरकृत्, २२. सर्पः, २३. ऊर्णनाभिः, २४. सुपेशकृत्। (श्रीमदभाग. ११.७)

अहं भवान्न चान्यस्त्वं त्वमेवाहं विचक्ष्व भोः। (श्रीमद्भाग. ४.२८.६२)

'रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति'। (तैत्तिरीयोपनि. २.७)

आलम्बनोद्दीपनात्मा विभावः कारणं द्विधा।
कार्योऽनुभावो भावश्च सहायो व्यभिचार्यपि।। (चन्द्रालोकः ६.१)

---

१३. हाथी, १४. मधुहर (शहद निकालने वाला), १५. हरिण, १६. मछली, १७. पिंगला वेश्या, १८. कुरर पक्षी, १९. अर्भक (बालक), २०. कुमारी, २१. शरकृत् (बाण बनाने वाला), २२. सर्प, २३. ऊर्णनाभि (मकड़ी) और २४. सुपेशकृत् (भङ्गी कीट)।

दत्तात्रेयजी ने इन चौबीस गुरुओं से क्या-क्या शिक्षा ग्रहण की, इस प्रसङ्ग को भागवत में देखें।

जीव और ईश्वर में अभेद

मित्र! जो मैं ईश्वर हूँ, वही तुम जीव हो। तुम मुझसे भिन्न नहीं हो। तुम विचार पूर्वक देखो, मैं भी वही हूँ जो तुम हो। ज्ञानी पुरुष हम दोनों में कभी थोड़ा सा भी अन्तर नहीं देखते। श्रीमद्भागवत महापुराण के पुरञ्जन उपाख्यान के अन्तर्गत अविज्ञात पुरुष (परमात्मा) के द्वारा नाना योनियों में भ्रमण करने वाले अपने मित्र पुरञ्जन (जीव) के प्रति स्वरूप का ज्ञान कराने के लिए उक्त वाक्य कहे गये हैं।

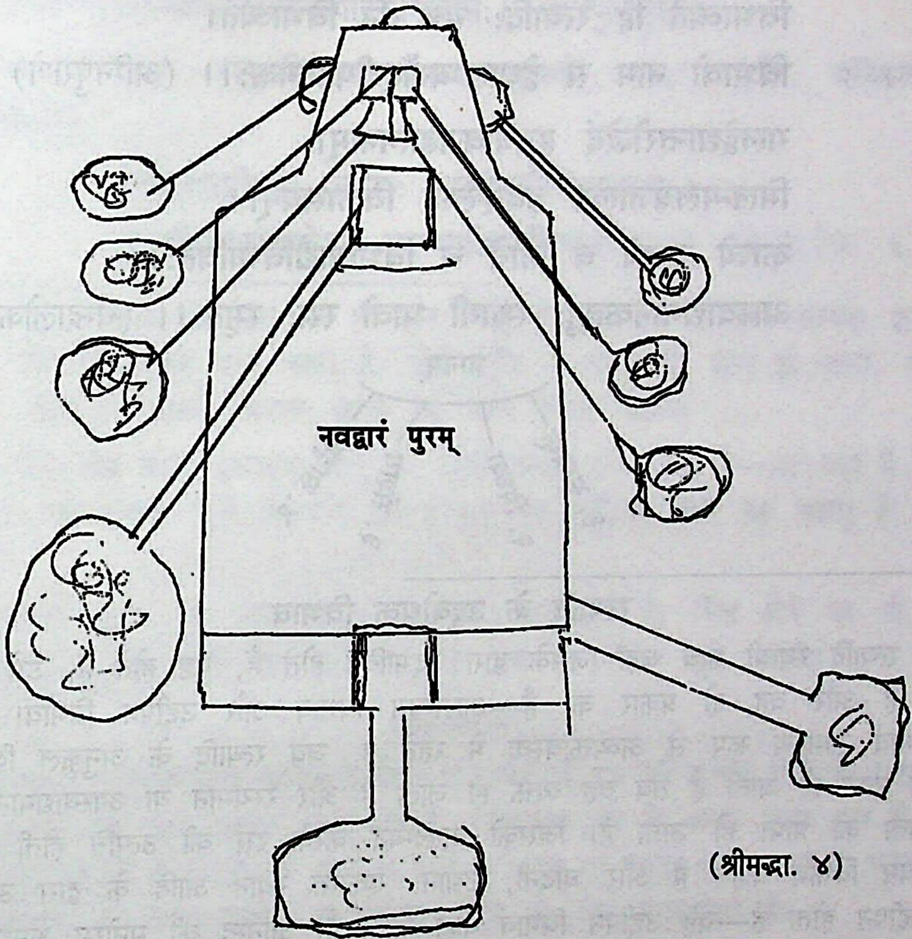
परमात्मा रसस्वरूप है

परमात्मा ने अपने को स्वयं ही इस जड-चेतनात्मक जगत् के रूप में बनाया है, इस लिए उनका नाम सुकृत् है—वे अपने आप बने हुए हैं।

वे परमात्मा रसस्वरूप हैं। वे ही वास्तविक आनन्द हैं। क्योंकि जन्म-मृत्यु-रूप घोर दुःख का अनुभव करने वाला यह जीवात्मा इस रसस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त करके ही आनन्द युक्त हो जाता है। जब आनन्दस्वरूप एकमात्र परमात्मा ही है, तब दूसरा कौन आनन्द दे सकता है?

विभाव आदि कारण, कार्य और सहकारी

विभाव या कारण आलम्बन और उद्दीपन भेद से दो प्रकार के होते हैं। कार्य अनुभाव है और सहकारी व्यभिचारी भाव होते हैं। इन सबको भाव पद से ही नाट्य शास्त्र में कहा गया है। अतः ये भाव भी हैं।



(श्रीमद्भा. ४)

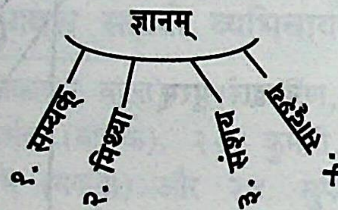
नौ द्वारों वाला पुर

मनुष्यशरीररूपी पुरी में नौ द्वार हैं। जीव ने जब सुख-दुःखरूपी सभी प्राकृत विषयों को भोगने की इच्छा की तब उसे इसके लिए दूसरे शरीरों की अपेक्षा नौ द्वारों वाला यह मानव शरीर ही अच्छा लगा। जीव इस में प्रविष्ट हो गया।

इसी पुरी में एक स्थान पर दो-दो द्वार हैं, वे दो नेत्र गोलक, दो नासिका छिद्र और दो कर्ण छिद्र हैं। इनके साथ-साथ मुख, लिङ्ग और गुदा—ये तीन और मिलाकर कुल नौ द्वार हैं। इन्हीं में होकर जीव इन्द्रियों के साथ बाह्य विषयों में जाता है।

इन में से दो नेत्र गोलक, दो नासिका छिद्र और मुख—ये पाँच पूर्व दिशा के द्वार हैं, दाहिना कान दक्षिण का द्वार और बायाँ कान उत्तर का द्वार है। गुदा और लिङ्ग ये नीचे के दो छिद्र पश्चिम के द्वार हैं।

विभाव्यते हि रत्यादिः यत्र येन विभाव्यते।
विभावो नाम स द्वेधालम्बनोद्दीपनात्मकः।। (अग्निपुराणे)
गलद्वेद्यान्तरोद्वेदं हृदयेष्वजडात्मनाम्।
मिलन्मलयजालेप इवाह्लादं विकासयन्।।
काव्ये नाट्ये च कार्ये च विभावाद्यैर्विभावितः।
आस्वाद्यमानैकतनुः स्थायी भावो रसः स्मृतः।। (चन्द्रालोकः६.३)



रत्यादि के उद्बोधक विभाव

रत्यादि स्थायी भाव जहाँ जिसके द्वारा उद्भावित होते हैं, पुष्ट होते हैं, उसे विभाव कहते हैं और वह दो प्रकार का है—आलम्बन विभाव और उद्दीपन विभाव। रत्यादि स्थायीभाव सामान्य रूप से अव्यक्तावस्था में रहते हैं, जब रत्यादि के अनुकूल विभावादि सामग्री प्राप्त हो जाती है तब वह व्यक्त हो जाता है और रस्यमान या आस्वाद्यमान होकर रसरूपता को प्राप्त हो जाता है। जिसको आलम्बन करके रस की उत्पत्ति होती है उसे आलम्बन विभाव कहते हैं और चाँदनी, उद्यान, एकान्त स्थान आदि के द्वारा उस रति का उद्दीपन होता है—वह उद्दीपन विभाव कहा जाता है। आनन्द की मनोरम अनुभूति को रति कहते हैं।

आस्वाद्यमान स्थायीभाव रस है

काव्य वासना से परिपूर्ण हृदय में वेद्यान्तर सम्पर्क से शून्य साक्षिभास्यता को प्राप्त स्वज्ञान स्वरूप इन विभाव, अनुभाव, सञ्चारी भावों से सूक्ष्म वासना रूप में विद्यमान स्थायीभाव उद्भूत होकर कर्पूरादि मिश्रित मलयज लेप के समान आनन्द को उल्लसित करता हुआ काव्य, नाटक तथा मूर्त्यादि कार्य में विभावादि चर्वणा के समकाल में ही चर्व्यमाण आस्वाद्य मात्र शरीर स्थायीभाव रस होता है।

वस्तुतः आस्वादन मात्र तनु होता हुआ भी यह उपचारतः आस्वाद्य कहा जाता है।

चतुर्विध ज्ञान

ज्ञान चार प्रकार का होता है—सम्यक् ज्ञान, मिथ्या ज्ञान, संशय ज्ञान और सादृश्य ज्ञान। यथार्थ ज्ञान ही सम्यक् ज्ञान की श्रेणी में आता है। यह जीव ब्रह्म ही है—यह

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः। (भरतमुनिसूत्रम्)

'भग्नावरणस्य रत्युपहितस्यात्मचैतन्यस्यानुभवो रसः' इति पण्डितराज-जगन्नाथमतम्।

निर्वेदस्थायिकः शान्तः सत्संगादिविभावभूः।
क्षमादिकानुभावोऽयं स्तम्भादिव्यभिचारिकः।। (चन्द्रालोकः ६.१३)

ज्ञान; अथवा रजतत्व में रजत का ही ज्ञान, रज्जु में रज्जु का ही ज्ञान सम्यक् ज्ञान है। विपरीत ज्ञान को मिथ्या ज्ञान कहते हैं, जैसे शुक्ति में रजत का ज्ञान हो जाना, रज्जु में सर्प का ज्ञान हो जाना, असत्य जगत् को सत्य समझ बैठना।

संशय ज्ञान कोटि द्वयात्मक होता है, इसमें सन्देह बना रहता है—यह वही है जिसमें समझ रहा हूँ। अथवा जिसे मैं जान रहा हूँ यह वह नहीं है। जैसे यह स्थाणु है अथवा पुरुष है।

सादृश्य ज्ञान—यह ज्ञान सादृश्य के ऊपर आधारित है, भिन्न होने पर भी गुणों के सादृश्य से होने वाला यह ज्ञान है जैसे चन्द्र के समान मुख, आदि।

रसनिष्पत्ति

विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की उत्पत्ति होती है। रसानुभूति का आन्तरिक और मुख्य कारण स्थायीभाव है। स्थायीभाव मन के अन्दर स्थिर रूप से रहने वाला प्रसुप्त संस्कार है जो विभाव आदि के द्वारा अभिव्यक्त हो उठता है। इस रत्यादि स्थायीभाव की अभिव्यक्ति ही रसास्वादजनक या रस्यमान होने से 'रस' शब्दबोध्य है।

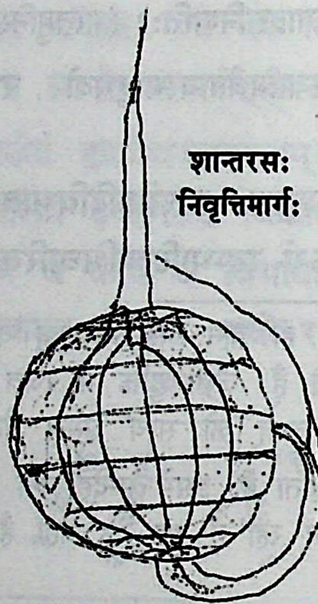
विभावादि के संयोग से अर्थात् ध्वनिगत होने से स्थायीभावात्मक उपाधि से युक्त आत्मानन्दरूप 'रस' की निष्पत्ति होती है जो चैतन्यस्वरूप परमात्मा है उसका सहज स्वरूपभूत आनन्द कभी-कभी अभिव्यक्त होता है।

उस आनन्द की अभिव्यक्ति ही 'रस' है।

पण्डितराज जगन्नाथ के मत में—अज्ञानरूप आवरण से मुक्त रति से अपहित आत्म चैतन्य का अनुभव 'रस' है। अर्थात् भग्नावरण शुद्ध चैतन्य का विषय बना हुआ रति आदि स्थायीभाव 'रस' है। 'रसो वै सः'—को आधार मान कर चिदावरण भङ्ग या भग्नावरण चित् को ही रस माना गया है।

शान्त रस

सत्सङ्ग आदि विभाव से समुद्भूत, क्षमा आदि अनुभाव एवं स्तम्भ आदि व्यभिचारी भावों से युक्त 'निर्वेद' स्थायीभाव 'शान्त' रस कहा जाता है।



नित्य एवं अनित्य के विचार से अथवा सांसारिक कष्ट, सन्ताप से जो मानसिक खेद उत्पन्न होता है उसे 'निर्वेद' कहते हैं। वस्तुतः तत्त्वज्ञान से उत्पन्न होने वाला निर्वेद शुद्ध निर्वेद है जिससे शुद्ध शान्त रस की अनुभूति होती है।

कुछ व्याख्याकारों का कहना है कि शान्त रस की भावना तो अनिवार्य है परन्तु निर्वेद को उसका स्थायीभाव नहीं माना जा सकता, क्योंकि निर्वेद चित्तवृत्तियों का अभावस्वरूप होता है, अतः उसे स्थायीभाव मानना उचित नहीं है। 'शम' भाव रूप है, अतः शान्त रस का स्थायीभाव 'शम' ही हो सकता है।

अन्य व्याख्याकारों ने इसका खण्डन किया है। उनका कथन है कि शान्त रस का स्थायीभाव तत्त्वज्ञानजन्य 'निर्वेद' ही है। भरत मुनि ने जो 'क्वचिच्छमः' कहा है वहाँ भी 'शम्यते यस्मादिति शमः'—इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'निर्वेद' ही शम पद वाच्य है।

शान्त रस निवृत्तिमार्ग का पोषक

शृङ्गार रसराज है—रसों का राजा है। किन्तु वह प्राणी को प्रवृत्ति मार्ग में अग्रसर करता है, जहाँ राग-द्वेषादि दोष उसे ऊपर नहीं उठने देते।

हालाँकि आलङ्कारिकों ने 'शान्तोऽपि नवमो रसः' में अपि शब्द का प्रयोग करके अभिनय के कारण ही सही शान्त रस के महत्त्व का कम मूल्याङ्कन किया है, किन्तु यह सर्वमान्य तथ्य है कि शान्त रस निवृत्ति मार्ग का परिपोषक है जिससे व्यक्ति चरमोत्कर्ष को प्राप्त होता है।

सांमुख्यंविदधानायाः स्फुटमर्थान्तरं गिरः।
कटाक्ष इव लोलाक्ष्या व्यापारो व्यञ्जनात्मकः।। (चन्द्रालोकः ७.२)

'कर्मनोदनब्राह्मणानि'। (जैमिनीसूत्रम्)

चत्वारि पदजातानि–

नाम	आख्यातम्	उपसर्गाः	निपाताः
।	।	।	।
सत्त्वप्रधानम्	भावप्रधानम्	ननिर्बद्धाः	उच्चावचेष्व-र्थेषु निपतन्ति

(निरुक्तम् १.१९)

सत्त्वाभिधायकं नाम निपातः पादपूरणः।
क्रियावाचकमाख्यातं उपसर्गो विशेषकृत्।। (टी.)

व्यञ्जना वृत्ति

चञ्चल नेत्रों वाली कामिनी के कटाक्षों के समान अभिमुख होकर एकमात्र हृदयगम्य, शक्यार्थ से इतर अर्थ की प्रतीति कराने वाली व्यञ्जनात्मक शब्द और अर्थ का व्यापार व्यञ्जना है।

यह व्यञ्जना शब्द और अर्थ दोनों में रहती है। जब अभिधा आदि वृत्तियों, अपने विषय को उपस्थापित कर विराम हो जाता है तब चमत्कृत अर्थ को व्यञ्जना वृत्ति ही उपस्थापित करती है। व्यञ्जनावृत्तिजन्य अर्थ अत्यन्त चमत्कृत होने पर वह काव्य उत्तम काव्य की कोटि में गृहीत होता है।

कर्म प्रेरक ब्राह्मण

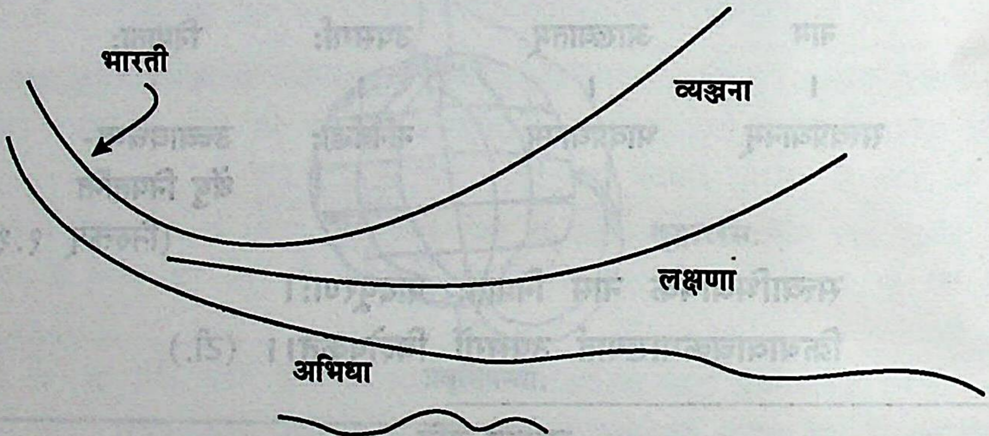
वेद के ब्राह्मण भाग कर्मकी प्रेरणा देते हैं। कर्म विषयक इतिकर्तव्यता के बोधक हैं ब्राह्मण ग्रन्थ। वैदिक इष्ट्यादि कर्म, वर्णोचित आचरण की शिक्षा ब्राह्मण ग्रन्थों से ही प्राप्त होती है। वे वेद के भाष्यरूप हैं, वे वेद ही कहे जाते हैं।

शब्द के चार पाद

शब्द चार पादों में विभक्त हैं—नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात। नाम सत्त्वप्रधान है क्योंकि वह सत्त्व-लिङ्ग, संख्या, कारक अन्वयीभूत द्रव्य का अभिधान करता है। आख्यात भावप्रधान है, क्योंकि वह क्रिया का वाचक है। उपसर्ग स्वतन्त्र होते हुए भी क्रिया के

मृत्कुम्भबालुकारन्ध्रः पिधानरचनार्थिना।
दक्षिणावर्तशङ्खोऽयं हन्त चूर्णीकृतो मया।।

(तत्त्वज्ञानान्निर्वेदः चन्द्रालोक. टी.६)



योंग में विशेष अर्थ का द्योतक करते हैं। निपातों का उच्चाधिकरण और नीचाधिकरण अर्थ में निपतन होता है इस लिए वे निपात हैं, कहीं-कहीं पादपूर्ति में इनका प्रयोग होता है।

मिट्टी के घड़े के रेत के छेद (प्राचीन काल मापक यन्त्र) को बन्द करने—काल चक्र की स्वाभाविक गति को बन्द करने—काल चक्र की स्वाभाविक गति को अवरुद्ध करने की प्रक्रिया में उलझा हुआ—शरीर पोषण में प्रवृत्त हुआ मैंने हाय! अपने शिर के बालों का (संन्यासीवेशसूचक) ऐसा जूड़ा बना रखा है जो दक्षिणावर्त शंख जैसा दिखायी देता है। ऐसा कह कर कोई जटाजूटयुक्त साधु अपने ही वेश की खिल्ली उड़ा रहा है। अर्थात् उसे सत्यासत्य विवेकजन्य तत्त्वज्ञान से निर्वेद हो रहा है।

तीन धाराओं वाली सरस्वती

भारती (वाक्रूपा सरस्वती) शब्द जगत् में तीन धाराओं में प्रवाहित है। इन तीन धाराओं के नाम हैं—अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना। इनमें क्रमशः उत्तरोत्तर श्रेष्ठता है। ये तीनों धाराएँ अर्थबोधिका हैं। अभिधा नामक धारा में अवगाहन करने के उपरान्त लक्षणा नाम की धारा की सन्निधि में पहुँचने की योग्यता प्राप्त होती है। फिर लक्षणा धारा में सुस्नात सहृदय प्राणी अत्यन्त चमत्कृत व्यञ्जना धारा में अवगाहन करने का अधिकारी होता है। व्यञ्जना धारा के संस्पर्श सुख से आप्यायित होकर ब्रह्मानन्द सहोदर काव्य-रस का पान करके रसिक (काव्य वासना से परिपक्व बुद्धि वाला) कृतार्थ हो जाता है।

पञ्चब्रह्म-उपनिषद्

१. सद्योजातं–मही पूषा रमा ब्रह्मा त्रिवृत्स्वरः। ऋग्वेदो गार्हपत्यं च मन्त्राः सप्त स्वरा वर्णं पीतं क्रियाशक्तिः सर्वाभीष्टफलप्रदम्।

२. अघोरं सलिलं चन्द्रं गौरी वेद द्वितीयकम्।
नीरदाभं स्वरं सान्द्रं दक्षिणाग्निरुदाहृतम्।।
पञ्चाशद्वर्णसंयुक्तं स्थितिरिच्छाक्रियान्वितम्।
शक्तिरक्षणसंयुक्तं सर्वाघौघविनाशनम्।।
सर्वदुष्टप्रशमनं सर्वैश्वर्यफलप्रदम्।

३. वामदेवं महाबोधदायकं पावकात्मकम्।।
विद्यालोकसमायुक्तं भानुकोटिसमप्रभम्।
प्रसन्नं सामवेदाख्यं नानाष्टकसमन्वितम्।।

पञ्चब्रह्म

पाँच ब्रह्म स्वरूप हैं—सद्योजात, अघोर, वामदेव, तत्पुरुष और ईशान। ईशान समस्त भूतभव्य, देव, योग, दिव्यों के प्रेरयिता हैं। इनके भेद, वर्ण और शक्ति इस प्रकार हैं—

सद्योजात—मही, पूषा, रमा, ब्रह्मा, त्रिवृत्स्वर, ऋग्वेद, गार्हपत्य मन्त्र और सप्त स्वर स्वरूप हैं—ये सब इनसे समद्भूत हैं, पीत वर्ण है, क्रिया शक्ति है और ये समस्त अभीष्ट फलों के प्रदाता है।

अघोर—जल, चन्द्र, गौरी, यजुर्वेद, नीरदाभ, स्वर, सान्द्र और दक्षिणाग्नि स्वरूप हैं, पञ्चाशद् वर्ण संयुक्त, स्थिति-इच्छा शक्ति समन्वित और रक्षण शक्ति समाहित हैं, ये सर्वपापविनाशक, समस्त दुष्टों का प्रशमन करने वाले और समस्त ऐश्वर्यों के प्रदाता हैं।

वामदेव—पावकात्मक हैं और महाबोधप्रदायक हैं, विद्यालोक से समायुक्त, करोड़ों सूर्यों के समान आभा वाले, प्रसन्न स्वरूप, सामवेद के अष्टकों से समन्वित हैं।

तत्पुरुष-तममिश्रित—शुक्ल वर्ण, पूर्णबोधकर, तीनों धामों के नियन्ता, सर्वसौभाग्यदायक, अष्टपत्रस्थ और अष्टाक्षर समायुक्त हैं, पञ्चाग्नियों से युक्त हैं, यन्त्र शक्ति के नियामक अथर्व वेद स्वरूप हैं।

ईशान—सृष्टि-स्थिति-लय के कारण, समस्त शक्तियों को धारण करने वाले, कामना पूरक, सर्वव्याधिविनाशक, रक्त वर्ण, बह्मा-विष्णु आदि से संसेवित, परम विद्या के प्रेरक, आकाशात्मक अव्यक्त, ओङ्कार स्वरभूषित हैं। ये पञ्चब्रह्म हैं। इनको क्रमशः उपसंहारपूर्वक अपनी आत्मा में संस्थित करना चाहिए।

गायत्री छन्दः सदाशिवो ऋषिः दत्तात्रेयो देवता। (दत्तात्रे उ.)

'दां ॐ ह्रीं क्लीं ग्लौं द्रां' योगानुभवो भवति।

हकारो सकारो मकारो त्रयमेकस्वरूपं भवति। ह्सौं बीजाक्षरं भवति। तज्जापकानां संपत्सारस्वतौ भवतः। तत्स्वरूपज्ञानां वैदेही मुक्तिश्च भवति। (हयग्रीवोपनिषत् २)

ब्रह्मा ऋ. गायत्री छ. श्रीमान्हयग्रीवः परमात्मा दे.।

त्रिविधा ऋचः–१. परोक्षकृताः-सर्वाभिर्विभक्तिभिर्युज्यन्ते। २. प्रत्यक्षकृताः-मध्य पुरुषयोगाः। ३. आध्यात्मिक्यः-उत्तमपुरुषयोगाः। (निरु.दै. ७.१.२)

षडक्षर दत्तात्रेय महामन्त्र

इस मन्त्र का गायत्री छन्द है, सदाशिव ऋषि हैं, दत्तात्रेय देवता हैं, गर्भादि सन्तरण और योगानुभव प्राप्त्यर्थ इस मन्त्र का विनियोग है।

मन्त्र—'दां ॐ ह्रीं क्लीं ग्लौं द्रां'।

मन्त्र के देवता श्रीदत्तात्रेय का ध्यान करके इस षडक्षर मन्त्र का जप करना चाहिए। इसके जप से आत्मा और परमात्मा (जीव और ईश्वर) में ऐक्य का अनुभव होने लगता है।

हयग्रीवैकाक्षर मन्त्रराज

यह मन्त्र ब्रह्म परम्परा से व्यासजी को प्राप्त हुआ। व्यासजी के द्वारा अधिकारी साधकों को इस मन्त्र का उपदेश मिला। इस मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि हैं, गायत्री छन्द है, श्रीमान् हयग्रीव परमात्मा देवता हैं। सम्पत्ति, सरस्वती-ब्रह्मविद्या, स्वरूपज्ञान, देहाध्यासराहित्य और मुक्ति के लिए इसका विनियोग है।

यह समस्त बीजों में एकाक्षर बीज मन्त्र सर्वोत्तम व मन्त्र राज संज्ञक है। यह मन्त्र—हयग्रीवैकाक्षर—ब्रह्मविद्या के रूप में साधकों के मध्य जाना जाता है।

मन्त्र—'ह्सौं'। इसमें हकारों, सकारों, मकारों—यह तीनों ही एक स्वरूप हैं—इस प्रकार यह बीजाक्षर है। इस मन्त्रराज के जापकों को सर्वसम्पत्ति, विद्या की प्राप्ति होती है, सरस्वती सदैव कृपा वर्षण करती हैं। स्व स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, देहाध्यास का विनाश हो जाता है और मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है। न्यासपूर्वक भगवान् हयग्रीव का ध्यान करके गुरुपरम्पराप्राप्त इस मन्त्र का जप करना चाहिए।

तीन प्रकार के मन्त्र

ऋचाएँ तीन प्रकार की होती हैं—परोक्षकृता, प्रत्यक्षकृता और आध्यात्मिकी। परोक्ष-कृता सभी विभक्तियों से संयोजित होती हैं, जिनमें विभक्तियों की ऊहा करने का अवसर

चिद्रूपत्वादकर्मत्वात्स्वप्रकाश इति श्रुतेः।
आत्मनः स्वप्रकाशत्वं को निवारयितुं क्षमः।। (चित्सुखी)

निरुक्तम्

आद्यं नैघण्टुकं काण्डं द्वितीयं नैगमं तथा।
तृतीयं दैवतं चेति समाम्नायस्त्रिधा मतः।। (निरु.टी.)

सम्यग्बन्धत्रयस्थोऽपि लक्ष्यलक्षणकारणम्।
वेद्यं समुद्धरेन्नित्यं सत्यसन्धानमानसः।। (वराहोपनि. ५)

नहीं है। प्रत्यक्षकृता ऋचाओं में मध्यम पुरुष का योग रहता है अर्थात् परमात्मतत्त्व को 'त्वम्' पद से प्रतिपादित करती हैं, आध्यात्मिकी—ऋचाओं में उत्तम पुरुष का योग है। वे ऋचाएँ परमात्मतत्त्व को 'अहम्' पद से निरूपित करने वाली होती हैं।

आत्मप्रकाश

चिद्रूप होने से, अकर्मक होने से आत्मा स्वप्रकाश है, इस आत्मा की प्रकाशकता को कौन सकता है। आत्मा चैतन्य स्वरूप है, अकर्मक है—वह कर्त्ता-भोक्ता भी नहीं है, वह अन्य से प्रकाशित नहीं है, अपितु स्वप्रकाश से ही प्रकाशित है इसलिए स्वप्रकाश स्वरूप है—यह श्रुति का कथन है। तो फिर स्वप्रकाशरूप आत्मा के स्वप्रकाशत्व का निवारण करने में कौन समर्थ हो सकता है? अज्ञानियों की दृष्टि में अज्ञानान्धकार से वह आत्मप्रकाश ढक सा जाता है, क्या वह अज्ञान आत्मप्रकाश को नष्ट कर सकता है? जैसे मेघ से आच्छादित सूर्य का प्रकाश ढक सा जाता है, मेघ प्रकाश सत्ता को नष्ट करने में समर्थ नहीं हो सकता। मेघ के हटते ही जैसे सूर्य का प्रकाश पूर्ववत् हो जाता है वैसे ही अज्ञान के नष्ट होते ही आत्मप्रकाश का अनुभव होने लगता है। अवेद्य होने पर भी जो अपरोक्ष ज्ञान का विषय है वह स्वप्रकाश है।

निरुक्त

निरुक्त में समाम्नाय (वेद) को तीन भागों में विभक्त किया गया है—प्रथम नैघण्टुक काण्ड, द्वितीय नैगम काण्ड और तृतीय दैवत काण्ड।

तीन बन्धों के अभ्यासपूर्वक सत्य का अनुसन्धान

उड्डियाण आदि तीनों बन्धों का सम्यक् अभ्यास करने वाला योगी सत्य के सन्धान में मन को लगाता हुआ लक्ष्य और लक्षण को जो कारण है उस वेद्य—जानने योग्य अपनी आत्मा का नित्य अनुसन्धान करे।

चत्वारि[१] शृङ्गा त्रयोऽस्य[२]पादा द्वे शीर्षे[३] सप्त[४]हस्तासोऽस्य।
त्रिधा बद्धो[५] वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्या आ विवेश।।

(ऋ.सं. ३.८.११.३)

बोधः

१. साधनचतुष्टयाः। २. श्रवणादित्रयः। ३. मुक्तिद्वये। ४. चिद्भासस्याविद्यादयः सप्तावस्थाः ५. प्रस्थानत्रय्याम्।

अंशिनः स्वांशगात्यन्ताभावस्य प्रतियोगिनः।
अंशित्वादितरांशीव दिगेषैव गुणादिषु।। (चि.सु. १.८)
आब्रह्मस्तम्बपर्यतं तत्कृते सृष्टिरविवेकात्।।२.४७।

कामनाओं का वर्षण करने वाला वृषभ

जिसके साधनचतुष्टय—नित्यानित्यवस्तु विवेक, इहामुत्र फलभोगविराग, षट् सम्पत्ति और मुमुक्षा ही चार सींग हैं। श्रवण, मनन, निदिध्यासन रूप तीन पैर हैं, जीवन्मुक्ति और कैवल्यमुक्ति ही दो शिर हैं, चिदाभास की अविद्या आदि सात अवस्थाएँ जिसके सात हाथ हैं और जो प्रस्थानत्रयी (गीता, ब्रह्मसूत्र, उपनिषद्) से बँधा हुआ है, ऐसा जो कामनाओं का वर्णन करने वाला वृषभरूप महान् देव आत्मा है, वह मरणधर्मा जीवों में प्रविष्ट होकर शब्द करता है।

जगत् का मिथ्यात्व

अवयवी अपने अवयवगत अत्यन्ताभाव का प्रतियोगी होता है। अंशी अर्थात् अवयवी होने से अन्य अवयवियों की तरह ही गुण आदि में यह दिशा-मार्ग समझ लेना चाहिए।

अर्थात् विवादास्पद पट (अंशी) अपने अंशगत (तन्तुगत) अत्यन्ताभाव का प्रतियोगी है, वह तन्तु तन्तु ही है पट नहीं। ऐसे ही यह व्यवस्था गुण, क्रिया आदि में है। गुणवान् अपने गुणों में नहीं है अपितु गुण गुणवान् में हैं। क्रियावान् क्रिया में नहीं है अपितु क्रिया क्रियावान् में है। इसी तरह ईश्वर जगत् में नहीं अपितु जगत् ईश्वर में है। अतः जगत् मिथ्या है।

ब्रह्म से. स्तम्बपर्यन्त जगत्—सृष्टि

प्रकृति और पुरुष के अविवेक से ब्रह्म से लेकर स्तम्बपर्यन्त जगत् की सृष्टि हुई है तथा प्रकृति और पुरुष के विवेक से सृष्टि की निवृत्ति हो जाती है।

विविक्तबोधात्सृष्टिनिवृत्तिः।।३.६३। (सांख्यसू.)

अल्पं रूपं बन्धनं प्रत्यगात्मा बद्धोऽनेन स्वच्छचैतन्यमूर्तिः।
स्वात्माज्ञानं कारणं बन्धनस्य स्वात्मज्ञानात्तन्निवृत्तिश्च मोक्षः।।
(संक्षेपशारीरकम्)

अपरीक्ष्य च यः शिष्यं प्रशास्त्यतिविमूढधीः।
स एव नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम्।। (योगवाशि. ४.१९.२६)

१. विश्वप्रभातः मम मदपूर्णनयनोन्मीलनम्, तुर्यसमाधेः मम मस्तिष्कजागृतिरस्य सृष्टिः। एषामसंख्यब्रह्माण्डानां रचनाकारणं-ममात्यन्तकौतुकीहृदयस्य क्रीडायै प्रचलनम्। विश्वं मम हृदयनायकस्य रङ्गभूमिः।

२. मौनधारणया हरिताः सरिता वृक्षाः मम प्राणसंचलनेन सुचलन्ति, मम च

प्रकृति और पुरुष के परस्पर अध्यास से अन्धे और पंगु की तरह सृष्टि की उत्पत्ति हुई। पुरुष में कर्तृत्व नहीं और प्रकृति में चेतना नहीं है अतः इन दोनों के परस्पर सहयोग से ही सृष्टि हुई। पुरुष जब देख लेता है, उसे बोध हो जाता है कि कर्तृत्व गुणों—प्रकृति का कार्य है, मेरा नहीं, तो वह मुक्त हो जाता है।

अज्ञान ही बन्धन का कारण है

अल्परूप बन्धन में प्रत्यगात्मा है, जिससे शुद्ध चैतन्य मूर्ति बद्ध है। वस्तुतः आत्मा का अज्ञान ही बन्धन का कारण है। आत्मज्ञान होने पर बन्धन से निवृत्ति हो जाती है और मोक्ष हो जाता है।

शिष्य की पूर्व परीक्षा अनिवार्य

शिष्य की योग्यता-अयोग्यता, अधिकारित्व-अनधिकारित्व आदि की परीक्षा किये बिना जो शासन करता है अर्थात् शिक्षा-दीक्षा प्रदान करता है वह मूढधी है और प्रलयपर्यन्त नरक में वास करता है।

विराट् शिव

मेरे मदपूर्ण नेत्रों का खुलना ही विश्व का प्रभात है। तुरीय समाधि से मेरे मस्तिष्क की जागृति ही इस जगत् की सृष्टि है। इन असंख्य ब्रह्माण्डों की रचना का कारण मेरी अत्यन्त कौतुकी हृदयलीला का होना है, यह विश्व मेरे हृदयरूपी नायक की रंगभूमि है।

मौन धारण किये हुए ये हरित वृक्ष मेरे प्राण सञ्चलन से चलते हैं-बढ़ते हैं, मेरे मन्द हास्य से उनमें मञ्जुल पुष्प विकसित होते हैं, मेरा मन विहंग (पक्षी) यहाँ-वहाँ कूजता,

स्मितेनैव तेषु मञ्जुलानि कुसुमानि। मम मनोविहङ्गः तेषां कोपलेषु अत्र तत्र कूजन्-उत्पतन् विहरति-भाति वीचिषु शशिकिरणेव।

३. ममानन्तप्रेम प्रकृत्युरसि प्रस्फुरति। प्रति कणेषु तस्याः मृदुपयोधरेभ्यः मधुर-दुग्धस्यानवरतं बिन्दवः पतन्ति, विश्वशिशुः तस्या वात्सल्यमयाङ्के ॐ ॐ कुर्वन् तद्गिलति, अहं च करोमि प्रकृतिश्रृङ्गारम्।

४. गिरीणां पाषाणमयहृदयेषु अपि मम करुणा निर्झररूपेण निर्झरितं भूत्वा शीतलतरंगिणीसरितारूपेण क्रीडन्त्यः जगतः संतप्तहृदयं हिमपीयूषवारिणा शान्तं कुर्वन्ति, परं संसारदृष्टिषु अहमस्मि अति कठोरः।

५. अहमस्म्यनन्तसिन्धुः। नामरूपात्मकजगतो विभिन्नानि सर्ववस्तूनि सन्ति मे तरलतरंगाः। मम तटं अस्ति नास्तिशब्दैर्निर्मुक्तमस्ति, अपि च नित्योदितरविरिव न कदाचित् ममोदयो नास्तं न च जन्म न मृत्युः लौकिकी मतिः किमपि कथयतु। अहं परापरदृष्ट्याः परः उच्चतमः स्वमहिम्नि स्थितः।

६. मम काष्ठमौनदृढता हिमालयरूपेण शून्येन सह संवदीति, तस्य शृङ्गेषु लग्नं मम आसनम्। इयमेव विश्वरहस्यस्य मूलाधारशक्तिः स्वस्नेहपूर्णमञ्जुलकराभ्यां पापयति मह्यं विजयायाः चषकानि अहं च प्रभ्रमामि निजानन्दे।

खेलता और उड़ता हुआ विहार करता है जिस प्रकार नदी की तरङ्गों में चन्द्रमा की किरणें खेलती हैं।

मेरा अनन्त प्रेम प्रकृति के हृदय में प्रस्फुरित होता है, प्रत्येक कणों में उसके पयोधरों से अनवरत मधुर दुग्ध विन्दु गिरते हैं, उसकी वात्सल्यमयी गोद में विश्व शिशु ॐ-ॐ करता उसका पान करता है और मैं उस प्रकृति का शृङ्गार करता हूँ।

पर्वतों के पाषाणमय हृदयों में भी मेरी करुणा निर्झर रूप से निर्झरित होती हुई शीतल तरंगों वाली सरिता के रूप से खेलता हुआ संसार स्वकीय संतप्त हृदय को शीतल अमृतमय जल से शान्त करता है फिर भी संसार की दृष्टि में मैं हूँ अति कठोर।

मैं हूँ अनन्त सागर। नाम-रूपात्मक जगत् की विभिन्न समस्त वस्तुएँ मेरी तरल तरंगे हैं। मेरा तट है अथवा नहीं,—अस्ति-नास्ति शब्दों से निर्मुक्त है। रवि जैसा मेरा उदय और अस्त भी नहीं होता और न ही जन्म-मृत्यु होते हैं, लौकिक बुद्धियाँ कुछ भी कहें, किन्तु मैं पर-अपर दृष्टि से परे हूँ, उच्चतम हूँ और अपनी महिमा में स्थित हूँ।

मेरे काष्ठमौन की दृढ़ता हिमालयरूप शून्य के साथ बोलती है, उसी के ऊँचे शिखरों पर मेरा आसन लगा है। यही विश्वरहस्य की मूल आधार शक्ति अपने स्नेहपूर्ण मञ्जुल करकमलों

७. अहं श्मशानं मनोरमां रंगभूमिं करोमि, रुदिति च जगति सत्यदर्शकेभ्यः दर्शयामि महाप्रज्वलितचिताग्नौ जीवनम्, मधुरसृष्टेः मोहनाभिनयं, प्रिय-प्रियतमाया मधुरं मिलनं, रौद्रे च शृङ्गारं, वीभत्से वीररसं, करुणायां हास्यम्। संसारदृष्टिर्मामिति भयानकं पश्यति, परं चाहं परमशान्तः। जनाः यस्मादशिवात्सदा त्रस्ता दूरं पलायन्ते स एवाहं परमशिवः सदाशिवः ॐॐॐ।

भक्तिः (अग्निपुराणे)

अक्षरं ब्रह्म परमं सनातनमजं विभुम्।
वेदान्तेषु वदन्त्येकं चैतन्यं ज्योतिरव्ययम्।।
आनन्दः सहजस्तस्य व्यजते स कदाचन।
भक्तिः सा तस्य चैतन्यचमत्काररसाह्वया।।

वेदः

सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे।
विन्दते विन्दति प्राप्तौ श्यन्लुक् श्नसेष्विदं क्रमात्।

से विजया के चषकों का पान कराती है और मैं निजानन्द में परिभ्रमण करता हूँ।

मैं श्मशान-भूमि को मनोरम रंग-भूमि बनाता हूँ। रोते हुए जगत् में सत्य के दर्शकों को दिखाता हूँ। महाप्रज्वलित चिता की अग्नि में जीवन, मधुर सृष्टि के मोहन का अभिनय, प्रिय और प्रियतमा का मधुर मिलन, रौद्र में शृङ्गार, बीभत्स में वीर रस, करुणा में हास्य। संसार की दृष्टि मुझे भयानक देखती है, पर मैं हूँ परम शान्त। मनुष्य जिस अशिव से सदा त्रस्त दूर भागते हैं, (शिव को चाहते हैं) वही मैं परम शिव, सदाशिव हूँ।

भक्ति

वेद-वेदान्तों में जिसे अक्षर, सनातन, अज, विभु, एक, चैतन्य, ज्योति, अव्यय व परब्रह्म कहा गया है, उसका सहज आनन्द जब कभी व्यक्त हो जाता है, उसका चैतन्य चमत्काररूप रस भक्ति नाम से जाना जाता है। अर्थात् भक्ति में अव्यक्त को व्यक्त करने की शक्ति है। उसमें निर्गुण को सगुण, निराकार को साकार बनाने की क्षमता है। भक्ति की परिपुष्टि के लिए ही वह अजन्मा इस भूतल पर जन्म (अवतार) धारण करता है।

वेद

दिवादिगणपठित सत्तार्थक धातु से श्यन् प्रत्यय होकर वेद शब्द की निष्पत्ति होती है। विद्यते असौ सर्वकालेषु-जो सर्वकाल में रहे, अनादि अनन्त है, वह वेद है।

विष्णुं रुद्रात्मकं विद्यात् श्रीगौरीति निगद्यते।
एतयोरन्तरं यश्च ब्रूयात्सोऽधम उच्यते।। (वाराहे)

हरिरूपधरं लिङ्गं लिङ्गं रूपधरो हरिः।
ईषदप्यन्तरं नास्ति भेदकृत्पापमश्नुते।। (वृहन्नारदीये)

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्राविषायितम्।
शून्यायितं जगत्सर्वं गोविन्दविरहेण मे।। (श्रीचैतन्य.)

अदादिगणपठित ज्ञानार्थक विद् धातु से शप्-लुक्-गुण पूर्वक वेद शब्द निष्पन्न है जिसका अर्थ होता है वेत्ति अनेन—जिससे ज्ञानस्वरूप की प्राप्ति हो। क्रयादिगण में पठित विचारार्थ विद् धातु से श्नम् करके विन्ते बनता है। विचारयति अनेन, जिससे सत्-असत् का विचार किया जाता है।

तुदादिगणपठित विद् लृलाभे धातु से नुम् पूर्वक विन्दते बनता है। विन्दते अनेन, जिसके द्वारा परमात्मा को प्राप्त किया जाय।

यह वेद शब्द विद् ज्ञाने, विद् सत्तायाम्, विद् विचारणे, विद् लृलाभे और विद् चेतनाख्यान निवासेषु धातुओं से करण अर्थ में घञ् प्रत्यय करने पर वेद शब्द निष्पन्न होता है। सायणाचार्यजी ने वेद शब्द का अर्थ किया है—वेद्यन्ते ज्ञाप्यन्ते धर्मादिचतुष्टयोपाया अनेन स वेदः—जिससे धर्मादि चारों पुरुषार्थ और उनकी प्राप्ति के साधन जाने जायँ उसे वेद कहते हैं।

हरि और हर एक ही हैं

विष्णु रुद्रात्मक हैं, लक्ष्मी ही गौरी हैं। जो शिव और विष्णु में भेद मानता है—कहता है वह वास्तव में अधम है।

हरिरूप को धारण करने वाला ही शिवलिङ्ग है और शिव के लिङ्ग-रूप को धारण करने वाले हरि हैं। इनमें यत्किञ्चित् भी अन्तर नहीं है। इन दोनों में अभेद है, जो भेद-दृष्टि रखता है वह पाप का भागी होता है।

गोविन्द—विरह

हे गोविन्द! हे कृष्ण! आपके विरह में एक निमेष भी युगों जैसा बीतता है, नेत्र सदा वर्षा-ऋतु के मेघों जैसे बरसते हैं, सारा संसार सूना-सूना दिखायी देता है।

ब्राह्मणाः श्रुतिशब्दाश्च देवानां व्यक्तमूर्तयः।।
श्रौतस्मार्तो हि यो धर्मो ज्ञानधर्मः स उच्यते।। (मत्स्यपु. १४५)
दानं सत्यं तपोऽलोभो विद्येज्या पूजनं दमः।
अष्टौ तानि चरित्राणि शिष्टाचारस्य लक्षणम्।।
वृद्धाश्चालोलुपाश्चैव आत्मवन्तो ह्यदाम्भिकाः।
सम्यग्विनीता मृदवः तानाचार्यान्प्रचक्षते।।
दृष्टानुभूतमर्थं च यः पृष्टो न निगूहते।
यथाभूतप्रवादश्च इत्येतत्सत्यलक्षणम्।।
ब्रह्मचर्यं जपो मौनं निराहारत्वमेव च।
इत्येतत्तपसो रूपं सुघोरं तु दुरासदम्।।

ज्ञानधर्म

ब्राह्मण—ब्राह्मण-ग्रन्थ और श्रुतियों के शब्द देवताओं की व्यक्त मूर्तियाँ हैं, अर्थात् उनकी निर्देशिका हैं। जो श्रुति और स्मृति सम्बन्धी धर्म है उसे ज्ञानधर्म कहा जाता है।

शिष्टाचारलक्षण

दान, सत्य, तपस्या, निर्लोभता, विद्या, यज्ञानुष्ठान, पूजन और इन्द्रियनिग्रह—ये आठ आचरण शिष्टाचार के लक्षण हैं।

आचार्यलक्षण

जो वृद्ध, आत्मज्ञानी, निर्लोभ, निष्कपट, अत्यन्त विनम्र तथा मृदुल स्वभाव वाले होते हैं, उन्हें आचार्य कहा जाता है।

सत्यलक्षण

देखे तथा अनुभव किये हुए विषय के पूछे जाने पर उसे न छिपाना, अपितु घटित हुए के अनुसार यथार्थ कह देना—यह सत्य का लक्षण है।

तपस्यालक्षण

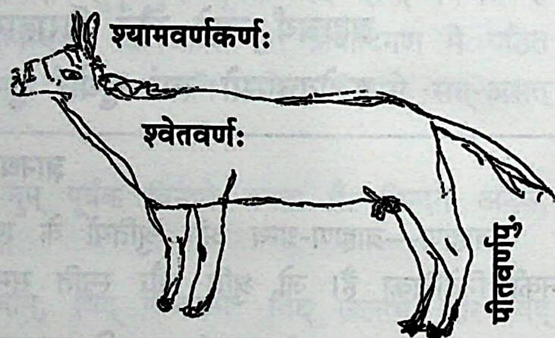
ब्रह्मचर्य, तपस्या, मौन का आलम्बन और निराहार रहना—ये तपस्या के लक्षण हैं जो अत्यन्त भीषण एवं दुष्कर हैं।

पञ्चात्मके यो विषये कारणे चाष्टलक्षणे।
न क्रुध्येत प्रतिहतः स जितात्मा भविष्यति।।

ऋषि हिंसागतौ धातुः विद्या सत्यं तपः श्रुतम्।
एष संनिचयो यस्मात् ब्रह्मतस्तु ततस्त्वृषिः।।

परशुरामः-(स्कान्दे)

वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयायां पुनर्वसौ।
निशायाः प्रथमे यामे रामाख्यः समये हरिः।।
स्वोच्चवर्गे षड्ग्रहैर्युक्ते मिथुने राहोः संस्थितौ।
वाराणसीप्रान्ते भृगुपुरे।।



जितात्मालक्षण

जो पाँच इन्द्रियों के विषयों तथा आठ प्रकार के कारण होने पर भी क्रोध नहीं करता, वह जितात्मा कहलाता है।

ऋषिलक्षण

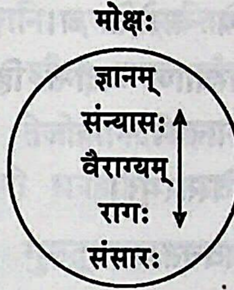
'ऋषि' धातु का हिंसा और गति के अर्थ में प्रयोग होता है, इसी से ऋषि शब्द निष्पन्न हुआ है। उसे ब्रह्मा से विद्या, सत्य, तप, शास्त्रज्ञान आदि की प्राप्ति होती है, इसलिए उसे ऋषि कहते हैं।

भगवान् परशुराम का प्रादुर्भाव

वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि, पुनर्वसु नक्षत्र, स्वोच्चवर्गीय षड् ग्रहों से युक्त मिथुन में, राहु की संस्थिति, रात्रि के प्रथम प्रहर में, वाराणसी-प्रान्त-स्थित भृगुपुर में भगवान् हरि का परशुराम के रूप में अवतार हुआ।

श्वेत वर्ण का घोड़ा जिसके कान श्याम वर्ण के थे और पूँछ पीत वर्ण की थी, को देखकर शुभ शकुन मानते हुए परशुरामजी ने प्रबल शत्रु कार्तवीर्यार्जुन पर चढ़ाई कर दी।

मोक्षः



आभासमात्रमेवेवं परिदृश्यत एव च।
स्पन्दः समीरणस्येव न सन्नासदवस्थितम्।।४४।।
विस्मयस्मयसंमोहहर्षामर्षविकारिताम्।
समतावलितस्तज्ज्ञो न कदाचन गच्छति।।३७।। (योगवाशि.४.१९)

वेदागमपुराणेतिहासशशास्त्रादयोऽखिलाः
अनादयः परेशस्य निःश्वासा ह्यञ्जसा स्थिराः।
कदाचित्कालपाकेन मलिना विशदा अपि
शाश्वतो भगवान्शम्भुः कल्पे कल्पे स्वयं प्रभुः।।

संसार और मोक्ष

संसार और मोक्ष के मूल में शुद्ध वासना और मलिन वासना है। मलिन वासना से संसार में राग उत्पन्न होता है जो कि जीव को जन्म-मृत्यु-रूप संसार में आबद्ध रखता है।

शुद्ध वासना से संसार से वैराग्य उत्पन्न होता है, वैराग्य से काम्य कर्मों का संन्यास होता है, कर्ता भोक्ता भाव विरहित होकर आत्मज्ञान हो जाता है फलतः मोक्ष हो जाता है। चित्र के माध्यम से जीव की अधोगति और ऊर्ध्वगति का दर्शन है।

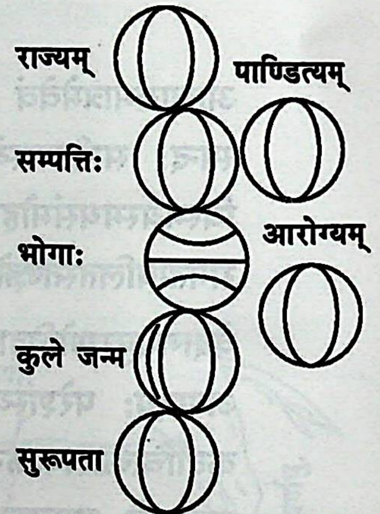
दृश्यमाण जगत् आभासमात्र है

जो भी यह जगत्-प्रपञ्च दिखायी दे रहा है यह सब आभासमात्र है। वायु के स्पन्दन के समान न यह सत् है और न असत् ही। समता से संवलित ज्ञानी विस्मय, स्मय, सम्मोह, हर्ष-अमर्ष आदि विकारों को कदापि प्राप्त नहीं होता।

भगवान् की शास्त्र-लीला

वेद, आगम, पुराण, इतिहास और समस्त शास्त्र अनादि परेश्वर के निश्वासभूत हैं व सहजता से स्थिर हैं। ये वेदादिशास्त्र विस्तृत होते हुए भी कदाचित् कालपाक से मलिन हो जाते हैं अर्थात् न्यून हो जाते हैं।

प्रपञ्चाख्यां महालीलां निर्गुणोऽपि करोति च।
या कृता तेन वै लीला तां शास्त्राणि वदन्ति हि।। (ब्रह्मवैवर्ते १५.४.७)
पुराणमेकमेवासीत् सर्वकालेषु मानव।
चतुर्वर्गस्य बीजं च शतकोटिप्रविस्तरम्।।
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणादभवत्ततः।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे कृतवान्हरिः।।
अद्यापि देवलोके तु शतकोटिप्रविस्तरम्।।
(वृ.नार. पु.पूर्वभाग ९२.२२)



प्रत्येक कल्प में परम शाश्वत भगवान् शम्भु निर्गुण होते हुए भी जगत्-प्रपञ्च-रूपी महालीला करते हैं और उस लीला में शास्त्रों का पुनरुत्थान करते हैं। उनके द्वारा यह जो लीला की जाती है उसको शास्त्र लीला कहते हैं।

पुराण चतुर्वर्ग का बीज है

एकमात्र पुराण ही था जो सार्वकालिक है। यह सौ करोड़ विस्तार वाला पुराण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का रहस्य है—बीज है। समस्त शास्त्रों की प्रवृत्ति पुराण से ही समुद्भूत है, अर्थात् समस्त शास्त्रों के मूल में पुराण-विद्या है। द्वापर में भगवान् हरि ने चार लाख श्लोक की संख्या वाले पुराण को भूलोक में स्थापित किया, हालाँकि देवलोक में आज भी इन की संख्या सौ करोड़ की विस्तार वाली है।

धर्म के फल

राज्य-प्राप्ति, सम्पत्ति-लाभ, भोगों की उपलब्धि, उच्च कुल में जन्म, सौन्दर्य-सुरूपता, पाण्डित्य और आरोग्य—ये धर्म के फल हैं।

यदि उक्त बाते हैं तो निश्चित् समझ लेना चाहिए कि उस व्यक्ति ने पूर्व में धर्म का आचरण किया है।

धर्मस्य दशलिङ्गानि दया क्षान्तिरहिंसनम्।
तपो दानं धृतिः शीलं सत्यं शौचं वितृष्णता।। (सूक्तावली)

गुरुद्रव्यापहर्तॄणां तेजोहानिर्दरिद्रता।
दुर्मृत्युश्च महारोगो धनहानिः फलं भवेत्।।

गुरुदूषणकारकः

दुर्भगो विकलो मूर्खो निर्विवेको नपुंसकः नीकर्मकरो नीचो भवति।

अलसो मन्दबुद्धिश्च सुखार्थी व्याधिपीडितः।
निद्रालुः कामुकश्चैव षडेते शास्त्रवर्जिताः।।

सम्बन्धे सर्वदृश्यानां मध्ये द्रष्टुर्हि यद्वपुः।
द्रष्टृदर्शनदृश्यादिवर्जितं तदिदं परम्।। (योगवा. ३.९.६८)

धर्म के चिह्न

दया, क्षमा, अहिंसा, तप, दान, धैर्य, शील, सत्य, पवित्रता और वितृष्णा—ये धर्म के दस लिङ्ग (चिह्न) हैं। जो धार्मिक है उसमें उक्त दस चिह्न स्पष्ट दिखायी देते हैं।

गुरुद्रव्य का हरण करने वाले की दशा

गुरु के द्रव्य का हरण करने वाला व्यक्ति तेज से हीन हो जाता है, दरिद्रता उसे घेर लेती है, महारोगों से पीड़ित रहता है, जो धन है वह भी नष्ट हो जाता है और वह दुर्मरण को प्राप्त होता है। अतः स्वप्न में भी गुरुद्रव्यापहरण पाप है।

गुरुद्रोही की दशा

गुरु में दोषदृष्टि रखने वाला, गुरु से द्रोह मानने वाला व्याकुल रहता है, प्राप्त विद्या नष्ट हो जाती है—वह मूर्ख रहता है, उसका विवेक नष्ट हो चुका होता है, वह पौरुष्य-हीन हो जाता है, नीच कर्मों को करने से वह नीचता को प्राप्त होता चला जाता है। यदि शिष्य अपना कल्याण चाहता है तो गुरु में दोष न देखे, गुरु से द्रोह न करे।

शास्त्र से बहिष्कृत

आलसी, मन्द बुद्धि, सुख की कामना करने वाले, व्याधि से पीड़ित, निद्रा प्रेमी और कामुक—ये छः शास्त्रवर्जित कहे गये हैं, वे शास्त्र-अध्ययन के अधिकारी नहीं हैं।

योगवासिष्ठ का विशिष्ट ज्ञान

सभी दृश्यों के सम्बन्ध में मध्यस्थित जो साक्षीरूप सत्ता है वह ही द्रष्टा, दृश्य और दर्शन से शून्य परमात्मा है।

दुर्घटत्वमविद्यायाः भूषणम्।
अजाग्रत्स्वप्ननिद्रस्य यत्ते रूपं सनातनम्।
अचेतनमजडं चेति तन्मयो भव सर्वदा।।
कर्ता कषायपाकेन परिपक्वमतिः स्थितः।
चेतस्यस्याद्य विमले स्वतत्त्वं प्रतिविम्बति।। (लघुयोगवा.नि.९.९६)
स्वरूपे निर्मले सत्ये निमेषमपि विस्मृते।
दृश्यमुल्लासमायाति प्राविषीव पयोधराः।।
अहंभावानहंभावौ त्यक्त्वा सदसतौ तथा।
यदसंसक्तं च स्वच्छं स्थितं तत्तुर्यमुच्यते।।
यां स्वच्छा समता शान्ता जीवन्मुक्तव्यवस्थितिः।
साक्ष्यवस्थाव्यवहृतौ सा तुर्यकलनोच्यते।। (लघुयोगवा.)

अघटित घटनाओं को घटाना ही अविद्या का भूषण है अर्थात् अघटित घटना घटाने में जो परम प्रवीणता है वह अविद्या (माया) का अलङ्करण-आभूषण है। इन अलङ्करणों से महामाया सदा सज्जित रहती है।

जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति का साक्षी और इन तीनों से ही भिन्न जो तेरा सनातन स्वरूप है, जिसे न चेतन कह सकते हैं और न जड़ ही कह सकते हैं अर्थात् अनिर्वचनीय है, तुम तन्मय हो जाओ, तद्रूपता को प्राप्त हो जाओ।

राग-द्वेषादिरूप कषाय के परिपाक से (नष्ट हो जाने से) साधक की परिपक्व (परिष्कृत) बुद्धि व चित्त शुद्धि हो जाती है। फिर विमल अन्तःकरण में परमात्मतत्त्व प्रतिविम्बित हो जाता है।

जब साधक का अन्तःकरण पवित्र हो जाता है और स्वतत्त्व प्रतिविम्बित होने लगता है तब दृश्य (ध्येय) उल्लसित हो जाता है जैसे वर्षा ऋतु में बादल पुञ्जीभूत हो जाते हैं।

जब साधक 'अहं' भाव और 'अनहं' भाव—'मैं हूँ और मैं नही हूँ—इन दोनों भावों को छोड़ कर सत्-असत् का त्याग कर चुका होता है तब स्वच्छ व निर्लेप तत्त्व का ज्ञान हो जाता है। उसी को तुरीयावस्था कहते हैं। साक्षी अवस्थाओं के व्यवहार में जो स्वच्छ, शान्त तथा समतायुक्त जीवन्मुक्त अवस्था है—उसे चतुर्थी कलना (अवस्था) कहते हैं।

नैव जाग्रन्न च स्वप्नः संकल्पानामसंभवात्।
सुषुप्तभावो नाप्येतत् अभावाज्जडतास्थितेः।।
शान्तं सम्यक्प्रबुद्धानां यथास्थितमिदं जगत्।
विलीनतुर्यमित्याहुः अबुद्धास्थिरं स्थितम्।। (लघुयोगवा.नि. १४)
प्रवाहपतितं कुर्वन् निरिच्छस्तिष्ठ शान्तधीः।
देहदुःखं विदुर्व्याधिं आध्याख्यं वासनामयम्।
मौर्ख्यमूले हि ते विद्यात् तत्त्वज्ञानपरिक्षये।।
एते चिद्विलासान्ता मनोबुद्धीन्द्रियादयः।
असन्तः सर्व एवाहो द्वितीयेन्दुपदस्थिताः।। (योगवा नि. ७८.३१)
महाचिदेकैवास्तीह महासत्तेति योच्यते।
निष्कलङ्का समा शुद्धा निरहंकाररूपिणी।।

तुरीय चैतन्य में संकल्पों के असम्भव होने से जाग्रत् और स्वप्न नहीं रहते, ये दोनों ही अवस्थाएँ समाप्त हो चुकी होती हैं और जड़ता स्थिति के अभाव से सुषुप्ति भी नहीं रहती।

ज्ञानियों के लिए यह यथास्थित जगत् तुर्य तत्त्व में विलीन हो जाता है, ऐसा कहा गया है और अज्ञों के लिए यह जगत् जैसा है वैसा ही दिखायी देता है।

संसार का जैसा प्रवाह है उसे वैसा ही करते (समझते) हुए तू इच्छा शून्य होकर शान्तबुद्धि हो जा।

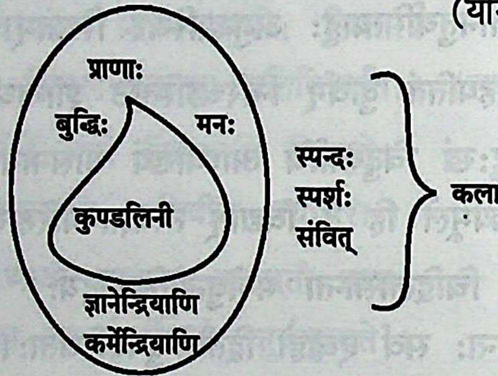
देह के दुःखों को व्याधि कहते हैं और वासनामय दुःखों को आधि कहते हैं, ये दोनों ही मूर्खता के मूल हैं अज्ञान के कारण है—ऐसा जानो, तत्त्वज्ञान से इनका नाश हो जाता है।

ये मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ आदि चेतन के विलास पर्यन्त ही हैं, ये न होते हुए भी अविद्या के दोष से दिखायी देते हैं, जैसे नेत्र के विकार से एक ही चन्द्रमा दो दिखायी देता है।

वास्तव में एक महान् चेतन परमात्मा ही इस संसार में सत्यरूप से विराजमान है; उसको महासत्ता भी कहते हैं। यह निष्कलङ्क, समरूप, विशुद्ध और अहङ्काररहित है।

अचेत्यं यदिदं चित्त्वं तत्तस्या रूपमक्षतम्।
तृणीकृत्य जगत्सर्वं पीताखिलजगद्रसम्।
अनन्तोङ्कामरं सौम्यं मनः पश्यामि ते प्रिये।।

(योगवाशि.नि. ८१.२)



अग्निसोमौ मिथः कार्य-कारणे च व्यवस्थितौ।
पर्यायेण समौ चैतौ प्रजीयेते परस्परम्।। (,, ,, ८१)

उसका जो अचिन्त्य चेतन स्वभाव है, वह सदा अक्षत रहता है, वह अपने परमानन्द स्वरूप से कभी विचलित नहीं होता।

आत्मतत्त्व में परिनिष्ठित चूडाला को अपूर्व शोभासम्पन्न देखकर उसके पति राजा शिखिध्वज ने कहा—चेतनस्वरूप को जान कर जिसने संसार को तृणवत् समझ लिया है, तथा सम्पूर्ण जगत् रूप रस के पान से जो तृप्त है (जैसे कि तुमने अमृत का सार पी लिया है) जिसने अलभ्य अनन्त परमात्मा की प्राप्ति कर ली है। हे देवि! ऐसा मैं तुम्हारा सौम्य मन देखता हूँ।

पूर्ण प्रवाह

जिस प्रकार वायु पुष्प से गन्ध खींच कर घ्राणेन्द्रिय के साथ सम्बन्ध कर देता है उसी प्रकार योगी स्पन्द, स्पर्श, संवित् कला के माध्यम से कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों के विषयों से ऊपर उठकर विमल मन-बुद्धि-चित्त अलंकाररूप अन्तःकरण युक्त हो, कुण्डलिनी के साथ देह में बँधी हुई लता के समान समस्त नाड़ियों को प्राणायाम द्वारा ऊपर उठाकर प्राणो को ब्रह्मरन्ध्र में स्थापित कर देता है और आकाशगामी सिद्धों का दर्शन करते हुए समस्त सिद्धियों को प्राप्त करता हुआ चितिपूर्ण आकाश में समाहित हो जाता है।

अग्नि और चन्द्र दोनों एक साथ कार्यकारण में व्यवस्थित हैं और पर्यायरूप से दोनों समान हैं। दोनों की परस्पर सम्मिलित सत्ता है, जीते है और जीवन प्रदान करते हैं। उष्ण

सर्वं तृष्णात्मकं सूर्यः शीतसोमस्तयोर्जगत्।।

चिद्रूपजडरूपाभ्यां आरब्धेयं जगत्स्थितिः।
प्रकाशमनलं सूर्यं चिद्रूपं विद्धि राघव।।

चित्सूर्ये निर्मले दृष्टे राम नश्येद् भवोदयम्।
चितश्चेत्नोन्मुखत्वेन लाभः सैव च संसृतिः।।

उपदेशक्रमो राम व्यवस्थामात्रपालनम्।
ज्ञप्तेस्तुकारणं शुद्धा शिष्यप्रज्ञैव राघव।। (योगवा.नि. ८३.१३)

अहो नु विषमं मौर्ख्यं तदनात्मज्ञतात्मकम्।

यावत्प्रमाणं जीवोऽयं संशाम्यत्यपरिस्फुरन्।
तावत्प्रमाणमेवैनं मुक्तं मुक्तमवेहि वै।। (,, ,, पू. ८२.१२७)

सवासनं मनो ज्ञेयं ज्ञानं निर्वासनं मनः।
ज्ञानेन ज्ञेयमभ्येति पुनर्जीवो न जायते।। (,, ,, पू. ८७)

प्रकृति प्राणवायु अग्निस्वरूप है तथा शीतल प्रकृति अपान वायु चन्द्रस्वरूप है, छाया और घाम की तरह दोनों ही समरूप से रहते हैं। सर्वतृष्णात्मक सूर्य है और शीतलता से परिपूर्ण चन्द्रमा है। सूर्य तृष्णा है और सोम उस तृष्णा को पूर्ण करने वाली आशा है। इन दोनों से ही जगत् की स्थिति है।

चित् और जड़ रूप से ही इस सृष्टि का निर्माण प्रारम्भ हुआ है। प्रकाश, अग्नि और सूर्य को तुम हे राम! चित् रूप समझो। निर्मल चित् रूप सूर्य के देख लेने पर इस भवोदय का विनाश हो जाता है। यदि चित्त प्रकाश की ओर उन्मुख नहीं होता है तो अविद्या जन्म से ग्रस्त यह जीव-मरणरूप संसार को ही लाभ समझेगा।

हे राम! गुरु द्वारा उपदेश प्राप्त करने का क्रम केवल शास्त्रमर्यादा का पालन है, ज्ञान-प्राप्ति का कारण तो शिष्य की विश्वासयुक्त विशुद्ध प्रज्ञा ही है।

अहो! यह कैसी अज्ञान भरी मूर्खता है, इसी मूर्खता के कारण ही जीव ने अपनी विषम स्थिति करली है; सत्यस्वरूप होते हुए भी असत्य रूप बन बैठा है।

जितने प्रमाण में जीव मन-इन्द्रियों का संयम करके परिस्फुरित होता है अर्थात् ऊपर उठता है, उतने ही प्रमाण में वह संसार के दोषों से क्रमशः मुक्त होता चला जाता है।

जब तक मन में वासना रहती है, तब तक मन-मन रहता है (वासनायुक्त मन को मन जानना चाहिए) वासनाओं के समाप्त होते ही वह मन ज्ञान के रूप में परिणत हो

वासनामात्रसारत्वादज्ञस्य सफलाः क्रियाः।
सर्वा एवाफला ज्ञस्य वासनामात्रसंक्षयात्।।
कालातिवाहनायैव विनोदायोदिताः क्रियाः।। (योगवा. नि.पू. ८७)

अनुपादेयवाक्यस्य वक्तुः पृष्टस्य लीलया।
व्रजन्त्यफलतां वाचः तमसीवाक्षसंविदः।।

चित्तं सर्वमिति प्राहुः तत्त्यागे निर्वृतिः परा।
सर्वनाशो हि चित्तस्य संसृतिक्षय उच्यते।।

हेतुत्वाभावतो ब्रह्म कार्यत्वाभावतस्तथा।
अद्वैतेनातिगन्तात्मा न च कार्यं न कारणम्।।
(योगवा.नि. पू. ९५.१२)

जाता है। ज्ञान के द्वारा जीव ज्ञेय परम लक्ष्य परमात्मा को प्राप्त होता है, फिर उसका जन्म नहीं होता। अतः मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है।

अज्ञानी के सभी कर्म सफल होते हैं, क्योंकि कर्मों की सफलता में प्रयोजक वासनाएँ उसमें बनी हुई हैं, परन्तु जो ज्ञान-सम्पन्न हैं उनके सभी कर्म निष्फल हैं, क्योंकि उनकी वासनाएँ नष्ट हो चुकी हैं। वासनाओं का क्षय होने पर कर्मफल भी नष्ट हो जाते हैं।

ज्ञानी की क्रियाएँ काल के अति बाह्य (समय व्यतीत करने के लिए) और मात्र विनोद के लिए होती हैं। उनकी क्रियाओं में वासना का सर्वदा अभाव रहता है।

जिसके वचनों में श्रोता की श्रद्धा नहीं होती और जिससे कौतूहल से प्रश्न किया जाता है, प्रश्नकर्ता ही जब अपने प्रश्न को उपादेय नहीं मान रहा तो ऐसे अनुपादेय वाक्य से वक्ता की वाणी निष्फल हो जाती है अर्थात् अश्रद्धालु श्रोता के सामने कुछ कहना निरर्थक हो जाता है जैसे अन्धकार में नेत्र-ज्ञान व्यर्थ हो जाता है।

चित्त ही सब कुछ है इसके (मैं-मेरा) त्याग में ही पर निवृत्ति है। इस चित्त का सर्वथा नाश ही संसार का भी नाश है—ऐसा तत्वज्ञों ने कहा है।

शुद्ध अद्वितीय ब्रह्म न तो कार्य है और न कारण ही, क्योंकि निर्विकार होने से उसमें कार्यत्व और कारणत्व का अभाव है। यह ब्रह्म अर्पूव है, अपर है। इसमें नानात्व

'तदेतद्ब्रह्मापूर्वमपरम्' नेह नानास्ति किंचन। 'असङ्गो ह्ययं पुरुषः'–श्रुतयः। कूटस्थस्य परिमाणयोगात् सर्वप्रपञ्चातिगन्तात्मा शुद्धं ब्रह्म न कारणं नापि कार्यम्। (टी.)

कारणाभावतः कार्यं न कस्यचिदिदं जगत्।
भ्रमाद्विद्धि तत्।।

पदार्थाभावसंसिद्धौ वेदनाभाव आगतः।
तदभावे त्वहंकारहानिः शुद्धोऽवशिष्यते।। (,, ,, १९)

अतः शुद्धो विमुक्तोऽसि कैवोक्तिर्बन्धमोक्षयोः।

चित्तं नास्त्येव दृश्यत्वात् कदाचित्किंचन क्वचित्।
यच्चेदं चित्तवद् भाति तद् ब्रह्मभिधमव्ययम्।।

अतोऽज्ञानात्मकं यत्तत् जगदेव न विद्यते।
तत्राहं त्वं तदित्यादि कल्पिताः कलनाः कुतः।। (,, ,, ९८)

यदिदं कचति तद् ब्रह्म स्वयमात्मात्मनात्मनि।
कृतं तस्यैव तेनैव चित्तमित्यादि नामकम्।।

किञ्चित् भी नहीं है—अद्वय है। यह परम पुरुष है, असङ्ग है। कूटस्थ परिमाण के अयोग से सर्वप्रपञ्च का अतिगन्ता आत्मा शुद्ध ब्रह्म है। वह न कारण और न कार्य ही।

यह जगत् किसी का भी कार्य नहीं है, क्योंकि कारणस्वरूप न रहने से जो कार्य रूप दिखायी देता है, वह केवल भ्रम से ही है। किसी का कार्य न होने से सृष्टि का तीनों कालों में अत्यन्ताभाव है। जब यह जगत् किसी का कार्य नहीं है तब अनायास समस्त पदार्थों का मिथ्यात्व सिद्ध हो जाता है। पदार्थों का मिथ्यात्व सिद्ध हो जाने पर फिर ज्ञान किसका और जब ज्ञान का ही अभाव सिद्ध हो गया तब अहङ्कार का भी कोई कारण नहीं रहता इसलिए तुम शुद्धयुक्त ही हो, फिर बन्धन और मोक्ष की क्या बात है।

चित्त नाम का पदार्थ किसी काल में, कहीं भी नहीं है। यह जो चित्त सा प्रतीत हो रहा है वह अविनाशी ब्रह्म ही है।

सम्पूर्ण चित्त आदि प्रपञ्च अज्ञानात्मक है इसलिए उसका अस्तित्व ही नहीं क्योंकि जो अज्ञानात्मक वस्तु रहती है उसका ज्ञान से बोध हो जाता है। अतः अधिष्ठान ब्रह्म में अहं, त्वं, तत् इत्यादि कल्पनाएँ कैसे रह सकती है जो कुछ भी यह प्रकट जगत् है वह कुछ है ही नहीं।

जो कुछ भी दिखायी देता है, वह ब्रह्म है। यह स्वयं अपनी आत्मा में ही है वह

ब्रह्मणः सर्वरूपस्य शान्तस्यात्तस्य यत्समम्।
स्वत एवात्मकचनं सर्गप्रलयरूपधृक्।।

मूर्खबुद्धं जगद्भाति यत्तद् ब्रह्मेव वेद्म्यहम्। (शिखिध्वजः)

चूडाला—

सौम्यार्णवोदरावर्तपरिस्पन्दवदास्व भोः।
यथास्थितव्यवहृति मौनी शान्तमना मुनिः।। (योगवा. ६. पू. ८९)

आत्मतत्त्वैकघनया ततया ब्रह्मसत्तया।
जगत्सर्वमिति व्याप्तं समुद्र इव वारिणा।। (,, ,, १००)

कच्चिदस्मिन्पदे स्फारे शुद्धे विततनिर्मले।
सुतल्पे निर्विकल्पानां सुखं विश्रान्तवानसि।।

सब भासनात्मक ब्रह्म ही है दूसरा नहीं। चित्त इत्यादि नामक असत्य पदार्थ उसके ही है और उससे ही बने हैं।

सर्ग-प्रलय-रूप धारण करने वाला यह सब भासमान समस्त जगत् परम शान्त, अजन्मा, सम और सर्वरूप अनादि परमात्मरूप है।

शिखिध्वज कहता है कि मूर्खों की बुद्धि में यह जगत् दिखायी देता है; किन्तु यह जो कुछ भी है वह सब ब्रह्म है, ऐसा मैं जान गया हूँ।

चूडाला कहती है-हे सौम्य! जिस तरह समुद्र में तरंग आदि वास्तव में जलमात्र ही है, उसी तरह ब्रह्म में संसार और संसार के पदार्थ परमात्मा का यथार्थ ज्ञान होने पर एकमात्र परमात्मस्वरूप ही है, वहाँ वाणी की गति नहीं है, मन की गति नहीं है। अतः मननशील ज्ञानी, मौनी और शान्त हो जाता है।

जैसे जल से समुद्र परिपूर्ण है, वैसे ही सच्चिदानन्द परमात्मतत्त्व ब्रह्मसत्ता से यह सारा संसार परिपूर्ण है, अभिव्याप्त है।

कुम्भरूपिणी चूडाला ने राजा शिखिध्यज से कहा—राजन्! जो अत्यन्त प्रकाशवान्, शुद्ध, विस्तृत एवं निर्मल है तथा जो निर्विकल्प समाधि में स्थित रहने वाले योगियों के लिए सुन्दर शय्या के समान है उस आत्मपद में आपको आनन्दपूर्वक विश्रान्ति प्राप्त हो चुकी है न?

मनस्युपशमं याते त्यक्तभोगैषणे स्थिते।
कषायपाके निवृत्ते सर्वेन्द्रियगणस्य च।।
यान्ति चेतसि विश्रान्तिं विमला देशिकोक्तयः।।
एकं वस्तु जगत्सर्वं चिन्मात्रं वारि वाम्बुधिः।
तदेव स्पन्दते धीभिः शुद्धवारीव वीचिभिः।।

सस्पन्दा चित्-जगत्। निःस्पन्दा-तुर्यातीता। वाचा वक्तुं न पार्यते।

शास्त्रसज्जनसंपर्कसतताभ्यासयोगतः।
कालेनामलतां प्राप्ते चेतसीन्दाविवोदिता।। ('' '' १०१)

शिखिध्वजः—

ज्ञस्य सर्वत्र वै स्वर्गो नियतो न तु कुत्रचित्।
अवाञ्छनत्वान्मनसः सर्वत्रानन्दवानहम्।। (यो.वा.नि.पु. १०७)

जब भोगेच्छाओं का परित्याग कर देने से मन पूर्णतः शान्त हो जाता है और सम्पूर्ण इन्द्रियगणों के भोगरूप दोषों की निवृत्ति हो जाती है, तब चित्त में उपदेशक की विमल उक्तियाँ स्थित हो जाती हैं।

जैसे सागर जल रूप से एक है, उसी तरह यह सम्पूर्ण जगत् चिन्मात्र स्वरूप होने के कारण एक ही वस्तु है। जैसे तरंगें शुद्ध जल को ही उछालती हैं वैसे ही बुद्धि-वृत्तियाँ उसी चिन्मात्र को स्पन्दित करती हैं।

स्पन्दनयुक्त चित् जगत् है और स्पन्दरहित चित् तुर्यातीता स्थिति है, जिसे वाणी से नहीं कहा जा सकता।

निरन्तर शास्त्रों का अभ्यास और सत्पुरुषों के संग से जब समय पाकर चित्त शुद्ध हो जाता है, तब चित्त में चन्द्रोदय की तरह एकमात्र चेतन परमात्मा के स्वरूप का अनुभव होता है।

इन्द्र के स्वर्ग में चलने के लिए कहने पर आत्मनिष्ठ शिखिध्वज ने कहा—मैं तो सभी देशों को स्वर्ग मानता हूँ, (ज्ञानी को सभी जगह स्वर्ग है) क्योंकि मैं जिस परमात्मा को स्वर्ग मानता हूँ, उसकी सत्ता सर्वत्र विद्यमान है। अतः मेरे लिए कहीं पर भी एकदेशीय स्वर्ग नहीं है। मेरे मन में किसी प्रकार की इच्छा नहीं है, मैं सर्वत्र आनन्द से परिपूर्ण रहता हूँ।

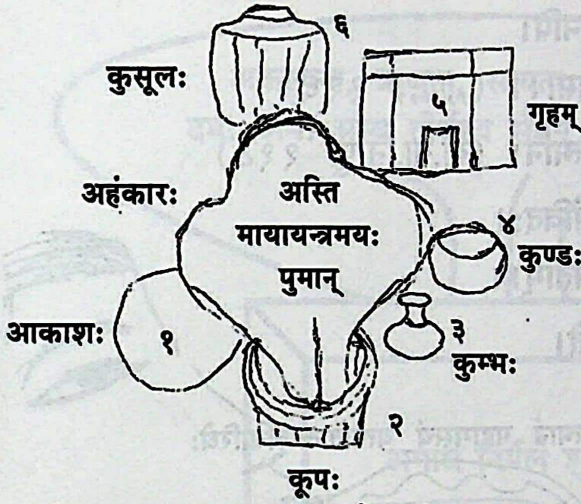
शरीरशकटानां हि कर्षणे परमात्मना।
मनःप्राणोदयौ क्लृप्तौ रूपं जीवत्वमेव तत्।।
मनोरथमुपारुह्य वहत्प्राणतुरंगकः।। (,, ,, ६.३२)
सर्वगाचिच्चेतनतो जीवीभूय मनः स्थिता।
चेतसि प्रतिबिम्बति।।
ब्रह्मणः सर्वशक्तित्वं तत्त्वतो न विरुध्यते।
भिद्यते।।
तरङ्गकणकल्लोलजलौघ इव वारिणः।।
देशकालक्रियासत्तानियत्याद्याश्च शक्तयः।
चिदात्मिका एव चितः सत्त्वात्संपतिताः स्वतः।।
यथा वीच्याद्यभिधार्हं स्थितमम्बु तरंगकम्।
असंभवत्तरंगस्य चिद्विलासमहाम्बुधेः।। (,, ,, ३३)
चित्तं सर्वमिति प्राहुः तत्त्यक्त्वा पुत्र राजसे।
निजमहंकारं विदुः।।

परमात्मा ने ही शरीररूपी गाड़ी को खींचने के लिए मनःशक्ति और प्राणशक्ति—ये दो सुदृढ़ बैल बनाये हैं। (परमात्मा से ही वह जीव जीवन धारण करता है।) यह जीव का रूप है। मनोरथ को आरोहित कर प्राणतुरंग (घोड़े) इसको ले जाते हैं।

सर्वशक्ति रूप होने पर भी चेतन जीवात्मा अज्ञानवश स्वयं अपने मन में ऐसा मान बैठता है कि मैं चेतन नहीं हूँ, जबकि जीवात्मा और परमात्मा में भेद है ही नहीं। तत्त्वतः ब्रह्म का सर्वशक्तित्व वास्तव में ब्रह्म से विभक्त नहीं रहता, जैसे तरंग, कण, कल्लोल और प्रवाह जल से विभक्त नहीं रहते।

देश, काल और क्रिया की सत्ता एवं नियति आदि शक्तियाँ स्वयं चेतन की सत्ता से ही सत्तायुक्त होकर स्थित हैं। जैसे वीचि (लहर) आदि संज्ञा के योग्य स्थित जल ही तो है क्योंकि जल बिना तरंग का होना असम्भव है, वैसे ही सकल प्रपञ्च महाम्बुधि का चिद्विलास है।

चित्त ही सब कुछ है—ऐसा कहा जाता है, इस लिए उस को (जीवभाव) को त्याग कर हे पुत्र! परम तत्त्व में सुशोभित हो जाओ। स्वकीय अहंकार को जानो। (क्योंकि अहंकार नामक चित्त और संसार के दोषों की निवृत्ति हो जाने पर पुरुष सदा शान्त और प्रसन्न रहता है।)



(योगवा.नि.पू. ११२)

परमाद् ब्रह्मणः पूर्वं मनः प्रथममुत्थितम्। मननात्मकमाभोगि तत्स्थमेव स्थितिं गतम्। पुष्पकोश इवामोदः। (,, ,, ११४)

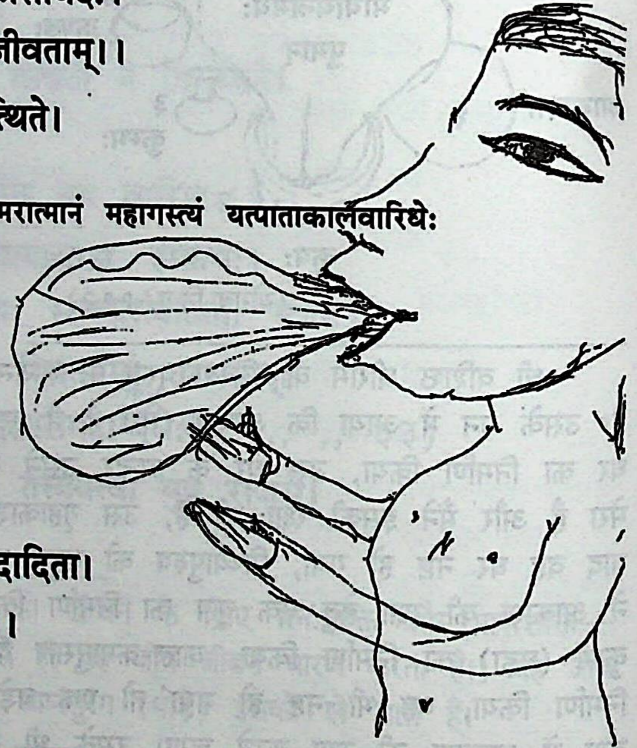
श्री वशिष्ठ श्रीराम को मिथ्या पुरुष के सम्बन्ध में बताते हैं—एक मायायन्त्रमय पुरुष है। उसके मन में आया कि आकाश मेरा है मैं इसकी रक्षा करूँगा। उसकी रक्षा हेतु एक घर का निर्माण किया, उस घर के अन्दर उसने यह आस्था बाँध ली कि यह आकाश मेरा है और मैंने इसकी रक्षा की है, उस गृहाकाश से वह सन्तुष्ट हो गया। कुछ काल बाद वह घर नष्ट हो गया, मिथ्यापुरुष को बहुत शोक हुआ। फिर उस दुर्बुद्धि मिथ्यापुरुष ने आकाश की रक्षा हेतु एक कूप का निर्माण किया वह भी नष्ट हो गया, फिर उसने कुम्भ (घड़ा) का निर्माण किया, काल-क्रमानुसार वह भी नष्ट हो गया। फिर कुण्ड का निर्माण किया, वह भी नष्ट हो गया तो एक बड़े से घर का निर्माण किया, मध्य के कक्ष में आकाश की रक्षा करने लगा। उसके भी नष्ट हो जाने पर एक मेघाकार कुसूल (कोठा) बनाया और आकाश की रक्षा में निरत हो सन्तुष्ट हो गया।

इस प्रकार मिथ्या पुरुष का यह कभी समाप्त न होने वाला काल बीतता जाता है। गहन घर, कूप, कुण्ड आदि उपाधियों से आकाश को आत्मबुद्धि से पकड़कर वह मिथ्यापुरुष गमनागमन की आसक्ति से विवश होकर एक दुःख से दूसरे अतिकठिन दुःख में आता-जाता रहता है।

जो आत्मा है, वह आकाश से भी बड़ा है। जैसे घट के विनष्ट होने पर घटाकाश नष्ट नहीं होता, वैसे ही देह के नष्ट हो जाने पर निर्लेप जीवात्मा का विनाश नहीं होता। लेकिन उस मिथ्या पुरुष को यह तत्त्व समझ नहीं आता।

सृष्टि के आदि में पर ब्रह्म से यह संकल्प-विकल्पात्मक समष्टि मन उत्पन्न हुआ। उस पर ब्रह्म में स्थित हुआ ही अनेक भिन्न-भिन्न कल्पनाओं को निमित्त बनकर आजतक विद्यमान है। जैसे कि फूलों में सुगन्ध रहती है।

भावाभावविरुद्धोऽपि विचित्रोऽपिमहानपि।
नानन्दाय न खेदाय सतां संसृतिविभ्रमः।। (,, ,, ११६)
सुखदुःखदशा मोहो मनस्येवास्ति नात्मनि। (यो.वा.नि.पू. ११८)
संकल्पान्मुखतां याताः सत्यश्चिन्मात्रसंविदः।
आपस्तरङ्गत्वमिव यान्ति भूमिप जीवताम्।।
ते जीवा संसरन्तीह संसारे पूर्वमुत्थिते।



सन्निवेशांशवैचित्र्यं यथा हेम्नोऽङ्गदादिता।
आत्मनस्तत्तद्रूपा तथैव जगदादिता।।

भाव (अस्ति) और अभाव (नास्ति) के विरुद्ध होने और महान् विचित्र होने पर भी यह जगत् विभ्रम सत्य के अनुसन्धाताओं के लिए न आनन्द का विषय है और न ही खेद का, वे तो संसार में समभाव से रहते हैं।

सुख, दुःख की दशा और मोह आदि विकार मन में ही होते हैं आत्मा में नहीं। अपने संकल्प से सच्चिदानन्द ब्रह्म ही नाना प्रकार के आकारों में प्रकट होता है। जैसे तल अनेक तरंगों के रूप में प्रतीत होता है। वैसे ही ब्रह्म ही जीवता को प्राप्त हो जाता है। वे जीव यहाँ पूर्व उत्थित संसार में अविद्यावश संसरण करते हैं।

जैसे स्वर्ण ही अङ्गदादि आभूषण रूप में दिखायी देता है, वैसे ही आत्मा (ब्रह्म) ही तत्तत् रूपों में परिणत हो जाता है, है वस्तुतः सब ब्रह्म ही। इस प्रकार ब्रह्म सन्निष्टि जगत् में वैचित्र्य की प्रक्रिया प्रवाहित है।

महा अगस्त्यरूप आत्मा का स्मरण करो, जिन्होंने कालरूपी समुद्र को पी लिया था।

अकल्पना, ऋजुता, सत्यता, मृदुता, अहिंसा, अक्रूरता, दमः शमः,अस्य तीर्थस्य सेवने प्राप्यानि पवित्राणि लक्षणानि।

अगाधं निर्मलं शुद्धम्
मानसं तीर्थम्
सत्यं पयः

सत्त्वगुणा-
श्रयेण स्नानम्

धैर्यं कुण्डम्

(तीर्थाङ्कात्)

मानसतीर्थ

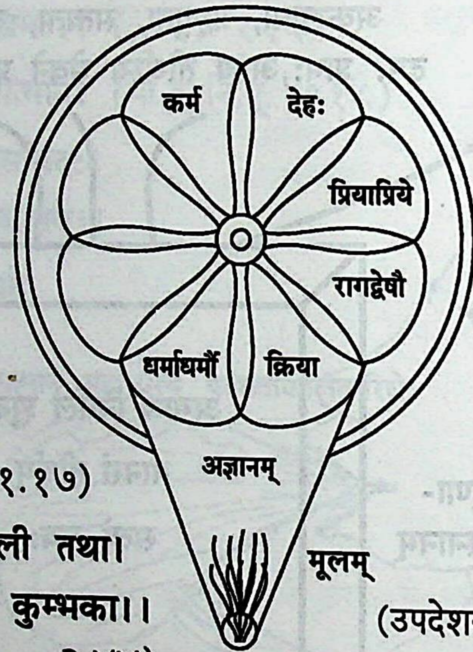
पृथिवी पर जितने भी तीर्थ हैं, सब श्रेष्ठ व पवित्र हैं। एक तीर्थ ऐसा है जो सर्वश्रेष्ठ व परम पुनीत है। यह ऐसा तीर्थ है, जिसके लिए कहीं आना-जाना नहीं पड़ता। आप जहाँ भी हैं, वहीं इस तीर्थ में अवगाहन किया जा सकता है। इस तीर्थ का नाम है—मानस तीर्थ।

धैर्यरूप कुण्ड में सत्यरूपी जल भरा हुआ है, जो अगाध, निर्मल एवं अत्यन्त शुद्ध है। इस मानसतीर्थ में सदा सत्त्वगुण का आश्रय लेकर स्नान करना चाहिए।

कल्पना का अभाव, सरलता, सत्य, मृदुता, अहिंसा, क्रूरता का अभाव, इन्द्रिय-संयम और मनो निग्रह—ये ही इस मानसतीर्थ के सेवन से प्राप्त होने वाली पवित्रता के लक्षण हैं।

मानसतीर्थ में प्रसन्न मन से सत्यरूपी जल के द्वारा जो स्नान किया जाता है, वही तत्त्व ज्ञानियों का स्नान है।

संसारचक्रम्



(उपदेशसा. १.३)

कुर्यादासनं-स्थैर्यमारोग्यं लाघवं च।

(हठयोगप्रदीपिका १.१७)

सूर्यभेदी तथोज्जायी सीत्कारी शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्छा प्लाविनीत्यष्ट कुम्भका।।

(,, ,, २.४४)

संसार–चक्र

संसार-चक्र के मूल में अज्ञान है। अविद्याग्रस्त जीव धर्म-अधर्ममयी क्रियाएँ अर्थात् पाप-पुण्य करता रहता है, जिससे कर्म बनता है, फिर उन कर्मों के फल को भोगने के लिए देह धारण करना पड़ता है। देह धारण करने के बाद प्रिय-अप्रिय, मेरा-तेरा के भाव जाग्रत् होता है, राग-द्वेष पनपते हैं, आत्मस्वरूप की विस्मृति के कारण वह जीवभाव में बना रहता है, कर्म करता है, उन्हें भोगने के लिए जन्म लेता है। इस तरह आवागमन के चक्कर में सदा वह पिसता रहता है। यही संसार-चक्र है।

तत्त्वज्ञानियों के संग और उनके उपदेशों के आत्मसात् कर लेने पर ही इस चक्र से मुक्ति मिल सकती है।

आसन

स्थिरता, आरोग्यता और लाघव के लिए आसन करे।

कुम्भक

सूर्यभेदी, उज्ञायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्छा, और प्लाविनी भेद से कुम्भक आठ प्रकार का है। यहाँ नाम मात्र का संकेत है। विशेष ज्ञान के लिए हठयोग-प्रदीपिका या पातञ्जलयोगदर्शन देखें।

३. ब्रह्मरन्ध्रम्। ४. महापथः

१. सुषुम्ना

२. शून्यपदवी

५. श्मशानम्

६. शाम्भवी

७. मध्यमार्गः



(हठयोगप्रदीपिका ३.४)

मुद्रादशकम्-जरामरणनाशनम्

१. महाबन्धः। २. महावेधः। ३. महामुद्रा। ४. खेचरी ५. उड्यानम्। ६. मूलबन्धः। ७. जालंधरबन्धः। ८. विपरीतकरणी। ९. बज्रोली। १०. शक्तिचालनम्।
(ह.योगदीपि. ३.६,७)

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानथर्वणादपि।। (नाट्यशास्त्रे १.१७)

महापथ

कुण्डलिनी (सर्पाकृति) जाग्रत् होने पर सुषुम्ना के मध्यमार्ग का अतिक्रमणकर ब्रह्मरन्ध्र में प्रविष्ट हो जाती है, उससे भी ऊपर निकलकर महापथ को प्राप्तकर महाश्मशान क्षेत्र में जहाँ शम्भु की महाशक्ति का साम्राज्य है, वहाँ जीव को पहुँचा देनी है। शाम्भवी के आश्रय से वह शून्यपदवी को प्राप्त हो जाता है, जहाँ शिव विराजमान हैं।

दस मुद्राएँ

१. महाबन्ध, २. महावेध, ३. महामुद्रा, ४. खेचरी मुद्रा, ५. उड्यान मुद्रा, ६. मूलबन्ध, ७. जालन्धरबन्ध, ८. विपरीतकरणी, ९ वज्रौली, १०. शक्तिचालन—ये दस मुद्राएँ जरा-मरण नाशक है। विज्ञ व्यक्ति के सान्निध्य में ही इन मुद्राओं का सुगमतापूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

नाट्यशास्त्र

ऋग्वेद से पाठ ग्रहण किया, सामवेद से गायन लिया, यजुर्वेद से अभिनय की तत्तत् कलाएँ ग्रहीत की गयीं और श्रृङ्गारादि रसों को अथर्ववेद से प्राप्त किया। इस प्रकार

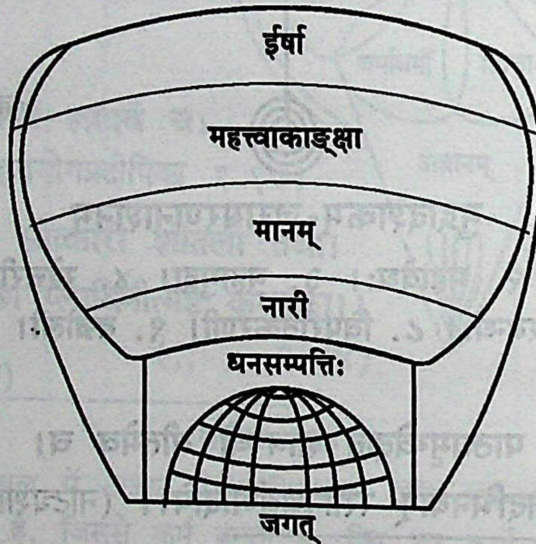
अविद्यानुमानम् (विवरणम्)

प्रमाणंज्ञानम्, स्वप्रागभावव्यतिरिक्तस्वविषयावरणस्वनिवर्त्य स्वदेशगतवस्त्वन्तर-पूर्वकम्, अप्रकाशितार्थप्रकाशकत्वात्, तमसि प्रदीपप्रभावत्।

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तराभावादपवर्गः।

(न्यायसू. १.१.२)

शरीरं षडिन्द्रियाणि षड् विषयाः षड् बुद्धयः सुखं दुःखं चैकविंशतिदुःखानि।



नाट्यशास्त्र में चारों वेदों का समन्वय है। इसलिए ही समस्त शास्त्रों से नाट्यशास्त्र-साहित्यशास्त्र का सर्वोत्कर्ष प्रतिपादन किया जाता है।

अविद्या का अनुमान-प्रमाण ज्ञान

अपने प्रागभाव से व्यतिरिक्त स्वविषयक आवरण का निवर्तक होता है और स्वदेशगत अन्य वस्तु के अप्रकाशित अर्थ को प्रकाशित कर देने वाला प्रमाण ज्ञान है। जैसे अन्धकार में दीपक प्रकाशित कर देता है। प्रमाण से ही अविद्या का अनुमान होता है।

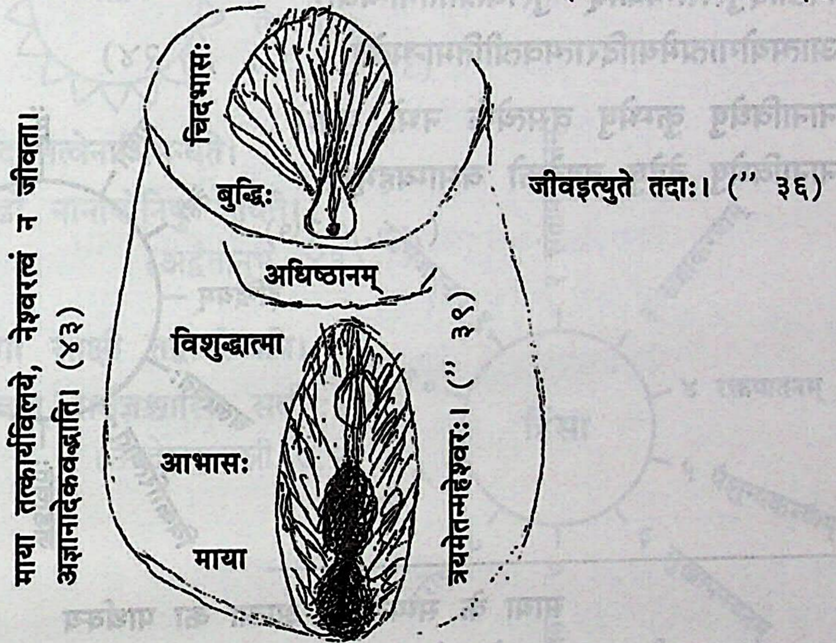
अपवर्ग

मिथ्या ज्ञान के नाश से दोषों की निवृत्ति होती है और दोषों की निवृत्ति से जन्म प्रभृति दुःखों की निवृत्ति होती है। तदनन्तर अपवर्ग की प्राप्ति होती है।

इक्कीस दुःख हैं—शरीर, छः इन्द्रियाँ, छः इन्द्रियों के विषय, छः बुद्धियाँ, सुख और दुःख, ईर्ष्या महत्त्वाकाङ्क्षा, मान, नारी और धन-सम्पत्ति—इनमें प्रवृत्ति-बुद्धि ही जगत् है। अविद्यावश जीव इक्कीस प्रकार के दुःख भोगता रहता है।

चिदमृतसुखराशौ चित्तफेनं विलीनं क्षयमधिगत एव वृत्तिचंचत्तरंगः।
स्तिमितसुखसमुद्रो निर्विचेष्टः सुपूर्णः कथमिह मम दुःखं सर्वदैकोऽहमस्मि।।

(स्वात्मप्रकाशिका २८)



ब्रह्मप्रमोदार्णव

चित् रूप अमृत सुख समुद्र की प्राप्ति होने पर अर्थात् ब्रह्मप्रमोदार्णव में समाहित हो जाने पर चित्तरूपी फेन (झाग) विलीन हो जाता है तथा नाना प्रकार की चञ्चल वृत्ति रूप तरंगे (वासनाएँ) नष्ट हो जाती हैं। उस समय आत्मारूपी सुख समुद्र निश्चेष्ट तथा परिपूर्ण हो जाता है। फिर 'मैं हूँ'—मुझे दुःख हो रहा है—ये सब प्रतीति समाप्त होकर मैं सर्वदा एक ही हूँ—ऐसा स्वात्म प्रकाश होने लगता है।

जब एक अज्ञान का ही मान होता है, तब वह जीव है और सम्पूर्ण अज्ञानों का अवभास होने पर ईश्वर कहलाता है। दोनों ही माया की उपाधि हैं। माया और माया के कार्य विलीन होने पर न ईश्वर रहता है और न जीव ही।

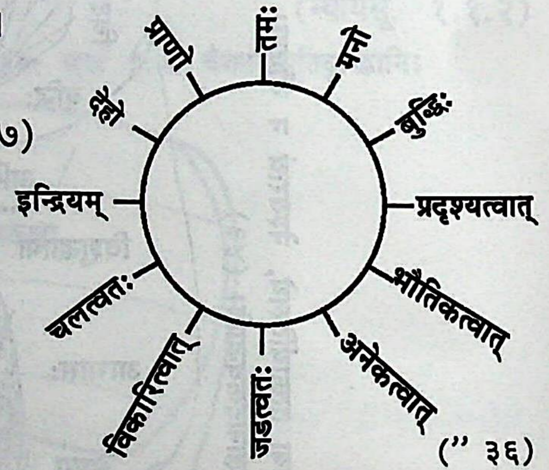
एक ही अधिष्ठान (शुद्ध चैतन्य) है। बुद्धि के विविध प्रस्फुरणों से, सबमें चैतन्य का प्रतिबिम्ब पड़ने से बुद्धि-भेद से चिदाभास में भी भेद हो जाता है।

विशुद्धात्मा श्वेत वस्त्र की तरह है; किन्तु माया ने तरह-तरह की चित्रकारी करके अनेक आभास उत्पन्न कर दिये। माया, आभास और विशुद्धात्मा ये तीनों ही इस जगत् प्रपञ्च के महेश्वर हैं।

आत्मैवायं तथाभाति मायायोगात्प्रपञ्चवत्।
जलादन्य इवाभाति जलोत्थो बुद्बुदो यथा।। (अद्वैतानुभूतिः १३)

पिष्टादिर्गुलसम्पर्काद् गुलवत्प्रीतिमान्यथा।
आत्मयोगात्प्रमेयादिरात्मवत्प्रीतिमान्भवेत्।। (,, ,, २४)

नानाविधेषु कुम्भेषु वसत्येकं नभो यथा।
नानाविधेषु देहेषु तद्वदेको वसाम्यहम्।।
(,, ,, २७)



('' ३६)

माया के सम्पर्क से आत्मा का पार्थक्य

आत्मा ही माया के योग से जगत् प्रपञ्च-सा दिखाई देता है। जबकि वह एक है, जैसे एक ही जल में, जल से ही उत्थित बुद्बुद (फेन), और तरंगे पृथक्-पृथक् दिखायी देती हैं।

सम्पर्क गुण

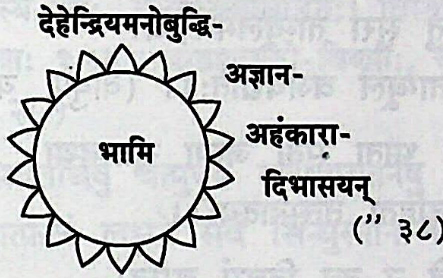
रस विशेष (गुलकन्द आदि) के सम्पर्क से पिसी हुई अन्य वस्तुएँ भी उसी के स्वाद की हो जाती हैं। उसी तरह चेतन (आत्मा) के संयोग से प्रमाण-प्रमेय आदि भी प्रेमास्पद प्रतीत होते हैं।

विविध शरीरों में एक ही आत्मा

विविध कुम्भों में जैसे एक ही आकाश का निवास है, इसी तरह अनेकानेक शरीरों में एक ही मैं निवास करता हूँ।

ये मैं नही हूँ

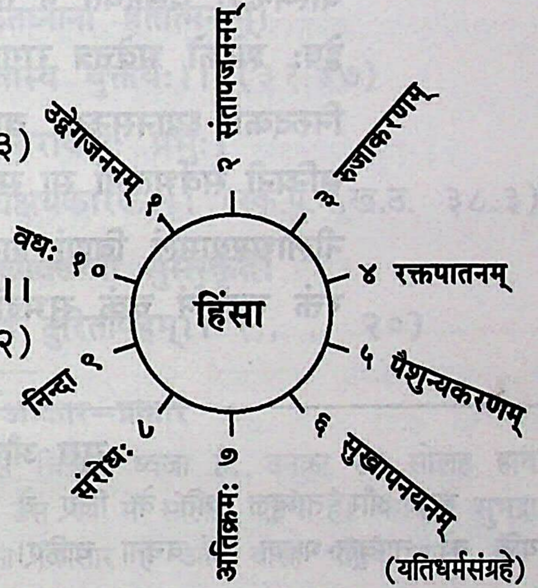
न मैं बुद्धि हूँ, न मन हूँ, न तम हूँ, न प्राण हूँ, न शरीर हूँ और न इन्द्रिय हूँ। दृश्य, भौतिक, अनेक, जड़, विकारी और चलत्व होने से मैं इनमें से कोई नहीं हूँ। अपितु स्वयं प्रकाश आत्मा हूँ।



(" ३८)

देहत्रयमिदं यावदात्मत्वेनाभिमन्यते।
तावदेव ह्ययं मूढो नानायोनिषु जायते।।
(अद्वैतानुभू. ४३)

यथात्मबुद्धिचाराणां साक्षी तद्वत्परेष्वपि।
अशेषबुद्धिसाक्षित्वात् सर्वज्ञश्चास्मि सर्वगः।।
(उपदेशसाहस्री ७.२)



(यतिधर्मसंग्रहे)

भासक

भासि—अवभासक (प्रकाशक) चैतन्य से ही देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और अहंकार आदि प्रकाशित होते हैं।

अज्ञानी जीव

तीन प्रकार के शरीरों-कारण शरीर, सूक्ष्मशरीर व स्थूल शरीर को जब तक आत्मा मानता है, तब तक ही यह अज्ञानी जीव नाना योनियों में जाता-आता है।

साक्षी

जैसे मैं अपने मन-बुद्धि आदि का साक्षी (द्रष्टा) हूँ, वैसे ही दूसरों के मन-बुद्धि आदि का द्रष्टा हूँ। समस्त बुद्धियों का साक्षी होने से मैं सर्वगत और सर्वज्ञ हूँ।

हिंसा

उद्वेग, सन्ताप, रोग, रक्तपात, पैशुन्य, सुखहानि, मर्यादा का अतिक्रमण, संरोध, निन्दा और वध आदि के मूल में हिंसा ही है, अतः उक्त सभी हिंसा के अन्तर्गत ग्रहीत हैं।

द्वावेतौ समवीर्यौ तु सुरा ताम्बूलमेव च।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ताम्बूलं वर्जयेद्यतिः।। (वायुपु. यतिध.सं.)
पिता माता स्वसा भ्राता सुता जाया सुतस्तथा।
ज्ञातिबन्धुसुहृद्वर्गो दुहिता तत्सुतादयः।।
यस्मिन्देशे वसन्त्येते न तत्र दिवसं वसेत्।
द्वेषः शोको भवेत्तत्र रागहर्षादयो मलाः।। (अत्रिरिति य.ध.सं.)
निरुदका ध्यानसन्ध्या वाक्कायक्लेशवर्जिता।
सन्धिनी सर्वभूतानां सा सन्ध्या ह्येकदण्डिनाम्।। (विष्णुरितिय.ध.स.)
नीलाभ्रश्यामलं विष्णुं शङ्खेदुधवलं बलम्।
रक्तं सुदर्शनं चक्रं सुभद्रां कुङ्कुमारुणाम्।।
(स्कन्दपुरा. ३.३०ख.१९-२१)

सुरा और ताम्बूल

सुरा और ताम्बूल यति के लिए ये दोनों ही समान हैं। अतः विशेष प्रयत्नपूर्वक यति को ताम्बूल-भक्षण से बचना चाहिए।

यति के लिए वर्जित स्थान

जहाँ माता-पिता, भाई-बहिन, स्त्री, पुत्र-पुत्री, ज्ञाति बन्धु, सुहृद् वर्ग, दुहिता और उसके पुत्री-पुत्र आदि रहते हों, वहाँ संन्यासी को एक दिन भी नहीं ठहरना चाहिए; क्योंकि वहाँ रहने से राग-द्वेष, शोक, हर्ष आदि मल उत्पन्न हो जाते हैं।

यति-सन्ध्या

जल रहित ध्यान और सन्ध्या, वाणी और शरीर के क्लेश से वर्जित और समस्त भूतों को जोड़ने आत्मसात् करने वाली—वह सन्ध्या एक दण्डी यतियों के लिए निहित है।

जगन्नाथपुरी के प्रधान देवता

नील मेघ के समान श्यामसुन्दर श्रीविष्णु पुरुषोत्तम श्रीजगन्नाथजी विराजमान हैं। उनके दक्षिणभाग में शङ्ख-इन्दु के समान शुभ्र वर्ण के श्रीबलरामजी हैं। इन दोनों के मध्यभाग में कुङ्कुम के समान लाल वर्णवाली कल्याणमयी सुभद्रा देवी सुशोभित हो रही हैं। वहाँ पर रक्तवर्ण वाला सुदर्शन चक्र भी है।

श्रीवासुदेवस्य रथः, गरुडध्वजचिह्नितः। विस्तारम् १६ हस्तः। २२ करोच्छायम् पद्मध्वजः सुभद्रायाः १२ह.। षोडशचक्रो-विष्णोः, चतुर्दशबलस्य, १४ ह. सुभद्रायास्तु द्वादश। (,, ,, २५)

सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वेष्वायतनेषु च।
तत्फलं लभते सर्वं सिन्धुस्नानान्न संशयः।। (,, ,, ३५.१६१)

मूढानां नास्तिकानां च कृतघ्नानां हतात्मनाम्।
धर्मकृत्येषु जायन्ते अविश्वास्य युक्तयः।। (३१.४७)

सुधोपमं सुपक्वान्नं भुङ्क्ते नारायणः प्रभुः।
तदुच्छिष्टोपभोगो हि सर्वाघक्षयकारकः।। (स्क.पु.वै.ख.उ. ३८.३)

जगद्धात्र्या हि यत्पक्वं वैष्णवेऽग्नौ सुसंस्कृते।
तदश्नाति जगन्नाथः तच्छेषं दुरितापहम्।। (,, ,, २०)

उनके रथों का आकार—प्रकार

भगवान् वासुदेव के रथ पर गरुड से चिह्नित ध्वजा है, उनका रथ सोलह हाथ के परिमाण का है, बाईस हाथ ऊँचा है और उस रथ में सोलह पहिये हैं। भगवती सुभद्रा का रथ पद्मध्वज से युक्त है, बारह हाथ का विस्तार है और बारह पहिये वाला है।

श्रीबलरामजी के रथ का विस्तार चौदह हाथ है और उसमें चौदह पहिये हैं। उस रथ पर हलचिह्नित ध्वज है।

समुद्र—स्नान का फल

समस्त तीर्थों का सेवन करने और समस्त देवालयों में दर्शन-पूजन करने से जो फल प्राप्त होता है, वह फल निश्चित् ही समुद्र-स्नान करने से प्राप्त हो जाता है।

अविश्वास

मूढ़, नास्तिक, कृतघ्न और आत्महन्ता प्राणियों को धार्मिक कृत्यों में दुर्भाग्य से अविश्वास की युक्तियाँ उत्पन्न हो जाती है।

जगन्नाथ भगवान् के प्रसाद का माहात्म्य

अमृतोपम पक्वान्न को नारायण प्रभु स्वयं भक्षण करते हैं। उनके भोजन से शेष बचे उच्छिष्ट-उत्कृष्ट अन्न को जो प्रसादरूप में खाता है, उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

भगवती जगद्धात्री महालक्ष्मी के द्वारा वैष्णवाग्नि में सुसंस्कृत—पकाये गये पक्वान्न का

कुक्कुरस्य मुखाद् भ्रष्टं ब्राह्मणेनापि भोक्तव्यम् (,, ,, १६)
नाल्पपुण्यवतां तत्र विश्वासश्च प्रजायते।। (,, ,, २५)
ज्ञस्येयं भोगमोक्षार्थं स्वशरीरमहापुरी।
सुखायैव न दुःखाय स्वालोकार्थं प्रकाशिता।।
(योगवाशिष्ठे ४.२३.२)
सकलाक्षजनादृश्यसुखप्रेक्षापराङ्मुखः।
ध्याननाम्नि सुखं नित्यं तिष्ठत्यन्तःपुरान्तरे।। (,, ,, २८)
स्थितया संस्थितं सर्वं किञ्चिन्नष्टं न नष्टया। (,, ,, ३०)
द्वे कान्ते तिष्ठतः सम्यक् पार्श्वयोः समतैकते। (,, ,, ३७)
रमते रामया मैत्र्या नित्यं हृदयसंस्थितः। (,, ,, ३६)

ही भगवान् श्रीहरि जगन्नाथजी भोग लगाते हैं। उनके द्वारा सेवित प्रसाद (उच्छिष्ट) सकल पापों का हरण करने वाला है।

वह प्रसाद इतना पवित्र है कि (कुक्कुर) कुत्ता के मुख से स्पर्श हो जाने पर भी ग्राह्य है। थोड़े पुण्य वाले मनुष्यों का उस प्रसाद में विश्वास नहीं होता।

देह नगरी

अपना शरीर भोग और मोक्ष देने वाली एक महापुरी है। विवेकी (ज्ञानी) पुरुष इस नगरी में रहता हुआ न सुख का अनुभव करता है और न दुःख का ही, उसकी दृष्टि में यह नगरी न सुख के लिए है और न दुःख के लिए। यह पुरी तो उसके लिए स्वात्म प्रकाश को प्रकाशित करने वाली है। वह तो इस देहरूपी नगरी में राज्य करता हुआ सदा निश्चिन्त एवं अपने आत्मा में स्थित रहता है।

किन्तु अज्ञानी के लिए यह शरीररूपी नगरी अनन्त दुःखों का ही भण्डार-गृह है।

ज्ञानी तो जिस पर सम्पूर्ण इन्द्रियरूपी जन समुदाय की दृष्टि रहती है, उस विषय-सुख के अवलोकन से पराङ्मुख हो इस अन्तःपुर के मध्य ध्यान में सदा सुखपूर्वक बैठा रहता है।

इस नगरी (शरीर) के रहने पर सब कुछ रहता है, जबकि इसके नष्ट हो जाने पर कुछ भी नष्ट नहीं होता।

विवेकी पुरुष इस शरीर-नगरी में रहकर हृदय-पुण्डरीक में आरूढ़ हो सदा शान्ति-

चिरं पूरितसर्वाशः सर्वसम्पत्तिसुन्दरः (,, ,, ३९)
संशान्तसर्वसंदेहो गलिताखिलकौतुकः।
संक्षीणकल्पनादेहो ज्ञः सम्राडिव राजते।। (,, ,, ४७)
परमाणौ परमाणौ चिदाकाशः स्वकोटरे।
जगल्लक्ष्मीसहस्राणि धत्ते कृत्वाथ पश्यति।।
(योगवाशिष्ठे २.१७.४९)
विततता हृदयस्य महामते हरिहराब्जजलक्षशतैरपि।
तुलनमेति न मुक्तिमतो यतः प्रविततास्ति निरुत्तमवस्तुनः।।
(,, ,,५०)

काशी

शिवलोकाभिधं क्षेत्रं निर्मितं तेन ब्रह्मणा।
तदेव काशिकेत्येतत्प्रोच्यते क्षेत्रमुत्तमम्।।
परं निर्वाणसंस्थानं सर्वोपरि विराजितम्।।

प्रदा लोक सुन्दरी मैत्रीरूपिणी अपनी प्रिया के साथ नित्य रमण करता है। उसके दोनों पार्श्व में सत्यता और समता नाम की दो कान्ताएँ सम्यक् रूप से विराजमान् रहती हैं।

जिसके सारे मनोरथ चिरकाल से परिपूर्ण हो गये हैं, जो सर्वात्मभाव सम्पत्ति से सुन्दर दिखायी देता है। जिसके सारे सन्देह निवृत्त हो गये हैं, भोग-सम्बन्धी सारी उत्सुकता जिसकी विनष्ट हो गयी है तथा काल्पनिक शरीर क्षीण हो गया है, वह ज्ञानी पुरुष सम्राट् के समान विराजमान होता है।

—चैतन्य घन परमात्मा अपने अन्दर कल्पित आकाश में प्रत्येक परमाणु में सहस्त्रों लोकों की रचना करके उन्हें धारण करता है और स्वयं उन्हें देखता है।

—हे महामते! इस मुक्त पुरुष के हृदय की विशालता की तुलना हजारों हरि-हर और ब्रह्मा से भी नहीं हो सकती। ये ही सर्वोत्तम वस्तु की वास्तविक महिमा है।

काशी

काल स्वरूपी उस ब्रह्म ने शिवलोक नामक क्षेत्र का निर्माण किया। उसी उत्तम शिव क्षेत्र को सबके ऊपर विराजमान होने के कारण 'काशी' नाम से कहते हैं। वह 'मोक्ष-क्षेत्र' भी कहा गया है।

मुने प्रलयकालेऽपि न तत्क्षेत्रं कदाचन।।
विमुक्तं हि शिवाभ्यां यदविमुक्तं ततो विदुः।
अस्यानन्दवनं नाम पुराकारि पिनाकिना।। (शिवपुरा. रु.सं.सृ. ६)

संस्थिता भावयन्तीव चिद्रूपैवपरात्पदात्।
भिन्नमाकारमात्मीयं चित्स्तम्भे शालभञ्जिका।।
(योगवाशि. ३.२.२६)

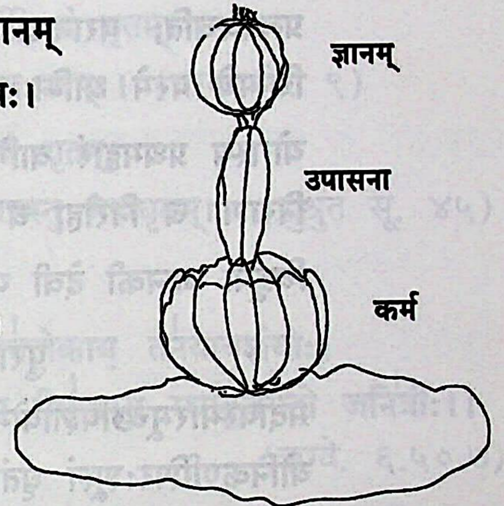


हे मुनि! भगवान् शिव और शक्ति प्रलयकाल में भी इस क्षेत्र का त्याग नहीं करते इसी से इस क्षेत्र को अविमुक्त क्षेत्र भी कहा जाता है। पिनाक धारण करने वाले सदा शिव ने सर्वप्रथम अपने इस विहार-स्थल को 'आनन्दवन' नाम से कहा था।

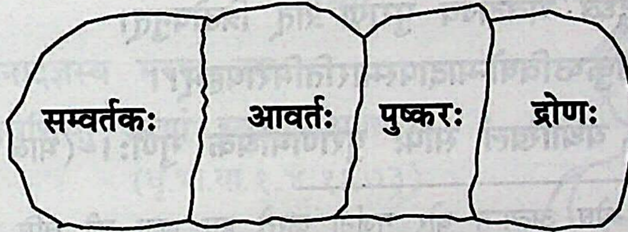
चेतनरूपी स्तम्भ में अपने को पर पद से भिन्न आकार में अपनी सत्ता को मानती हुई शालभञ्जिका (पुरुषाकृति) स्थित है। जब कि वह स्वयं चित् रूप ही है। वह चिदाकाश स्वरूप ही है। अर्थात् जिस उपादान से जिसकी उत्पत्ति होती है, वह तद्रूप ही होता है। शालवृक्षीय काष्ठ में चित्रित आकृति भी तो शाल काष्ठ ही है। ये जगत् चेतन से निर्मित है, किन्तु जीव उस चेतन से स्वयं को पृथक् मान बैठा है।

शिवनैवेद्याशनम्

शिवभक्तः शुचिः शुद्धः सद्व्रती दृढनिश्चयः।
भक्षयेच्छिवनैवेद्यं त्यजेदग्राह्यभावनाम्।
दृष्टेऽपि शिवनैवेद्ये यान्ति पापानि दूरतः।
भक्षिते शिवनैवेद्ये शिवसायुज्यमाप्नुयात्।।
(शिवपु.वि.सं.२२)



(भुशुण्डिरामा. ९६)



एते चतुर्विधा मेघाः लयंकराः। चतुर्बिन्दुमितं रेतः। तोयदास्ते कदारवः।
(शिवपु. रु.स. २)

शिव, नैवैद्य की प्रशंसा

शिवभक्त सर्वदा पवित्र, शुद्ध, सद्व्रती एवं दृढ़ निश्चय कर शिव-नैवेद्य भक्षण करें और उसके अग्राह्य होने की भावना त्याग दें। शिव-नैवेद्य के दर्शन मात्र से ही समस्त पाप दूर भाग जाते हैं। शिव-नैवेद्य के भक्षण कर लेने पर शिव-सायुज्य की प्राप्ति होती है।

कर्म, उपासना और ज्ञान

यह एक क्रम है—कर्म, उपासना और फिर ज्ञान। वेदों में भी यही त्रिकाण्ड क्रम। भगवदाज्ञा स्वरूप वेद-स्मृति वचनों में विश्वास करते हुए तदनुसार सत् कर्मों के अनुपालन से उपासना–भगवान् के सान्निध्य प्राप्ति की भावना जाग्रत् होती है। उत्कट उपासना से उपास्य-उपासक भाव के एकीभूत होने को ही ज्ञान कहते हैं। जीव सत्कर्मों के द्वारा उपासना रूप शक्ति के आश्रय से ही ज्ञान स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति कर सकता है।

प्रलयङ्कारी मेघ

सम्वर्तक, आवर्त, पुष्कर और द्रोण—ये चार प्रकार के प्रलय करने वाले मेघ हैं।

प्रत्यक्चितिः परानन्दा सहजानामशब्दिता।
चिन्मये परमे धाम्नि प्रमोदवनसंज्ञिनि।। (आदिरा. प.ख. ५५)

योगस्य प्रथमद्वारं वाग्निरोधोऽपरिग्रहः।
निराशा च निरीहा च नित्यमेकान्तशीलता।। (विवेकचूडा. ३६९)

चिद्रूपा जानकी देवी परानन्दः स राघवः। (आदिरा. प.ख. ५१)

पुराणं घृतम्

मदापस्मारमूर्च्छापशोषोन्मादगरज्वरान्।
योनिकर्णशिरःशूलं घृतं जीर्णमपोहति।। (चरकसं. सू. २७)

वर्षादूर्ध्वं भवेदाज्यं पुराणं तत् त्रिदोषनुत्।
मूर्च्छाकुष्ठविषोन्मादापस्मारतिमिरापहम्।।
यथा यथाखिलं सर्पिः पुराणमधिकं गुणैः। (भाव प्र.)

चतुर्बिन्दु, रेतात्मक ये मेघ अत्यन्त घोर गर्जना करते हुए जल की वृष्टि करते हैं, जिससे ये सारी सृष्टि जल मग्न हो जाती है।

प्रमोदवनवासिनी सहजा

यह सहजा नाम की पराशक्ति प्रत्यक् चिति और परमानन्द स्वरूपा है। चिन्मय परम धाम रूप प्रमोद वन में सदा विहार करती है।

योग का प्रथम द्वार

वाणी को रोकना, द्रव्य का संग्रह न करना, लौकिक पदार्थों की आशा छोड़ना, कामनाओं का त्याग करना और नित्य एकान्त में रहना—यह सब योग का पहला द्वार है।

जानकी और राघव

प्रत्यक् चिति—चिद्रूपा भगवती जानकी हैं और परमानन्द स्वरूप श्रीराम (राघव) हैं, प्रमोदवनसंज्ञक चिन्मय परमधाम में दोनों ही नित्य रमण करते हैं।

पुराण घृत

पुराना घृत मद, अपस्मार, मूर्च्छा, अपशोष, उन्माद, गर (विष), ज्वर, योनिशूल, कर्णशूल और शिरशूल—ऐसे रोगों को नष्ट करता है।

एक वर्ष पुराना घी त्रिदोषों का शमन करता है तथा मूर्च्छा, कुष्ठ, विष, उन्माद,

उग्रगन्धं पुराणं स्याद् दशवर्षस्थितं घृतम्।
लाक्षारससमं शान्तं प्रपुराणमतःपरम्।। (चरक चि. ९)
एकादशशतं चैव वत्सरानुषितं घृतम्।
रक्षोघ्नं कुम्भसर्पिः स्यात् परतस्तु महाघृतम्।। (शुश्रुत सू. ४५)

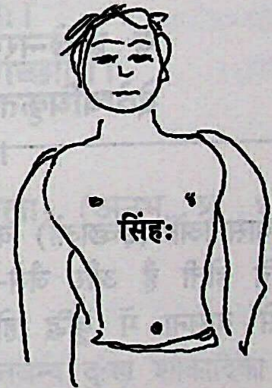
आपः

ओमानमापो मानुषीरमृक्तं धाततोकाय तनयायशंयोः।
यूयं हिष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः।।
(ऋग्वे. ६.५०.७)

मृत्युः

मृत्योर्मृत्य्वपरिज्ञानादज्ञस्य मरणं तमः।
ज्ञानाद् ध्वान्तनिवृत्तिस्तु मरणं स्याद्विपश्चिताम्।।
(वृ.भा.वा.१.४.१६७३)

(वृत्त्यारूढो दृगात्मा)



अपस्मार और रतोन्ध जैसे रोगों को ठीक करता है। जैसे-जैसे घी पुराना होता जायेगा, वैसे-वैसे ही उसमें गुणों की वृद्धि होगी।

दस वर्ष का रखा हुआ उग्र गन्ध वाला घी पुराण घृत है, इससे अधिक काल तक रखा गया, द्राक्षा रस के समान शान्त गन्ध वाला घृत प्रपुराण घृत कहा जाता है।

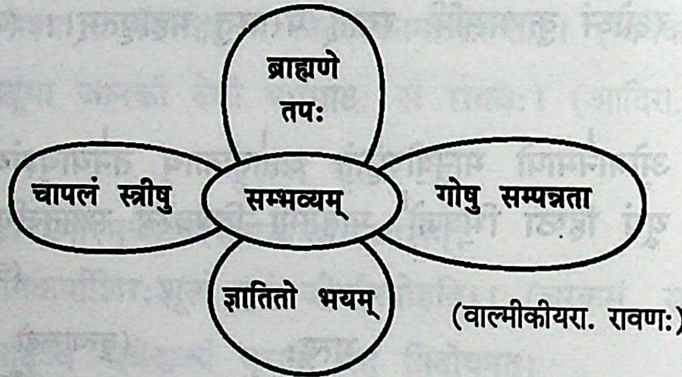
ग्यारह सौ वर्ष तक रखा हुआ घृत रक्षोघ्न कलश घृत होता है और उससे भी अधिक वर्षों से कलश में रखा गया घृत 'महाघृत' नाम से कहा जाता है।

मृत्यु

मृत्यु की भी मृत्यु सम्भव है, इस बात को भूला हुआ अज्ञानी का मरण ज्ञानान्धकार ही है। ज्ञानियों की दृष्टि में ज्ञानरूप प्रकाश से अज्ञानान्धकार की निवृत्ति ही मृत्यु है।

ज्ञानरूपी प्रकाश से अन्धकाररूपी मृत्यु की मृत्यु होती है, इस वृत्ति से आरूढ़ दृगात्मा सिंह के समान रहता है, उसे मृत्यु का भय नहीं है।

वासनावृद्धितः कार्यं कार्यवृद्ध्या हि वासना। (विवेक चू. ५.२८)
शीलं संवसनाज्ज्ञेयं शौचं संव्यवहारतः।
प्रज्ञा संकथनाज्ज्ञेया त्रिभिः पात्रं परीक्ष्यते।। (स्कान्दे सह्याद्रि ख.)



य इच्छेन्नरकं गन्तुं सपुत्रपशुबान्धवः।
देवेष्वधिकृतः स स्यात् गोषु वा ब्राह्मणेषु वा।। (वा.रा.उ.)

वासना—वृद्धि

वासनाओं (इच्छाओं) की वृद्धि से उन इच्छाओं की पूर्ति हेतु जागतिक असत्कार्यों में प्रवृत्ति होती है और जैसे-जैसे वासनाओं की पूर्ति में कार्य बढ़ेगे वैसे-वैसे कार्यों की वृद्धि से वासना में वृद्धि होगी।

पात्र—परीक्षा

साथ-साथ किये गये आवास से शील का ज्ञान, व्यवहार से शुचिता (पवित्रता) का ज्ञान, और बोल-चाल से प्रज्ञा (बुद्धि-प्रतिभा) का ज्ञान होता है—इन तीन प्रकार से पात्र की परीक्षा करनी चाहिए।

स्वाभाविक सम्भावना

ब्राह्मण में तप, स्त्रियों में चपलता, जाति-बान्धवों से भय और गायों से सम्पन्नता की सम्भावना स्वाभाविक ही है।

नरक जाने की इच्छा

जो पुत्र, पशु और बान्धवों के सहित (सपरिवार) नरक जाना चाहता है तो वह देवालय, गौशाला और ब्राह्मणों के भोजन—इन तीनों अथवा इन तीनों में से किसी एक की व्यवस्था का भार स्वीकार कर ले। अर्थात् कभी न कभी लोभ आ जाने पर इनके द्रव्य का अपहरण करने का पाप लग जायेगा, फलतः नरक की प्राप्ति हो जायेगी।

अविद्या तु स्थिताप्यत्र द्वैतदुःखाद्यनुद्भवात्।
स्वभावं न तिरोधत्ते स्वप्रभानन्दमद्वयम्।।

(१-सुषुप्तौ) (अनुभूति प्र. १८.३९)

'हृदयस्याग्रं प्रद्योतते'। (उपनिषद्)

स एष कर्मजो बुद्धेः प्रकाशो जायते मृतौ। (अनुभू.प्र. ११८.१५)

स घ ध थ भां हः-प्राकृतसूत्रम्।

जगद्भ्रमं जीवभेदं वासनां देहधारणम्।
चतुष्टयं निराकुर्याद् अभिध्यानादिभिः क्रमात्।।

अभितो ब्रह्मरूपत्वध्यानाद्याति जगद्भ्रमः।
ब्रह्मत्वे योजिते स्वस्य जीवभावोऽपि गच्छति।।

अद्वये भाविते तत्त्वे वासना विनिवर्तते।
आरब्धान्ते देहहानिः मायैवं क्षीयतेऽखिला। (अनुभू. प्र. १२)

अविद्या और आत्मानुभूति

आत्मानुभूति होने पर यद्यपि अविद्या रहती है, किन्तु द्वैतजन्य दुःख शोकादिका अनुभव न होने के कारण अविद्या आत्मा के स्वयं प्रकाश अद्वयानन्द स्वभाव को तिरोहित (ढकने) करने में असमर्थ रहती है। सुषुप्ति अवस्था में आनन्द स्वभाव स्थित रहता है।

हृदय का अग्रभाग प्रकाशित होता है। मृत्यु हो जाने पर भी कर्मजन्य बुद्धि का प्रकाश तिरोहित नहीं होता, अपितु बना रहता है।

ध्यान द्वारा जगत् भ्रम आदि का निराकरण

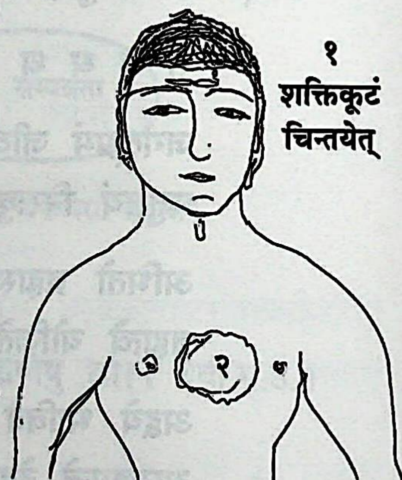
जगत् भ्रम, ईश्वर-जीव भेद, वासना और देहधारण—इन चारों का सम्यक् ध्यान के द्वारा क्रमशः निराकरण करना चाहिए। जो भी कुछ है—वह सब ब्रह्म, चारों ओर ब्रह्म ही ब्रह्म है—ऐसा ध्यान करने से जगद्-ब्रह्म तिरोहित हो जाता है और यह जगत् है—ऐसा समझने से जगत् का भ्रम बना ही रहता है। स्वयं को ब्रह्म से योजित कर देने से जीवभाव भी चला जाता है और अद्वय तत्त्व में स्थित होते ही वासनाएँ निवृत्त हो जाती हैं। ध्यान की अन्तिम स्थिति में पहुँचते ही—अद्वय भाव के उदित होते ही देहाध्यास विनष्ट हो जाता है और यह सम्पूर्ण माया क्षीण हो जाती है।

निस्तत्त्वं व्यवहारार्हं अनृतं बालयक्षवत्। (,, ,, १.४)
परमात्मन उत्पन्नो जगदात्मैव नेतरत्।। (,, ,, २०)
सन्निवेशोपाधितोऽयं तथा कुम्भादिविभ्रमः। (,, ,, २२)
अर्थक्रियानृतेऽप्यस्ति स्थाणौ चौरभयेक्षणात्। (अनुभू.प्र. १.२८)

कुण्डलिनीमन्त्रः (श्रीविद्यार्णवे-५)

वाग्भवं भुवनेशी च श्रीबीजं तु तथैव च।
त्र्यक्षरो मन्त्र आख्यातः कुण्डलिन्याः सुसिद्धिदः।।

ऋषिः–शक्तिः गायत्रीच्छन्दः। चेतनकुण्डली शक्तिः–देवता। वाग्भवं–बीजम्। शक्तिः–श्रीबीजम्। हृल्लेखा–कीलकम्। कुण्डलिन्याः चिन्तने–विनियोगः।



जगत् एक भ्रम है

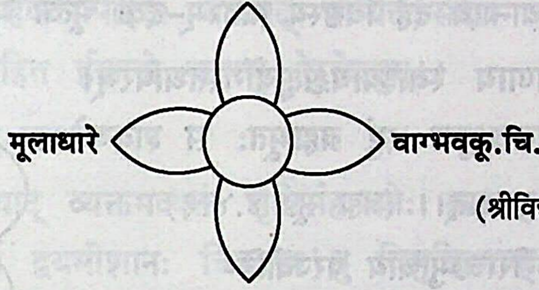
यह संसार सारहीन है, मात्र बाह्य व्यवहार के लिए ही है, नितान्त असत्य है—बालक की क्रीड़ा के समान है।

यह जगत् परमात्मा से ही समुद्भूत है, अतः यह सम्पूर्ण जगत्-प्रपञ्च आत्मा ही है, इससे अतिरिक्त नहीं है। एक ही सर्वव्यापक परमात्मा तत्तत् उपाधियों से सन्निविष्ट होने के कारण पृथक्-पृथक् दिखायी देता है। जैसे एक ही महा आकाश कुम्भादि उपाधियों के भेद से घटाकाश, मठाकाशादि रूप में विभक्त हो जाता है।

अर्थ-क्रिया के असत्य होने पर भी अन्धकार में स्थाणु (पाषाण-खण्ड या वृक्षादि का सूखा ठूँठ) को देखने से यह प्रतीति हो जाती है कि यह चोर है और भय उत्पन्न हो जाता है। अतः अज्ञानी के लिए यह संसार सत्य प्रतीत होता है। जब कि जगत् एक भ्रम है।

कुण्डलिनी–मन्त्र

कुण्डलिनी का वाग्भव बीज 'ऐं' भुवनेशी बीज 'ह्रीं' और श्री बीज 'श्रीं' है। यह तीन अक्षरों वाला कुण्डलिनी मन्त्र है, जो सुन्दर सिद्धियों को प्रदान करने वाला प्रसिद्ध मन्त्र है।



(श्रीविद्यार्णवः ५)

अभेदध्यानम्

मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं ब्रह्मविद्यां विभावयेत्।
तत्प्रभापटलव्याप्तं स्वशरीरं विचिन्तयेत्।।

अहं देवि न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान्।
त्वमेवाहमहं त्वं च संविन्मात्रवपुस्तव।।

ततो देहस्य सन्नाहं सम्यङ्न्यासं समाचरेत्।
एवं वर्णमयं होमं कृत्वा दिव्यतनुर्नरः।।

इस मन्त्र के सर्वशक्ति संयुत सदा शिव ऋषि हैं, गायत्री छन्द है, चेतन कुण्डलिनी शक्ति देवता है, वाग्भव बीज है, श्री बीज शक्ति है, हृल्लेखा कीलक है और कुण्डलिनी के चिन्तन में इस मन्त्र का विनियोग है।

द्विदलात्मक भ्रूमध्य में स्थित आज्ञाचक्र में शक्ति-कूट का चिन्तन करना चाहिए।

द्वादश दलात्मक हृदयस्थ अनाहत चक्र में कामराज कूट का और चतुर्दलात्मक मूलाधार चक्र में वाग्भव कूट का चिन्तन करे।

अभेद ध्यान

मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त ब्रह्मविद्या की विभावना करे, ब्रह्मविद्या के प्रभा पटल से अभिव्याप्त अपने शरीर का चिन्तन करे। ऐसा चिन्तन करे कि ब्रह्मविद्या के दिव्य प्रकाश से मेरा शरीर अभिभूत हो गया है। ऐसा भाव सुदृढ़ हो जाये कि मैं देवी स्वरूप हूँ, कोई अन्य नहीं। मुझमें दुःख-शोक का लेश भी नहीं है, मैं ब्रह्म ही हूँ, सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ, नित्य शुद्ध स्वभाव वाला हूँ, तुम ही मैं हूँ, मैं ही तुम हो। यह तुम्हारा ज्ञानमय शरीर है। तदनन्तर मैं शरीर नहीं हूँ; इस भाव से शरीर, सम्यक् न्यास करे, इस प्रकार

न्यस्य मन्त्री यथान्यायं देहे विश्वस्य मातरम्–देवो भूत्वा यजेद् देवान्।

तदीक्षणाय स्वाध्यायश्चक्षुर्योगस्तथापरम्।
न मांसचक्षुषा द्रष्टुं ब्रह्मभूतः स शक्यते।।

सम्पद्याविर्भावः स्वेन शब्दात्।। (ब्रह्म सू. ४.४.१)

एष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीराच्छमुत्थाय परंज्योतिरूपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते। (श्रु.)

देवलोकः विद्यया (उपासनयाजय्यः)

पितृलोकः कर्मणाजय्यः

अयं लोकः पुत्रेणजय्यः

(जीवनमुक्तिविवेके)

दिव्य शरीरधारी साधक वर्णमय होम करके मन्त्र जापक शरीर में सविधि मन्त्र-न्यासपूर्वक विश्व की माता को स्थापित करके उनका दिव्य उपचारों से समर्चन करे।

शास्त्र का निर्देश है कि देव होकर ही देवता का यजन करना चाहिए।

दिव्य चक्षु

दिव्य तत्त्व के दर्शन के लिए, स्वाध्याय के लिए परम चक्षु के योग की आवश्यकता है। इन मांस के चक्षुओं से उसे देखना सम्भव नहीं है। दिव्य चक्षुओं से ही भगवत् तेज को देखने का सामर्थ्य साधक को प्राप्त होता है और वह ब्रह्मभूत हो सकता है।

परम ज्ञान स्वरूप परम धाम

यह उपासक इस शरीर से ऊपर उठकर (देहात्मभाव को त्यागकर) परम ज्ञान स्वरूप परम धाम को प्राप्त होता है। अर्थात् प्राकृत सूक्ष्म शरीर से रहित, पुण्य-पाप शून्य, जरा-मृत्यु आदि विकारों से रहित, सत्यकाम, सत्यसंकल्प, शुद्ध एवं अजर-अमर रूप से युक्त हो जाता है। **शब्दात्**—क्योंकि श्रुतियों में ऐसा ही कहा गया है।

यह सम्प्रसाद (तू देह और इन्द्रियों का धर्म वाला नहीं है, तू सत् ही है।) इस शरीर से समुत्थान कर परम ज्योति को प्राप्त हो अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है।

त्रिलोक–विजय

यह मर्त्यलोक सत्पुत्र के द्वारा जीता जाता है। सत्कर्मों द्वारा पितृलोक पर मनुष्य विजय प्राप्त कर लेता है तथा विद्या और उपासना के बल से देवलोक पर विजय प्राप्त कर सकता है।

जीवोऽहंकारोपहितः चक्रवद् भ्राम्यते सदा।
मायोपहित ईशानो जन्मसु प्रेरयेदमुम्।।

उपाधिद्वयहीनं तु ब्रह्म–

जगत्स्याद् व्यक्तमव्यक्तं सृष्टिसंहारयोः क्रमात्।
बिभर्ति द्वयमीशानः चिदात्मा तु विमुक्तिभाक्।।
सर्वनिर्वाहिका माया ब्रह्मण्यारोपितं त्रयम्।। (अनुभूति प्र. १२)

पाशाश्चतुर्विधाः–मलो[१] माया[२] कर्म[३] तत्त्वनिरोधः[४]।

१. ज्ञानक्रियाशक्त्योश्छादको दोषः। २. रागादिहेतुः। ३. पुण्यपापे ४. अज्ञानम्।

विरक्तः कर्त्रकर्तारौ विचिन्त्यात्स्वस्य विग्रहे।
चिच्छायावानहंकारः कर्ता चिद् भाति केवला।। ('' '')
चिच्छायागतभोक्तृत्वं साक्षिण्यारोप्यते भ्रमात्।

जीव, ईश्वर, माया और ब्रह्म

यह जीव अहंकार से उपहित होकर चक्र के समान निरन्तर घूमता रहता है और माया से उपहित ईश्वर जीव को जन्म लेने के लिए प्रेरित करता है। जब कि ब्रह्म इन दोनों उपाधियों से हीन है। सृष्टिकाल में यह जगत् व्यक्त रहता है और संहार में अव्यक्त रूप से रहता है, इस सृष्टि-संहार-क्रम को ईश्वर ही धारण करता है, चिदात्मा तो माया और माया के कार्यों—सृष्टि, संहार आदि से सर्वथा विनिर्मुक्त है। वस्तुतः सृष्टि आदि कार्यों की निर्वाहिका माया ही है, किन्तु ये तीनों ही (जीव-ईश्वर और माया) ब्रह्म में ही आरोपित हैं।

चार प्रकार के पाश

चार प्रकार के पाश हैं जो जीव को बाँधे रहते हैं—मल, माया, कर्म और तत्त्व निरोध। ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति को आच्छादित करने वाला दोष ही मल नाम से कहा जाता है। राग-द्वेषादि का हेतु माया है। पाप-पुण्य रूप कर्म हैं और अज्ञान तत्व-प्राप्ति में निरोधक है।

कर्ता और कर्तृत्व से विरक्ति

कर्ता और कर्तृत्व से विरक्त हो अपने विग्रह के विषय में चिन्तन करे। अर्थात् आत्म-चिन्तन करने से यह स्पष्ट हो जायेगा कि चित् की छाया से युक्त अहंकार है, जो कर्ता

अदृष्टः प्रतिबन्धो यो निवर्त्य भजनेन तम्।
दृष्टो यः प्रतिबन्धस्तं विचारेण जयेत्पुनः।। (अनुभू.प्र. १२)

विधानं तप्तकृच्छ्रस्य–यस्मिंश्चीर्णे कायशुद्धिः सार्वकालिकी–त्र्यहमुष्णं पिवेदापः–पला द्वादश। त्र्यहमुष्णं पयः–पलाष्टौ। त्र्यहमुष्णं सर्पिः–षट्पलम्। वायुभक्षो दिनत्रयम्। (वामनपु. ६२)

पुंनाम्नो नरकात् त्राति पुत्रस्तेन गीयते। शेषपापहरः शिष्यः।

ॐ उलूक[१] यातुं शुशूलूक[२] यातुं, जहि श्वयातु[३]मुत कोक[४] यातुम्। सुपर्ण[५]यातुमुत गृद्ध्र[६] यातुं, दृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र। (ऋ. ७.६.१०४.२२)

१. मोहम् २. क्रोधम् ३. मत्सरम् ४. कामम् ५. मदम् ६. लोभम्।

भाव को जाग्रत् करता है; जबकि भासमान केवल चित् ही है। चित् छाया गत ही भोक्तृत्व है, साक्षी में तो भ्रमवश (अज्ञान से) आरोपित कर लिया जाता है।

प्रतिबन्धक

जो अदृष्ट प्रतिबन्धक है उसको भजन से हटायें और जो दृष्ट प्रतिबन्धक है उसको विचार के द्वारा जीतें। अर्थात् जो प्रतिबन्धक तत्त्व दिखायी नहीं दे रहे उन पर तो भजन के द्वारा और दिखायी दे रहे, उन्हें विचारों द्वारा परास्त करना चाहिए।

तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त

सविधि तप्तकृच्छ्र करने से सार्वकालिकी देह शुद्धि हो जाती है। इसमें तीन दिन तक मात्र बारह पल गर्म जल पीना चाहिए। अगले तीन दिन आठ पल की तोल में गर्म दूध पीयें, तीन दिन गर्म घी और तीन दिन मात्र वायु का सेवन करने से पाप से निवृत्ति और शरीर के दोषों की शुद्धि हो जाती है।

पुत्र और शिष्य

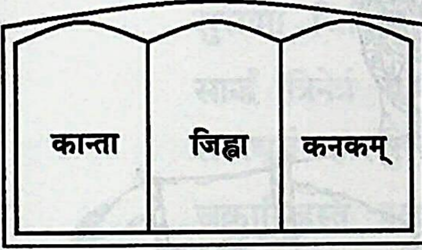
पुं नामक नरक से रक्षा करता है, इसलिए उसे पुत्र कहते हैं। पुं नाम उपलक्षण है अर्थात् पिता को नरक जाने से रोके, और यदि पिता नरक में पहुँच गया है तो नरकों से उसका उद्धार (श्राद्ध-तर्पणादि के द्वारा) करके पिता को सद्गति प्राप्त करा देना पुत्र का स्वाभाविक कर्तव्य है, इसलिए ही उसे पुत्र कहा जाता है।

गुरु के जो भी पाप शेष रह गये हैं, उन पापों को हरण करने वाला शिष्य होता है। पुत्र और शिष्य में कोई भेद नहीं है।

इन्द्र से प्रार्थना

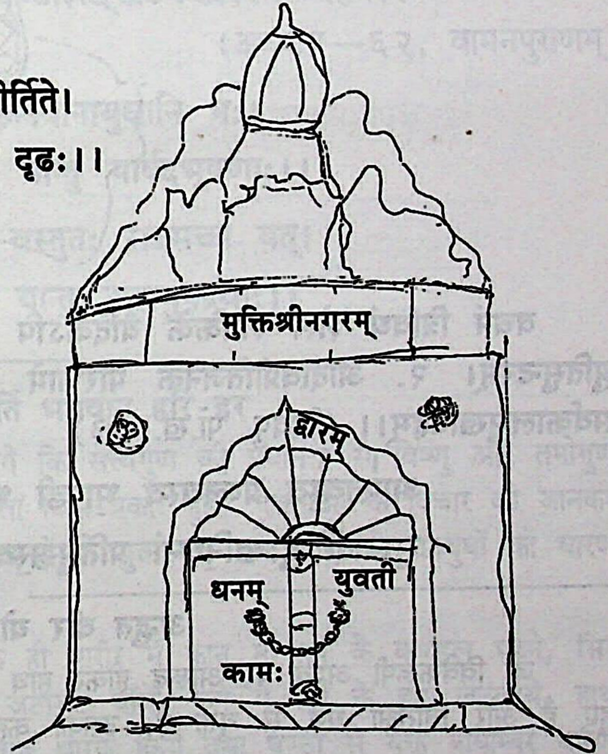
हे इन्द्र! परिकर के साथ ये राक्षस मारने को आते हैं। अतः राक्षसरूप मोह को

संसारमृत्युः



संसारमृत्योर्बलिनः प्रवेष्टुं
द्वाराणि तु त्रीणि महान्ति लोके।
कान्ता च जिह्वा कनकं च तानि
रुणद्धि यस्तस्य भयं न मृत्योः।।
(सर्ववे. सि.सा. स. ८८)

मुक्तिधामस्य द्वारस्य अररे द्वे प्रकीर्तिते।
धनं च युवती चापि कामस्तत्रार्गलो दृढः।।



मारो, क्रोध को मारो, मत्सर को मारो, काम को मारो, मद को मारो, इस लोभ को मारो। पाषाणरूप वज्र से राक्षस मात्र (रक्षः) को प्रमण—मारो। (हमारी रक्षा करो।)

संसार मृत्यु

संसाररूपी मृत्यु में बलवानों के प्रवेश के लिए तीन महान् द्वार है—स्त्री, जिह्वा और धन। जो इन द्वारों को बन्द कर देता है, वह मृत्य के भय से मुक्त रहता है।

(मुक्ति श्रीनगरम् यह पृ. ५४ पर भी अंकित है। इस प्रसङ्ग को पूर्व में देखें)



आरूढस्य विवेकाश्वम्
तीव्रवैराग्यखड्गिनः।
तितिक्षावर्मयुक्तस्य
प्रतियोगी न दृश्यते।।
(सर्व.सि.सा.स. ९०)

वचनं त्रिविधं शैल लौकिके वैदिकेऽपि च–१. असत्यमहितं पश्चात् साम्प्रतं श्रुतिसुन्दरम्। २. आदावप्रीतिजनकं परिणामे सुखावहम्। ३. श्रुतिमात्रात्सुधातुल्यं सर्वकालसुखावहम्।। (शिवपु. पा.ख. ३३)

आप्लवस्व प्रप्लवस्व भाण्डी भवं ज मा मुहुः।
सुखादीं दुःखनिधनां प्रतिमुञ्चस्व स्वां पुरम्।।

अद्भुत वीर योद्धा

जो विवेकरूपी अश्व पर आरूढ़ होकर हाथ में तीव्र वैराग्य का खड्ग धारण किये हुए है और तितिक्षा धर्म से युक्त है, उसका कहीं कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं हो सकता।

त्रिविध वचन

हे शैल! लोक में एवं वेद में तीन प्रकार के वचन कहे गये हैं—

१. जो वचन सुनने में सुन्दर लगें, किन्तु असत्य और अहितकारी हों।

२. जो वचन सुनने में कठोर हो, किन्तु परिणाम में सुखकारी हो।

३. जो सुनने में अमृत के समान हों और सभी कालों में सुखदायक हों।

प्रथम प्रकार का वचन बुद्धिमान् शत्रु बोलता है, दूसरा वचन दयालु, धर्मशील अथवा बन्धुजन बोलते हैं, तीसरे प्रकार के वचन श्रेष्ठ जन बोलते हैं।

इत्येवं चिन्तयन्तश्च देवावैतौ हरीश्वरौ।
कथं योगत्वमापन्नौ सत्वान्धतमसोद्भवौ।।
सुराणां चिन्तितं ज्ञात्वा विश्वमूर्तिरभूद्विभुः।
सार्द्धं त्रिनेत्रं कमलाहिकुण्डलं जटागुडाकेशखगर्षभध्वजम्।
समाधवं हारभुजंगवक्षसं पीताजिनाच्छन्नकटिप्रदेशम्।।
चक्रासिहस्तं हलशार्ङ्गपाणिं पिनाकशूलाजगवान्वितं च।
कपर्दखट्वाङ्गकपालघण्टाशङ्खटक्कारवं महर्षे।।

(अध्याय—६२, वामनपुराणम्)

सर्वापद्भ्यो हरेर्नामरूपयानायुधानि नः।
बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् पान्तु पार्षदभूषणाः।।
यथा हि भगवानेव वस्तुतः सदसच्च यत्।
सत्येनानेन नः सर्वे यान्तु नाशमुपद्रवाः।।

विश्वमूर्ति भगवान् हरि-हर

सभी देवता यह विचार करने लगे कि सत्त्वगुण की प्रधानता से विष्णु और तमोगुण की अधिकता से आविर्भूत शिव में एकता किस प्रकार हुई? देवताओं के विचार को जानकर अविनाशी व्यापक भगवान् सभी शुभ लक्षणों से युक्त एवं सब प्रकार के आयुधों को धारण करने वाले विश्वमूर्ति हो गये।

महर्षे! फिर तो देवताओं ने एक ही शरीर में कान में सर्प के कुण्डल पहने, सिर पर आपस में चिपके लम्बे बालों का जटाजूट बाँधे, गले में सर्प के हार लटकाये, हाथ में पिनाक, शूल, आजगव धनुष, खट्वाङ्ग धारण किये तथा घण्टा से युक्त बाघाम्बर धारण करने वाले त्रिनेत्रधारी वृषभध्वज महादेव और साथ ही कमल के कुण्डलधारी, गरुड़ध्वज, हार और पीताम्बर पहने, हाथों में चक्र, असि, हल, शार्ङ्ग धनुष, टंकार-सी ध्वनि करने वाले शंख को धारण किये गुडाकेश विष्णु को देखा।

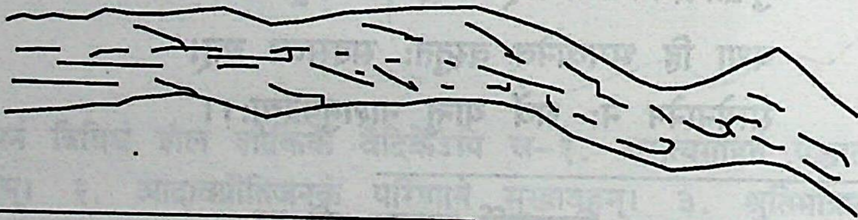
यह रूप देखकर समस्त देवताओं ने हरि और हर को अभिन्न समझ लिया।

भगवान् हरि हमारी रक्षा करें

श्रीहरि के नाम, रूप, वाहन, आयुध और श्रेष्ठ पार्षद हमारी बुद्धि, इन्द्रिय, मन, और प्राणों को समस्त प्रकार की आपत्तियों से बचायें।

यथैकात्म्यानुभावानां विकल्परहितः स्वयम्।
भूषणायुधलिङ्गाख्या धत्ते शक्तीः स्वमायया।।
तेनैव सत्यमानेन सर्वज्ञो भगवान्हरिः।
पातु सर्वैः स्वरूपैः नः सदा सर्वत्र सर्वगः।।
(नारायणकवचे। श्रीमद्भा.)

चिन्ताचक्रे चिरं बद्धं कुक्रियाचारचञ्चुरम्।
चेतो भ्रमति सामुद्रे गर्तावर्ते तृणं यथा।। (योगवा. ५.६६.३३)
मनसि क्षुब्धतां याते चित्त्वस्याङ्गकिमागतम्।
तरङ्गःजलसन्ताने वैपरीत्यं किमम्बुधेः।। (,, ,, ६७.६)



जितना भी कार्य अथवा कारणरूप जगत् है, वह वास्तव में भगवान् ही हैं—इस सत्य के प्रभाव से हमारे सारे उपद्रव नष्ट हो जाय।

जो लोग ब्रह्म और आत्मा की एकता का अनुभव कर चुके हैं, उनकी दृष्टि में भगवान् का स्वरूप समस्त विकल्पों-भेदों से रहित है, फिर भी वे अपनी माया-शक्ति के द्वारा भूषण, आयुध और रूप नामक शक्तियों को धारण करते हैं। यह बात निश्चित रूप से सत्य है। इस कारण सर्वज्ञ, सर्वव्यापक भगवान् श्रीहरि सदा सर्वत्र सब स्वरूपों से हमारी रक्षा करें।

योगवासिष्ठ के ज्ञान-बिन्दु

चिर काल से चिन्ता-चक्र में बँधा हुआ तथा पापकर्मों के आचरण में संलग्न, चित्त-समुद्र के गम्भीर आवर्त में पड़कर चक्कर काटते हुए तृण की भाँति यह जीव संसार में भटकता रहता है।

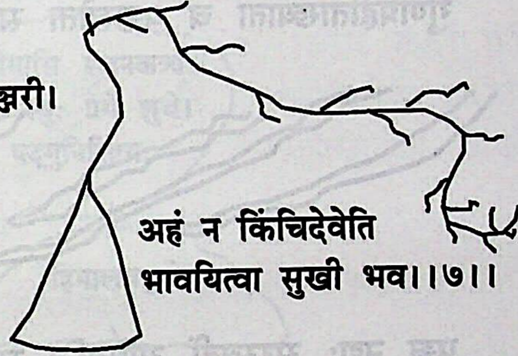
मन के क्षुब्ध होने पर यहाँ मन का तात्पर्य देह से है अर्थात् भले ही देह दुःख से क्षुब्ध हो जाय, उससे आत्मा को कौन-सी क्षति पहुँचती है? जल में तरंग उठने से क्या समुद्र में कोई वैपरीत्य आ जाता है?

सरिताओं का जल कमलों को अपनी गोद में धारण किये रहता है, फिर भी वे

अप्वुसंगोह्यमानानि पद्मानि सरिदम्भसाम्।
कानि नाम भवन्तीह शरीराणि तथात्मनः।। (,, ,, ६७.९)

क्व नाम निरहंकारचित्सत्त्वोदारधीरता।
क्वमिथ्यावासनावेशाद् अहंकारकुकल्पना।। (४.३१.५)

अहंकारांकुरादेव संसारविषमञ्जरी।
समुदेतीयमातता।।६।।



अहं न किंचिदेवेति
भावयित्वा सुखी भव।।७।।

अलीकमेव त्वद्भावो मद्भावोऽलीकमेव च।
अनुभूतोऽप्यसद्रूपः स्वप्ने स्वमरणं यथा।। (यो.वा. ४.३१.१७)

विश्वेश्वरो जगन्नाथो निर्विकारः परात्परः।
योऽयं ब्रह्मास्ति रजसा विश्वमूर्तिः पितामहः।।

कमल उस जल से कोई सम्बन्ध न रखकर निर्लेप बने रहते हैं, उसी प्रकार इस जगत् में शरीर का भी आत्मा के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

कहाँ निरहङ्कार, चित्त शान्ति, उदारता और धीरता और कहाँ वासना के आवेश से मिथ्या अहंकार-कुकल्पना से संयुक्त होना।

अहङ्कार के अंकुर से ही संसाररूपी विषवृक्ष की मञ्जरी, शाखा-प्रशाखा बढ़ी हैं। अर्थात् संसाररूपी वृक्ष का बीज अहंकार ही है, जब तक अहंकार है। तब तक दुःख है।

अहं असत् वृत्ति है, इसलिए 'अहं' नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। मैं नहीं हूँ— ऐसा मानकर सुखी होओ।

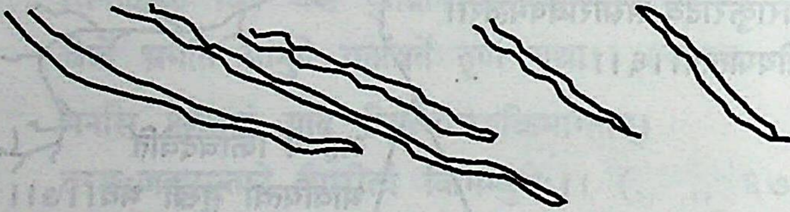
यह मैं, मेरा, तू-तेरा भाव भी मिथ्या भासित होता है। अनुभूत होते हुए भी यह असत् रूप है। जैसे स्वप्न में अपना मरना भासता है, जो कि असत् है।

ब्रह्माजी का शिव स्वरूप कथन

आप विश्वेश्वर, जगन्नाथ, निर्विकार एवं पर से भी पर हो। यह पितामह ब्रह्मा आपके

त्वत्प्रसादात्प्रभो विष्णुः सत्त्वेन पुरुषोत्तमः।
कालाग्निरुद्रस्तमसा परमात्मा गुणैः परः।।
सदाशिवो महेशानः सर्वव्यापी महेश्वरः।। (शिवपु. पा. ख. ४९)

पुस्तकमन्तःकरणं गुरुः शिष्यस्तथैव च।
गुणग्रहीताख्याता च पञ्चस्रोता सरस्वती।।



पञ्च नद्यः सरस्वतीं अपियन्ति सत्स्रोतसः।
सरस्वती तु पञ्चधासौ देशेऽभवत्सरित्।। (यजुः ३४.११)
अग्निर्भूत्वा कपोतो हि प्रेरितः सर्वनिर्जरैः।
अभक्षच्छाम्भवं वीर्यं चञ्च्वा तु निखिलं तदा।।
(शिव पु. कु. २.१०)

रजोगुण की शिवमूर्ति हैं तथा आपके प्रसाद से यह विष्णु सत्त्व गुण की मूर्ति पुरुषोत्तम हैं। कालाग्निरुद्र आप तमोगुण की रुद्रमूर्ति हैं और आप सदाशिव परमात्मा गुणों से परे सदाशिव सर्वव्यापी महेश्वर हैं।

पञ्चस्रोता सरस्वती

सरस्वती पाँच स्रोतों में प्रवाहित हैं। ये पाँच स्रोत हैं—पुस्तक, अन्तःकरण, गुरु, शिव और गुण ग्रहण करने वाला।

अपनी सहायक नदियों के साथ पाँच नदियाँ सरस्वती को संगमित करती हैं। पाँच धाराओं में बहने वाली वह सरस्वती अपने प्रवाह-प्रदेश में एक ही सरित् हो गई। (पाँचों नदियों ने अपना नाम छोड़कर सरस्वती का नाम धारण कर लिया)

शाम्भव वीर्य

समस्त देवताओं से प्रेरित अग्नि कबूतर का रूप धारणकर तब अपनी चोंच से शम्भु के सारे वीर्य को खा गये।



यद् भावि तद् भवत्येव कोऽपि नो तन्निवारकः।। (,, ,, ८)

तपोमासि स्नानकर्त्र्यः
याः स्युः प्रगे शुचे।
षट्मुनिस्त्रियः

हिमालयपृष्ठे

शरस्तम्बः
कुमारः

भावी कभी मिटती नहीं, जो होनहार है वह होकर ही रहता है। भावी का निवारण करनेवाला कोई नहीं।

अग्नि उस वीर्य के तेज को सहन न कर सके तब शिवजी की आज्ञा से—

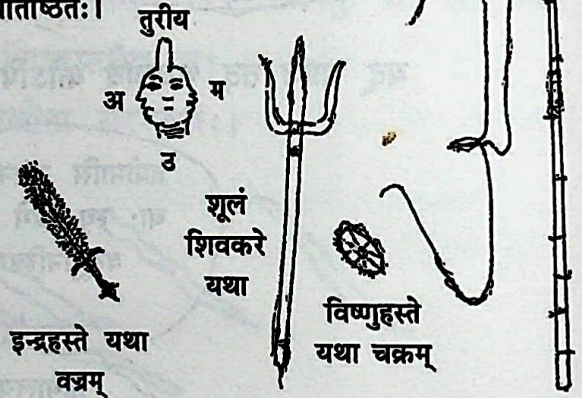
माघ मास में प्रातः स्नान करने से शीत से व्याकुल सप्तर्षियों की पत्नियाँ (अरुन्धती को छोड़कर—छः ऋषि-पत्नियाँ) अग्नि ज्वाला के समीप तापने लगीं तो अग्नि ने उनके रोमों के द्वारा शिववीर्य-कण उनके शरीर में प्रवेश करा दिये। अग्नि तो वीर्य की दाहकता से मुक्त हो गये।

किन्तु ऋषि-पत्नियाँ उस तेज को सहन न कर सकीं। उन्होंने शिवजी के वीर्यकणों को हिमालय के पृष्ठभाग में त्याग दिया।

हिमालय भी उस दाह को सहन नहीं कर सका उसने उसे गङ्गा में छोड़ दिया। जब गङ्गा भी सहन नहीं कर सकी, तो उसने अपनी तरंगों के माध्यम से उस वीर्य को शरस्तम्ब–सरकण्डों के समूह में छोड़ दिया, वहाँ वह वीर्य एक बालक के रूप में परिणत हो गया, वही बालक कार्तिकेय (शिवपुत्र) नाम से प्रसिद्ध हुआ। इनके द्वारा तारकासुर का वध हुआ।

प्रणवस्य प्रतिकृतिः, दण्डः संन्यासिनां मतः अस्ति प्रणवो यतः साक्षाद्द्वैत-ब्रह्मबोधकः परमात्मा द्वैतरूपेण, यस्माद्दण्डे प्रतिष्ठितः।

राधा कानन का धारा
धाम साध्वध्व सामधा।
कासा ताजि जिता साका
नध्वजिघ्र घ्रजिध्वन।।
(सर्वतोभद्रः श्रीगोपालविलासे २.३५



तथा दण्डो यतेः करे
(यतिदण्डैश्वर्यविधानम्, विभू.पा.)

राधाकानन की धारा

यह काव्य का सर्वतोभद्र नामक बन्ध है। इसमें प्रत्येक चरण उल्टा-सीधा एक ही तरह पढ़ा जाता है। उक्त श्लोक का अर्थ इस प्रकार है—

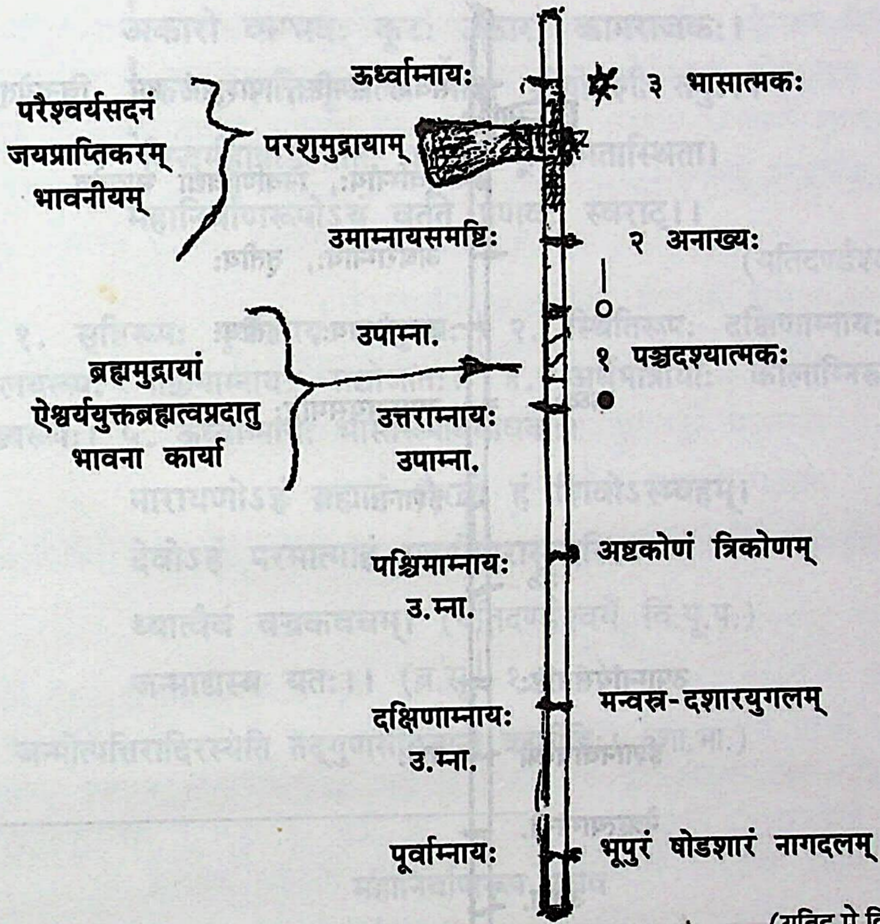
वरषाने में राधा के गह्वर वन में यमुना के जल का सेवन करने वाला, गृहस्थ और साधुओं को शान्तिमार्ग का उपदेश करने वाला ऐसा कौन श्रेष्ठ साधु-संन्यासी होगा, जो असाधुओं के आश्रम का स्वामी बनकर तथा राजाओं का वशंवद होकर दुःखित हो पैशाचिक बोली न बोलने लग जाये?

भावार्थ यह हैं कि श्रेष्ठ साधु-संन्यासी को न तो किसी आश्रम का स्वामी बनना चाहिए और न राजा का वशंवद होना चाहिए। दोनों दोष उसे श्रेष्ठ संन्यासमार्ग से गिरा देते हैं।

यति-दण्ड

संन्यासियों का दण्ड प्रणव की ही प्रतिकृति है। संन्यासियों के लिए यह प्रणव स्वरूप ही है जो कि साक्षात् अद्वैत ब्रह्म का बोधक है। अ उ म्—ॐ—यह तुरीय ब्रह्म ही है। परमात्मा अद्वैत रूप से यति-दण्ड में प्रतिष्ठित है।

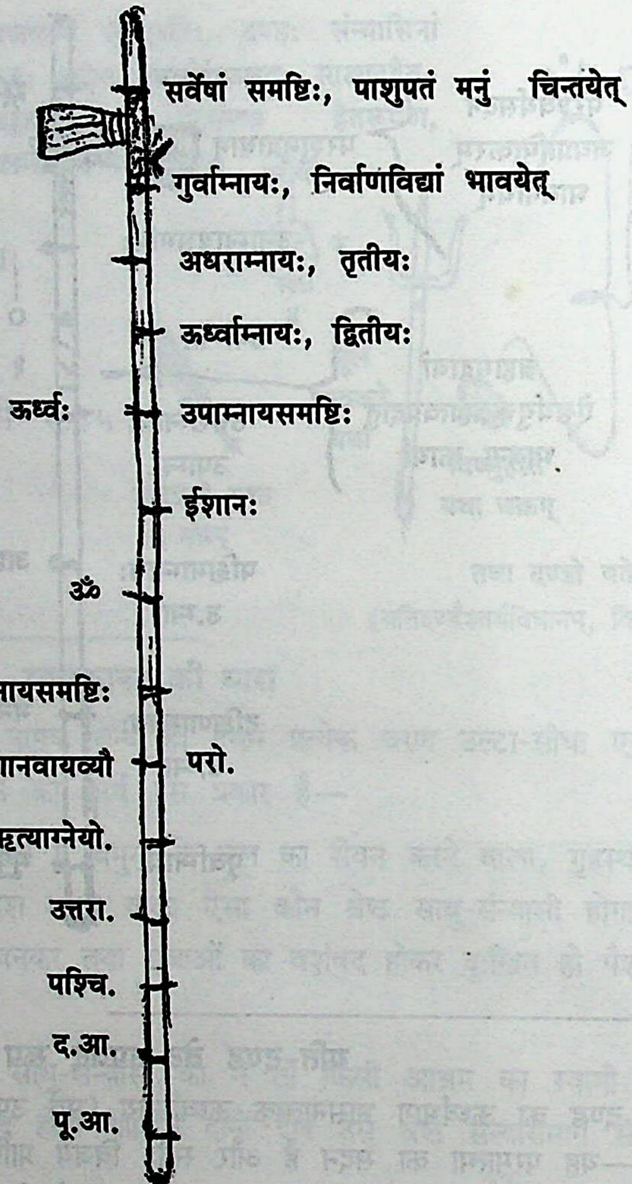
जैसे भगवान् शिव के हाथ में त्रिशूल है, श्रीविष्णु के हाथ में चक्र है और देवेन्द्र के हाथ में वज्र है—उसी प्रकार संन्यासी के हाथ में दण्ड है।



(यतिद.ऐ.वि.वि.पा.)

यति-दण्ड वेद-उपवेद रूप है

दण्ड का ऊर्ध्वभाग भासनात्मक ऊर्ध्वाम्नाय (सर्व उपनिषद्सार) है, नीचे परशुमुद्रा है जिसमें—यह परमात्मा का सदन है और सर्वत्र विजय प्राप्ति कराने वाला है—यह भावना करनी चाहिए। उसके (परशुमुद्रा) अधःभाग में अनिर्वचनीय समष्टिरूप उपाम्नाय है। उससे नीचे ऊर्ध्वाम्नाय का उपाम्नाय, उत्तराम्नाय (ऋग्वेद) और उत्तराम्नाय का उपाम्नाय है, यही पञ्चदशी श्रीविद्यात्मक ब्रह्ममुद्रा का स्थान है। इस बह्ममुद्रा में यह मुद्रा ऐश्वर्ययुक्त ब्रह्मत्व प्रदान करनेवाली है—ऐसी भावना करनी चाहिए। उसके नीचे अष्टकोणात्मक व त्रिकोणात्मक पश्चिमाम्नाय (यजुर्वेद) और उसका उपाम्नाय है। उसके नीचे मन्वस्र-दशार युगलात्मक दक्षिणाम्नाय (सामवेद) और उपाम्नाय है। सबसे नीचे अधः ग्रन्थि में जो भूपुर, षोडशार, नागदलात्मक है, वहाँ पूर्वाम्नाय (अथर्व वेद) प्रतिष्ठित है। इस तरह सप्त ग्रन्थियुक्त यतिदण्ड ब्रह्मविद्या-श्रीविद्यायन्त्र स्वरूप है।



चतुर्दश ग्रन्थियुत अनन्तसंज्ञक यतिदण्ड

यह दश सभी की समष्टि है। ऊर्ध्वभाग में पाशुपत मन्त्र का चिन्तन करना चाहिए। परशुमुद्रा के नीचे वाली ग्रन्थि गुर्वाम्नाय है, यहाँ निर्वाणविद्या की भावना करें। अधः क्रम से-अधराम्नाय, ऊर्ध्वाम्नाय, ऊर्ध्व-उपाम्नाय समष्टि, ईशान, ॐ उपाम्नाय समष्टि, ईशान और वायव्य दिग्कोण, नेंर्ऋत्य-आग्नेय, उत्तराम्नाय, पश्चिमाम्नाय, दक्षिणाम्नाय और पूर्वाम्नाय है।

[1]अकारो वाग्भवः कूटः [2]उकारः कामराजकः।
[3]मकारः शक्तिकूटात्मा [4]नादः श्रीषोडशी तनुः।।
[5]बिन्दुर्महाषोडशीति, प्रणवे कूटात्मतास्थिता।
महानिर्वाणरूपोऽयं वर्तते प्रणवः स्वराट्।।

(यतिदण्डैश्वर्ये त.पा.)

१. सृष्टिरूपः पूर्वाम्नायः तत्पुरुषः। २. स्थितिरूपः दक्षिणाम्नायः अघोरः। ३. लयरूपः पश्चिमाम्नायः सद्योजातः। ४. अर्धमात्रायाः कालाग्निरुद्रः शिवः अनाख्यरूपः। ५. ऊर्ध्वाम्नायः भासारूपाववोधकः।

नारायणोऽहं ब्रह्माहं भैरवो हं शिवोऽस्म्यहम्।
देवोऽहं परमात्माहं महात्रिपुरासुन्दरि।।
ध्यात्वैवं वज्रकवचम्। (यतिदण्डैश्वर्ये वि.पू.प.)
जन्माद्यस्य यतः।। (ब्र.सू. १.१.२)।

जन्मोत्पत्तिरादिरस्येति तद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः। (शा.भा.)

महानिर्वाणरूप प्रणव

ॐ—में अकार वाग्भ कूट है, उकार कामराज कूट है, मकार शक्तिकूट है, नाद श्रीषोडशी है और बिन्दु महाषोडशी है जो कि प्रणव में रहस्यमय रूप से निवास करती है। यह प्रणव स्वयं प्रकाश महानिर्वाणरूप है।

१. सृष्टिरूप पूर्वाम्नाय सत्पुरुष स्वरूप है। २. स्थितिरूप दक्षिणाम्नाय अघोर स्वरूप है। ३. लयरूप पश्चिमाम्नाय सद्योजात स्वरूप है। ४. अर्धमात्रा से अनिर्वचनीय कालाग्निरुद्र शिव का ग्रहण है। ५. ऊर्ध्वाम्नाय-अवभासक तत्त्व का बोधक है।

वज्रकवच

हे महात्रिपुरसुन्दरि! मैं नारायण हूँ, ब्रह्मा हूँ, भैरव हूँ, मैं शिव हूँ, देव हूँ और परमात्मा हूँ—ऐसा ध्यान करके वज्रकवच का पाठ करना चाहिए।

जन्माद्यस्य यतः

जिससे जन्मादि होते हैं, जन्म-उत्पत्ति हैं आदि जिनके—उस समुदाय का नाम आदि है। यहाँ तद्गुण संविज्ञान बहुवीहि है।

बहुव्रीहौ पदार्थाः सर्वे वाक्यार्थस्यान्यपदार्थस्य विशेषणानि। यथा–चित्रगोर्देवदत्तस्य चित्रागावः। तद्वदत्रापि-जन्मादीति नपुंसकैकवचनद्योतितस्य समाहारस्य जन्मस्थितिभङ्गस्य जन्म विशेषणम्। तथा च–जन्मनः समासार्थैकदेशस्य गुणत्वेन संविज्ञानं यस्मिन् बहुव्रीहौ स तद्गुण-संविज्ञान इत्यर्थः।

रत्नप्रभा

शुचिर्जितेन्द्रियो वेदवेदाङ्गादिविशारदः।
योगज्ञः सर्वशास्त्राणां समक्षस्थानमाप्नुयात्।। (महानुशासनम्)
अगस्त्यं कुम्भकर्णं च शनिं च वडवानलम्।
आहारपरिपाकाय संस्मरामि वृकोदरम्।।

ॐ अहरहः सन्ध्यामुपासीत। यः सन्ध्यामुपासते ब्रह्मैतदुपासते। (सन्ध्याभाष्ये)

बहुव्रीहि में जितने पदार्थ होते हैं, वे वाक्य का अर्थ जो अन्यपदार्थ है उसके विशेषण होते हैं। जैसे चित्रगु देवदत्त चित्रा गावः यस्य—चितकबरी गायें हैं जिसकी। उसी तरह यहाँ भी है। जन्मादि—यहाँ नपुंसकलिङ्ग एक वचन से ज्ञात जो जन्मस्थिति भंगरूप समाहार है उसका जन्म विशेषण है। तथा च—समास का एक देश जो जन्म है वह गुण होने से बहुव्रीहि में उसका संविज्ञान है—इसलिए यह तद्गुण संविज्ञान बहुव्रीहि है।

वेद-वेदाङ्ग विशारद

जो पवित्र है अर्थात् शुचिता से परिपूर्ण है, जितेन्द्रिय है, वेद और वेदाङ्गों का ज्ञाता है तथा योग का मर्मज्ञ है, वह समस्त शास्त्रों के समक्ष स्थान प्राप्त करता है। अर्थात् उसके लिए समस्तशास्त्र अवभासित होने लगते हैं और उसके मुख से निकले शब्द शास्त्र वचन माने जाते हैं।

आहार परिपाक

अगस्त्य, कुम्भकर्ण, शनि, वडवानल और वृकोदर—इन पाँचों का आहार के परिपाक के लिए संस्मरण करता हूँ।

किया हुआ भोजन ठीक तरह से पच जाये, इसके लिए उक्त श्लोक बोलना चाहिए।

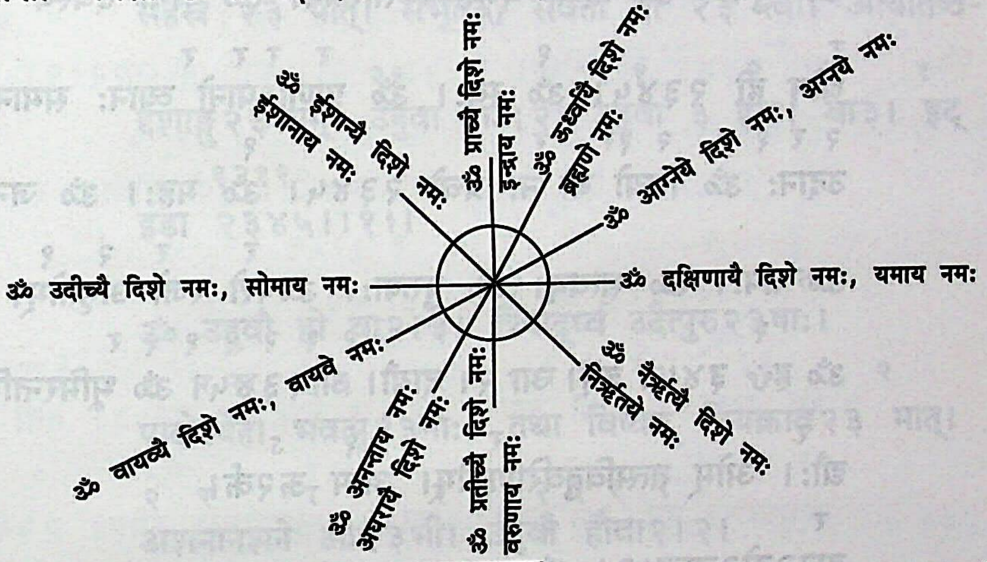
सन्ध्या, यज्ञोपवीतसंस्कार और आचमन

प्रतिदिन नियमित रूप से सन्ध्या की उपासना करनी चाहिए, जो सन्ध्योपासना करता है, वह उस ब्रह्म की ही उपासना करता है।

यज्ञोपवीत्येवाधीयीत याजयेत् यजेत वा यज्ञस्य प्रसृत्या।। (तैत्तिरीयारण्यके २.१)

अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति तेन पूतिरन्तरतः यदपः उपस्पृशति। पवित्रं वा आपः। (श. प.ब्रा. १.१.१)

तदेतद्देवव्रत ६ राजन्यवन्धवो मनुष्याणामनुतमां गोपायन्ति तस्मादुत्तेषु वीर्य्यवाञ्जायते मृतवाका व्यवसा ७ सा क्षिप्रश्येनं जनयति। (मण्डल ब्रा १०)



यज्ञोपवीत संस्कार के उपरान्त ही वेद का अध्ययन करना चाहिए, यज्ञोपवीती होकर ही सविधि यज्ञ की अभिवृद्धिहेतु यज्ञ करे और कराये।

निश्चित ही पुरुष अमेध्य है अर्थात् अपवित्र है, क्योंकि झूठ बोलता है। असत्यभाषण से उत्पन्न अशुचिता के निवारण के लिए नित्य, नैमित्तिक व काम्य कर्मों से पूर्व आचमन का विधान है, जल के उपस्पर्शन अर्थात् आचमन का जल हृदय तक जाने से अन्तःकरण अन्दर तक पवित्र हो जाता है, क्योंकि जल निश्चय ही पवित्र है।

देवव्रत

उस देवव्रत को मनुष्यों के मध्य राजन्य बन्धु पालन करते हैं और स्त्रियों को (अन्दर भवन में) छिपाकर रखते हैं, क्षत्रियों के यहाँ पराक्रमी, वीर्यवान् तेजस्वी पुत्रों का जन्म होता है। जो स्त्री इस व्रत का पालन करती है, वह पक्षियों में बाज-जैसे पराक्रमी पुत्र को जन्म देती हैं।

दिग्-दिग्देवता नमस्कार

यहाँ दस दिशाओं और दस दिग्पालों का निर्देश करते हुए उन्हें नमस्कार किया गया है—१. पूर्व दिशा को और पूर्व दिशा के पालक इन्द्र को नमस्कार। २. आग्नेय दिशा

ॐ तवश्यावीयंसाम

१ १ १ र र २ १ २
ॐ ह ऺ २३४५। ॐ भूः। ॐ भूमिर्दिव मन्तरिक्षम्।
१ १र र र र २ १ र
ॐ भुवः। ॐ ऋचो यजूंषि सामानि। ॐ भर्गो देवस्य
र १ र र र र
धीम ही २३४५। ॐ स्वः। ॐ प्राणोऽपानो व्यानः समान
२ र १ १ २ १र र १
उद्‌ानः ॐ धियो यो नः प्रचो २३४५। ॐ महः। ॐ जनः।
र र २ १
ॐ तपः। ॐ सत्यम्। ॐ पुरुषाः। ॐपरो रजो अमृतोम्।
२ २ १ २ १ १ १ र
ॐ हं ३४५। हुम्। आ २। दायौ। आ२३४५। ॐ भूमिरन्तरिक्षं
र र १ ऽ
द्यौः। ओम् तत्सवितुर्वरेणियोम्। ओम ऊ२र्क।
र १
हाउ३हो३वाक्।३। ॐ
१ र र र र र २ र १ र र २ ११२१
प्राणोपानो व्यानः समानः उदानः। धियो योनः प्रचो २३४५
१ ऽ र १ ऽ २ १ऽर ऽ १ १ २
ओम ऊ २र्क। हाउ३। ह३ वाक्। ३ धर्मो २ धर्म।३। धर्म
१ २ २ १ र २ २१ २ १ ऽ
विधर्म। ३। सत्यज्ञाय।३। अत वद। ३। हं व व २वम्।

और उसके देवता अग्नि के लिए नमन। ३. दक्षिण दिशा और उसके देवता यम के लिए नमन। ४. निर्ऋति दिशा और उसके देवता निर्ऋति के लिए नमन। ५. प्रतीची (पश्चिम) दिशा और उसके देवता वरुण को नमन। ६. वायव्य दिशा और उसके देवता वायु के लिए नमस्कार। ७. उदीची (उत्तर) दिशा और उसके देवता सोम के लिए नमस्कार।८. ईशान दिशा और उसके देवता ईशान के लिए नमस्कार। ९. ऊर्ध्व दिशा और उसके देवता ब्रह्मा के लिए नमस्कार। १०. अध:दिक् और उसके देवता अनन्त के लिए नमस्कार

पाठमात्र से पुण्याधायकता का प्रदायक यह तवश्यावीयसाम है, गायत्री मन्त्र इन ऋचाओं से सम्पुटित है।

अथ पुरुषव्रतरनुगानम्

२ १ २ २ १ र र २ २ २ १
ॐ उहुवा हाउ।३। सहस्रशीर्षाः पुरु २३ षाः। सहस्राक्षः
२२ २ २ १२ १
सहस्र २३ पात्। सभूमिꣳ सर्वतो वा २३ त्वा। अत्यतिष्ठ-
२१ २ २ १ २ १ १
द्दशाङ्गु२३लाम्। उहुवा हाउ।२। उहुवा ३ हाउ। वा३। इद्
१२११
इडा २३४५।।१।।

२ १ र र २ १र र र २
ॐ उहुवौ हो वा२।३। त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरु२३षाः।
१ र रर २ १ २ १ र २ १ २
पादोस्येहा भवत्पू२३नाः। तथा विष्वङ् वियक्राव२३ मात्।
२ र र २ २ १ र र
अशनानशने आ२३भी। उहुवौ हौवा२।२।

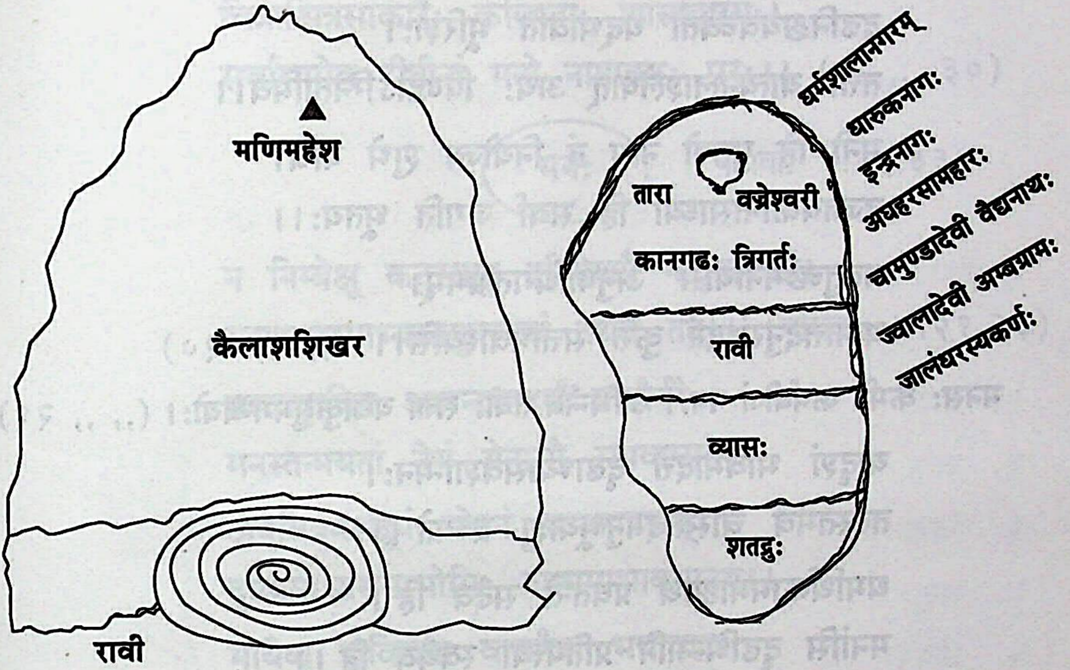
३
उहुवौ हो२। वा२३४।
५ र ३ ५ २ १ र१ २
औ हो वा। ई२३४डा। उहुवौहोवा २२ उहुवौहो२। वा२३४
५ र ३ ५ २ १ र र २१ र १ ऽ
औ हो वा। ई२३४ डा। उहुवौ होवा२।२। उहुवौ। हो२। वा
५र र ३ ५
२३४। औहोवा। स २३४वाः।
२ १ र २ १ र १
उ हु वौ हो वा २।२। उ ह वौ। हौ २।
५ र र ३ ११११
वो २३४। औ हो वा। ऊ २३४५।।२।।
र र १ र र २ १ २ २
ॐ इयौ हो वा२। पुरुष एवेद सा २३र्वाम्। यद्भूतं यच्च

१र २ र र र र २ २ १ र र
भावा २३ याम्। पादोस्य सर्वा भूता २३नी। त्रिपादस्या
२ १ २ १ र १र र
मृतंन्दा २३ इवी। इयौ होवा२। इयौ हो २
३ ५ र ३ ५ १ र र १ र
वा २३४। औ होवा। ई २३४ डा। इयौ हो वा२।२। इयौ
१ ३ ५ र ३ ५ १ र र १ र
हौ२ वा२३४। औ होवा। ज्यो२३४तीः। इयौ होवा२।२। इयौ
२ ५ र ३ ११११
हो२। वा२३४। औ होवा। ई २३४५।।३।।

१र १र र २ १ २ २र १ र
ॐ हाउ।३। तावा तस्य। महा२३ इमा३। हाउ।३। ततो
र र १र २ २र २१र र २
ज्यायाश्च पूरु २३ षा३। हाउ।३। उतामृतत्व स्येशा २३ना३।
२र १ र र २ १र २ २ऽ २ १
हाउ।३। यदन्नेनाति रोहा२३ती ३। हाउ३। वा३। ईट् इडा
११११
२३४५।।४।।

२ऽ १ र २१र २र २र १र २र र २
ॐ हाउ३वा। ततो विराडजायत। हाउ३वा। विराजो अधि
१र २ २ ऽ १ २र १र २
पूरूषः। हाउ३वा। स जातो अत्यरिच्यत।
ऽ २ १र र २१र२ र २ ऽ २ ३ ११११
हाउ३वा। पश्चाद्भूमिमथोपुरः। हाउ३वा३। ई। २३४५।।५।।

सामवेदीय पुरुषसूक्त के मन्त्रों का (गान भेद वश) अर्थ तो वही है, जो यजुर्वेदीय पुरुषसूक्त का है—अतः पूर्वकृत अर्थ द्रष्टव्य है।



विदितवतान्तः असति जगति मृतिहतिसहृतिः
सत्यताख्या नैव भावनीया या दोषभावनी। (योगवा. ४.१९)

मणि महेश

यहाँ चित्राङ्कन में नीचे रावी नदी गम्भीर भवंरों से युक्त प्रवाहित है। कैलासपर्वत के सर्वोच्च शिखर पर मणिमय महेश विराजमान हैं, जिन्हें भक्तजन मणिमहेश के रूप में पुकारते हैं।

जालन्धर का कर्ण

भगवान् शिव के द्वारा जालन्धर के वधकाल में जहाँ जालन्धर का कान गिरा, वह एक देश विशेष पंजाब प्रान्त है। यहाँ शतद्रु, व्यास और रावीनदी बहती है। त्रिगर्त में कानगढ़ है, जहाँ तारा और वज्रेश्वरी विराजमान हैं, वहीं धर्मशाला नामक नगर, इन्द्रनाग, अघहरण अहार, चामुण्डादेवी, वैद्यनाथ, ज्वालादेवी, अम्बग्राम (अम्बाला) है।

योगवासिष्ठ के ज्ञानबिन्दु

बुद्धिमान् पुरुष को अपने अन्तःकरण में असत् जगत् में प्रतीयमान मृत्यु, हति, संहृति (संहार) आदि का सत्य रूप से चिन्तन नहीं करना चाहिए। क्योंकि सत्यरूप से इनका

दृढनिश्चयवच्चेतो यद्भावति भूरिशः।
तत्तां यात्यनलाश्लेषात् अयः पिण्डोऽग्नितामिव।।
मनो हि पुरुषो नाम तं नियोज्य शुभे पथि।
तज्जयैकान्तसाध्या हि सर्वा जगति भूतयः।।
यदतुच्छमनायासं अनुपाधिगतभ्रमम्।
यत्नात्तदनुसंधानं कुरु सत्तामवास्यसि।। (,, ,, २०)

मनसः कर्म। कर्मबीजं मनः। अभिन्नैव तयोः सत्ता यथाकुसुमगन्धयोः। (,, ,, २१)

यादृशं भावमादत्ते दृढाभ्यासवशान्मनः।
ततस्तमेव चास्वादमनुभूयाशु बध्यते।।
धर्मार्थकाममोक्षार्थं प्रयतन्ते सदैव हि।
मनांसि दृढभिन्नानि प्रतिपत्त्या स्वयैव हि।।

चिन्तन अनेकानेक दोषों का उत्पादक है। दृढ़ निश्चय से युक्त चित्त जिस वस्तु की बार-बार भावना करता है, वह उसी के आकार का हो जाता है, जैसे-अग्नि के सम्पर्क में आने से लोहे का गोला आग बन जाता है। अर्थात् मन दृढ़ निश्चयपूर्वक जिस पदार्थ के साथ लग जाता है, वह वैसा ही हो जाता है।

यह मन ही पुरुषरूप है, इसे शुभ मार्ग में नियोजित करके मन के ऊपर विजय प्राप्त करे। संसार की सारी विभूतियाँ एकमात्र मन को जीतने से ही प्राप्त हो जाती हैं।

अत: जो अतुच्छ है, आयासरहित उपाधिरहित भ्रम है—यत्नपूर्वक उसका अनुसन्धान करे, जिससे सत्यसत्ता की प्राप्ति हो सके।

मन से कर्म की उत्पत्ति होती है और मन की उत्पत्ति में भी कर्म ही बीज (कारण) है। इन दोनों की सत्ता एक दूसरे से भिन्न नहीं है, जैसे-फूल और सुगन्ध की सत्ता परस्पर भिन्न नहीं होती।

दृढ़ अभ्यास के कारण मन जैसे भाव को ग्रहण करता है। तदनन्तर, उसी के स्वाद का अनुभव करके शीघ्र बन्धन में पड़ जाता है। अपनी-अपनी प्रतीति के द्वारा ही दृढ़ता पूर्वक भिन्नता को प्राप्त हुए मनुष्यों के मन सदा ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिए प्रयत्न करते हैं।

चित्राश्चित्रसाकारैः कल्पिताः शास्त्रदृष्टयः।
सर्वासामेव रीतीनां मनो नामाकरः परः।। (,, ,, ३०)

मनः (योगवा. ४.२१.३३)

न निम्बेक्षू कटुस्वादू शीतोष्णौ नेन्दुपावकौ।
यद्यथापरमाभ्यस्तमुपलब्धं तथैव तत्।। (योगवा. ४.२१.३३)

यस्त्वकृत्रिम आनन्दस्तदर्थं प्रयतैर्नरैः।
मनस्तन्मयतां नेयं येनासौ समवाप्यते।।

अपवित्रमसद्रूपं मोहनं भयकारणम्।
दृश्यमाभासमाभोगि बान्धमाभावयानघ।।

मायैषा ह्यविद्यैषा वासनैषा भयावहा।
संविदस्तन्मयत्वं यत् तत्कर्मेति विदुर्बुधाः।
संसारमदिरा सेयं अविद्येत्युच्यते बुधैः।।

शास्त्र की दृष्टि से मन के सम्बन्ध में चित्र-विचित्र विविध आकारों में कल्पना की गयी है। किन्तु समस्त रीतियों से यह निश्चित होता है कि तत्तत् आकारों का कारक मन ही है। वह जैसा देखता है, वैसे ही आकार का हो जाता है।

न नीम कटुस्वाद वाला है, न इक्षु मीठा है, न अग्नि उष्ण है और न ही चन्द्रमा शीतल है। जैसा-जैसा जिसके मन में अभ्यास के कारण निश्चित हो जाता है, वैसा-वैसा उसको उपलब्ध होता है।

जो अकृत्रिम है, आनन्दघन है, उसके लिए प्रयत्न करने वाले मनुष्यों को चाहिए कि वे अपने मन को तन्मय बना दें, जिससे उसकी प्राप्ति हो सके।

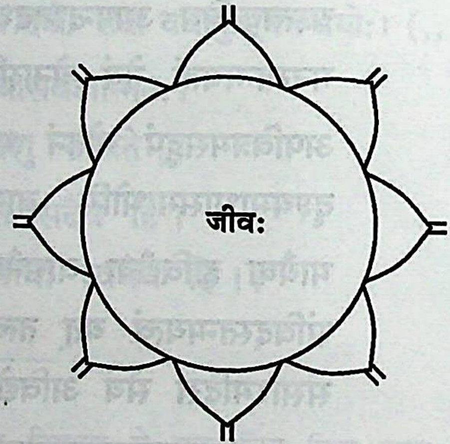
यह मन का संसार अपवित्र है, असत् है, मोहरूप है, भय का कारण है, आभासरूप है, मायामय है और सभी बन्धनों का हेतु है।

यह दृश्य माया है, अविद्यारूप है, इसकी वासना (भावना) भय देनेवाली है। जगत् के साथ संवित् की तन्मयता है। मन की जो दृश्यमयता है, उसी को विद्वान् बन्धन में डालने वाला कर्म कहते हैं। वही विद्वानों के द्वारा मदिरा के समान संसार को उन्मत्त बना देने वाली अविद्या कही जाती है।

अनयोपहतो लोकः कल्याणं नाधिगच्छति।
भास्वरं तापकालोकं पटलान्धेक्षणो यथा।।
मोहासंगास्पदो मृत्युः ग्रहातिग्रहलक्षणः।
अधिभूताधियज्ञादि परिच्छेदफलात्मकः।। (वृ.भा.वा. ३.२.३)

गृहातिग्रहरूपेण ग्रस्तोऽयम्।

८ ग्रहाः	८ अतिग्रहाः
१. प्राणः	अपानः
२. वांक्	नाम
३. जिह्वा	रसः
४. चक्षुः	रूपम्
५. श्रोत्रम्	शब्दः
६. मनः	कामः
७. हस्तौ	कर्म
८. त्वक्	स्पर्शः



इस अविद्या-माया से उपहत हुए लोग कल्याण को प्राप्त नहीं होते। जैसे पटल नामक रोग से अन्धा हुआ पुरुष सूर्य के दीप्तिवान् प्रकाश को नहीं देखता।

इसी तरह मन के आवरण से आत्मा नहीं भासित होता।

मोह और आसक्ति ही जीव की मृत्यु है

ग्रह-अतिग्रह लक्षण समन्वित मोह और आसक्ति ही मृत्यु है। यहाँ प्राण आदि ग्रह हैं और अपानादि अतिग्रह हैं, जिनके द्वारा यह जीव ग्रस्त है। प्राण ग्रह अतिग्रह अपान की ओर खींचता है, वाक् इन्द्रियरूप ग्रह नाम-वाणी अतिग्रह की ओर जीव को खींचती है, जिह्वा नामक ग्रह स्वादिष्ट रस रूप अतिग्रह की ओर जीव को खींचती है। जीव चक्षु के द्वारा रूप से ग्रसित है, श्रोत्र के द्वारा शब्दों की ओर जीव खिंचता है, मन से काम की ओर दौड़ लगाता है। हाथ के द्वारा तत्तत् कर्मों को करता है, त्वचा के द्वारा सुखद स्पर्श को लालायित रहता है। इस तरह से यह जीव आठ ग्रह और आठ अतिग्रहों से ग्रस्त रहता है।

वैकुण्ठपुरी

वैराजपुरी कैलाशपुरी

३२०००

मेरुः
८४०००

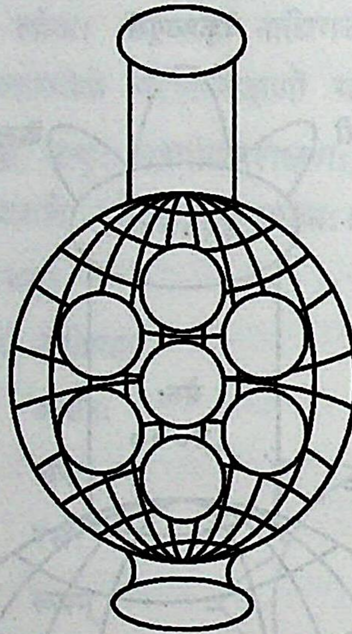
भूमौ १६०००

भूमिः
५००००००००

(भविष्यपु.उ. १)

मेरुपर्वत के तीन शिखरों पर तीन पुरी

यह मेरुपर्वत चौरासी हजार योजन परिमाण में पृथ्वीतल से ऊँचा है और सोलह हजार योजन के परिमाण में भूमि के अन्दर है। बत्तीस हजार योजन के विस्तार में इस मेरु के तीन शिखर हैं। जिसके मध्य शिखर में वैकुण्ठपुरी है, जहाँ श्रीविष्णु का वास है। वैकुण्ठपुरी से सीधी ओर ब्रह्मा की वैराजपुरी है और वैकुण्ठपुरी की बायीं ओर भगवान् शिव की कैलासपुरी है।



वैटवादीनां यद्वैगुण्यं तस्य मूलमधर्मः। (चरकविमा. ३.१२)

ईर्ष्याशोकभयक्रोधमानद्वेषादयश्च ये।
मनोविकारास्तेऽप्युक्ताः सर्वे प्रज्ञापराधजाः।। (च.सू. ७.२५)

अक्रोधः सत्यवचनं संविभागः क्षमा तथा।
प्रजनः स्वेषु दारेषु शौचमद्रोह एव च।।
आर्जवं भृत्यभरणं नवैते सार्ववर्णिकाः।। (महाभा.शा. ६०.७)

यहाँ मात्र चित्र बना हुआ है, कुछ संकेत नहीं है। कुम्भाकृति भूमि पर ये जो सात संख्या में वृत्ताकार बने हैं, सात समुद्र से परिवेष्टित जम्बू, शाक, कुश, क्रौञ्च शाल्मली, प्लक्ष और पुष्कर ये सात द्वीप हैं।

अधर्ममूल

वात, पित्त और कफ—इनका वैगुण्य-कुपित होने के मूल में अधर्म—अनुचित आहार-विहार है।

प्रज्ञा के अपराध से उत्पन्न

ईर्ष्या, शोक, भय, क्रोध और मान (अहंकार)—ये सब मन के विकार कहे गये हैं और ये सभी बुद्धि के अपराध से जन्य हैं। अर्थात् इनके मूल में बुद्धि का अमर्यादित होना है, जिससे कि ईर्ष्या आदि पतन के कारण दोषों की उत्पत्ति होती है।

धर्मस्य सहचराः

तपः, ब्रह्मचर्यं, सत्यं, इन्द्रियसंयमः दानं, क्षमा, शान्तिः, लज्जा, अहिंसा, अकल्पना, बुद्धिः, दया, श्रद्धा, मेधा, सत्कृतिः यज्ञाः वेदाः, तदङ्गानि, सुश्रूषा, सरस्वती।

धर्मस्य माता-दया

लाक्षारससमावर्णा सुप्रसन्ना सदैव हि।
पीतपुष्पकृता माला हारकेयूरभूषणा।।
पीतेन वाससा देवी पोषणायाद्वितीयका।
इयं वृद्धा भावभार्या मम माता तपस्विनी।। (पद्मपु. भूमिख. १२.९६)

दुर्वासाशापात्	राजा दासीसुतः चाण्डालः	धर्मः

सभी वर्णों के धर्म

किसी पर क्रोध न करना, सत्य बोलना, धन को बाँटकर भोगना, क्षमाभाव रखना, अपनी ही पत्नी के गर्भ से सन्तान उत्पन्न करना, बाहर-भीतर से पवित्र रहना, किसी से द्रोह न करना, सरल स्वभाव रखना और भरण-पोषण के योग्य व्यक्तियों का पालन करना— ये नौ सभी वर्णों के लिए उपयोगी धर्म हैं।

धर्म के सहचर

तप, ब्रह्मचर्य, सत्य, इन्द्रिय-संयम, दान, क्षमा, शान्ति, लज्जा, अहिंसा, अकल्पना, बुद्धि, दया, श्रद्धा, मेधा, सत्कृति, यज्ञ, वेद, वेदाङ्ग, सुश्रूषा और सरस्वती—ये सब धर्म के अनुचर हैं। अर्थात् धर्म के पीछे-पीछे चलते हैं। जहाँ धर्म होगा, वहाँ ये सब अवश्य होंगे।

धर्म की माता-दया

जो लाक्षारस के समान वर्णवाली हैं, जो सदा ही अत्यन्त प्रसन्न रहा करती हैं, जो पीत वस्त्र से शोभायुक्त हैं, पीत पुष्प की माला, हार-केयूर आदि भूषणों से भूषित हैं, जो त्रिभुवन का पोषण करने में अद्वितीय हैं, धर्म कहते हैं कि यह वृद्धा भाव की भार्या और मेरी माता है।

दुर्वासा ऋषि का शाप

यथा शक्ति धर्माचरण करने पर भी धर्म के अभीष्ट फल-प्राप्ति के अभाव में दुर्वासा ऋषि ने क्रोधित होकर धर्म को ही शाप दे डाला कि हे धर्म! तुम राजा, दासीपुत्र और चाण्डाल हो जाओ।

देशः कालः क्रिया कर्ता करणं कार्यमागमः।
द्रव्यं फलमिति ब्रह्मन् नवधोक्तोऽजया हरिः।। (श्रीमद्भा. १२.११.३१)

अर्थः

१. शुक्लः–स्ववृत्त्युपार्जितः। २. शबलः–अनन्तरवृत्त्युपार्जितः, उत्कोचः।
३. असितः–। ४. शुक्लशबलोऽसितः।

अन्यायोपार्जितेनैव द्रव्येण सुकृतं कृतम्।
न कीर्तिरिह लोके च परलोके न तत्फलम्।। (देवीभा. ३.१२.८)

दुर्वासा के शाप से ही धर्म ने भरतवंश में राजा युधिष्ठिर के रूप में जन्म लिया। दासीपुत्र होकर विदुर के रूप में धर्म ने जन्म लिया। जिस समय महर्षि विश्वामित्र ने राजा हरिश्चन्द्र के सत्य की परीक्षा ली तब हरिश्चन्द्र के स्वामी के रूप में धर्म चण्डाल स्वरूप को प्राप्त हुए।

भगवान् के नौ रूप

एक भगवान् ही माया के द्वारा काल, देश, यज्ञादि क्रिया, कर्ता, स्रुवा आदि करण, यागादिकर्म, वेदमन्त्र, शाकल्य आदि द्रव्य और फल रूप से नौ प्रकार से कहे जाते हैं।

चार प्रकार का अर्थ

अर्थ (धन) चार प्रकार का कहा गया है—

१. शुक्ल अर्थ—वर्णधर्मानुसार अपनी वृत्ति से उपार्जित धन शुक्ल (सफेद-स्वच्छ) अर्थ है।

२. शबल अर्थ—अपनी वृत्ति से अतिरिक्त अन्य प्रकारों से अर्जित धन को शबल अर्थ कहते हैं, इसमें उत्कोच (रिश्वत) का धन ग्रहीत है।

३. असित अर्थ—असित का अर्थ काला है अर्थात् काला धन असित अर्थ है, यह पापाचरण से अर्जित किया जाता है।

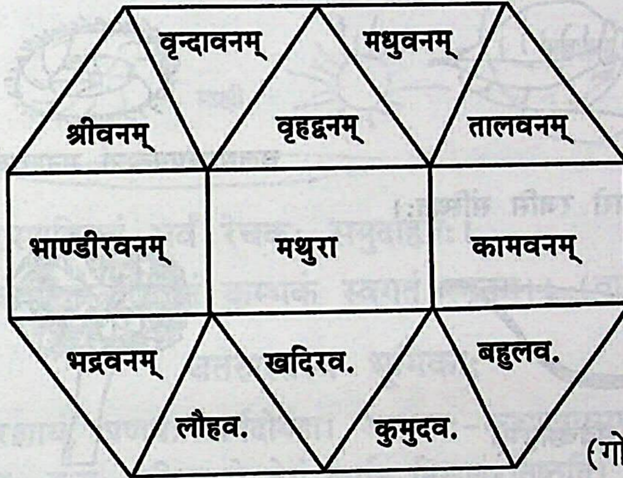
४. शुक्ल, शबल, असित अर्थ—यह उपर्युक्त तीनों प्रकार से अर्जित धन है, जिसमें शुद्ध धन भी है, उत्कोच से प्राप्त धन भी है और काला धन भी है।

इनमें प्रथम प्रकार का अर्थ श्रेष्ठ है, जो कि मनुष्य को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करता है।

अन्याय से उपार्जित धन

अन्याय से उपार्जित किये गये द्रव्य द्वारा जो पुण्य-कार्य किया जाता है, वह न तो इस लोक में कीर्ति दे सकता है और न परलोक में ही उससे कुछ फल मिल सकता है।

मथ्यते तु जगत्सर्वं ब्रह्मज्ञानेन येन वा।
तत्सारभूतं यद्यस्यां मथुरा सा निगद्यते।।



(गोपालोत्तरतापिन्युपनिषत्)

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ। (मनु. ४)

पञ्चसूक्ष्मः पञ्चदीर्घः सप्तरक्तः षडुन्नतः।
त्रिपृथुर्लघुगंभीरो द्वात्रिंशल्लक्षणस्त्वयम्।। (आनन्दरा.जन्म. ९.२७)

मथुरा

ब्रह्मज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण जगत् का मन्थन करने पर जो उसका सारभूत है, वह मथुरा नाम से कथित है जिससे (परमात्मा कृष्ण) ब्रह्मज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण संसार को मथा जाय, उस ज्ञान का सारभूत जिसमें है; उसे मथुरा कहते हैं।

यह मथुरा द्वादश वनों से आवृत्त होती हुई इस भारतभूमि पर सुशोभित है, बारह वन हैं—१. वृहद्वन, २. मधुवन, ३. तालवन, ४. कामवन, ५. बहुलवन, ६. कुमुदवन, ७. खदिरवन, ८. लौहवन, ९. भद्रवन, १०. भाण्डीरवन, ११. श्रीवन, १२. वृन्दावन।

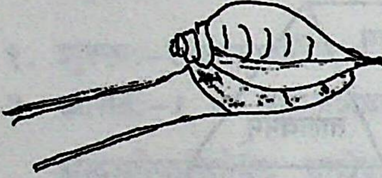
धर्मविरुद्ध अर्थ और काम

जो अर्थ और काम धर्म के विरुद्ध हों, उन्हें त्याग देना चाहिए अर्थात् जिस अर्थ और काम (भोग) से धर्म का विच्छेद न होता हो अथवा धर्मपूर्वक जिस अर्थ की प्राप्ति हुई हो और धर्मविहित ही भोग-उपभोग हों तो दोनों ही धर्मविरुद्ध होने पर सर्वथा त्याज्य हैं।

श्रीराम के अङ्गावयव

बत्तीस लक्षणों से युक्त हैं भगवान् श्रीराम के अङ्गावयव।

१. त्वक्केशांगुलिदशनापर्वाणि। २. भुजौ नेत्रे हनुर्जानू नासा। ३. पाण्यंघ्रितलनेत्रांते तालुजिह्वाधरोष्ठकम् सनखम्। ४. वक्षःकुक्ष्यालिकस्कन्धकरवक्त्रम्।



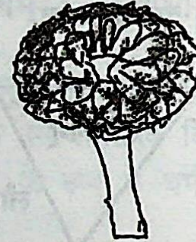
पञ्चभूतात्मकः शङ्खः परो रजसि संस्थितः।



चलस्वरूपमत्यन्तं मनश्चक्रं निगद्यते।



आद्या माया भवेच्छार्ङ्गम्।



पद्मं विश्वं करे स्थितम्।

पुरुषशब्दनिरुक्त्या तत्त्वयोरेकता भवेत्।
पुरिशेते-जीवः। सर्वं पूरयतीति-ब्रह्म।। (अनुभूतिप्र. २९)

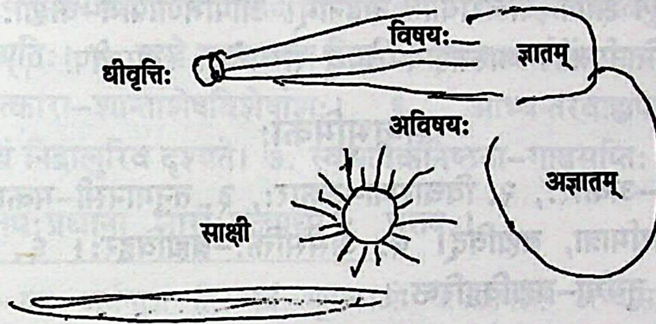
पाँच सूक्ष्म हैं, जैसे—त्वक्, केश, अंगुली, दाँत और पर्व। पाँच दीर्घ हैं—भुजा, नेत्र, हनु (ठोड़ी), जानु और नासिका। सात लालवर्ण की आभा से युक्त हैं—करतल, पदतल, नेत्रकोर, तालु, जिह्वा, अधरोष्ठ और नख। छः उन्नत हैं—वक्ष, कुक्षि, आलिक, स्कन्ध, हाथ और मुख। तीन पृथु हैं—ऊरू, मणिबन्ध और मुष्टि। तीन लघु हैं—ओष्ठ, कटि और अंगुली। तीन गम्भीर हैं—स्वर, नाभि और गति।

शङ्ख, चक्र, शार्ङ्ग और पद्मधारी नारायण

शङ्ख—पञ्च भूतात्मक ही भगवान् श्रीनारायण का शङ्ख है, जो रजोगुणरूपी हाथों में स्थित है। **चक्र**—अत्यन्त चञ्चल स्वरूप मन ही चक्र कहा गया है। **शार्ङ्ग धनु**—आदिशक्ति माया ही शार्ङ्ग नामक धनुष के रूप में हैं। **पद्म**—विश्वरूप पद्म (कमल) ही भगवान् के हाथ में स्थित है।

तत्-त्वं पद की एकता, जीव और ब्रह्म

पुरुष शब्द की व्युत्पत्ति से ही 'तत्' और 'त्वं' पद की एकता हो जाती है। क्योंकि जो पुर (शरीर) में शयन करता है, वह जीव है और जो सबकी पूर्ति करता है, वह ब्रह्म है।



बाह्यस्थविषयं सर्वं रेचकः समुदाहृतः।
पूरकं शास्त्रविज्ञानं कुम्भकं स्वगतं स्मृतम्।। (वाराहोपनिषद् ५.५८)

चतस्रस्तस्य भूमिकाः

सर्वविघ्नहरश्चायं, प्रणवः सर्वदोषहा। आरम्भः–करणत्रयसम्भूतं बाह्यकर्मत्याग-आन्तरं कर्म। घटः–वायुः पश्चिमतो वेधं कुर्वन् निश्चलं-तिष्ठति। परिचयः–यत्र वायुः स्थिरः खे स्यात्। निष्पत्तिः–जीवन्मुक्तिदशां गतः सहजयोगे कुरुते।

बुद्धि की वृत्ति और साक्षी

बुद्धि की वृत्ति विषय पर जाती है, विषय के आकार में परिणत हो जाने पर विषय का ज्ञान हो जाता है। अतः वह उस विषय को अधिगत (ज्ञात) कर लेती है, किन्तु जो बुद्धि का विषय ही नहीं है वह बुद्धि के लिए अज्ञात रहता है।

जो बुद्धि के द्वारा अज्ञात है, वह साक्षी (आत्मा) के द्वारा ज्ञात होता है। बुद्धि तो मात्र अज्ञान को नष्ट करने में सहायक है वह चेतना स्वरूप का प्रकाशन नहीं कर सकती। (जैसे दीपक अन्धकार में किसी वस्तु को प्रकाशित कर सकता है, किन्तु सूर्य को प्रकाशित नहीं कर सकता।)

रेचक, कुम्भक और पूरक

बाह्य विषयों को मन से निकाल देना ही रेचक कहा जाता है, शास्त्र विज्ञान पूरक है और ज्ञान को हृदय में धारण करना—स्वस्वरूप का अनुसन्धान कुम्भक है।

प्रणव की चार भूमिका

यह प्रणव समस्त दोषों का निवारक व समस्त विघ्नों का हरण करनेवाला है। इसकी चार भूमिका हैं—आरम्भ, घट, परिचय और निष्पत्ति।

तीनों कारणों से होने वाले बाह्य कर्मों के त्याग के अनन्तर जो आन्तर कर्म हैं वह आरम्भ है। पश्चिम से वायु को बन्द करते हुए निश्चल स्थित रहना ही घट है।

पृथिवीमण्डले क्षीणे–बलिरायाति देहिनाम्। आपोगणापाये–केशाः पाण्डुराः स्युः। तेजःक्षये–क्षुधाकान्तिर्नश्यते। मारुतक्षये–वेपथु सम्भवेत्। (वाराहोप. ५)

सप्तभूमिकाः

१. शुभेच्छा–अकारः, २. विचारणा–उकारः, ३. तनुमानसी–मकारः–ॐ मुमुक्षुः। ४. सत्त्वापत्तिः–अर्धमात्रा, ब्रह्मविद्। ५. असंसक्तिः–ब्रह्मविद्वरः। ६. पदार्थाभाविनी–ब्रह्मविद्वरीयान्। ७. तुर्यगा–ब्रह्मविद्वरिष्ठः।

जिस समय वायु आकाश में स्थिर हो जाय वह परिचय है और जीवन्मुक्त की दशा को प्राप्त होकर, सहज योग का करना ही निष्पत्ति संज्ञक प्रणव की चौथी भूमिका है।

पृथिवी मण्डल आदि के क्षीण होनेपर देहधारी की दशा

पृथिवी आदि तत्त्वों के शरीर में यथा स्थिति रहने पर ही शरीर सर्वाङ्ग रूप से हृष्ट-पुष्ट रहता है, क्योंकि ये देह पञ्चभूतात्मक है। उसमें पृथिवी मण्डल के क्षीण होनेपर देह का काठिन्य नष्ट होने लगता है और शरीर में झुर्रियाँ, पड़ने लगती हैं। यदि जल गण की क्षीणता होती है तो बाल पाण्डुर (सफेद) हो जाते हैं, तेज के क्षय होने पर क्षुधा और कान्ति नष्ट हो जाती है और वायु के क्षीण होनेपर शरीर में कम्पन होने लगता है श्वास रोग बन जाता है। ऐसा न हो इसके लिए उपनिषद् व योग ग्रन्थों में उड्डियाण आदि बन्धों की व्यवस्था है।

ज्ञान की सात भूमिकाएँ

ज्ञान की सात भूमिकाएँ कही गयी हैं—शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसी, सत्त्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थाभाविनी और तुर्यगा।

शुभेच्छा—यह ओङ्कार का प्रथम अक्षर अकार स्वरूप है। वैराग्यपूर्वक मोक्ष की इच्छा ही 'शुभेच्छा' है।

विचारणा—इसमें ओङ्कार का द्वितीय अक्षर उकार सन्निहित है। मोक्ष की इच्छा से सत्पुरुषों का संग, सत्शास्त्रों का अध्ययन-मन्, सत्-असत् व नित्य-अनित्य वस्तु का विवेचन 'विचारणा' के अन्तर्गत आता है।

तनुमानसी—यह ओङ्कार का तृतीय अक्षर मकारयुक्त है। मोक्ष की इच्छा से शुभेच्छा और विचारणा के द्वारा इन्द्रिय के विषयों से अनासक्त होकर संसार में विचरना 'तनुमानसा' है। इसमें साधक का मन शुद्ध, निर्मल, सूक्ष्म और एकाग्र हो जाता है, जिससे उसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमात्मतत्त्व को ग्रहण करने की योग्यता प्राप्त हो जाती है।

१. वैराग्यपूर्वमिच्छा, २. सदाचारप्रवृत्तिः, ३. इन्द्रियार्थेषुरक्तता तनुत्वम्-भेदाभेदयुतम्-जाग्रतिः। ४. शुद्धे सत्त्वात्मनि स्थितिः-स्वप्नवल्लोकं पश्यति। ५. असंसर्ग-फलारूढसत्त्वचमत्कारा-शान्ताशेषविशेषांशः। ६. आभ्यन्तरबाह्यपदार्थानामभावनम्-अन्तर्मुखतया नित्यं निद्रालुरिव दृश्यते। ७. स्वभावैकनिष्ठता-गाढसुप्तिः क्षीणमननः।

तपःप्रधाना नारी/यज्ञप्रधानः पुरुषः।

सत्त्वापत्ति—यह अर्धमात्रा है, पूर्व भूमिकाओं के क्रमशः अभ्यास के द्वारा अत्यन्त विरक्त हो जाने के अन्तर सत्य स्वरूप परमात्मा में तद्रूप हो जाना 'सत्त्वापत्ति' है। इस अवस्था में ज्ञानयोगी ब्रह्मविद् हो जाता है।

असंसक्ति—परम वैराग्य और परम उपरति के कारण समाधि में स्थित हो जाना ही 'असंसक्ति' नाम की पाँचवीं भूमिका है। उस ज्ञानयोगी को ब्रह्मविदवर कहा जाता है।

पदार्थाभाविनी—इस भूमिका में पहुँचने पर नित्य समाधि के कारण उसे शरीर और संसार के समस्त पदार्थों का अभाव हो जाता है, इसलिए इस भूमिका को 'पदार्थाभाविनी' कहते हैं। ऐसे आत्मज्ञानी को 'ब्रह्मविद् वरीयान्' कहा जाता है।

तुर्यगा—छठी भूमिका के पश्चात् यह सातवीं भूमिका स्वतः हो जाती है। दूसरों के द्वारा प्रयत्नपूर्वक प्रेरित करने पर भी भेदरूप संसार की सत्ता-स्फूर्ति का सर्वथा अभाव रहता है। बस श्वासें चलती रहती हैं। इस भूमिका में पहुँचे महात्मापुरुष को 'ब्रह्मविद्वरिष्ठ' कहते हैं।

यह तुर्यावस्था (तुर्यगा भूमिका) जीवन्मुक्त पुरुष में इस शरीर में रहते हुए ही विद्यमान रहती है, इस देह का अन्त होनेपर विदेह युक्ति का विषय साक्षात् तुर्यातीत ब्रह्म ही है। अतः भूमिकाओं में उसकी गणना नहीं है।

प्रथम भूमिका में वैराग्यपूर्वक मोक्ष की इच्छा, द्वितीय में सदाचार में प्रवृत्ति, तृतीय में इन्द्रिय की विषयों के प्रति अनासक्ति है। ये तीनों भूमिकाएँ भेद और अभेद से युक्त और जाग्रत् अवस्था की हैं। चौथी भूमिका में शुद्ध आत्मा में सत्त्व (सत्य स्वरूप परमात्मा) की स्थिति है। वह संसार को स्वप्नवत् देखता है। पाँचवी भूमिका—अत्यन्त असंग रूप फल पर आरुढ़ सत्त्व चमत्कृत हो जाता है और विशेषांश में अशेष शान्ता है, छंठी भूमिका में आभ्यन्तर और बाह्य पदार्थों का सर्वथा अभाव रहता है, अन्तर्मुखी दृष्टि से वह संसार को नित्य निद्रालु की तरह देखता है। सातवीं भूमिका में—आत्मभाव में स्वाभाविक निष्ठा होती है, यह गाढ़ सुषुप्ति की अवस्था है जहाँ मनन-चिन्तन सब क्षीण हो जाता है।

तप प्रधान नारी-यज्ञ प्रधान पुरुष

मनुष्यों का धर्म यज्ञ प्रधान है। इसलिए पुरुष को यज्ञ प्रधान कहा गया है। वेदोक्तवर्ण के अनुसार जितने भी पुरुष के कर्तव्य हैं, उनका निष्ठापूर्वक परिपालन ही भगवान् का

यावत्सर्वं न संत्यक्तं तावदात्मा न लभ्यते।
सर्ववस्तुपरित्यागे शेष आत्मेति कथ्यते।। (अन्नपूर्णोपनिषद् १/४५)

स्वप्रकाशचिदभिन्नं सुखं पुमर्थः। जीवन्मुक्तानां स्वानुभवसिद्धम्। (अद्वैतसिद्धिः४)

त्रिषु वर्णेष्वभिशस्तपतितवर्जितेषुपशुरद्रोही भैक्षमाणः ब्रह्मभूयाय भवति।
(परमहंसपरिव्राजकोपनिषद्)

मनो द्विविधं

शुद्धं–कामविवर्जितम्, अशुद्धं–कामसंकल्पम्। (ब्रह्मबिन्दूपनिषद्)

यजन है; इसलिए पुरुष को जीवनपर्यन्त यजनरूप स्वकीय धर्म का आचरण करना चाहिए।

नारी का धर्म तक प्रधान है। नारी के द्वारा विधिपूर्वक अपने धर्म (कर्तव्य) का परिपालन करना एक तपस्या ही है। नारी का तपोमय जीवन है। पति, पुत्रादि से हरा भरा घर किसी तपोवन से कम नहीं है। नारी की विलक्षण तपस्या के बल पर ही कुटुम्ब फूलता-फलता है, अतः नारी तप प्रधान है।

आत्मा

जब तक सब कुछ छोड़ नहीं दिया जाता, तब तक आत्मा की उपलब्धि नहीं हो सकती। आत्मा क्या है? कहते हैं कि समस्त वस्तुओं का परित्याग हो जाने पर जो शेष रह जाता है, वह आत्मा है।

अलौकिक सुख

स्व प्रकाशस्वरूप चिद् से अभिन्न सुख ही पुमर्थ (पुरुषार्थ) है। यह अलौकिक सुख जीवन्मुक्तों के स्वकीय अनुभव से सिद्ध है।

परमहंस संन्यासी का भिक्षाचरण

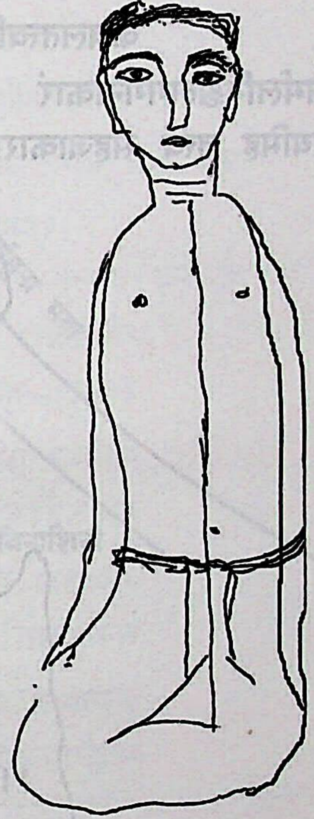
ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णों में अभिशप्त और पतित जनों को छोड़ कर मात्र शरीर धारणार्थ पशुवत् निर्द्वन्द्व व मान-अपमान से रहित, द्रोह-दोष से सर्वथा शून्य परिव्राजक भिक्षाटन करता हुआ ब्रह्म-कोटि को प्राप्त करता है।

द्विविध मन

मन दो प्रकार का है—एक शुद्ध मन और दूसरा अशुद्ध मन। जो समस्त कामनाओं से विनिर्मुक्त है वह शुद्धमन है, और विविध कामनाओं के संकल्प से युक्त मन अशुद्ध मन है।

ब्रह्मप्रणवः षोडशमात्रः (परमहंसपरिव्रा.उ.)

१. अकारे-जाग्रद्विश्वः २. उकारे-जाग्रत्तैजसः ३. मकारे-जाग्रत्प्राज्ञः ४. अर्धमात्रायां-जाग्रत्तुरीयः	अकारांशम्
५. बिन्दौ-स्वप्नविश्वः ६. नादे-स्वप्नतैजसः ७. कलायां-स्वप्नप्राज्ञः ८. कलातीते-स्वप्नतुरीयः	उकारांशम्
९. शान्तौ-सुषुप्तविश्वः १०. शान्त्यतीते-सुषुप्ततैजसः ११. उन्मन्यां-सुषुप्तप्राज्ञः १२. मनोन्मन्यां-सुषुप्ततुरीयः	मकारांशम्
१३. तुर्यां-तुरीयविश्वः १४. मध्यमायां-तुरीयतैजसः १५. पश्यन्त्यां-तुरीयप्राज्ञः १६. परायां-तुरीयतुरीयः	अर्धमात्रांशम्



ब्रह्म प्रणव

यह ब्रह्म प्रणव सोलह मात्राओं का है। यह प्रणव ब्रह्म स्वरूप ही है।

अकार से परा पर्यन्त सोलह मात्राओं में क्रमशः चार-चार मात्राओं में जाग्रत्, स्वप्न सुषुप्ति और तुरीय—ये चार-चार अवस्थाएँ हैं। जिन्हें क्रमपूर्वक दर्शित किया गया है—

१. अकार में जाग्रत् विश्व, २. उकार में जाग्रत् तेजस, ३. मकार में जाग्रत् प्राज्ञ, ४. अर्धमात्रा में जाग्रत् तुरीय—जाग्रत् मात्रा चतुष्ट्या अकारांश है। ५. विन्दु में स्वप्न विश्व, ६. नाद में स्वप्न तेजस, ७. कला में स्वप्न प्राज्ञ, ८. कलातीत में स्वप्न तुरीय—स्वप्न मात्रा चतुष्टय उकारांश है। ९. शान्ति में सुषुप्ति विश्व, १०. शान्त्यतीत में सुषुप्ति तैजस, ११. उन्मनी में सुषुप्ति प्राज्ञ, १२. मनोन्मनी में सुषुप्ति तुरीय—सुषप्ति मात्रा चतुष्टय मकारांश है। १३. पुरी (वैखरी) में तुरीय विश्व, १४. मध्यमा में तुरीय तैजस, १५. पश्यन्ती में तुरीय प्राज्ञ, १६. परा में तुरीय तुरीय—तुरीय मात्रा चतुष्टय अर्धमात्रांश है।

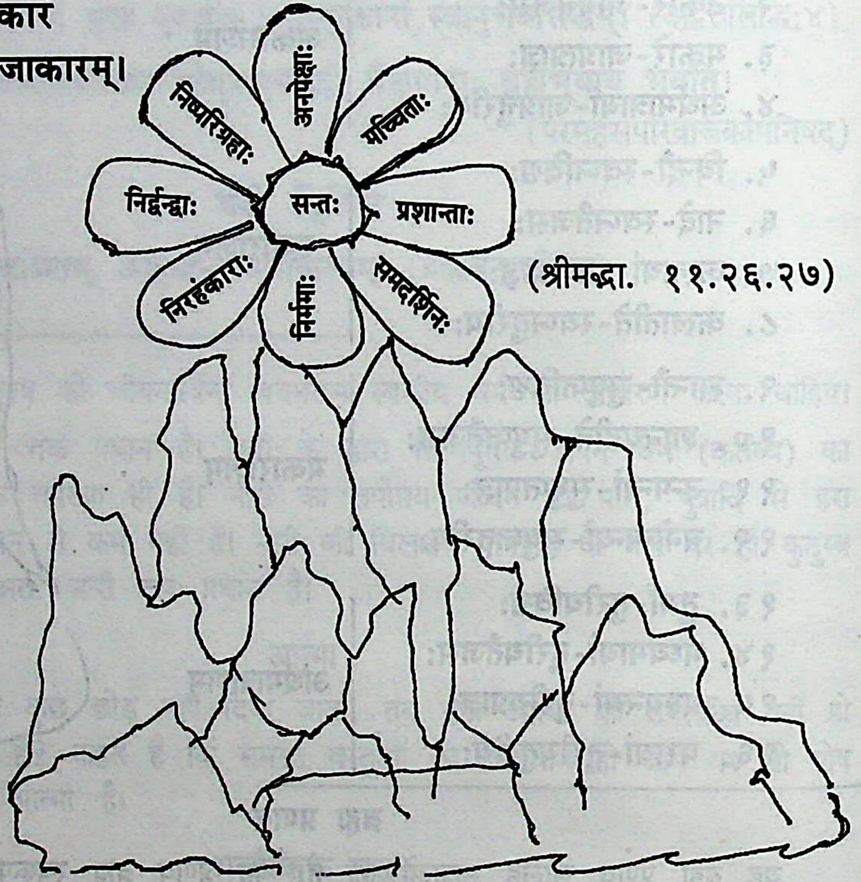
यही षोडश मात्रात्मक प्रणव ब्रह्म है। यह परमहंस तुरीयातीत अवधूतों के द्वारा उपास्य है। इससे ब्रह्म प्रकाशित हो जाता है, फलतः विदेह मुक्ति होती है।

लक्ष्यालक्ष्यविवर्जितलक्ष्यो युक्तायुक्तविवर्जितदक्षः।

केवलतत्त्वनिरञ्जनपूतो वादविवादःकथमवधूतः।। (७.२ अव.गी.)

निर्मलनिश्चलगगनाकारं

वयमिह तत्त्वं सहजाकारम्।



(श्रीमद्भा. ११.२६.२७)

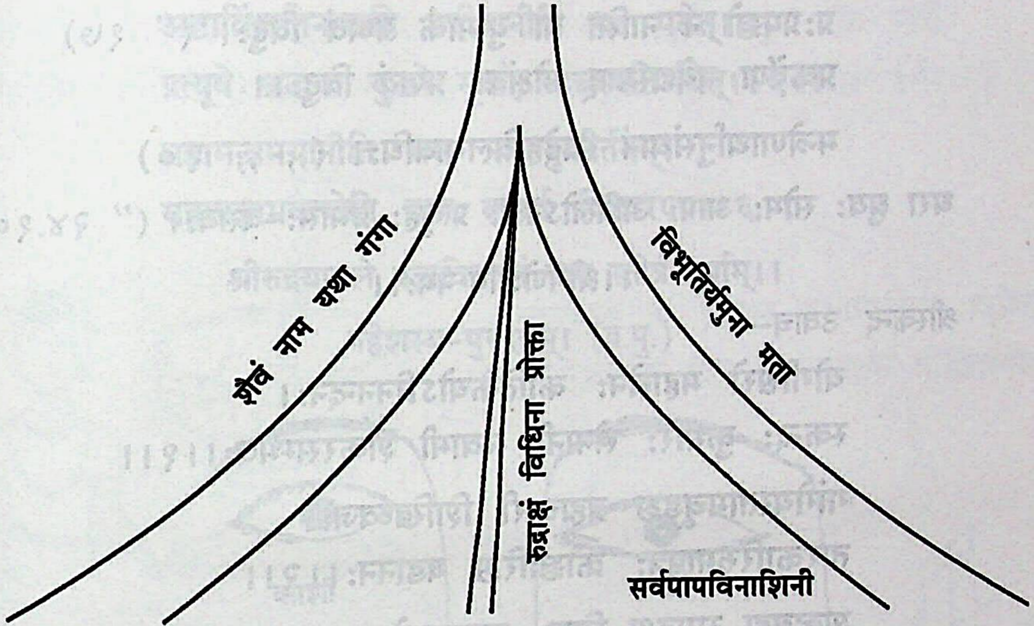
अवधूत स्वरूप

जिसका लक्ष्य लक्ष्य-अलक्ष्य रूप नाना प्रकार की कोटियों से रहित है, जो युक्त और अयुक्त अर्थात् विधि और निषेध के वर्जन में कुशल है तथा जो अद्वितीय अविद्याशून्य तत्त्व के ज्ञान से पवित्र हो गया है, ऐसे अवधूत का वाद-विवाद से क्या सम्बन्ध है!

हम तो निर्मल, निश्चल (सदा एकरस), गगनाकार, सहज रूप, आत्म तत्त्व में स्थिर रहते हैं।

सन्त–लक्षण

सन्त का लक्षण है कि वे अनपेक्ष होते हैं, उन्हें कभी किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं होती। भगवान् कहते हैं वे मच्चित्त होते हैं—उनका चित्त मुझमें लगा रहता है। वे प्रशान्त



प्रणवः

प्रोहि प्रपञ्चजातस्य संसारस्य महोदधेः।
नवं नावां वरमिति प्रणवं वै विदुर्बुधाः।।

होते हैं—उनके हृदय में शान्ति का सागर लहराता रहता है। वे समदर्शी होते हैं—वे सदा-सर्वदा सर्वत्र सबमें भगवान् का ही दर्शन करते हैं। वे निर्मम—ममता-शून्य होते हैं। उनमें अहंकार का लेश भी नहीं होता। वे निर्द्वन्द्व होते हैं—वे सर्दी-गरमी, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों में एकरस रहते हैं और सन्त निष्प ग्रह होते हैं—परिग्रह से वे सर्वथा दूर रहते हैं।

शिवनाम, विभूति और रुद्राक्ष

चित्र में तीन धाराओं से शिवनाम विभूति और रुद्राक्ष का वैशिष्ट्य प्रतिपादित किया गया है। ये तीनों ही महापवित्र और त्रिवेणीस्नान के समान पुण्य-फल देने वाले हैं।

इनमें शिवनाम तो गङ्गा है, विभूति (भस्म) यमुना है और इन दोनों के मध्य की धारा समस्त पापों का शमन करनेवाली सरस्वती है।

प्रणव—लक्षण

प्र—प्रपञ्च (प्रकृति) से उत्पन्न संसाररूपी समुद्र के सन्तारण में श्रेष्ठ नौका (नाव) स्वरूप से जो विद्यमान है, पण्डित लोग उसे प्रणव कहते हैं।

प्रःप्रपञ्चो न नास्ति वो युष्माकं प्रणवं विदुः। ('' १७)
प्रकर्षेण नयेद्यस्माद् मोक्षंवः प्रणवं विदुः।।

मन्त्रेणार्थानुसंधानं स्वदेहविलयावधिः। (,, ,, १०)

धरा ध्रुवः सोमः आपः अनिलोऽनलः प्रत्यूहः प्रभासः-वसवः। ('' २४.१०१)

।।श्रीगणेशाय नमः।।

श्रीस्कन्द उवाच—

योगीश्वरो महासेनः कार्तिकेयोऽग्निनन्दनः।
स्कन्दः कुमारः सेनानीः स्वामी शंकरसम्भवः।।१।।

गांगेयस्ताम्रचूडश्च ब्रह्मचारी शिखिध्वजः।
तारकारिरुमापुत्रः क्रौञ्चारिश्च षडाननः।।२।।

शब्दब्रह्म समुद्रश्च सिद्धः सारस्वतो गुहः।
सनत्कुमारो भगवान् भोगमोक्षफलप्रदः।।३।।

शरजन्मा गणाधीशः पूर्वजो मुक्तिमार्गकृत्।
सर्वागमप्रणेता च वांछितार्थप्रदर्शकः।।४।।

अथवा प्र—प्रपञ्च न—नहीं है व—तुम में, अर्थात् आत्मा में कुछ प्रपञ्च नहीं है—यह प्रणव का अर्थ है। अथवा प्र—प्रकृष्टता से न—नयति—मोक्ष की ओर ले जाने वाले को प्रणव कहते हैं।

इस प्रणव मन्त्र के अर्थ का अनुसन्धान तब तक करते रहना चाहिए, जब तक उसमें देह का लय नहीं हो जाता। यह प्रणव की सूक्ष्म उपासना है। अर्थ की भावना से जप करने वाला उपासक उसमें देहाध्यास से रहित होता हुआ शिव स्वरूप हो जाता है।

अष्टवसु

धरा, ध्रुव, सोम, अप, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु हैं।

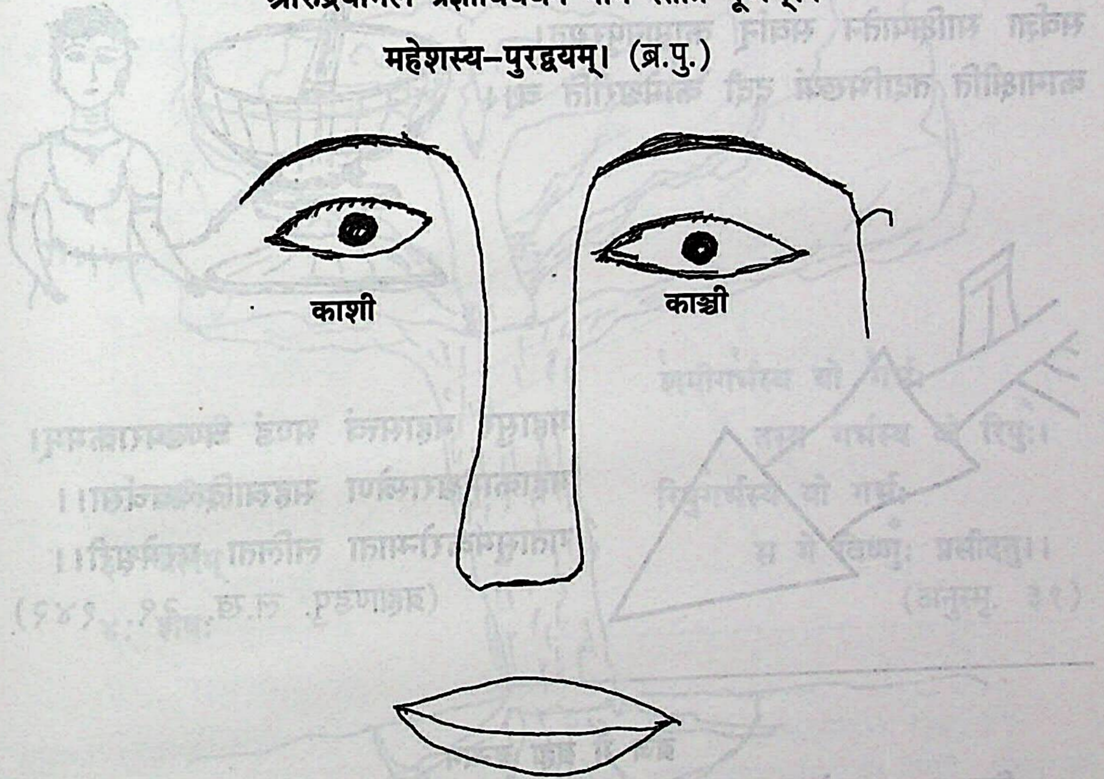
प्रज्ञाविवर्धनस्तोत्र

श्रीस्कन्दजी कहते हैं—योगीश्वर, महासेन, कार्तिकेय, अग्निनन्दन, स्कन्द, कुमार, सेनानी, स्वामी, शङ्कर सम्भव, गाङ्गेय, ताम्रचड, ब्रह्मचारी, शिखिध्वज, तारकारि, उमापुत्र, क्रौञ्चारि, षडानन, शब्द ब्रह्मसमुद, सिद्ध सारस्वत गुह, सनत्कुमार, भगवान्, भोग मोक्षफलप्रद, शरजन्मा, गणाधीश, पूर्वज, युक्तिमार्गकृत्, सर्वागमप्रणेता और वाञ्छितार्थ

अष्टाविंशतिनामानि मदीयानीति यः पठेत्।
प्रत्यूषे श्रद्धया युक्तो मूको वाचस्पतिर्भवेत्।।५।।
महामन्त्रमयानीति मम नामानुकीर्तनम्।
महाप्रज्ञामवाप्नेति नात्र कार्या विचारणा।।६।।

श्रीरुद्रयामले प्रज्ञाविवर्धनं नाम स्तोत्रं पूर्णम्।।

महेशस्य-पुरद्वयम्। (ब्र.पु.)



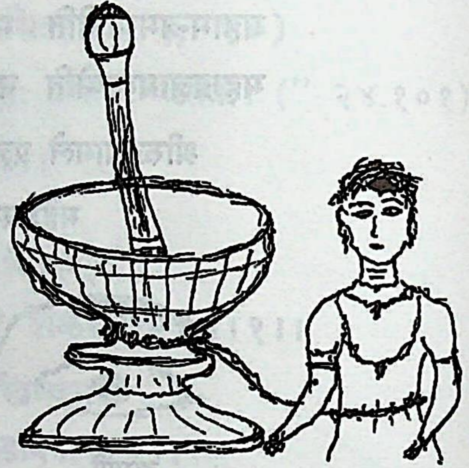
प्रदर्शक—ये मेरे अट्ठाईस नाम हैं, जो प्रातःकाल में श्रद्धावान् होकर इस (प्रज्ञावर्धनस्तोत्र) का पाठ करता है। मूढ मूक व्यक्ति भी वाचस्पति के समान हो जाता है।

महामन्त्र स्वरूप मेरे इन नामों के अनुकीर्तन से महाप्रज्ञा प्राप्त होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

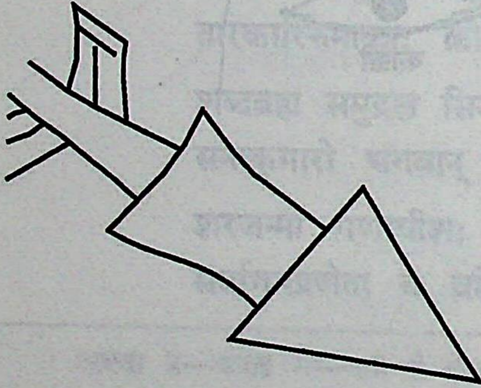
महेश के दो पुर

इस भूतल पर भगवान् शिव के दो नगर हैं, जहाँ वे निवास करते हैं—काशी और काञ्ची। यही दोनों पुण्यपुरी सदाशिव की आँखें हैं। दायीं आँख काशी है और बायीं आँख काञ्ची है।

जिन बाँधे सुर असुर नाग नर प्रबल करम की डोरी।
सोइ अविछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बाँध्यो सकत न छोरी।। (विनयप.)



सर्वज्ञा साक्षिपातेन सर्वान् कामानपूरयत्।
कामाक्षीति तदाभिख्यां ददौ कामेश्वरीति च।।



महासुरं महासत्त्वं भण्डं चण्डपराक्रमम्।
महाकामेश्वरास्त्रेण सहस्रादित्यवर्चसा।।
गतासुमकरोन्माता ललिता परमेश्वरी।।
(ब्रह्माण्डपु. ल.ख. २९. १४२)

ब्रज में ब्रह्म बन्धन

जिस परमात्मा ने अत्यन्त प्रबल कर्म की रस्सी से सुर, असुर, नाग और मनुष्यों को बाँध रखा है; यशोदा ने उसी देश, काल, वस्तु से अपरिच्छिन्न ब्रह्म को हठपूर्वक ओखल से रस्सी में बाँध दिया, जिस बन्धन को छुड़ाने में वह ब्रह्म समर्थ नहीं हो सका।

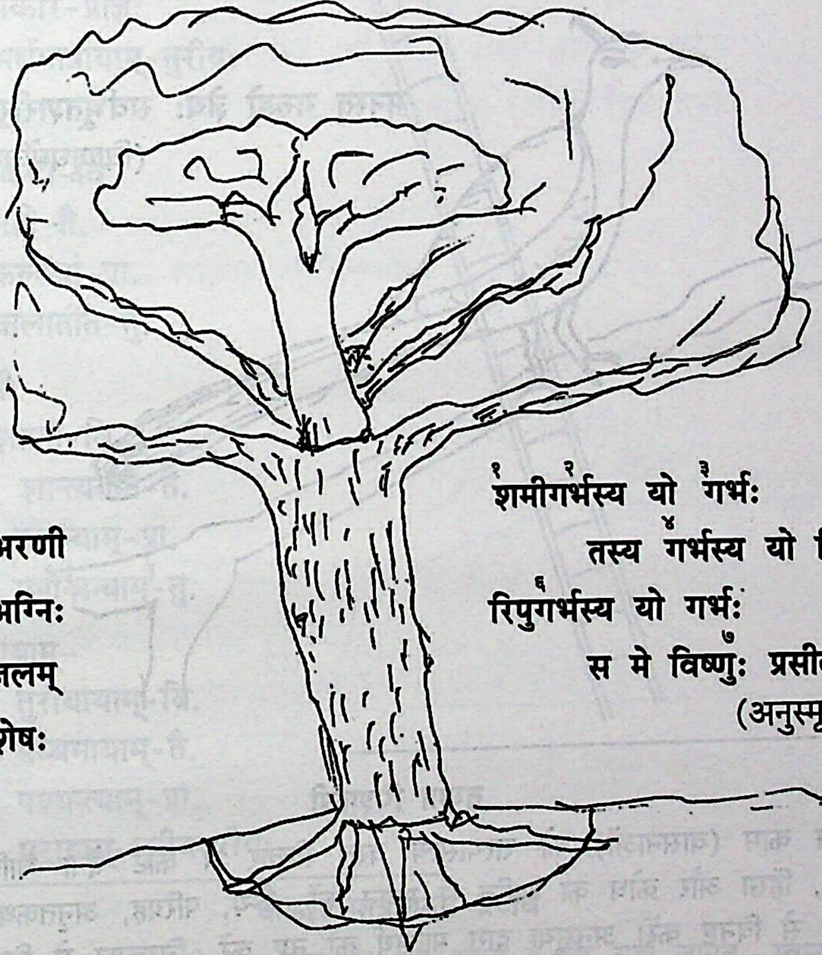
भगवती कामेश्वरी

सर्वज्ञा भगवती कामाक्षी अपने कृपाकटाक्षपात से भक्तों की समस्त कामनाओं को पूर्ण करती है। इसलिए उन्हें कामेश्वरी या कामाक्षी नाम से कहा गया है।

परमेश्वरी ललिता

महाबलवान् प्रचण्ड पराक्रमी भण्ड नामक महाअसुर को परमेश्वरी ललिताम्बा ने हजारों सूर्य के समान देदीप्यमान महाकामेश्वर अस्त्र (बाण) से गत प्राण कर दिया—मार डाला।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च गुणकार्यकरा ह्यमी।
तमोगुणाश्रितो रुद्रो गुणातीतो महेश्वरः।। (स्कन्द पु. मा. २०.४१)



१. अरणी
२. अग्निः
३. जलम्
४. शेषः

शमी[1]गर्भ[2]स्य यो गर्भः[3]
तस्य गर्भस्य[4] यो रिपुः[5]।
रिपुगर्भस्य[6] यो गर्भः
स मे विष्णुः[7] प्रसीदतु।।
(अनुस्मृ. ३१)

गुणातीत महेश्वर

ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—ये तीनों अपने-अपने गुण विशेष से कार्य-सम्पादन करते हैं। तमो गुण का आश्रय लिये रुद्र हैं और गुणातीत महेश्वर हैं।

वह विष्णु प्रसन्न हों

शमी वृक्ष के गर्भ में पीपल है, पीपल के गर्भ में अरणि है, उसके गर्भ में अग्नि है, अग्नि के गर्भ में अग्नि का शत्रु जल है और जल के गर्भ में शेष है, उस शेष पर जो शयन करते हैं—वे शेषशायी भगवान् विष्णु हम पर प्रसन्न हों।

कामं वस्तुविचारतोऽच्छिनदयं पारुष्यहिंसाक्रुधः, क्षान्त्या दैन्यपरिग्रहानृतकथा-लोभांस्तु संतोषतः। मात्सर्यं त्वनुसूयया मदमहामानौ चिरं भावितं, स्वान्योत्कर्षगुणेन, तृप्तिगुणतः तृष्णा पिशाचीमपि।।



मनस्तु गरुडो ज्ञेयः सर्वभूतशरीरगम्।
(विष्णुधर्मोत्तरपु. ३.४६)

तृष्णा पिशाची

इस काम (वासनाओं) को सत्यासत्य वस्तु विचार से काट देना चाहिए, परुषता (कठोरता), हिंसा और क्रोध का क्षान्ति से शमन करें, दैन्य, परिग्रह, अनृतकथा और लोभ को संतोष से विनष्ट करें। अनुसूया द्वारा मात्सर्य को नष्ट करें, चिरकाल से स्थित मद और अभिमान (महामान) को अपने से अतिरिक्त जनों के उत्कर्ष गुणों को देखकर विनष्ट कर दें और इसी तरह तृष्णारूपी पिशाचिनी को भी तृप्तिरूप विशिष्ट गुण के द्वारा पराजित कर दें।

मन गरुड

सभी प्राणियों के शरीर में रहने वाला मन एक गरुड है। यह मनरूपी गरुड वासनाओं के आकाश में दिन-रात उड़ता रहता है। वासना से ग्रसित होने से यह अपने स्वरूप को भूल बैठा है, जबकि यह संसारिक वासनाओं का वाहन नहीं, अपितु साक्षात् भगवान् श्रीहरि का वाहन है।

जाग्रति–

१. अकारे-विश्वः

२. उकारे-तैजसः

३. मकारे-प्राज्ञः

४. अर्धमात्रायाम्-तुरीयः

स्वप्ने–

५. बिन्दौ-वि.

६. नादे-तै.

७. कलायां-प्रा.

८. कलातीते-तु.

सुषुप्तौ

९. शान्तौ-वि.

१०. शान्त्यतीते-तै.

११. उन्मन्याम्-प्रा.

१२. मनोन्मन्याम्-तु.

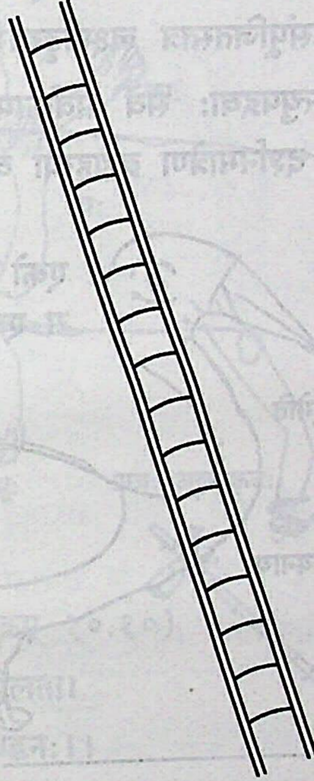
तुरीयायाम्–

१३. तुरीयायाम्-वि.

१४. मध्यमायाम्-तै.

१५. पश्यन्त्याम्-प्रा.

१६. परायाम्-तुरीयतुरीयः



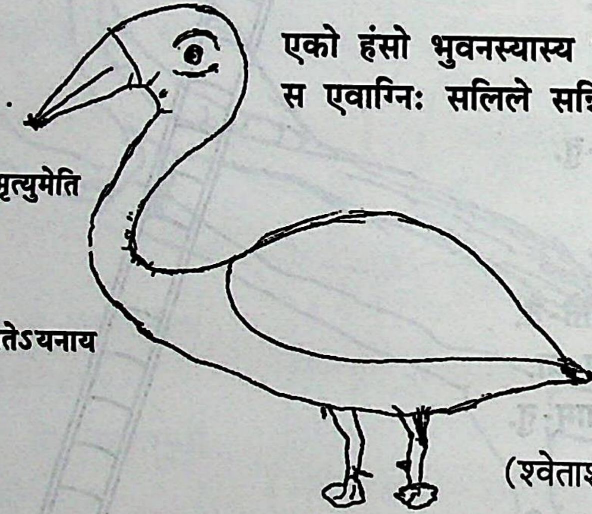
षोडश मात्रात्मक प्रणव

यह सन्दर्भ पूर्व में भी आ चुका है। भेद इतना है कि यहाँ जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय अवस्था में अकारादि परापर्यन्त ॐकार की मात्राओं में विश्व आदि की स्थिति स्पष्ट की गयी है।

जाग्रत् अवस्था में प्रणव की प्रथम मात्रा—१. अकार में विश्व है, उकार में तैजस है, ३. मकार में प्राज्ञ है, ४. अर्ध मात्रा में तुरीय। **स्वप्न अवस्था में**—५. बिन्दु मात्रा में विश्व, ६. नाद में तैजस, ७. कला में प्राज्ञ, ८. कलातीत में तुरीय। **सुषुप्ति काल में**—९. शान्ति नामक मात्रा में विश्व, १०. शान्त्यतीत में तैजस, ११. उन्मनी में प्राज्ञ, १२. मनोन्मनी में तुरीय। **तुरीयावस्था में**—१३. तुरीय में विश्व, १४. मध्यमा में तैजस, १५. पश्यन्ती में प्राज्ञ, १६. परा में तुरीय तुरीय।

रुद्राक्षः

एकवक्त्रः शिवः साक्षात् भुक्तिमुक्तिफलप्रदः।
यत्र संपूजितस्तत्र लक्ष्मीदूरतरा नहि।।६४।।
नश्यन्त्युपद्रवाः सर्वे सर्वकामा भवन्ति हि।
तस्य दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्यां व्यपोहति।।६५।। (श्रीशिवपु.वि. २५)



एको हंसो भुवनस्यास्य मध्ये,
स एवाग्निः सलिले सन्निविष्टः।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ६.१५)

एकमुखी रुद्राक्ष

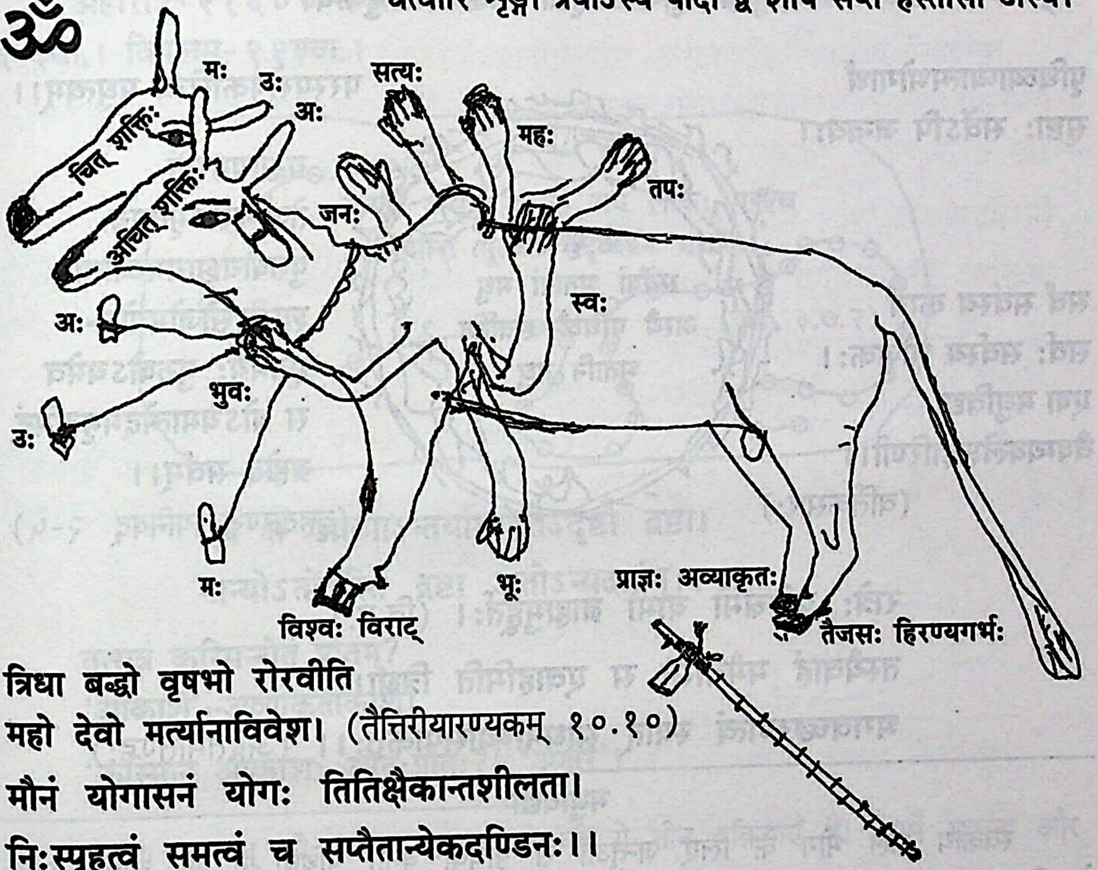
एकमुखी रुद्राक्ष सदाशिव का स्वरूप ही है और वह भोग और मोक्ष को देने वाला है। जहाँ इसकी पूजा होती है, महालक्ष्मी वहाँ से कभी दूर नहीं जातीं। सभी उपद्रव नष्ट हो जाते हैं तथा उसके धारण करने से सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। उसके दर्शन मात्र से ही ब्रह्महत्या जैसे महापाप विनष्ट हो जाते हैं।

एक हंस

इस भुवन के मध्य में एक हंस है। वही जल में पञ्चम आहुतिरूप देह में स्थित अग्नि है। उसी को जानकर पुरुष मृत्यु से पार हो जाता है, इससे भिन्न मोक्ष-प्राप्ति का कोई और मार्ग नहीं है।

एक परमात्मा जो अविद्या आदि बन्धन के कारण का हनन करता है, इसलिए हंस है। वह इस त्रिलोकी के मध्य में स्थित है। अविद्या और उसके कार्य का दाह करनेवाला होने से अग्नि के समान है। देहरूप में परिणत हुए जल में वह अग्नि है। जल तत्त्व का कारण होने से तेजस् तत्त्व का जल में व्याप्त होना उचित ही है।

चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।



त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति
महो देवो मर्त्यानाविवेश। (तैत्तिरीयारण्यकम् १०.१०)

मौनं योगासनं योगः तितिक्षैकान्तशीलता।
निःस्पृहत्वं समत्वं च सप्तैतान्येकदण्डिनः।।

उस सर्व शक्तिमान् सर्वाधार परमात्मा को जानकर ही मनुष्य मृत्युरूप संसा-समुद्र से पार हो सकता है। उसके दिव्यधाम की प्राप्ति के लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं है। अतः उस परमात्म तत्त्व का जिज्ञासु होकर उन्हें जानने के प्रयास में लगना चाहिए।

विचित्र वृषभ

कामनाओं का अभिवर्षण करनेवाला वृषभ शब्द करता है। वह महान देव धरणधर्म प्राणियों में प्रविष्ट हुआ है। यह ऐसा वृषभ है; जिसके अ, उ, म और अर्धमात्रा ये चार सींग हैं। तीन पैर हैं—प्राज्ञ अव्याकृत, तैजस हिरण्य गर्भ और विश्व विराट्। दो शिर हैं—चित् शक्ति और अचित् शक्ति। इसके सात हाथ हैं—भू, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य; और ये तीन स्थानों से बँधा हुआ है—अ, उ और म।

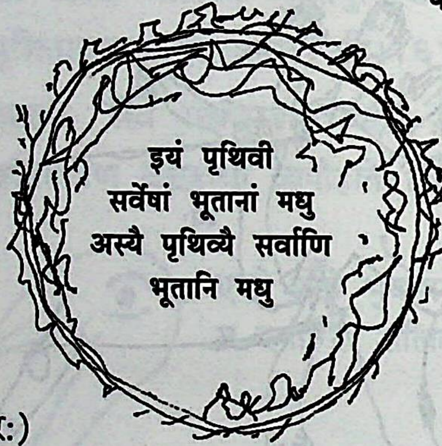
एकदण्डी संन्यासी

मौन, योगासन, योग, तितिक्षा, एकान्तशीलता, निस्पृहता और समता—ये सात विशिष्ट गुण एकदण्डी संन्यासियों के हैं।

जन्तुभिः पृथिवी सृष्टा स्वकर्मफलभुक्तये।

पृथिव्याप्यात्मभोगार्थं
सृष्टाः सर्वेऽपि जन्तवः।

परस्परोपकारित्वं मधुत्वम्।।



सर्वं सर्वस्य कार्यं
सर्वः सर्वस्य भोजकः।
एषा मधुविद्या
वैषम्यक्लेशहारिणी।।
(वर्तिकसार:)

यश्चायमस्यां
तेजोमयोऽमृतमयः
पुरुषोयश्चायमध्यात्मं।
शारीरस्तेजोमयोऽ-
मृतमयः पुरुषोऽयमेव
स योऽयमात्मेदममृतमिदं
ब्रह्मेदं सर्वम्।।
(वृहदारण्यकोपनिषद् २-५)

रात्रेः पश्चिमो यामो ब्राह्ममुहूर्तः। (वि.प.)
तस्यैवाहं ममैवासौ स एवाहमिति त्रिधा।
भगवच्छरणत्वं स्यात् साधनाभ्यासपाकतः।। (अद्वैतमार्तण्ड:)

मधुविद्या

स्वकीय फल भोग के लिए जन्तुओं से पृथिवी बनी। पृथिवी ने भी आत्मा भोग के लिए समस्त प्राणी उत्पन्न किये। यह परस्पर उपकार ही मधु है।

सब सभी के कार्य हैं, सब सबके भोजक हैं—ये मधुविद्या है, यह विद्या विषमता-रूपी क्लेश का हरण करनेवाली है।

यह पृथिवी समस्त भूतों का मधु है और सब भूत इस पृथिवी के मधु हैं। इस पृथिवी में जो यह तेजोमय अमृत पुरुष है और जो यह अध्यात्मशरीर तेजोमय अमृतमय पुरुष है, यही वह है जो कि 'यह आत्मा है' यह अमृत है, यह ब्रह्म है, यह सर्व है।

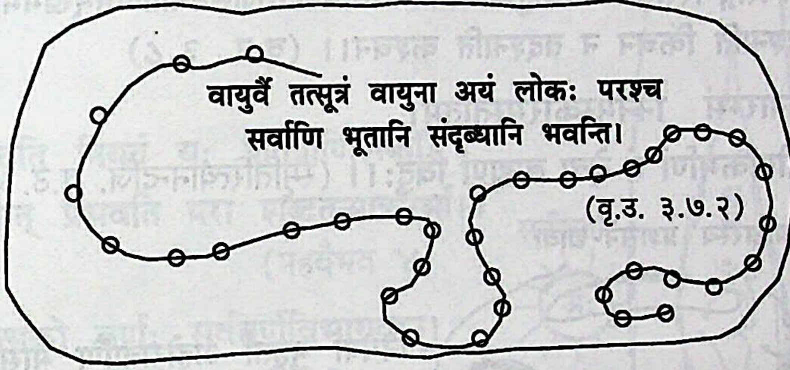
ब्राह्म मुहूर्त

रात्रि का पश्चिम याम (चतुर्थ प्रहर का प्रारम्भ काल) ब्राह्म मुहूर्त कहलाता है। शास्त्रों में इस समय शयन-शय्या त्यागने का विधान है। ब्राह्म मुहूर्त में सोना निषिद्ध है।

भगवत् शरणागति

मैं उसी का हूँ, वह मेरा ही है और मैं वह ही हूँ—इस प्रकार साधना के अभ्यास के परिपक्व हो जाने पर भगवत् शरणागति तीन प्रकार की हो जाती है।

अहोरात्रे- २१६०० -श्वासाश्चरन्ति। घटिकायाम्- ३६० -श्वासाश्चरन्ति। पलम्- ६-श्वा.। विपलम्- ११श्वा.।



एष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतेऽदृष्टो द्रष्टा।
नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा अतोऽन्यदार्तम्।।

तत्सूत्रं कस्मिन्नोतं प्रोतम्?
'आकाशे'–अव्याकृताकाशे।

'कस्मिन्नु आकाशः ओतःप्रोतः?' 'अक्षरे'।

अथवा भगवान् की शरण ग्रहण करने की ये तीन प्रक्रियाएँ हैं। इसमें साधना और अभ्यास का परिपाक अत्यन्त आवश्यक है।

श्वास–प्रक्रिया

रात-दिन में इक्कीस हजार छः सौ श्वासे चलती हैं। एक घटिका में तीन सौ श्वास, एक पल में छः बार और एक विपल में आधी श्वास चलती है।

वायु ही वह सूत्र है, वायुरूप सूत्र के द्वारा ही यह लोक, परलोक और समस्त भूत समुदाय गुथे हुए हैं।

यह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। वह दिखायी न देनेवाला किन्तु देखनेवाला है, आत्मा के अतिरिक्त और कोई द्रष्टा नहीं है। इससे भिन्न सब नाशवान् है।

वह सूत्र किसमें ओत-प्रोत है?

आकाश में, अव्याकृत आकाश में। वे सब आकाश में ही ओत-प्रोत हैं।

तो फिर आकाश किसमें ओत-प्रोत है?

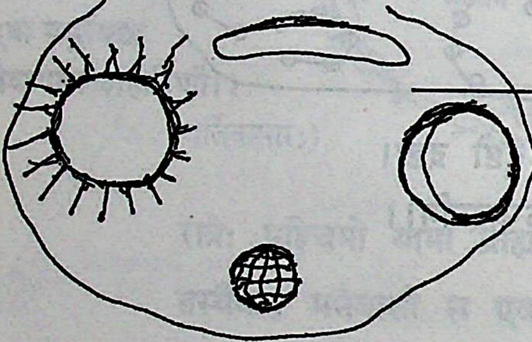
आकाश अक्षर में ओत-प्रोत है।

अप्रतिपत्तिः विप्रतिपत्तिः–निग्रहस्थानम्।

एतदक्षरं ब्राह्मणा अभिवदन्ति-अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमो-ऽवाय्वनाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखममात्रमनन्तर-मबाह्यं न तदश्नाति किंचन न तदश्नाति कश्चन।। (वृ.उ. ३.८)

निराशिषमनारम्भं निर्नमस्कारमस्तुतिम्।
अक्षीणं क्षीर्णकर्माणं तं देवा ब्राह्मणं विदुः।। (स्मृतिरित्यानन्दजि. वृ.उ.३.५भाष्ये।)

एतस्याक्षरस्य प्रशसने-द्यावा



निमेषा मुहूर्ता अहोरात्राणि मासा ऋतवः संवत्सरा विधृतास्तिष्ठन्ति नद्यः स्यन्दन्ति देवा पितर अन्वयन्ताः। (वृ.उ. ३.८.९)

अप्रतिपत्ति अर्थात् अज्ञान और विप्रतिपत्ति—विपरीत ज्ञान ये दोनों ही निग्रह स्थान हैं।

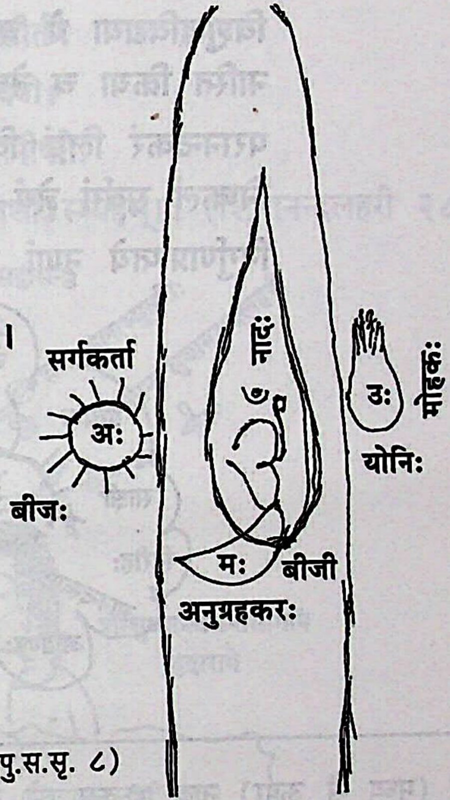
उस तत्व को ब्रह्मवेत्ता (ब्राह्मण) अक्षर कहते हैं, वह न मोटा है, न पतला है, न छोटा है, न बड़ा है, न लोहित है, न द्रव है, न छाया है, न अन्धकार है, न वायु है, न आकाश है, न संग है, न रस है, न गन्ध है, न नेत्र है, न श्रोत है, न वाणी है, न मन है, न तेज है, न प्राण है, न मुख है, न माप है। उसमें न भीतर है, न बाहर है, वह कुछ भी नहीं खाता, उसे कोई भी नहीं खाता।

ब्रह्मवेत्ता-ब्राह्मण

जो आशिष से शून्य हो, न किसी से आशीर्वाद माँगे और न किसी को दे, किसी भी कार्य का आरम्भ न करें, क्योंकि अनारम्भ ही ब्रह्म-चिन्तन में बुद्धि का प्रथम लक्षण है। किसी को प्रणाम न करे और न किसी से कराये, किसी से स्तुति न करे और न दूसरों से स्वयं की स्तुति कराये, सदा तृप्त रहे, सभी कर्मों को ज्ञानाग्नि से दग्ध करने वाले को ही देवता ब्रह्मवेत्ता (ब्राह्मण) कहते हैं।

अक्षर—प्रशासन

इस अक्षर के प्रशासन में सूर्य और चन्द्रमा द्युलोक और पृथिवी लोक विशेष रूप से धारण किये हुए स्थित रहते हैं। अक्षर के ही प्रशासन में निमेष, मुहूर्त, दिन-रात, मास,



ओमित्यन्तर्नदति नियतं यः प्रतिप्राणिशब्दो।
वाणी यस्मात् प्रभवति परा शब्दतन्मात्रगर्भा।।
(महवैभव ४)

एको नादात्मको वर्णः सर्ववर्णविभागवान्।
सोऽनस्तमितरूपत्वात् अनाहत इहोदितः।।
(तन्त्रालोकः ६)

(शिवपु.स.सृ. ८)

ऋतु और संवत्सर धारण किये हुए स्थित रहते हैं, नदियाँ पर्वतों से बहती हैं, देवगण और पितृगण अनुवर्तन करते हैं।

ॐ माहात्म्य

ॐ—यह नित्य ही अन्तर (भीतर) में नाद करता रहता है। जो प्रत्येक प्राणि में शब्द है, वह सब ओङ्कार ही है, प्रणव से ही परावाणी जो सर्वतन्मात्रा गर्भभूता है प्रादुर्भूत होती है। ओङ्कार की समस्त तन्मात्राओं का बीजरूप है।

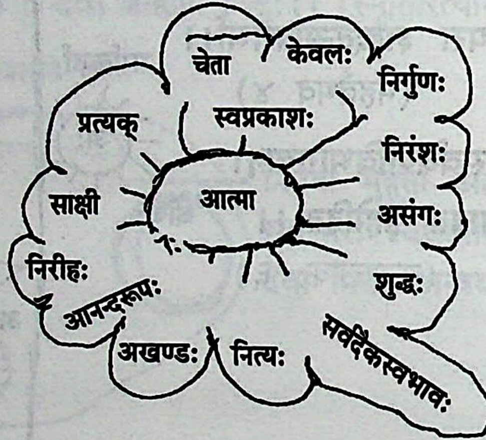
ओङ्कार एक नादात्मक वर्ण है जो कि सब वर्णों का विभाग करनेवाला है अर्थात् सभी वर्णों का प्राकट्य ओङ्कार से ही होता है, ओङ्कार ही अनस्तमित-आविर्भूत रूप से अनाहत नाद है।

शिवलिङ्ग

अलिङ्ग परमात्मा सदाशिव लिङ्गरूप में उपासकों का कल्याण करते हैं। आदिमध्यान्त-वर्जित शिवलिङ्ग का दर्शन ब्रह्मा और विष्णु ने किया, जिससे उनका गर्व नष्ट हो गया।

उन्होंने लिङ्ग के दक्षिण भाग में सर्गकर्ता-सर्वबीज, आद्यवर्ण अकार को सूर्य-मण्डल के समान देखा। उत्तरभाग में योनिरूप, बीजी 'मकार' को चन्द्रमण्डल के समान और अन्त

विशुद्धविद्यया ये च ब्रह्मन्ब्रह्मविदो जनाः।
नास्ति क्रिया च तेषां वै सुखं दुःखं विचारतः।।
परानन्दकरं लिङ्गं विशुद्धं शिवमक्षरम्।
निष्कलं सर्वगं ज्ञेयं योगिनां हृदि संस्थितम्।। (शि.पु.स.सृ.१२)
निर्गुणप्राप्तये नृणां प्रतिमालम्बनं स्मृतम्।



(१४)

(सर्ववेदान्तसारसं. ४५८)

में (मध्य से ऊपर) नाद ॐकार को देखा। उसके ऊपर दिव्य आभासम्पन्न अमृत स्वरूप ब्रह्म का दर्शन करके वे कृत-कृत्य हो गये। अतः शिवलिङ्ग साक्षात् ब्रह्म स्वरूप ही है।

यहाँ चित्र के माध्यम से अलिङ्ग लिङ्ग परमात्मा सदाशिव के ओङ्कारात्मक लिङ्गरूप का रहस्य प्रकट किया गया है।

हे ब्रह्मन्! जो लोग विशुद्ध ब्रह्मविद्या के द्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, उनके लिए कोई भी क्रिया करना शेष नहीं रह जाता और ब्रह्म-चिन्तन के कारण उन्हें किसी भी सुख-दुःख का अनुभव नहीं होता।

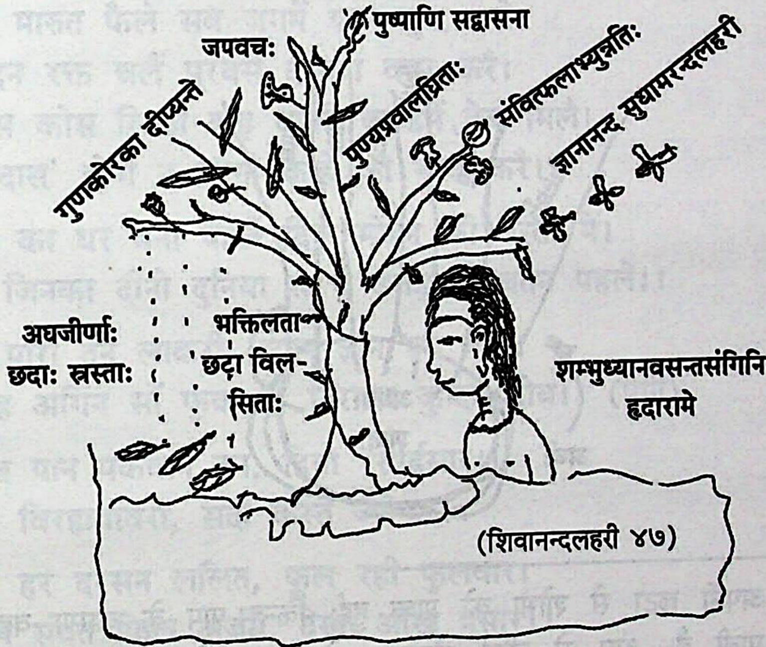
योगियों के हृदय में रहनेवाला शिवलिङ्ग आनन्द स्वरूप, विशुद्ध, अक्षर, निष्कल, सर्वव्यापी तथा विशुद्ध रूप से सर्वदा स्थित रहता है।

निर्गुण पद की प्राप्ति के लिए मनुष्यों को प्रतिमा का अवलम्बन आवश्यक कहा गया है; क्योंकि नीचे के अवलम्बन के बिना ऊपर चढ़ना सर्वथा असम्भव है।

आत्मा

आत्मा का क्या स्वरूप है? कहते हैं कि आत्मा स्वप्रकाश स्वरूप है, केवल है, निर्गुण है, निरंश है, असंग है, शुद्ध है, सर्वदा एक स्वभाव है, नित्य है, अखण्ड है, आनन्दरूप है, निरीह है, साक्षी है, प्रत्यक् और चैतन्य है।

सारूप्यं तव पूजने शिव महादेवेति संकीर्तने
सामीप्यं शिवभक्तिधुर्यजनतासांगत्यसंभाषणे।
सालोक्यं च चराचरात्मकतनुध्याने भवानीपते!
सायुज्यं मम सिद्धमत्र भवति स्वामिन्कृतार्थोऽस्म्यहम्।। (शिवानन्दलहरी २८)



शिवोपासना में चारों मुक्ति

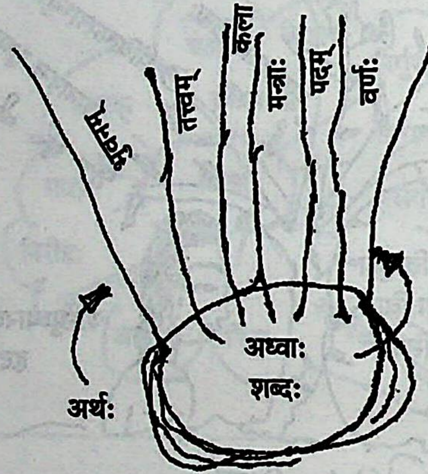
परम शिवोपासक कहता है कि हे भवानीपति! तुम्हारे पूजन में सारूप्य, शिव-महादेव—इन मङ्गलमय नामों के संकीर्तन में सामीप्य, तुम्हारी भक्ति में अग्रगण्य भक्तों के साथ सम्भाषण में सालोक्य और चराचरात्मक शिव-विग्रह के ध्यान में सायुज्य—इस तरह मेरा मनोरथ सिद्ध हो गया, मैं स्वयं में कृतार्थ हो गया। मुझे चारों मुक्तियाँ प्राप्त हो गयीं।

अथवा शिव-पूजन और नाम-संकीर्तन में सारूप्य, श्रेष्ठ शिवभक्तों का सत्संग व उनके साथ वार्तालाप से सामीप्य, चराचरात्मक शिवविग्रह के ध्यान में सालोक्य—इन तीन मुक्तियों को प्राप्त करता हुआ जब मैं अपने में ही कृतार्थ होता हूँ—शिवस्वरूप आत्मा में निमग्न हो जाता हूँ, तब मेरा सायुज्य भी सिद्ध हो जाता है। हे शिव! आपके श्रीचरणों में मुझे चारों मुक्तियाँ प्राप्त हो गयी हैं। मेरा यह मानव शरीर कृत-कृत्य हो गया, मैं धन्य हो गया।

शिवानन्दलहरी

भगवान् शम्भु का ध्यानरूप वसन्त संगी हृदय एक सुन्दर बगीचा है। उसमें शक्तिलता

भुवनाध्वादिरूपेण चिन्तयेत्क्रमशोऽखिलम्।
स्थूलसूक्ष्मपरस्थित्या यावदन्ते मनोलयः।। (विज्ञानभैरवः ५५)
भुवनादित्रयं वाच्यं पदादिवाचकं त्रयम्।
शक्तिरेतच्चाध्वषट्कं शक्तिमांस्तु महेश्वरः। (शिवोपाध्यायः)



अङ्कुरित होकर अपनी छटा से शोभा को प्राप्त हुई; किन्तु पाप के कारण वह वृद्धि को प्राप्त नहीं हो पाती है, अघ से जीर्ण होकर उसके पत्र नीचे गिर आते हैं।

पुनः पुण्यों के प्रभाव से पत्ते निकल आते हैं, गुणरूपी कलियाँ सुशोभित होने लगती हैं और जप-वचनों से समुत्पन्न सद्वासना के पुष्प विकसित होते हैं। फिर उसमें ज्ञानानन्द-रूपी अमृत की लहरें उठने लगती हैं और संवित्—ज्ञानरूपी फल की अभ्युन्नति हो जाती है। अर्थात् ज्ञानोदयरूप फल की प्राप्ति हो जाती है।

भुवन आदि अध्व (मार्ग)

भुवन, तत्त्व, कला, मन्त्र, पद और वर्ण—इस अध्व रूप से इनका क्रमशः चिन्तन करना चाहिए। पहले स्थूल का ध्यान करे फिर सूक्ष्म का ध्यान करे, जब तक मन का लय न हो जाय तब तक ध्यान करता रहे।

इनमें भुवन, तत्त्व और कला ये तीन वाच्य (अर्थ) हैं और पद, मन्त्र (वाक्य) और वर्ण ये तीन वाचक (शब्द) हैं। ये छः अध्वों का समूह शक्ति है और शक्तिमान् महेश्वर हैं।

चित्र में शब्द के छः अध्व (मार्ग) जिनमें भुवनसत्त्व, और कला वाच्यरूप हैं और वर्ण, पद और मन्त्र वाचकरूप हैं।

भजन

अरे मन धीरज क्यों धरे।
संवत दो हजार से उपर छप्पन वर्ष चढ़ै।
माघ नाम संवत्सर आवै, श्रावण ग्रहण परै।
कृष्णा ग्यारस स्वात छय होवै, अर्ककूं चन्द चलै।
विष मारुत फैले सब जगमें ग्रहर युद्ध चले।
स्पन्दन रक्त चलैं पूरवसे दक्षिण वास करै।
द्वादस कोस सिखा होइ वाकी कण्डमें तेज मिलै।
'सूरदास' होनी न टरैगी काहे को सोच करै।।

उसी का घर बना पहले दिले मोहन की बस्ती में।
कि जिनका दीनो दुनिया से ये उजड़ा है वतन पहले।।

मन पारा तन लाकरी, ध्यान ज्ञान रस मोय।
विरह अगिन सों फूक दे, निरमल कुन्दन होय।। (पेमी)

रकत पान पकवान तन, हियो रसोईसार।
बैठो विरहावावरो, सदा करत ज्योनार।।

पेमी हर दरसन ललित, फूल रही फुलवार।
फिल संवत फिल अर्जमे, देखो आँख पसार।।

तुम सूरज हम दीप निस, अजुगति कहैं सुनाय।
विन देखे नहि रहि सकूं, देखे रहो न जाय।। (,,)

ललाटे च गले चैव मध्ये चापि वलित्रयम्।
स्त्रीपुंसयोरिदं ज्ञेयं महासौभाग्यसूचकम्। (सामु. शा.)

कह्यो कान्ह सुनु जसुदा मैया।
आवेंगे दिन चारि पाँच में, हम हलधर दोउ भैया।।
मुरली वेत विशाण देखिये, शृंगी वेर सवेरौ।
लै जिनि जाय चुराय राधिका, कछुक खिलोना मेरौ।।

त्रिवली सौभाग्यसूचक

ललाट में गले में और उदर में त्रिवली तीन रेखाओं का होना स्त्री, पुरुष दोनों के लिए ही महान् सौभाग्य का सूचक है।

जादिन ते तुमते बिछुरे हम, कोऊ न कहत कन्हैया।
भोरहि ना कलेऊ कीन्हो, साँझ न पय पियो धैया।।

कहत न वनै सँदेसो मोपै, जननि जितरे, दुःख पायो।
अब हमसौ वसुदेव देवकी, कहत आपुनो जायो।।

कहिये कहा नन्द बाबासों, बहुत निठुर मन कीन्हो।
सूर हमें पहुँचाय मधुपुरी, बहुरो सुधि नहि लीन्हो।।

हौं चकई वा सिन्धु की, जहाँ न सूरज चन्द।
रात दिवस नहि होत हैं, ना दुख नाहि अनन्द।। (पेमी)

ऊतो रटु ररा ममा की भाँति हो, सब सन्त उधार न चूनरी।
बाल्मीक वनवोइया, चुनि लीन्हा शुकदेव।
कर्म विनौरा होइ रहा हो, सूत काते जयदेव।।

तीन लोक ताना तनो है, ब्रह्मा विष्णु महेश।
नाम लेत मुनिहरिया, सुरपति सकल नरेश।।

बिन जिह्वा गुण गाइया, बिनु बस्ती का देश।
सूने घर का पाहुना, तासों लाइनि हेत।।

चार वेद कैंडा कियो, निराकार कियो राछ।
बिने कबीरा चूनरी, मै नहि बाँधलवाछ।। (कबीर वी. ८१)

शब्द बिना सुरति आँधरी, कहो कहाँ को जाय।
द्वार न पावे शब्द का, फिर फिर भटका खाय।।४।। (,,)

शब्दहि मारा गिर परा, शब्दै छोड़ा राज।
जिन जिन शब्द विवेक किया, तिनका सरिगौ काज।।६।।

ॐ राउर के पिछवारे, गावै चारिउ सैन।
जीव परा बहु लूट में, कछू लेन न देन।।१२८।। (कबीर सा:खि)

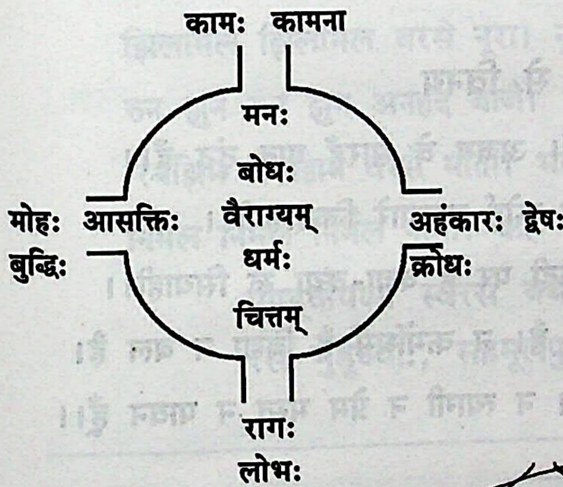
साखि पुरंदर ढहि परे, बिबि अक्षर युग चारि।
रसना रम्भन होत है, कोई कैन सके निरूवार।।११७।।

कामः-क्रोधः-लोभः-मद वन्देकरिले आपु निवेरा।
आपु जियत लखु आपु ठौर करु, मुये कहाँ घर तेरा। (वन्दे.)

यह अवसर नहि चेतो प्राणी, अन्त कोई नहि तेरा। (वन्दे)
कहै कबीर सुनो हो सन्तो, कठिन काल को घेरा। (वन्दे.८०)
वोनई बदरिया परिगो संझा। अगुआभूला वन खंडमंझा।।
पिया अंतै धन अंतरै रहई। चौपति कामनि माथे गहई।।

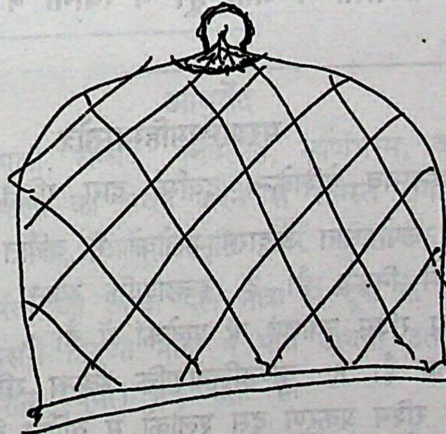
फुलवा भार न गह सकै, कहै सखिन सो रोय।
ज्यों ज्यों भीजै कामरी, त्यों त्यो भारी होय।। (कबीर बीजक रमैनी १५)

चार चोर चोरी चले, पग पानही उतार।
चारिउ दर थूनी हनी, पण्डित करउ विचार।। (कबीर साखी १३०)



उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा,
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।।
(मालतीमाधवे-भवभूतिः)

तीन लोक भा पींजरा,
पाप पुण्य भोजाल।
सकल जीव सावज भये,
एक अहेरी काल।। (कबीर साखी।)



मालतीमाधव

ये समय अवधि रहित है, यह पृथिवी भी बहुत बड़ी है। मेरे जैसा समान गुण-धर्म वाला कोई अवश्य ही उत्पन्न हुआ होगा।

परशम्भुमहिम्नः स्तवः (देशिकेन्द्रदुर्वासाकृतः)

१. प्रकरणमुपोद्धातम् (१८ श्लोकाः)। २. पराशक्तिस्कन्धरश्मिप्रकरणम् (७ श्लोकाः)। ३. इच्छाशक्तिस्कन्धरश्मिप्रकरणम् (८ श्लोकाः)। ४. ज्ञानशक्तिस्क. र.प्र. (९ श्लोकाः)। ५. क्रियाशक्तिस्क. र.प्र. (१२ श्लोकाः)। ६. कुण्डलिनीशक्तिस्क. र.प्र. (६ श्लोकाः)। ७. मातृकाशक्तिस्कन्धर.प्र. (१० श्लोकाः)। ८. षडन्वय-रश्मिविवेकस्क.प्र. (५ श्लोकाः)। ९. श्रीपावकध्यानयोगप्र. (११ श्लोकाः)। १०. महाविभूतिप्र. (१७ श्लोकाः)। ११. अन्तर्यागोपचारपरामर्शप्र. (८ श्लोकाः)। १२. विशेषोपचारपरामर्शशान्तिप्र. (१२ श्लोकाः)। १३. उपसंहारप्रकरणम् (२१ श्लोकाः)।

श्रीकृष्ण से विनय

मैं अलग हूँ दूर हूँ सबसे जुदा हूँ। अजब वे सारहूँ पात ठूंठ हूँ।।
न कोई छोड़ जाने की निशानी। न कोई यादगारे जिन्दगानी।।
हजारों हैं गुनाहों की गवाही। सफेदी पर है क्या-क्या रू सियाही।।
न जिकरे हक है ना फिक्रे अमल है। न कर्मोंधर्म है विद्या न बल है।
न योगी हूँ न संन्यासी न जती हूँ। न त्यागी न प्रेम मस्त न पावन हूँ।।

परशम्भुमहिम्नस्तोत्र

यह परशम्भुमहिम्नस्तव देशिकेन्द्र दुर्वासा द्वारा रचित है।

१. प्रकरणों का उपोद्धात अट्ठारह श्लोकों में वर्णित है। २. पराशक्ति स्कन्ध रश्मि प्रकरण सात श्लोकों में निबद्ध है। ३. इच्छाशक्ति स्कन्ध रश्मि प्रकरण आठ श्लोकों में है। ४. ज्ञानशक्ति स्कन्ध रश्मि प्रकरण नौ श्लोकों में है। ५. क्रियाशक्ति स्कन्ध रश्मि प्रकरण बारह श्लोकों में निबद्ध है। ६. कुण्डलिनीशक्ति स्कन्ध रश्मि प्रकरण छः श्लोकों में है। ७. मातृकाशक्ति स्कन्ध रश्मि प्रकरण दस श्लोकों में वर्णित है। ८. षडन्वयरश्मिविवेक स्कन्ध प्रकरण पाँच श्लोकों में है। ९. श्रीपावकध्यानयोगप्रकरण ग्यारह श्लोकों में है। १०. महाविभूतिप्रकरण सत्रह श्लोकों में है। ११. अन्तर्यागोपचार-परामर्शप्रकरण आठ श्लोकों में है। १२. विशेषोपचार-परामर्शशान्तिप्रकरण बारह श्लोकों में है। १३. उपसंहारप्रकरण इक्कीस श्लोकों में आबद्ध है।

मधुकेन तवक्षीर्य्या पिप्पल्या सिन्धुजन्मना।
पृथग्लौहे सुवर्णेन वचया मधुसर्पिषा।।
सितयावासमायुक्ता त्रिफला सर्वरोगहा।
रसायनं विशेषण मेधायुःस्मृतिबुद्धिदा।। (अष्टांगहृ उ.र. ३९)

पुनर्नवस्यार्धपलं नवस्य पिष्टं पिबेद्यः पयसार्धमासम्।
मासद्वयं तत् त्रिगुणं समां वा जीर्णोऽपि भूयः स पुनर्नवः स्यात्।। (,,)
पञ्चाष्टौ सप्तदश वा पिप्पलीर्मधुसर्पिषा।
रसायनगुणान्वेषी समामेकां प्रयोजयेत्।। (,,)

झिलमिल झिलमिल वरसे नूरा। नूर जहूर सदा भरपूरा।।
रुन झुन रुन झुन अनहद बाजैं। भँवर गुँजार गगन चहि गाजै।।
रिमझिम रिमझिम वरसे मोती। भयो प्रकाश निरंतर जोती।।
निर्मल निर्मल निर्मल नामा। कह यारी तँह लियो विश्रामा।।

मण्डूक[1]पर्णी स्वरसं यथाग्निः क्षीरेण [2]यष्टीमधुकस्य चूर्ण[4]म्।
रसं गुडू[3]च्याः, सहमूलपुष्प्याः कल्कं प्रयुञ्जीत च शङ्खपुष्प्याः।।

आयुर्वेद

मधुक, अवक्षीरी, पिप्पली, सैन्धव, पृथक्लौह, स्वर्णभस्म, वच, मधु, घृत और सिता के साथ समायुक्त करके त्रिफला का सेवन करने से समस्त रोगों का शमन हो जाता है। ये रसायन विशेष रूप से मेधा, आयु, स्मृति और बुद्धिवर्धक हैं।

पिसी हुई नवीन पुनर्नवा को आधा पल मात्रा में दूध के साथ पन्द्रह दिन भी पीता है अथवा दो महीना तक इससे त्रिगुणी मात्रा में पीये अथवा उतनी ही पीता रहे तो जीर्ण हो जाने पर वह पुनः नवीन (युवा) हो जाता है।

जो रसायन के गुणों को खोजता फिरता है; वह ५, ७, ८ या १० छोटी पीपल को शहद और घी के साथ समान एक को मिला ले। श्रेष्ठ रसायन बन जायेगा।

मण्डूकपर्णी, स्वरस, यष्टी, मधुक का चूर्ण यथा अग्नि गोक्षीर में घोंट ले, गुडूची रस, मूल पुष्पी और शंख पुष्पी में साथ कल्क बनाकर प्रयोग में लायें।



आयुःप्रदान्यामयनाशनानि बलाग्निवर्णस्वरवर्धनानि।
मेध्यानि चैतानि रसायनानि मेध्या विशेषेण तु शङ्खपुष्पी।।
(अष्टांगहृ. उ.र. ३९)

श्रीम्

३४ मुद्रिका

१६	९	४	५
३	६	१५	१०
१३	१२	१	८
२	७	१४	१

रजतस्य, गुरुपुष्ययोगे निर्माणम्।

केमद्रुमयोगे–

	○	

दरिद्रयोगे–द्वितीयेशे व्ययेशः व्ययेशभावे धनेशः। अर्थहानियोगे–धनेशव्ययेशयोर्लग्ने युतिः। एतेषां दोषाणां शामिका।

नञर्थाः

तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता।
अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्तिताः।

उपर्युक्त रसायन आयुप्रद व रोगनाशक है एवं बल, अग्नि, वर्ण और स्वरवर्धक हैं। ये सभी रसायन मेध्य हैं, इनमें शङ्खपुष्पी विशेष रूप से मेध्य (पवित्र व निर्दोष) है।

अङ्क यन्त्राङ्कित रजत मुद्रा

उपर्युक्त रजत मुद्रिका का गुरु-पुष्य योग में निर्माण करना चाहिए। जिसकी जन्म कुण्डली में केमद्रुम योग हो, चन्द्र के साथ (चन्द्र से ठीक अगले घर में, चन्द्र से ठीक पिछले ग्रह में) कोई ग्रह न रहे, तब यह योग बनता है जो कि महादारिद्र्य माना जाता है।

दरिद्रयोग में—इसमें धनेश (द्वितीय) व्ययभाव (द्वादशभाव) में और व्ययेश धनभाव में होता है। जो कि दरिद्रता का सूचक है।

अर्थ-हानियोग में—धनेश और व्ययेश दोनों लग्न में साथ हैं तो अर्थ-हानियोग बनता है। इस यन्त्र-मुद्रिका के धारण से उक्त दोषों का शमन हो जाता है।

नञ् के विविध अर्थ

नञ् का सादृश्य अर्थ अभाव, अन्य, अल्प, अप्रशस्त और विरोध—ये छः अर्थ

१. अब्राह्मणः। २. अपापम् ३. अघटः। ४. अनूदरा ५. अकालः ६. अनादरः

है अति सुखकर मिलन मधुर, जिसमें होता प्रियका संजोग।
मृदुल मधुर मुसकान मनोहर, अनुपम दिव्य सुधारसभोग।।
पर वह होता एक देश में एककाल में एक प्रकार।
अन्तरदृष्टि न रहती होती वृत्ति सर्वथा बाह्याकार।।
किन्तु परम उत्कृष्ट नित्य सुख देता प्रिय का विषम वियोग।
दिग्दिगन्त में मिलता उनका निशिदिन मधु दर्शनसंयोग।।
देश काल का कभी न रहता कुछ भी वहाँ तनिक व्यवधान।
प्रतिपदार्थ में मिलते प्रियतम हरदम करते सुख का दान।।
नित्य स्पर्श से पुलकित रहता रोम रोम खिलते सब अंग।
विप्रयोग इससे अति उत्तम खिलते जहाँ नित्य नवरंग।।
साधक के रिपु जगमे चारि। कूकुर कंटक सम्पति नारि।।
बना रहे हमेशा, वह विरहदुख दिवाना।
मै जानता हूँ इसमें कितना मजा मुझे है।।
खुदा करे कि मजा इन्तजार का न मिटे।
मेरे सवाल का वह दे जवाब वर्षो में।।
मेरे नैना विरह की बेल बई।
सींचत नीर नैन कौ सजनी मूल पताल गई।।
विगसत लता सुभाय आपने छाया सघन भई।
अब कैसे निरूवारौ सजनी सब तन पसर गई।। (सूरदास)
छाया है माया है।
भासित प्रतिबिम्ब एक का अनेक जैसा।
नीरव सी तन्त्री ने, स्वर फैलाया है।
कौतुक दिखाया है, छाया है माया है।
मूक वेदना ही यहाँ, गायन प्रतीत होती।

कहे गये हैं। छः अर्थों के क्रमशः ये उदाहरण हैं—अब्राह्मण, अपाप, अघट, अनूदरा, अकाल और अनादर।

दुःख मनोहर सुख रूप धर आया है।। मोहक बनाया है
शून्य में ही रंगहीन रंग से अनेक चित्र।
मेरा मनोहर चित्रकार रच लाया है।। भ्रमसे रुलाया है।।
आह दुःख भोगते हैं सत्य मानते हैं इसे।
वह तो हँसता है, छाया है माया है।।
वेद ने बताया है।।

श्री, मणि, रंभा, वारुणी, अमिय, शंख, गजरात।
कल्पद्रुम, धनु, धेनु, शशि, धन्वन्तरि, विष, बाज।।

कुरुक्षेत्र ३० कि. मीटर।

माँगना-ग्राम

कूप में बैशाखी के दिन जल ऊपर १० फुट चढ़ता है। रंग सफेद दूध वर्ण हो जाता है।

यद् व्यज्यमानं मनसः स्तैमित्याय स नो ध्वनिः।
इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्ग्ये वाच्याद् ध्वनिः।।

(चन्द्रालोकः८.१) (काव्यप्रकाशे)

पदपदार्थयोः सम्बन्धा-अभिधा-ईश्वरसंकेतजन्या मुख्या वाच्यार्थसम्बन्धरूपा लक्षणा।

(चन्द्रालोकटी.)

चौदह यन्त्र स्पष्ट कुरुक्षेत्र।

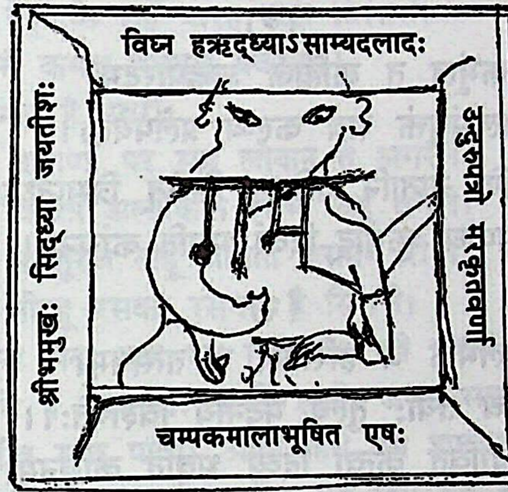
शब्द–शक्तियाँ

अभिद्या और लक्षणा से अप्राप्त अर्थ जो मन से व्यज्यमान हो, वहीं ध्वनि है।

वाच्य अर्थ की अपेक्षा व्यङ्ग्य अर्थ के अधिक चमत्कारयुक्त होने पर काव्य (यहाँ इदं यह पद काव्य का बोधक है) उत्तम है और वही ध्वनि है। व्यङ्ग्यार्थ की अभिव्यक्ति कराने में समर्थ शब्द के लिए 'ध्वनि' पद का प्रयोग किया गया है।

पद और पदार्थ का साक्षात् सम्बन्ध ही अभिधा है। यह ईश्वर संकेत जन्य और मुख्य शक्ति है।

वाच्यार्थ से सम्बन्ध रखने वाली लक्षणा है अर्थात् लक्षणा का सम्बन्ध पद पदार्थ से न होकर वाच्यरूप अर्थ से होता है।



एक कमल-नैन तेरी याद में ये, नैन बरसो से ही बरसते हैं।
मेरे कानों पे, तरस कर ए कान्हा, तेरी मुरली को जो तरसते हैं।

१. मेरे दिल की उजड़ी बस्ती में, आप आते तो पाप क्यूं आते।
आप जिस बस्ती में नहीं बसते, ऐसी बस्ती में पाप बसते हैं।

२. पुकारे सदना तू दौड़ कर आना, मैं पुकारूँ तो कहना सिमरण कर।
इक से मिलना और इक से टाल-मटौल ये तो उस्तादियों के रस्ते है।

३. तुझे भुला के है जहान दुःखी, जग के रोने पे हँसी आती हैं।
पर ताज्जुब है, तेरी विरह में, मैं जो रोता हूँ लोग हँसते हैं।

४. मौत का खौफ क्या है 'नत्था-सिंह', सैकड़ो बार मरके देखा है।
तेरे चरणों में गिरे जो सर कटकर, मैं समझूंगा सौदे सस्ते हैं।

गणेशयन्त्र

श्रीभमुख—श्रीगणेशजी हस्तीमुख हैं, गजानन हैं। सिद्धि से जय प्राप्त करते हैं—सुशोभित हैं, स्वामी हैं,. विघ्नों का हरण करने वाले हैं, ऋद्धि के द्वारा असमानतारूपी दलों-दूर्वा पत्रों का भक्षण करते हैं, उन्दुर पत्र के समान वर्ण व मरकत मणि की आभा वाले हैं। चम्पक पुष्पों की माला से विभूषित व 'गम्' बीज मन्त्र से समन्वित ये महागणपति स्वकीय भक्तों की सदैव रक्षा करते हैं।

(१)

रक्तचित्रकमूलं तु कञ्जिकं शुद्धपारदम्।
कंगुणीतैलसंयुक्तं सर्वं कल्प्य प्रलेपयेत्।।
ताम्रपत्राणि तप्तानि तस्मिन् सिंचेत् त्रिसप्तधा।
एवं त्रिसप्तधा कुर्याद् दिव्यं भवति कांचनम्।। (श्री मा.स्व. सि.)

(२)

पारदं पलमेकं च हरितालं च तत्समम्।
गन्धकं च तयोः तुल्यं मर्दनीयं विशेषतः।।
पूर्ववद् द्रावितं कृत्वा दिव्यं भवति कांचनम्।।
(अर्के पयसि दिवमेकं मर्दनं द्विगुणं ताम्रं द्रावितं तत्र देयमिति-श्रीमा.)

(३)

हरतालम्

तापकस्य त्रयो भागाः शिलाभागद्वयं तथा।

हिंगु

म्लेच्छभागो भवेदेको पारदस्य तथा परः।।
कुमारीरस योगेन भावयित्वा यथाविधि।
दीपाग्नितंत्रकर्तव्यो दिव्यं भवति कांचनम्।।

स्वर्ण–शोधन

रक्त चित्रक की जड़, कञ्जा, शुद्ध पारद, कंगुनी के तेल से संयुक्त सब का कल्प करके अच्छी तरह लेपन करे, तप्त ताम्रपत्रों को उसमें इक्कीस बार सिञ्चन करे। इस प्रकार इक्कीस बार करने से स्वर्ण दिव्य हो जाता है।

एक पल पारद, एक पल हरताल और उतनी ही गन्धक इन सब का विशेष रूप से मर्दन करे फिर पूर्ववत् सिञ्चन करने से स्वर्ण दिव्य हो जाता है।

आक के दूध में एक दिन मर्दन और द्विगुणित ताम्रपत्रों का सिञ्चन करने से स्वर्ण का शोधन हो जाता है।

हरताल के तीन भाग, शिलाजीत के दो भाग, हींग का एक भाग, पारद का भी एक भाग कुमारी रस के योग से यथा विधि भावना देकर दीपाग्नि तन्त्र करे, इससे स्वर्ण दिव्य कान्ति युक्त जो जाता है।

हम वासी वा देश के जहँ बारह मास विलास।
प्रेम झिरे विकसै कमल तेजपुञ्ज प्रकाश।।
प्रेम की झिलमिल है नगरी।
अखिल अण्ड ब्रह्माण्ड पर सब लोकन ते अगरी।।
अतिसय चित्र विचित्र अलौकिक शोभा चहुँ वगरी।
नहि तँह चन्द न सूरज तौहूँ जागति जगमग री।।
रस की भूमि नीरहू रसकौ रसमय है सिगरी।
भर्‍यो रहतु रस सदा एक रस पिय रस की गगरी।।
आदि प्रेम विधि ने उपजाया। प्रेमहि लागि जगत सब साजा
आपन रूप देखि सुख पावा। अपने हिये प्रेम उपजावा।।
अस्ति प्रेम उपज्ये चित्र आई। नास्ति सबै जग गई हेराई।।

दर्शने स्पर्शने वापि श्रवणे भाषणेऽपि वा।
यत्र द्रवत्यन्तरंगो स स्नेह इति कथ्यते।।

जीते जी मरजाय करे ना तन की आसा।
प्रेमी का दिन रात रहे सूली पर परवासा। (पलटू दास)
मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा।
तेरा तुझको सौपते क्या लागत है मेरा।। (कबीर)
तू को इतना मिटा कि तू न रहै। और तुझमें दुई की बू न रहै।।
पहले आपु जो खोवै, करै तुम्हारी खोज।। (जायसी)
न पा सकते जिसे पावन्द रहकर कैदे हस्ती मे।
तो हमने वेनिशां होकर, तुझे वो वेनिशां पाया।। (हसरत योहानी)
जबसे सुना है मरने का नाम जिन्दगी है।
सरसे कफन लपेटे कातिल को ढूढते हैं।।
'असगर' हरीमे इश्क में, हस्ती ही जुर्म है।
रखना कभी न पाँव, यहाँ सर लिये हुये।।
प्रेम न वाडी ऊपजै, प्रेम न हाट विकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लय जाय। (कबीर)

स्नेह-लक्षण

दर्शन मात्र से, स्पर्श, श्रवण और सम्भाषण मात्र से जहाँ अन्तरंग द्रवित हो जाता है—पिघल जाता है, उसे स्नेह कहते हैं।

पृ. ३०४ पर महादशाओं का अंकन।

२००२-३० भौमस्य महादशा	२०३२-६० गुरोर्दशाव्याप्तम्	२०६२-९० बुध की	
२००१-२९	२०३१-५९	२०६१-८९	
२०००-२८	२०३०-५८	२०६०-८८	
१९९९-२७	२०२९-५७	२०५९-८७	
,, ९८-२६	२०२८-५६	२०५८-८६	
,, ९७-२५	२०२७-५५	२०५७-८५ व्याप्त च. कार्तिक	
,, ९६-२४ चन्द्रस्य महादशा	२०२६-५४	२०५६-८४	
,, ९५-२३	२०२५-५३	२०५५-८३	
,, ९४-२२	२०२४-५२	२०५४-८२	
,, ९३-२१	२०२३-५१	२०५३-८१	
,, ९२-२०	२०२२-५०	२०५२-८०	
,, ९१-१९	२०२१-४९	२०५१-७९	
,, ९०-१८	२०२०-४८ राहोः	२०५०-७८	
,, ८९-१७	२०१९-४७	२०४९-७७	
,, ८८-१६	२०१८-४६ महादशा	२०४८-७६	
,, ८७-१५ सूर्यस्य महादशा	२०१७-४५	२०४७-७५ महादशा	
,, ८६-१४	२०१६-४४	२०४६-७४	
,, ८५-१३	२०१५-४३ व्याप्तम्	२०४५-७३	
,, ८४-१२	२०१४-४२	२०४४-७२	
,, ८३-११	२०१३-४१	२०४३-७१	
,, ८२-१०	२०१२-४०	२०४२-७० शनि	२०७१-१००
,, ८१-९ शुक्रस्य महादशा	२०११-३९	२०४१-६९	२०७०-९९
,, ८०-८	२०१०-३८	२०४०-६८	२०६९-९८
,, ७९-७	२००९-३७	२०३९-६७	२०६८-९७
,, ७८-६	२००८-३६	२०३८-६६ गुरुमहादशा	२०६७-९६
,, ७७-५	२००७-३५	२०३७-६५	२०६६-९५
,, ७६-४	२००६-३४	२०३६-६४	२०६५-९४
,, ७५-३	२००५-३३	२०३५-६३	२०६४-९३
,, ७४-२	२००४-३२ भोग	२०३४-६२	२०६३-९२
१९७३-१	२००३-३१	२०३३-६१	२०६२-९१

बुध की महादशा रहेगी

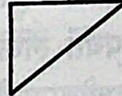
दशवर्षाधिकारिणः सं. २०५२

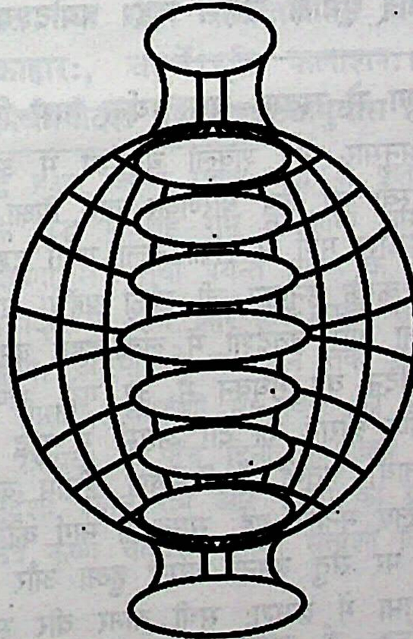
१. राजा-शनिः, २. मन्त्री-शुक्रः, ३. सस्येशः-रविः, ४. धान्येशः-शनिः, ५. मेघेशः-गुरुः, ६. रसेशः-भौमः, ७. नीरसेशः-रविः, ८. फलेशः-गुरुः, ९. धनेशः-सूर्यः, १०-दुर्गेशः-गुरुः।

चन्द्राध्यासितराशेरधिपः केन्द्रे शुभग्रहो वापि।
प्रशमयति रिष्टयोगं पापानि यथा हरिस्मरणम्।।

कश्मीरः

कश्यपः-मीरा

मानवधर्मः  इस्लामः  कृश्चियन 



सं. २०५२ के वर्ष मन्त्री राजा आदि का कथन।

कश्यप और मीरा शब्द को. मिलाकर कश्मीर शब्द बना है।

मानव धर्म का चौकोर है, इस्लाम पंथ त्रिकोण है, कृश्चियन पंथ वृत्ताकार है।

सात लोकों अथवा सप्त द्वीपों को दर्शाया गया है।

माघशुक्लचतुर्दश्यां, वीक्ष्य शून्यं तमाश्रमम्। रावणस्तापसवपुर्भूत्वा भिक्षार्थमागतः।। सीता छायां समादाय, जगाम गगनाध्वना। दशमे मासि मार्गके, (भुशुण्डिरा.प.ख.अ. ६६.१९६) दशम्यां हनूमान् हरिवासरे लंकां ययौ सूक्ष्मवपुः, भग्नं तेन त्रयोदश्यां, राणस्योत्तमवनम्। चतुर्दश्यां लंका प्रज्वालिता। महेन्द्रमचलं प्राप्तो, राकायां पवनात्मजः महेन्द्रगिरितः व्यावर्तितः पंचदिनैः। षष्ठेह्नि मधुवनं प्राप्तः। सप्तम्यां रामाय चूडामणिदानम्। अष्टम्यां प्रयाणम्। सिन्धोस्तीरे स्थितिः दिनत्रयम्। चतुर्थ्यां शरणं प्राप्तो विभीषणः सिन्धोरुत्तरणे मन्त्रः सप्तम्यां कृतः। सिन्धुं ययाचिरे मार्गं यावद्दिन चतुष्टयम्। दशम्यां सेतुरारब्धः त्रयोदश्यां प्रपूरितः। उत्तीर्णाः कपिभटा भूतादिने क्रमात्। पूर्णा दिना त्रिभिर्धस्रैः सर्वे कपिसंचयाः पारं जग्मुः। तृतीयां समारभ्य दशम्यन्तं लंकायाः परितः बलस्थितिः। एकादश्यां कपिबलप्रेक्षार्थ शुकशारणप्रस्थानं वानरैर्बन्धनम्। द्वादश्यां लंकाद्वारा निरोधः। त्रयोदशीतः कुहूपर्यतं लंकारक्षोद्योगः। माघस्याद्यदिने अङ्गददौत्यम्। माघशुक्लद्वितीयातः सम्पतम्यवधि रक्षोवानरसैन्ययोः अतीव संकुलं युद्धम्। दिनद्वयं युद्धावहारः। द्वादश्यां हनुमान् धूम्राक्षं राक्षसं जह्ने। त्रयोदश्यां चक्रो निशाचरो निहतः।

सीता–हरण से रावण–वध पर्यन्त मास-दिन संकेत

भुशुण्डिरामायण के अनुसार माघ शुक्ला चतुर्दशी में आश्रम को राम और लक्ष्मण से रहित देखकर रावण तपस्वी का रूप धारणकर वहाँ भिक्षा के लिए आया और छाया सीता का अपहरण करके आकाश मार्ग से लंका चला गया। दशवें मास मार्गशीर्ष में द्वादशी तिथि को सूक्ष्म रूप धारण करके हनुमान् जी लंका पहुँचे। उन्होंने त्रयोदशी में रावण के उत्तम वन् को नष्ट कर डाला और चतुर्दशी में लंका-दहन करके महेन्द्रपर्वत पर आ गये। पाँच दिन में लौटकर छठे दिन वह मधुवन में आ गये, सप्तमी में हनुमान्जी ने सीता जी के द्वारा दी गयी चूड़ामणि श्रीराम को दी। अष्टमी में युद्ध के लिए प्रयाण हुआ, तीन दिन समुद्र के तट पर बिताये, चतुर्थी में विभीषण श्रीराम की शरण में आया, सप्तमी में समुद्र को पार करने के लिए मन्त्रणा हुई, समुद्र से मार्ग की याचना में चार दिन व्यतीत हुए, दशमी तिथि में समुद्र पर सेतु बनना प्रारम्भ हुआ और त्रयोदशी में यह कार्य पूर्ण हो गया। चतुर्दशी और पूर्णिमा में क्रमशः सभी वानर वीर समुद्र पार कर गये, तृतीया से दशमी पर्यन्त लंका के चारों ओर सेना की सजावट, एकादशी में वानर सेना के बल को देखने के लिए रावण के दूत शुक और शारण आये, जिन्हें बानरों ने बाँध लिया। द्वादशी में लंका के द्वार बन्द कर दिये गये, त्रयोदशी से अमावस्या पर्यन्त लंका-रक्षण का उद्योग, माघ शुक्ल प्रतिपदा में अंगद दूत बनकर लंका गया, माघ शुक्ल द्वितीया से सप्तमी तक राक्षस और वानरों का युद्ध, दो दिन युद्ध-विराम। द्वादशी में हनुमान् ने धूम्राक्ष नामक राक्षस को मारा, त्रयोदशी में चक्र नाम का निशाचर मारा गया, तीन दिन तक

चतुर्दशीतः त्रिभिर्दिनैः नीलेन प्रहस्तः हतः। त्रिदिनं रामरावणयुद्धं, रावणः रणात् विद्रावितः। ततः कुम्भकरणः उद्बोधितः। षड्भिर्दिनैः रामेण हतः। पञ्चदश्यां रावणविलापः। फाल्गुनाद्यदिनारभ्य चतुर्थीपर्यतं नरान्तकप्रमुखाः प्रञ्च वीरराक्षसाः घातिताः। पञ्चमीतः त्रिभिर्दिनैरतिकायो हतः। अष्टम्यां कुम्भनिकुम्भौ निहतौ। अष्टमीतः षड्भिर्दिनैः लक्ष्मणेन इन्द्रजित् विक्रमी हतः। चतुर्दश्यां रावणशोकः। पञ्चदश्यां रावणो युद्धाय प्राप्तः। चैत्राद्यदिवसात् पञ्च-दिवसे क्षयं नीताः सेनापतयः। द्वादश्याः चतुर्दशीयावत् रामरावण युद्धं, रावणवधः। माघद्वितीयातो यावद् भूतादिनं मधोः। सप्ताशीतिदिनानि युद्धं। मध्ये पञ्चदशदिनविरामः।

रामस्य वनचर्या

स्कान्दे ब्रह्मखण्डे धर्मारण्यमाहात्म्ये ३० अध्याये–

रामः पञ्चदशे वर्षे, षड्वर्षां चैव मैथिलीम् उपयेमे, अयोनिजाम्।।१।। ततो द्वादशवर्षाणि, रेमे रामः तया सह। सप्तविंशतिमे वर्षे, यौवराज्यप्रदायकम्।।२।। रामप्रवाजनम्-त्रिरात्रमुदकाहारः, चतुर्थेऽह्नि फलाशनः। पञ्चमे चित्रकूटे तु रामो वासमकल्पयत्।।२।। अर्धत्रयोदशे वर्षे पञ्चवट्यामुवास ह। ततो माघासिताष्टम्यां, मुहूर्ते

राम और रावण का युद्ध हुआ जिसमें रावण युद्ध से पलायन कर गया। उसने कुम्भकर्ण को जगाया, छः दिन के युद्ध में वह राम के हाथों मारा गया। पञ्चदशी में रावण के द्वारा विलाप। फाल्गुन प्रतिपदा से चतुर्थी पर्यन्त रावण के नरान्तक आदि प्रमुख वीर योद्धा मारे गये, पञ्चमी से तीन दिन में अति और कर नामक राक्षसों को मारा, अष्टमी में कुम्भ और निकुम्भ का वध हुआ, अष्टमी से छः दिन तक चले युद्ध में लक्ष्मण ने पराक्रमी योद्धा इन्द्रजित को मार गिराया, चतुर्दशी में रावण को महान् शोक, पञ्चदशी में रावण युद्धभूमि में आया। चैत्र प्रतिपदा से पाँच दिनों में रावण के प्रमुख सेनापति युद्धभूमि में मारे गये। द्वादशी से चतुर्दशी पर्यन्त राम और रावण का युद्ध, अन्त में रावण मारा गया। माघ द्वितीया से लेकर चैत्र कृष्ण चतुर्दशी पर्यन्त सताशी दिन युद्ध चला, इस मध्य पन्द्रह दिन युद्ध-विराम रहा।

स्कन्द पुराणीय ब्रह्मखण्ड-धर्मारण्य महात्म्य के अनुसार—

राम के पन्द्रह वर्ष के होने जाने पर छः वर्ष की अयोनिजा मैथिली सीता के साथ उनका विवाह हुआ बारह वर्ष तक अयोध्या में दोनों साथ-साथ रहे। सत्ताईसवें वर्ष में उन्हें वनवास मिला तीन रात्रि तक मुक्तहार रहकर (केवल जल पिया)। चौथे दिन फलाहार किया। पाँचवें दिन चित्रकूट पहुँचकर उन्होंने निवास के लिए पर्णशाला का निर्माण किया साढ़े तेरह वर्ष वहाँ रहने के बाद वे पञ्चवटी पर रहने लगे। उसके बाद माघ कृष्णा अष्टमी को वृन्द

वृन्दसंज्ञके।।३।। राघवाभ्यां विना सीतां, जहार दशकन्धरः। माघासितनवम्यां तु, वसन्तीं रावणालये।।४।। द्वादश्यां शिंशिपावृक्षे हनुमान्पर्य्यवस्थितः। पूर्णिमायां महेन्द्राद्रौ, पुनरागमनं कपेः।।५।। मार्गशीर्षप्रतिपदः पञ्चभिः पथि वासरैः। पुनरागत्य वर्षेऽह्नि, ध्वस्तं मधुवनं किल।।६।। सप्तम्यां प्रत्यभिज्ञानदानं सर्वनिवेदनम्। अष्टम्युत्तरफाल्गुन्यां, मुहूर्ते विजयाभिधे।।७।। मध्ये प्राप्ते सहस्रांशौ, प्रस्थानं राघवस्य च। वासरैः सप्तभिः सिन्धोः, तीरेसैन्यनिवेशनम्।।८।। पौषशुक्लप्रतिपदः, तृतीयां यावदम्बुधौ। उपस्थानं ससैन्यस्य, राघवस्य बभूव ह।।९।। विभीषणश्चतुर्थ्यां वै, रामेण सह संगतः।। समुद्रतरणार्थाय, पञ्चम्यां मन्त्र उद्यतेः।।१०।।

प्रायोपवेशनं चक्रे, रामो दिनचतुष्टयम्। सेतोर्दशम्यामारम्भः, त्रयोदश्यां समापनम्।।११।। चतुर्दश्यां सुवेलाद्रौ, रामः सेनां न्यवेशयत्। पूर्णिमास्या द्वितीयायां, त्रिदिनैः सैन्यतारणम्।।१२।। तृतीयादिदशम्यन्तं, निवेशश्च दिनाष्टकम्। शुकसारणयोस्तत्र, प्राप्तिरेकादशे दिने।।१३।। पौषासिते द्वादश्यां, सैन्य-संख्यानमेव च। शार्दूलेन कपीन्द्राणां, सारासारोपवर्णनम्।।१४।। त्रयोदशाद्यमान्ते च, लंकायां दिवसैस्त्रिभिः। प्रययावंगदो

संज्ञक मुहूर्त में राम और लक्ष्मण से रहित सीता को रावण ने हर लिया। माघ कृष्ण नवमी में उन्हें रावण के घर रखा गया, बाद में उन्हें अशोक वाटिका में रखा गया। द्वादशी में शिंशपा वृक्ष पर बैठ कर हनुमान् ने सीता के दर्शन किये। पूर्णिमा में हनुमान् महेन्द्र पर्वत पर पुन: आ गये। मार्गशीर्ष प्रतिपदा से पाँच दिन में यात्रा पूरी करके सीता खोज की प्रसन्नता में मधुवन को ध्वस्त किया, सप्तमी में सीता की पहिचान-चूड़ामणि राम को दी और सारा वृत्तान्त सुनाया। अष्टमी में उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में सूर्य के मध्य आकाशगामी होने पर विजय मुहूर्त में राम ने लङ्का विजय हेतु प्रस्थान किया। सात दिन में सागर तट पर पहुँच, पौष शुक्ल प्रतिपदा से लेकर तृतीया तक श्रीराम वानर सेना सहित वहाँ रहे। चतुर्थी में विभीषण राम की शरणागत हुए। पञ्चमी को समुद्र पार करने के विषय में परस्पर विचार-विमर्श हुआ।

उसके चार दिन तक श्रीराम ने समुद्र के किनारे उपवास व्रत किया। दशमी से सेतु बाँधने का कार्य प्रारम्भ हुआ और और त्रयोदशी को पूरा हो गया। चतुर्दशी को सुबेल पर्वत पर पहुँच कर श्रीराम ने सेना का पड़ाव डाला, पूर्णिमा से लेकर द्वितीया तक तीन दिनों में सारी सेना समुद्र पार करके लंका पहुँच गयी। तृतीया से दशमी तक आठ दिनों तक सेना वहाँ टिकी रही। एकादशी के दिन शुक और शारण इन दो रावण के दूत-मंत्रियों का आगमन हुआ, पौष कृष्ण द्वादशी को सेना की गणना की गयी। कपिश्रेष्ठ सुग्रीव ने अपनी सेना के बलाबल का वर्णन किया। त्रयोदशी से अमावस्या तक तीन दिन लंका

दौत्ये, माघशुक्लाद्यवासरे।।१५।। सीतायाश्च तदा भर्तुः, मायामूर्धादिदर्शनम्। माघशुक्ल द्वितीयायां, दिनैः सप्तभिरष्टमीम्।।१६।। रक्षसां वानराणां च, युद्धमासीच्च संकुलम्। माघशुक्लनवम्यां तु, रात्राविन्द्रजिता रणे।।१७।। रामलक्ष्मणयोर्नागपाशबन्धः कृतः किल। नागपाशविमोक्षार्थं, दशम्यां गरुडोऽभ्यगात्।।१८।। अवहारो खाद्य शुक्लैकादश्यां दिनद्वयम्। द्वादश्यामाञ्जनेयेन धूम्राक्षस्य वधः कृतः।।१९।। त्रयोदश्यां तु तेनैव, निहतोऽकम्पनो रणे।। माघशुक्लचतुर्दश्यां, यावत्कृष्णादिवासरम्।।२०।।

त्रिदिनेन प्रहस्तस्य, नीलेन विहितो वधः। माघकृष्णद्वितीयायाः चतुर्थ्यन्तं त्रिभिर्दिनैः।।२१।। रामेण तुमुले युद्धे, रावणो द्रावितो रणात्। पञ्चम्या अष्टमीयावत्, रावणेन प्रबोधितः।।२२।। कुम्भकर्णस्तदा चक्रेऽभ्यवहारं चतुर्दिनम्। कुम्भकर्णोऽकरोद् युद्धं, नवम्यादिचतुर्दिनैः।।२३।। रामेण निहतो युद्धे, बहुवानरभक्षकः। अमावास्यादिने शोकाऽभ्यवहारो बभूव ह।।२४।। फाल्गुनप्रतिपदादौ, चतुर्थ्यन्तं चतुर्दिनैः। नरान्तकप्रभृतयो, निहताः पञ्च राक्षसाः।।२५।। पञ्चम्याः सप्तमीयावत्, अतिकायवधस्त्र्यहात्। अष्टम्या द्वादशीयावत्, निहतौ दिनपञ्चकात्।।२६।। निकुम्भकुम्भौ द्वावेतौ, मकराक्षश्चतुर्दिनैः। फाल्गुनासितद्वितीयाया, दिने वै शक्रजिज्जितः।।२७।।

में रावण ने अपनी को संगठित किया। माघ शुक्ल प्रतिपदा को अंगद को दूत बना कर लंका भेजा गया। द्वितीया के दिन सीता जी को माया से उनके पति के कटे हुए मस्तक आदि का दर्शन कराया, उस दिन से सात दिनों तक अर्थात् अष्टमी तक राक्षसों और वानरों में घमासान युद्ध हुआ। माघ शुक्ल नवमी की रात में मेघनाद ने युद्ध करके राम और लक्ष्मण को नागपाश में बाँध लिया। दशमी को गरुड़ जी नागपाश से छुड़ाने को आये माघ शुक्ल एकादशी से लेकर दो दिन तक युद्ध बन्द रहा। द्वादशी को हनुमान् जी ने धूम्राक्ष का और त्रयोदशी को उन्होंने ही अकम्पन का वध किया। माघ शुक्ला चतुर्दशी से लेकर कृष्णपक्ष की प्रतिपदा तक तीन दिन में नील ने प्रहस्त का वध किया।

माघ कृष्ण द्वितीया से लेकर चतुर्थी तक तीन दिनों में श्रीराम ने तुमुल युद्ध करके रावण को रणभूमि से मार भगाया। पञ्चमी से अष्टमी तक रावण के द्वारा जगाया गया कुम्भकर्ण चार दिन तक केवल भोजन ही करता रहा। नवमी से चार दिन तक कुम्भकर्ण ने युद्ध किया और बहुत से वानरों को खा डाला। अन्त में वह श्रीराम के हाथों मारा गया। अमावस्या के दिन लंका में उसके लिए शोक मनाया गया। फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा से चतुर्थी तक चार दिनों में नरान्तक आदि पाँच प्रमुख राक्षस मारे गये। पञ्चमी से सप्तमी तक तीन दिनों में अतिकाय का वध हुआ। अष्टमी से द्वादशी तक पाँच दिनों में निकुम्भ और कुम्भ राक्षस मारे गये, फिर चार दिनों में मकराक्ष का वध हुआ। फाल्गुन कृष्णा द्वितीया

तृतीयादौ सप्तम्यन्तदिनपञ्चकमेव च। औषध्यानयवैयग्र्यात्, अवहारो वभूव ह।।२८।। अष्टम्यां रावणो मायामैथिलीं हतवान्कुधीः। ततस्त्रयोदशीयावत्, दिनैः पञ्चभिरिन्द्रजित्।।२९।। लक्ष्मणेन हतो युद्धे, विख्यातबलपौरुषः। चतुर्दश्यां दशग्रीवो, दीक्षामावापहारतः।।३०।।

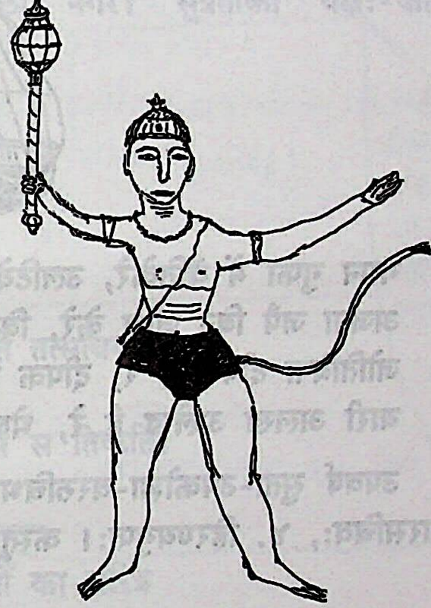
अमावास्यादिने यागात्, युद्धाय दशकंधरः। चैत्रे शुक्लप्रतिपदः, पञ्चमी-दिनपञ्चके।।३१।। रावणो युध्यमात्रेऽभूत्, प्रचुरो रक्षसां वधः। चैत्रशुक्लाष्टमीं यावत्, स्यन्दनाश्वादिसूदनम्।।३२।। चैत्रशुक्लनवम्यां तु, सौमित्रेः शक्तिभेदने। कोपाविष्टेन रामेण, द्रावितो दशकन्धरः।।३३।। विशल्यां तु समादाय, लक्ष्मणं तामपाययत्। दशम्यामवहारोऽभूत्, रात्रौ युद्धं तु रक्षसाम्।।३४।। एकादश्यां तु रामाय, रथो मातलिसारथिः। प्राप्तो युद्धाय द्वादश्यां, यावत्कृष्णां चतुर्दशीम्।।३५।। अष्टादशदिनै रामो, रावणं द्वैरथेऽवधीत्। माघशुक्लद्वितीयादिचैत्रकृष्णचतुर्दशीम्।।३६।। सप्ताशीति दिनान्येवं, मध्ये पञ्चदशाहकम्। युद्धावहारः संग्रामो, द्वासप्ततिदिनान्यभूत्।।३७।। वैशाखादितिथौ रामः, उवास रणभूमिषु। अभिषिक्तो द्वितीयायां, लंकाराज्ये विभीषणः।।३८।। सीताशुद्धिस्तृतीयायां, देवेभ्यो वरलम्भनम्। वैशाखस्य चतुर्थ्यां तु

के दिन मेघनाद पराजित हुआ, तृतीया से सप्तमी तक दवा आदि लाने की व्यग्रता के कारण युद्ध बन्द रहा। अष्टमी को दुर्बुद्धि रावण ने शोक के आवेश से मायामयी मैथिली का वध किया। फिर त्रयोदशी से पाँच दिनों में लक्ष्मणजी ने विख्यात बल और पराक्रम वाले मेघनाद को युद्ध में मार डाला। चतुर्दशी में रावण ने युद्ध बन्द करके यज्ञ की दीक्षा ली, फिर अमावस्या के दिन वह युद्ध के लिए निकला। चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से लेकर पाँच दिन तक रावण निरन्तर युद्ध करता रहा, इस युद्ध में बहुत से राक्षसों का संहार हुआ। चैत्र शुक्ला अष्टमी को रावण के रथ-घोड़े आदि विनष्ट हुए। चैत्र शुक्ला नवमी को लक्ष्मणजी को शक्ति बाण लगा। तब श्रीराम ने क्रोध में भरकर दशमुख रावण को युद्ध से खदेड़ दिया, फिर हनुमान् जी के द्वारा लायी गयी विशल्या-सञ्जीवनी बूटी लक्ष्मण को पिलायी गयी। दशमी को युद्ध बन्द रहा। रात में राक्षसों ने युद्ध आरम्भ किया। एकादशी में श्रीराम के पास मातलि नामक सारथि के साथ इन्द्र का रथ पहुँचा। चैत्र शुक्ला द्वादशी से लेकर कृष्णा चतुर्दशी तक अट्ठारह दिनों में श्रीराम ने द्वन्द्व युद्ध करके रावण को मार डाला।

इस तरह माघ शुक्ला द्वितीया से लेकर चैत्र कृष्णा चतुर्दशी तक सत्तासी दिन के संग्राम में पन्द्रह दिन युद्ध बन्द रहा, शेष बहत्तर दिन युद्ध चला। वैशाख प्रतिपदा को श्रीराम जी रण-भूमि में ही रहे, द्वितीया में उन्होंने विभीषण का लंका के राज्य पर अभिषेक किया। तृतीया को सीताजी की शुद्धि हुई और देवताओं से वरदान प्राप्त किया।

रामः पुष्पकमाश्रितः।।३९।। पूर्णे चतुर्दशे वर्षे, पञ्चम्यां माधवस्य च। भरद्वाजाश्रमे रामः, सगणः, समुपाविशत्।।४०।। नन्दिग्रामे तु षष्ठ्यां तु, पुष्पकेण समागतः। सप्तम्यामभिषिक्तोऽसौ, भूयोऽयोध्यायां रघूद्वहः।।४१।। दशहाधिकमासांश्च, चतुर्दश हि मैथिली। उवास राम- रहिता, रावणस्य निवेशने।।४२।। द्वाचत्वारिंशके वर्षे, रामो राजमकारयत्। सीतायास्तु त्रयस्त्रिंशत्, वर्षाणि तु तदाभवन्।।४३।।

रामस्य वनवासः-चैत्रशु. १०। सीताहरणम्-१४ व.प्रा. चैत्र बहुला ८। हनूमतः सीतासंदर्शनम्-माघ शु. १२। श्रीरामस्य प्रस्थानम्-माघ बहुला. २। युद्धप्रारम्भः-श्रावण बहुला. २। रावणवधः-फाल्गुने अमावास्यायाम्। श्रीरामस्यायोध्यायां आगमनम्-भरद्वाजाश्रमे चै.शु. ९। अयोध्याप्राप्तिः-चै. शु. १०। परदिने दशमी शेषे पुष्ये पट्टाभिषेकः। वाल्मीकीयरामायण-कथासंदर्भ, हनुमन्नाटकाधारेण च।



वैशाख की चतुर्थी को श्रीराम पुष्पक विमान पर बैठे और आकाश मार्ग से अयोध्या की ओर चल दिये। चौदहवाँ वर्ष पूर्ण होने पर वैशाख शुक्ल पञ्चमी को श्रीरामजी अपने दल-बल के साथ भरद्वाज आश्रम पर रहे। फिर षष्ठी को पुष्पक विमान से नन्दिग्राम आये। सप्तमी में अयोध्या के राज्य पर रघुनाथजी का अभिषेक हुआ। चौदह महीना दस दिन तक सीता को राम से अलग रावण की लंका में रहना पड़ा था। बयालीसवें वर्ष में श्रीराम जी ने राज्य कार्य प्रारम्भ किया। उस समय सीता जी की आयु तेंतीस वर्ष की हो गयी थी।

श्रीराम की प्रमुख घटनाओं की मास-तिथि

श्रीराम का वनवास—चैत्र शुक्ला दशमी। सीता-हरण—चैत्र बहुला अष्टमी। हनुमान का सीता-दर्शन—माघ बहुला द्वादशी। श्रीराम का युद्ध के लिए प्रस्थान—माघ बहुला द्वितीया। युद्ध-प्रारम्भ—श्रावण बहुला द्वितीया। रावण-वध—फाल्गुन अमावस्या। श्रीराम का अयोध्या आगमन—भरद्वाज-आश्रम में चैत्र शुक्ला नवमी और अयोध्या प्राप्ति—चैत्र शुक्ला दशमी। राज्याभिषेक—दूसरे दिन श्रेष्ठ पुष्य नक्षत्र में दशमी शेष रहने पर श्रीराम का पट्टाभिषेक हुआ।

खासकासयोः

१ किलो-बबूल मूल। १ पाव-वासा मूल। १ पाव-तुलसी पत्र। १ छटाक-कृष्ण मरिच। १ पाव-आर्दक। १ पाव-पानपत्र। १ पाव-गुड। १० किलो जल में काढ़ा। १$^{१}/_{२}$ किलो शेष। १ तोला मात्रा। ११ दिन। मूंग दाल रोटी पथ्य।



गगन गुफा में वैठिकेरे, उलटिके अपना आपा देखै।
अजपा जपै बिन जीभ केरे, बिन नैन निरञ्जन रूप लेखै।।
जोतिबिना दीपक है रे, दीपक बिना जगमग पेखै।
यारी अलख अलेख है रे, भेष के भीतर भेष भेषै।

उपवर्ष सुता-उपकोशा-वररुचिभार्या-१. राजपुरोहितः, २. दण्डाधिपतिः, ३. कुमारसचिवः, ४. हिरण्यगुप्तः। कस्तूरिकादिसंयुक्तं कज्जलं तैलमिश्रितम्।

(कथा स. ४)

राज्ञः पुत्री-पाटली-आकर्षिका नगरी। कुमारकः-पाटलिपुत्रकः। (कथा स.स. ३)

दिव्यनगरं पाटलिपुत्रं क्षेत्रं
लक्ष्मीसरस्वत्योः।

गङ्गा

श्वांसकास की ओषधि स्पष्ट।

आकर्षिका नगरी के राजा की पुत्री पाटली थी उसके पुत्र के नाम से इस नगर का नाम पाटलीपुत्र हुआ।

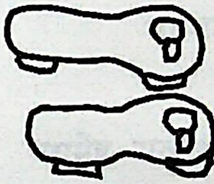
यह पाटलीपुत्र दिव्य नगर है, लक्ष्मी और सरस्वती का क्षेत्र है।

अचिन्त्यं शीलगुप्तानां, चरितं कुलयोषिताम्। अशीलं कस्य भूतये।

(कथासरित्सागरः ४ तरंगः। ८३)

वर्षः पाटलिपुत्रे-कौशम्ब्यां सोमदत्तः वसुदत्ता। वररुचिः सकृच्छ्रुतपरः। देवस्वामी-व्याडिः-द्विश्रुतधरः। करम्भकः-इन्द्रदत्तः त्रिश्रुतधरः।

पुष्पदन्तः-माल्यवान्-गुणाढ्यः-सुप्रतिष्ठा नगरे। सुप्रतीको यक्षः-काणभूतिः पिशाचः।



खेचरत्वमवाप्यते।



यल्लिख्यते तत्सत्यम्।



यो य आहारश्चिन्त्यते स स तिष्ठति।

कुलीन स्त्रियों का चरित्र

गुप्त-शील-स्वभाव वाली कुलीन स्त्रियों का चरित्र अचिन्त्य है। अशील किसका भूषण वैभव हो सकता है? किसी का भी नहीं।

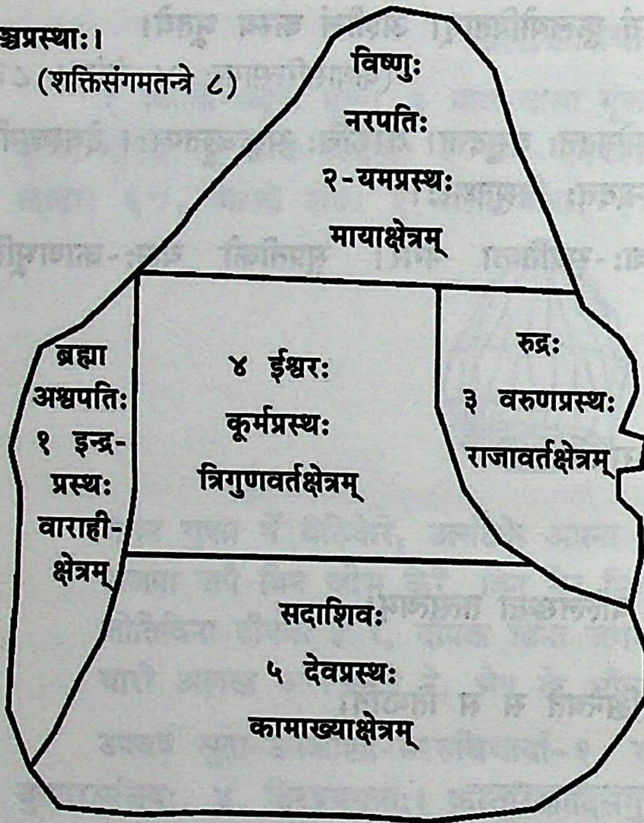
पाटलिपुत्र के विद्वान्

कौशाम्बी में सोमदत्त और वसुदत्ता। वररुचि और पुष्पदन्त सकृत् श्रुतधर थे अर्थात् विद्या को एक बार सुनकर ही धारण कर लेते थे। देवस्वामी, व्याडि दो बार सुनकर ही धारण कर लेते थे और करम्भक, इन्द्रदत्त तीन बार सुनकर विषय को हृदयङ्गम कर लिया करते थे।

सुप्रतिष्ठा नगर में पुष्पदन्त, माल्यवान्, गुणाढ्य और सुप्रतीक नामक यक्ष, काणभूति पिशाच रहते थे।

पादुका, छड़ी और आहार

श्वेतार्क की खडाऊँ विधिपूर्वक धारण करने से आकाश गमन की क्षमता प्राप्त हो जाती है। अभिमन्त्रित छड़ी से जो भी लिखा जाता है, सत्य हो जाता है। जिस-जिस आहार का विचार किया जाय, वह-वह आहार उपस्थित हो जाता है।



नवमासधृतं गर्भं,
भास्करस्य गभस्तिभिः।
पीत्वा रसं समुद्राणां,
द्यौः प्रसूते रसायनम्।।

(वाल्मी. रा. ४.२८)

पञ्चप्रस्थ

शक्तिसंगमतन्त्र में पाँच प्रस्थ कहे गये हैं—इन्द्रप्रस्थ, यमप्रस्थ, वरुणप्रस्थ, ईश्वरप्रस्थ, कूर्मप्रस्थ और देवप्रस्थ। जिनमें इन्द्रप्रस्थ वाराही क्षेत्र है, अश्वपति का निवास है और ब्रह्मा अधिष्ठातृदेवता हैं। यमप्रस्थ मायाक्षेत्र है नरपति का निवास है और वहाँ के देवता विष्णु हैं। वरुणप्रस्थ राजावर्त क्षेत्र है जो कि रुद्राधिष्ठित है। कूर्मप्रस्थ त्रिगुणावर्तक्षेत्र कहा जाता है, जिसके अधिष्ठातृदेवता ईश्वर हैं। पाँचवा देवप्रस्थ है जो कि कामाख्या क्षेत्र है इसके सदाशिव अधिष्ठातृ देवता हैं।

वर्षा ऋतु

यह आकाश स्वरूपा तरुणी सूर्य की किरणों द्वारा समुद्र का रस पीकर कार्तिक आदि नौ मासों तक धारण किये हुए गर्भ के रूप में जलरूपी रसायन को जन्म दे रही है।

गङ्गा कनखलं पुण्यं प्रयागं पुष्करं तथा।
कुरुक्षेत्रं महापुण्यं राहुग्रस्ते दिवाकरे।। (देवीपु.)
निधिनागेभवह्नयब्दे ३८८९ विभवे मासि माधवे।
शुक्ले तिथौ दशम्यां च शंकरार्योदयः स्मृतः।। (ब्रह्म सू. ढु. रा.)

सम्पत्सरस्वती विद्या–क्लीं ऐं सौः सौः ऐं क्लीम्। कृष्णो ऋषिः, गायत्री छन्दः, श्रीसम्पत्सरस्वती दे., सम्पत्यर्थे विनियोगः। ३०००० जपः।

बिल्वमूले जपेन्मन्त्री नित्यं दशसहस्रकम्।
मासार्द्धात्सकलां लक्ष्मीं प्राप्नोति साधकः पराम्।।
(शक्तिसंगमत. २०)

मधुमेह–सर्वप्रथम मोटापा कम करने के लिए आसन करें। इसके बाद आसन-सर्वाङ्गासन, हलसान, धनुरासन, मयूरासन, अर्द्ध मत्स्येन्द्रासन, सुप्त वज्रासन, अग्निसार, उड्डीयानबन्ध कर ले; बेलपत्र, जामुन आदि पथ्य।

औषध–करेला १०० ग्राम, जामुनगिरि १०० ग्राम, बेलपत्र १०० ग्राम, तुलसीपत्र १० ग्राम, निम्बपत्र १० ग्राम, आँवला १५ ग्राम, गोखुरू १० ग्राम, मेथी १० ग्राम, गुडमार ६० ग्राम।

महापुण्यप्रद कुरुक्षेत्र–स्नान

कनखल में गंगा-स्नान पुण्यप्रद है, प्रयाग और पुष्कर में भी स्नान करने से पुण्य की प्राप्ति होती है, किन्तु राहुग्रस्त सूर्यग्रहण काल में कुरुक्षेत्र में किया गया स्नान मंहान् पुण्य प्रदान करनेवाला है।

भगवान् शङ्कराचार्यजी का प्रादुर्भाव

अंकों की गणना वामतः स्वीकृत है, निधि—नौ, नाग—आठ, इभ—आठ, वह्नि—नौ—इस प्रकार संवत् तीन हजार आठ सौ नवासी में चैत्र मास में शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को श्रीशङ्कराचार्यजी का प्रादुर्भाव हुआ।

सम्पत्सरस्वती विद्या

सम्पत् सरस्वती विद्या मन्त्र है—क्लीं ऐं सौः सौः ऐं क्लीम्। इस मन्त्र के ऋषि कृष्ण हैं, गायत्री छन्द है, श्री सम्पत् सरस्वती देवता है और इस मन्त्र का विनियोग सम्पत्ति-प्राप्ति में है।

इस मन्त्र का तीन लाख जप करना चाहिए। विल्ववृक्ष के मूल में नित्य दस हजार जप करने से छः मास में ही साधक सकल परालक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है।

अष्टमे दृष्टिहीनः ग्रहहीनो ब्रह्मलोकं याति।

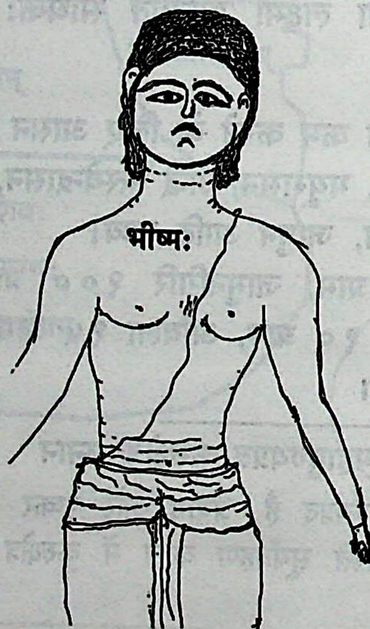
ज्ञानरेखा–अनामिका मध्ये। कनिष्ठ मूल में–ब्रह्मविद्या रेखा।
विज्ञान रेखा –जो कनिष्ठिका कोर में है।
उमर रेखा संग यदि मिले–विद्या रेखा।
तेहिफल पहली-उमर में विखरे जग अधिकाय।



'आदर्श पुरुष योग'–यदि हथेली में स्वतन्त्र रूप से 'डमरू' चिन्ह हो तो जातक आदर्श महापुरुष होता है तथा धनी यशस्वी होते हुए भी सबसे विरक्त रहता है। 'हस्त रेखाएँ बोलती हैं'।

(कररेखासंख्यावली)

वालयति शस्त्रशास्त्रज्ञः शौर्य-वीर्यत्यागतपःतितिक्षिाक्षमादया-शमदमसत्यसन्तोषवान्तः।



द्यौः वसुः गंगापुत्रः शान्तनुपुत्रः देवव्रतः न्यायप्रियः नम्रः उदारः विरतः ज्ञानी मातृपितृभक्तः हरिभक्तः।

ब्रह्मलोक–प्राप्ति–सूचक

अष्टम भाव पर कोई ग्रह न हो, कोई ग्रह उसे देखता न हो तो जातक ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है।

रेखा–ज्ञान

अनामिका के मध्य में ज्ञान रेखा, कनिष्ठा के मूल में ब्रह्मविद्या रेखा होती है। विज्ञान रेखा कनिष्ठिका कोर में होती है। शेष रेखा और आदर्श पुरुष योग मूल में स्पष्ट है।

भीष्म

भीष्म बाल ब्रह्मचारी और समस्त शास्त्रों के ज्ञाता थे। शौर्य, वीर्य, त्याग, तप, तितिक्षा, क्षमा, दया, शम, दम, सत्य, सन्तोष और वान्त-शान्त आदि विशिष्ट गुणों से सम्पन्न थे। द्यौ

जयति वात जात विख्यात विक्रम, वृहद्वाहु बलविपुल वालधिविशाला।
जातरूपाचलाकारविग्रहलसल्लोल विद्युल्लता ज्वालमाला।।

जयति वालार्कवरवदन पिङ्गलनयन कपीश कर्कश जटाजूटधारी।
विकट भृकुटी, वज्र दशन नख, वैरिमदमत्त कुंजरपुंज कुंजरारी।।

जयति भीमार्जुन ब्याल सूदन-गर्वहर, धनंजय-रथ-त्राण-केतू।
भीष्म-द्रोण-कर्णादिपालित, कालदृक्सुयोधनचमू-निधन-हेतू।।

जयति गतराजदातार, हंतार संसार-संकट, दनुज-दर्पहारी।
ईति-अति भीति ग्रह-प्रेत चौरानल-व्याधिबाधा-शमन घोर भारी।।

जयति निगमागम व्याकरण करण लिपि, काव्य कौतिक कला-कोटि-सिधो।
सामगायक, भक्तकामदायक वामदेव, श्रीरामप्रिय प्रेम-बन्धो।।५।।

जयति घर्मांशु-संदग्ध-संपाति-नव पक्ष लोचन दिव्य-देहदाता।
काल कलि-पापसंताप-सकुंल सदा, प्रणत तुलसीदास तात माता।।

२	९	४
७	५	३
६	१	८

गन्धक रसायन

गन्धक शुद्ध–चातुर्जात, गिलोयस्वरस, हरड़ बहेड़ा, आँवले का क्वाथ भृंगराज रस अदरख, रस, पृथक् ८-८ भावना। आधामाशा, समभागमिश्र के साथ अनुपान दूध।

वज्रं हितं चैव समस्तरोगे मुक्ताफलं दीपनकं प्रदिष्टम्।
पुष्टिकान्तिबलवीर्यवर्धनं विद्रुमं तु कफवातपित्तजित्।। (रसकामधेनुः)

वसुरूप भीष्मजी गंगापुत्र, शान्तनुपुत्र और देवव्रत नाम से प्रसिद्ध हुए। वे बड़े ही न्यायप्रिय, विनम्र, उदार, विरक्त, ज्ञानी, मातृ-पितृ भक्त और श्रीहरि के परम भक्त थे।

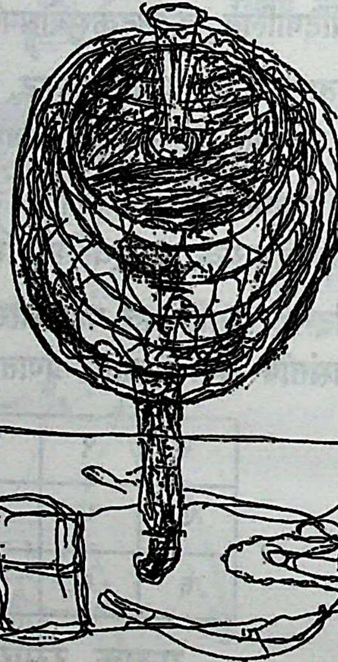
रसकामधेनु

यह समस्त रोगों में हितकारक वज्र के समान है, मुक्ताफल को जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला बताया गया है; पुष्टि, कान्ति, बल और वीर्यवर्धक है। विद्रुम कफ, वात और पित्त को जीतने वाला है।

गारुत्मतं सर्वविषे प्रशस्तं सर्वेषु रोगेषु रसायनेष्टम्।



भगवतो गुणमये स्थूलरूपे आवेशितं मनो ह्यगुणेऽपि सूक्ष्मतमे आत्मज्योतिषि परे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवाख्ये क्षममावेशितुम्।। (श्रीमद्भा. ५.१६)



यो वायं द्वीपः कुवलयकमलकोशाभ्यन्तरकोशो नियुतयोजनविशालः समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रम्।

विश्वं वै ब्रह्मतन्मात्रं संस्थितं विष्णुमायया। (श्रीमद्भा. ३.१०.१२)

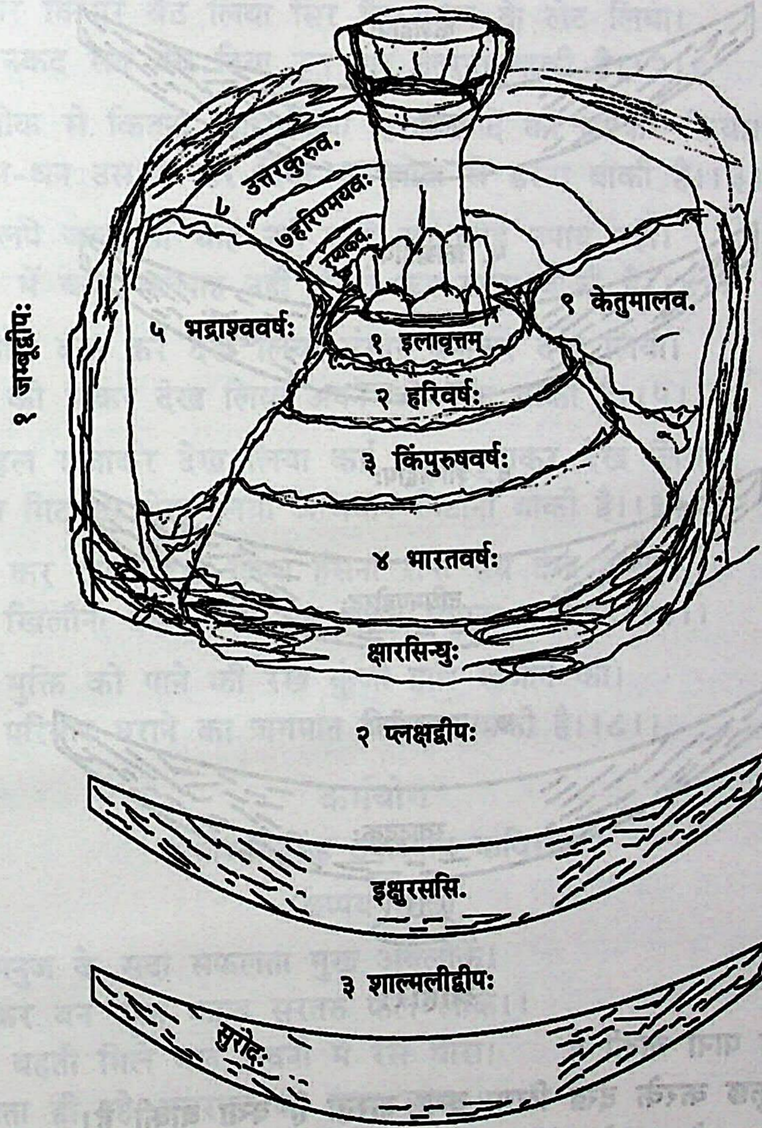
यह गारुत्मत सभी विष में प्रशस्त ओषधि है और सभी रोगों में अभीष्ट रसायन है।

सूर्य का रथचक्र

सूर्य का रथ त्रयीमय है, त्रिमासरूप इसकी तीन नाभि हैं, इसका संवत्सर नाम का एक चक्र (रथ का पहिया) है, जिसमें मासरूप बारह अरे और ऋतुरूप छः नेमियाँ हैं। इस रथ की धुरी का एक सिरा सुमेरु पर्वत की चोटी पर है और दूसरा मानसोत्तर पर्वत पर। इसमें लगा हुआ यह एक चक्र (पहिया) कोल्हू के पहिये के समान घूमता हुआ मानसोत्तर पर्वत के ऊपर चक्कर लगाता है इसका ऊपरी भाग तेलयन्त्र के धुरे के समान ध्रुवलोक से लगा हुआ है।

मन, जम्बूद्वीप और विश्व

जो मन भगवान् के इस गुणमय स्थूल विग्रह में लग सकता है, उसका उसके वासुदेव संज्ञक स्वयंप्रकाश निर्गुण ब्रह्मरूप सूक्ष्मतम स्वरूप में भी लगना सम्भव है।

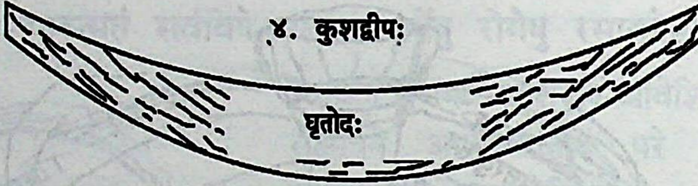


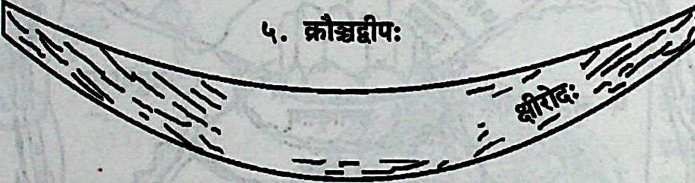
यह जम्बूद्वीप भूमण्डल रूप कमल के कोश स्थानीय जो सात द्वीप हैं, उनमें सबसे भीतर का कोश है, इसका विस्तार एक लाख योजन है और कमलपत्र के समान गोलाकार है।

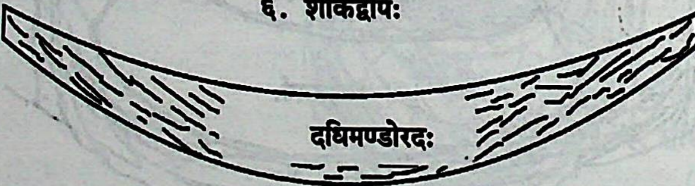
यह सारा विश्व भगवान् की माया से लीन होकर ब्रह्मरूप से स्थित है।

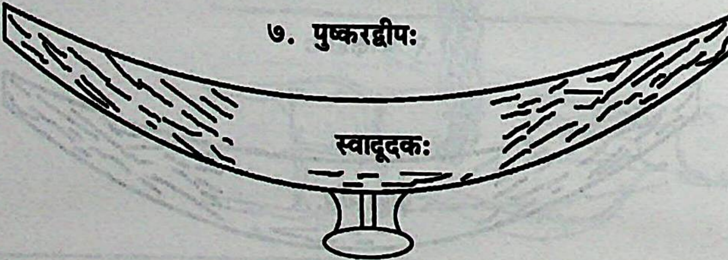
सुमेरु, नौ वर्ष, सात द्वीप और सात समुद्र

जम्बूद्वीप में नौ वर्ष हैं—इलावृत्तवर्ष, हरिवर्ष, किम्पुरुषवर्ष, भारतवर्ष, भद्राश्ववर्ष, रम्यकवर्ष, हिरण्मयवर्ष, उत्तर कुरुवर्ष और केतुमालवर्ष।









श्रीहरिः

अपने को पाना बाकी है
कितना कुछ करके देख लिया क्या करना है क्या बाकी है।
संसार समुद्र के कतरे को भवसागर तरना बाकी है।।१।।

इलावृत्त वर्ष के मध्य पर्वतों का राजा सुमेरुपर्वत स्थित है। तत्तत् पर्वत इन वर्षों की सीमा निर्धारित करते हैं।

इस भूमण्डल में सात समुद्र और सात द्वीप हैं; जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलीद्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीप। जिनमें जम्बूद्वीप क्षार समुद्र से आवृत है, प्लक्षद्वीप इक्षुरस-समुद्र से घिरा है, कुशद्वीप घृतसमुद्र से, क्रौञ्चद्वीप क्षीर-समुद्र से, शाकद्वीप दधिसमुद्र से और पुष्करद्वीप स्वादुजल-समुद्र से परिवेष्टित है।

इस पार किनारे बैठ लिया सिर पैर पसार के लेट लिया।
उधार नकद सब बेच दिया उस पार उतरना बाकी है।।२।।

इस लोक से कितना प्यार किया हिरस सौदे का व्यापार किया।
तन-मन-धन उस पे वार दिया पर लोक से डरना बाकी है।।३।।

इस तलपे जल की थाह नहीं तरने का कोई उपाय नहीं।
किश्ती में चतुर मल्लाह नहीं रो-रो कर मरना बाकी है।।४।।

संग साथ बना कर देख लिया संसार बनाकर देख लिया।
अपनों को पाकर देख लिया अपने को पाना बाकी है।।५।।

घर महल सजाकर देख लिया कई बार लुभाकर देख लिया।
अरमान मिटाकर देख लिया अभिमान मिटाना बाकी है।।६।।

पा-पा कर खोना देख लिया हँसना रोना सब देख लिया।
संसार खिलौना देख लिया अब सहज समाना बाकी है।।७।।

जीवन मुक्ति को पाने की रख कुंजी हाथ खजाने की।
शंकर परिवार घराने का जगमात ठिकाना बाकी है।।८।।

कर्मयोग

अयोध्या सिंह उपाध्याय कविराज

(छप्पय छन्द)

नयन मनुज के सदा सफलता मुख अवलोकें।
दोनों कर बन परम कान्त सुरतरु फल लोकें।।
उसको बहती मिले मरू अवनी में रस धारा।
वह पाता ही रहे अमरपुर का सुख सारा।।
कैसे किस साधन के किये? तो उत्तर होगा यही।
सब दिनों कर्मरत रहा जो सिद्धि पा सका है वही।।१।।

उषा-राग को लसित कर्म-अनुराग बनाता।
कर्म सूत्र में बँधा दिवाकर है दिखलाता।।
रजनी रंजक कर्म-कान्त वन है छवि पाता।
अवनी तल पर सरस सुधा-रस है बरसाता।
है करती रहती विश्व को विदित कर्म की माधुरी।
हो तारकावली से कलित प्रतिदिन रजनी सुन्दरी।।२।।

परम पविमय मेरु प्रवाहित निर्झर द्वारा।
प्रस्तर-संकुल अवनि-मध्यगत सरिता धारा।
फल से विल से दिव्य रंग लाती लतिकायें।
सौरभ भरे प्रसून विकच वनती कलिकायें।।
देती हैं भव को कर्म की अनुपमता की सूचना।
है कर्म परम पावन सरस सुन्दर भावों से सना।।३।।

कैसे मिलते रत्न उदधि-मन्थन क्यों होता।
कैसे कार्य-कलाप बीज फल कृति के बोता।
कैसे जड़ता मध्य जीवनी धारा बहती।
कैसे वांछित सिद्धि साधना कर में रहती।।
कैसे हो वारिद-वृन्द वर वारि बरस पाते कहीं
जो कर्म न होता तो रसा सरसा हो पाती नहीं।।४।।

गृह का त्याग न त्याग कर्म का है कहलाता।
बुरे भाव का त्याग त्याग है माना जाता।
किसी काल में कर्म त्याग तब होगा कैसे।
बने रहेंगे जब दृगादि जैसे के तैसे।।
तब तक थीं बातें त्याग की जब तक मल धोती नहीं।
भव कर्मरता सब इन्द्रियां कर्मरहित होती नहीं।।५।।

कर्महीनता मरण कर्म कौशल है जीवन।
सौरभरहित सुमन समान है कर्म हीन जन।।
तिमिरभरित अपुनीत इन्द्रियों का वर रवि है।
कर्म परम पाषाणभूत मानस का पवि है।
है कर्म त्याग की रगों में परिपूरित निर्जीवता।।
है कर्म योग के सूत्र में बँधी समस्त सजीवता।।६।।



कणकण में है झांकी भगवान की, किसी सूझवाली आंख ने पंहचान की।
नाम देव ने पकाई, रोटी कुत्ते ने उठाई, पीछे घीका कटोरा लिये जा रहे।
बोले रूखी तो न खावो, थोड़ा घी तो लेते जाओ, रूप अपना क्यों मुझसे छिपा रहे।
यारा मेरा एकनूर, फिर काहे को हजूर, तुमने सकल बनाली यह श्वान की।
मुझे ओढनी ओढा दी इन्सान की। कण कण में है झांकी भगवान की। किसी.।।
निगाह मीरा की निराली, पीके जहर की पियाली, ऐसा गिरिधर बसाया हर श्वास में।
आया जब कालानाग बोली धन्य मेरे भाग, प्रभु आये आज साँप के लिबास में।
आओ आओ बलिहार, काले कृष्ण मुरार, बड़ी कृपा है कृपा निधान की।।
आभारी हूँ मैं आपके ऐसान की।। कण कण में है।
इसी तरह सूरदास, निगाह जिनकी थी खास, ऐसा नैनो में था नशा हरि नाम का।
नैन हुये जब बन्द, तब मिला वह आनन्द, आया नजर नजार घनश्याम का।।
हर जगह वह समाया, सारे जग को बताया, आई आंखों में रोशनी जब ज्ञान की।
देखी झूम झूम झलकियाँ महान की।। कण कण में है झाँकी।
सन्त तुलसी कबीर, नहीं जिनकी नजीर, देखा पत्ते में निराकार को।
नजदीक और दूर, वही हाजिर हजूर, यही सार समझाया संसार को।।
नत्था हिंस यह जहान, शहर गाँव बियावान, मेहरबानी है उसी मेहरवान की
सारी चीजें हैं उसी की दुकान की।। कण कण में है.

त्राटकम्

निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः।
अश्रुसंपातपर्यन्तं आचार्यैस्त्राटकं स्मृतम्।।
मोचनं नेत्ररोगाणां, तन्द्रादीनां कपाटकम्। (हठ-योगदीपिका)

गजकरणी

पिये पेट भर नीर युक्तिसो काढिये।
रोग न होय शरीर आमाशय शोधिये।। (चरणदास)

त्राटक

सूक्ष्म लक्ष्य से समाहित होकर निश्चल दृष्टि से जब तक अश्रुपात न हो तब तक एकटक देखें, आचार्यों ने इसी को त्राटक कहा है। यह त्राटक समस्त नेत्ररोगों का विनाशक और तन्द्रा आदि का कपाटरूप शामक है।

मो मन गिरिधर छबि पै अटक्यो, ललित त्रिभंगी चाल पे चलिके।
चिबुक चारु गड़ि ठटक्यो, सजल श्याम घन वरन लीन हैं।
फिरि चित अनतन भटक्यो, कृष्ण दास किये प्राण निछावर।
यह तन जगशिर पटक्यो, मो मनगिरिधर छवि.।।

रैदासभक्तः

पिङ्गलापतिः अश्विनीकुमारः। मानदासः

शंकराचार्यः

वीरभद्रः स्वदेहात् एकं तेज उदपादयत्, भैरवदत्तनामकविप्रगृहे प्रापयत्। स शिव नाम्ना प्रसिद्धः। स गुणवान् सकलशास्त्रज्ञो ब्रह्मचारी आसीत्। (भविष्यपु. प्र. १०)

जय जय राम जयासुरसूदन, जय माधव जय विष्णो।
जय लक्ष्मीमुखकमलमधुव्रत, जय दशकन्धरजिष्णो।।१।।

हर मम नरकरिपो नारायण, केशव कल्मषभारम्।
मामनुकम्पय दीनमनाथं, कुरु भवसागरपारम्।।२।।

त्वं जननी जनक प्रभुरच्युत, त्वं सुहृत्कुलमित्रम्।
त्वं शरणं शरणागतवत्सल, त्वं भवजलधिवहित्रम्।।३।।

अपराधं मे मुरहर परिहर, कुर्वे चरणाश्रयणम्।
संसारार्णवतरणे करुणावरुणालय भव शरणम्।।४।।

शङ्कराचार्य

वीरभद्र ने स्वकीय शरीर से एक तेज उत्पन्न किया, उसको भैरवदत्त नामक ब्राह्मण के घर भेज दिया। वह तेज ही शिव (शङ्कर) नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ, वह शङ्कर नाम का दिव्य ब्राह्मण अत्यन्त गुणवान्, सम्पूर्ण शास्त्रों का मर्मज्ञ और ब्रह्मचारी था। वही आगे चलकर आद्यशङ्कराचार्य के रूप में लोकविख्यात हुए।

जय माधव जय विष्णो!

हे राम! हे असुरसूदन! हे माधव! हे विष्णु! तुम्हारी जय हो, तुम्हारी जय हो! हे लक्ष्मीमुखकमलचञ्चरीक! हे दशकन्धरविजेता! आपकी जय हो, जय हो। हे नरक-रिपु! हे नारायण! हे केशव! मेरे पापों के भार का हरण कर लो, मैं दीन हूँ, अनाथ हूँ, मुझ पर अपनी अनुकम्पा करो, मुझे भवसागर से पार कर दो।

ध्रुवस्य पूर्वजन्म

माधव नाम ब्राह्मण आसीत्, अष्टवर्षं प्रातः तीर्थेषु स्नानमकरोत्, भक्तितपःप्रभावेण सुनीतिगर्भाज्जातः ध्रुवः। (भविष्यपु. प्र. १७)

नरश्री भक्तः

पञ्चमवसुः-ध्रुवः अंशेन गुर्जरे नरश्रीरूपेण जातः। परमभक्तः काश्यां रामानन्दशिष्यः सञ्जातः।

पीपा भक्तः

षष्ठो वसुः सोमः दक्षिणे वैश्येवंशे सुदेव गृहे पीपा नाम्ना जातः। रामानन्दशिष्यो द्वारकायां अनिवशत्।

नानकः

सप्तमो वसुः प्रत्यूषः पाञ्चाले वैश्यकुले मार्गपालपुत्रः नानकः। रामानन्दशिष्यः।

हे प्रभु! हे अच्युत! आप ही मेरी माता हैं-पिता हैं आप ही मेरे सुहृत्-मेरे मित्र हैं। अपनी भवसागर से पार उतारने वाली नौका के समान हैं, हे शरणागतवत्सल! मैं आपकी शरण में आया हूँ।

हे मुरारि! मेरे अपराध को अपहृत करें और संसाररूपी सागर को पार करने में अपने चरणों का आश्रय प्रदान करें। हे करुणावरुणालय! मैं आपकी शरण हूँ।

ध्रुव का पूर्वजन्म

ध्रुव पूर्वजन्म में माधव नाम का एक ब्राह्मण था। आठ वर्ष की आयु से ही वह प्रातः तीर्थों में स्नान करता था। भक्ति और तप के प्रभाव से उस ब्राह्मण ने सुनीति के गर्भ से ध्रुव के रूप में जन्म प्राप्त किया।

नरश्री (नरसी) भक्त

पाँचवें वसु ध्रुव के अंश से गुर्जर प्रान्त में मनुष्यों में श्रेष्ठ-नरश्री (नरसी) के रूप में जन्म हुआ। ये काशी में शिष्य दीक्षा प्राप्त करके रामानन्दजी के शिष्य हुए।

पीपा भक्त

छठे वसु सोम के अंश से दक्षिण में वैश्य वंश में सुदेव के घर में पीपा भक्त उत्पन्न हुए। ये रामानन्द के शिष्य थे, द्वारका में भगवद्भक्ति में निरत रहते थे।

नानकदेव

सातवें वसु प्रत्यूष के अंश से पाञ्चाल (पंजाब) प्रदेश में वैश्य कुल में मार्गपाल के पुत्र के रूप में नानकदेव का जन्म हुआ। ये भी रामानन्द के शिष्य थे।

सदन भक्तः

इडापतिरश्विनिः अजघ्नगृहे जातः। पितृमातृपरायणः कबीरशिष्यः। पूर्वजन्मनि ब्राह्मणः सत्यनिधिः, भीता गौः चाण्डालाय निवेदिता।

सामुद्रिकम्

१. उत्तमपुरुष-१०८ अङ्गुलः=चतुर्हस्तद्वादशांगुलः। २. मध्यमः-शतांगुलः। ३. अधमः-ऊनशतांगुलः।

कलिकातापुरी

कालिका बहुपुष्पाणां सा चकार स्वहर्षतः।
ताभिर्भवा च नगरी कलिकाता पुरी मता। (भवि.पु.प्र. ४.४)

कबीरः

धान्यपालवैश्यस्य गृहे मूलगण्डान्ते वायुपुत्ररूपेणोत्पन्नः। पित्रा काश्यां विन्ध्यवने

सदन भक्त

इडापति अवश्विनी ने अजघ्न के घर में सदन भक्त के रूप में जन्म लिया। ये अपने माता-पिता की सेवा में संलग्न रहते थे। ये कबीरदास के शिष्य हुए। इससे पूर्वजन्म में वह सत्यनिधि नाम के ब्राह्मण थे। भयभीत गौ इन्होंने चाण्डाल (कसाई) को बता दी थी, इस पाप के प्रभाव से इन्हें कसाई के घर में जन्म मिला।

सामुद्रिक

एक सौ आठ अंगुल अर्थात् चार हाथ बारह अंगुल की लम्बाई वाला पुरुष उत्तम माना जाता है, सौ अंगुल की लम्बाई वाला पुरुष मध्यम और सौ से कम अंगुल की लम्बाई वाला पुरुष अधम—तृतीय श्रेणी का माना गया है।

कलिकाता पुरी

भगवती कालिका ने हर्षपूर्वक अपने हाथों से बहुत से पुष्पों की कलिकाओं (का माला बनायी) को स्थापित किया। उस भूमि पर होने वाली नगरी को कलिकातापुरी (कलकत्ता) कहते हैं।

कबीर

धान्यपाल वैश्य के घर में वायुपुत्ररूप में जन्म हुआ। यह बालक गण्डान्तमूल में

त्यक्तः। तत्र निःसन्तानः अलिकस्तन्तुवायः आगत्य प्राप्तवान् स्वगृहे पुत्रत्वेनागृह्णात्। स कबीरनाम्ना प्रसिद्धः। रामानन्दः सप्तवर्षायुषि गुरुः प्राप्तः।

सप्तविंशतिवर्षेषु गतेषु कलौ वलिना प्रेषितो-मयः। शाक्यसिंहनाम्ना गौतमाचार्यनाम्ना प्रसिद्धः दैत्यपक्षवर्धकोऽभूत्। तेन तीर्थेषु मायामययन्त्राः स्थापिताः यस्याधः गताः बौद्धा भवन्ति स्म। (भवि.पु.प्र.४)

कान्यकुब्जनगरम्

ददर्श नगरं रम्यं कन्ययारचितं शुभम्।।
उत्तरे तस्य वै गङ्गा दक्षिणे नास पाण्डुरा।।
पश्चिमे ईश सरिता पूर्वे पक्षी मर्कणः।
कुब्जभूतमभूद् ग्रामं कान्यकुब्ज इति स्मृतः।। (भ.पु.प्र.प. ४.३)

मलेच्छपैशाचधर्मानुयायी महामोदः राजनीयानगर्य्या अधिपतिः आसीत्।

उत्पन्न हुआ था, इसलिए इसके पिता ने काशी में विन्ध्यवन में इसे त्याग दिया था। निःसन्तान आलिक नाम के तन्तुवाय (जुलाहे) ने इस बालक को देखा और घर ले आया। उसने इस बालक का पुत्ररूप से लालन-पालन किया। वही बालक कबीर नाम से प्रसिद्ध हुआ। सात वर्ष की आयु से इन्होंने रामानन्दजी से गुरु-दीक्षा प्राप्त की।

वेदविरोधी बौद्ध

कलियुग के सत्ताईस वर्ष बीत जाने पर वलि ने मय को शाक्य सिंह के रूप में भारत भूमि पर भेजा। वह शाक्य सिंह ही गौतमाचार्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह दैत्यपक्ष का वर्धक था। उसने तीर्थों में मायामय यन्त्र स्थापित किये, इसके बीच जो भी जाते वे सब वेदविरोधी बौद्ध बन जाते थे।

कान्यकुब्ज नगर

कन्या के द्वारा रचित सुन्दर व रमणीक नगर देखने में आया। जिसके उत्तर में गंगा हैं, दक्षिण में नास पाण्डुरा, पश्चिम में ईश नाम की सरिता और पूर्व में पक्षी-मर्कट हैं। यह ग्राम कुब्जभूत था—कुब्ज जैसा लगता है, इसलिए इसे कान्य कुब्ज कहते हैं।

महामोह (मुहम्मद)

यह महामोह म्लेच्छ तथा पिशाचों के धर्म का अनुयायी था। यह गजनी (राजनी) नाम की नगरी का अधिपति था।

गोमयं रोचना मूत्रं क्षीरं दधि घृतं गवाम्।
षडंगानि पवित्राणि संशुद्धिकरणानि च।।

(भविष्य पु. उ. त्त.प. ६९)

पञ्चगावः–नन्दा सुभद्रा सुरभिः, सुशीला बहुला....। क्षीरोदतोयसम्भूताः।

राजा धर्मवल्लभः, पुण्यपुरम्

मन्त्री सत्यप्रकाशः राज्ञः प्रश्नः–मन्त्रिन्! आनन्दः कतिविधः?

मन्त्री–चतुर्विधः–१. ब्रह्मचर्याश्रमानन्दः ब्रह्मानन्दः श्रेष्ठः। २. गृहाश्रमानन्दः-विषयानन्दः, मध्यमः स्त्रीप्रधानः। ३. वानप्रस्थानन्दः सामान्यः। ४. संन्यासिनां शिवानन्दः श्रेष्ठः।

छः शुद्धिकारक व पवित्र

गोमय, गोरोचन, गोमूत्र, गोदुग्ध, गोदधि, और गोघृत—ये छः अत्यन्त पवित्र और शुद्धिकारक हैं।

पाँच गायें

क्षीरसमुद्र से पाँच दिव्य गायें समुद्भूत हुईं, जिनके नाम हैं—नन्दा, सुभद्रा, सुरभि, सुशीला और बहुला।

राजा धर्मवल्लभ

पुण्यपुर (पुणे) के राजा धर्मवल्लभ ने अपने मन्त्री सत्यप्रकाश से पूछा—मन्त्रीजी! बताओ, आनन्द कितने प्रकार का होता है।

मन्त्री ने कहा—राजन्! आनन्द चार प्रकार का होता है—

१. ब्रह्मचर्याश्रम का आनन्द, ब्रह्मचारी ब्रह्म (वेद) का अध्ययन करता है, ब्रह्म का चिन्तन करता है, वहः ब्रह्मानन्द में निमग्न रहता है, अतः यह आनन्द श्रेष्ठ है।

२. गृहस्थाश्रम का आनन्द, इसको विषयानन्द कहते हैं, क्योंकि गृहस्थाश्रमी विषयों के उपभोग में रहता है। यह स्त्री प्रधान आनन्द मध्यम है।

३. वानप्रस्थाश्रम का आनन्द, इस आश्रमी की संसार के सुखों की-कर्तव्यों की निवृत्ति प्रारम्भ हो जाती है, किन्तु संसार से पूरी तरह वैराग्य नहीं होता है। अतः यह आनन्द सामान्य है।

४. संन्यास आश्रम का आनन्द, इसमें वैराग्य परिपुष्ट हो चुका होता है, संन्यासी

सावित्री

मद्रदेशः। अश्वपतिः। शाल्वदेशः, द्युमत्सेनः। सत्यवान्। अद्यतनीये दिने एकवर्षपूर्णे मृत्युः।

सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति पण्डिताः।
सकृत् प्रदीयते कन्या त्रीण्येतानि सकृत्सकृत्।।

(भवि.पु.उत्तर प. १.२)

सावित्रीव्रतम्

भाद्रपदे शुक्लपक्षे द्वादशीतो दिनत्रयम्। श्रीसावित्र्याः पूजनं जपः ध्यानम्।

सतां सन्तो गतिर्नान्या शिष्याणां च गतिर्गुरुः।
वेदो वर्णाश्रमाणां च स्त्रीणां भर्ता सदा गतिः।।

१. वरः स्वस्रवोः नेत्रराज्यप्राप्तिः। २. पितुः पुत्रशतम्। ३. मम पुत्रशतम्। ४. ममपतिर्दीर्घायुः। ५. मम सदा धर्मे श्रद्धास्तु।

समस्त भूतों को शिवमय देखता है। अतः संन्यासी को अनुभूत होनेवाले आनन्द को शिवानन्द कहते हैं जो कि सर्वश्रेष्ठ है।

सावित्री

भद्र देश के राजा अश्वपति की गुणान्विता कन्या ने शाल्वदेश के निर्वासित राजा द्युमत्सेन के गुणवान् पुत्र सत्यवान् को वररूप में वर्णित कर लिया। नारदजी ने बताया कि आज के ही दिन एक वर्ष के बाद सत्यवान् की मृत्यु हो जायेगी। अश्वपति ने जब अपनी कन्या सावित्री को समझाया कि अपना निर्णय त्यागकर किसी अन्य युवक को वररूप में स्वीकार कर लो, तब सावित्री ने कहा—पिता जी! राजा एक बार बोलते हैं, पण्डित भी एक ही वचन बोलते हैं और कन्या भी एक बार ही दी जाती है—ये तीनों एक-एक बार ही होते हैं। अतः मेरा निर्णय अटल है।

पति की दीर्घायु के लिए सावित्री ने व्रत प्रारम्भ किया। भाद्रपद शुक्ल पक्ष में द्वादशी से लेकर तीन दिन भगवती सावित्री का नित्य पूजन, जप और ध्यान किया।

नियत समय पर यमराज सत्यवान् के प्राण लेकर चल दिये, पीछे-पीछे सती सावित्री भी चली जा रही थी। यमराज ने बहुत समझाया, किन्तु सावित्री ने कहा—सज्जनों की गति सन्तों से अतिरिक्त कहीं और नहीं है। शिष्य की गति गुरु है, वर्ण और आश्रमों की गति वेद है, इसी तरह स्त्रियों की गति सदा एकमात्र भर्ता है।

(१)

रूपसेन राजा/वीरवर-विद्वन्माला

वर्धमान नगर। प्रतिदिन सहस्र स्वर्ण मुद्रा। अधिकांश धन धर्मार्थ। स्वल्प से परिजन पालन। (भविष्यपु., प्रति.प. २)

(२)

उज्जयिनी। महाबल राजा। हरिदास दूत, पत्नी-भक्तिमाला सत्सङ्गिनी। कन्या-महादेवी। मुकुन्द-भ्राता। बुद्धिकोविद् + विशिष्ट विद्या। धीमान् गुरुपुत्र + दैवज्ञ। वामन-शब्दवेधी बाणज्ञ।

यमराज ने सावित्री के सतीत्व से प्रभावित होकर पाँच वरदान दिये—अन्धे श्वसुर को नेत्रज्योति और राज्यप्राप्ति, पिता अश्वपति को सौ पुत्र की प्राप्ति, स्वयं को सौ पुत्र की प्राप्ति, अपने पति की दीर्घायु और सावित्री की धर्म में सदा श्रद्धा का बना रहना।

राजा रूपसेन और वीरवर

वर्धमान नामक नगर में रूपसेन नाम का राजा रहता था। उसकी पत्नी का नाम विद्वन्माला था। राजा ने गुणवान् वीरवर की प्रतिदिन एक सहस्र मुद्रा वेतन निर्धारितकर रक्षक के रूप में नियुक्ति कर दी। राजा ने गुप्तचरों से जानकारी ली कि ये इतने धन का क्या करता है? ज्ञात हुआ कि यह अधिकांश धन धर्मकार्यों में व्यय कर देता है, बहुत ही स्वल्प धन से अपने परिवार का पालन करता है। राजा ने प्रसन्न होकर उसकी स्थायी नियुक्ति कर ली।

राजा महाबल और हरिदास

उज्जयिनी नगरी में महाबल नाम का एक राजा था। उसका एक विश्वसनीय दूत था, जिसका नाम था हरिदास। उसकी पत्नी का नाम भक्तिमाला था। उसके महादेवी नाम की कन्या थी और मुकुन्द नाम का पुत्र था।

उसकी कन्या महादेवी ने कहा—पिताजी! मेरा विवाह किसी योग्य व गुणवान् पुरुष के साथ ही करें।

एक दिन बुद्धिकोविद नामक विद्वान् ब्राह्मण ने अपनी विशिष्ट विद्याओं का हरिदास के सामने प्रदर्शन किया। उसकी विद्याओं से मुग्ध होकर हरिदास ने अपनी कन्या के योग्य समझकर उसे वरण कर लिया।

हरिदास के पुत्र मुकुन्द की विद्या पूर्ण होने पर उसके गुरु ने दक्षिणा के रूप उसकी बहिन महादेवी का विवाह अपने पुत्र दैवज्ञ के साथ करने को कहा! इस तरह मुकुन्द ने अपनी बहिन के लिए दैवज्ञ को वरण कर लिया।

(३)

चम्पापुरी। त्रिलोकसुन्दरी कन्या। चम्पकेश। सुलोचना रानी।

१. इन्द्रदत्तः-शास्त्रज्ञः सुन्दरः। २. धर्मदत्तः-धनुर्वेदज्ञः। ३. धनपालः-सर्वप्राणिभाषाज्ञः गुणी रूपवान्। ४. सर्वकलाविशारद : प्रतिदिनं पंचरत्नानि लब्धानि। पुण्य-आत्म-होम-पत्नी-भोजनाय विनियोगः।

उधर हरिदास की पत्नी भक्तिमाला ने भी शब्दवेधी बाण चलाने में कुशल व शास्त्रज्ञ वामन नामक ब्राह्मण को कन्या के लिए वरण कर लिया।

समय आने पर पिता-पुत्र तथा माता द्वारा वरण किये गये गुणवान् ब्राह्मण महादेवी को प्राप्त करने के लिए हरिदास के यहाँ आ पहुँचे। इतने में ही एक राक्षस कन्या का हरण करके ले गया।

दैवज्ञ से पूछा गया कि महादेवी अब कहाँ है? तो उसने बताया कि इस समय कन्या विन्ध्यपर्वत पर है। कोविद नामक ब्राह्मण ने विद्या से आकाशचारी विमान बनाया, उस पर बैठकर वे विप्र विन्ध्यपर्वत पर पहुँचे। शब्दवेधी बाण चलाने में निपुण वामन नाम के तीसरे ब्राह्मण ने बाण के द्वारा राक्षस को मार गिराया।

वेताल ने राजा विक्रमादित्य से पूछा—राजन्! आप बतलायें कि इन तीनों ब्राह्मणों में कन्या प्राप्त करने का अधिकारी कौन है?

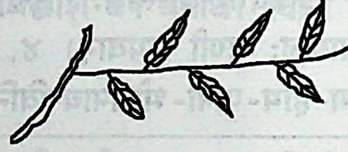
राजा ने उत्तर दिया—जिस विद्वान् गुरुपुत्र दैवज्ञ ने कन्या का पता बताया, वह कन्या के लिए पितृतुल्य है। जिस दूसरे ब्राह्मण बुद्धिकोविद ने अपने मन्त्र-बल के द्वारा उत्पन्न विमान से कन्या के पास पहुँचाया वह भाई के समान है, किन्तु जिस वामन नामक ब्राह्मण युवक ने शब्दवेधी बाणों से राक्षस को मार गिराया, वही वीर ब्राह्मण इस कन्या को प्राप्त करने का अधिकारी है।

चम्पापुरी

चम्पापुरी नगरी में चम्पकेश नाम का राजा रहता था, उसकी रानी का नाम सुलोचना और पुत्री का नाम त्रिलोकसुन्दरी था। त्रिलोकसुन्दरी के स्वयम्वर में इन्द्र आदि देवता मनुष्य बन आये। उनमें से इन्द्रदत्त ने कन्या के पिता से कहा—मैं शास्त्रज्ञ व सुन्दर हूँ, अतः अपनी पुत्री को मुझे समर्पित करें। दूसरे धर्मदत्त ने कहा—मैं धनुर्विद्या में कुशल हूँ, मुझे अपनी कन्या प्रदान करें। तीसरे ने कहा—मेरा नाम धनपाल है, मैं सभी प्राणियों की भाषा जानता हूँ, गुणी व रूपवान् हूँ; अतः मुझे कन्या दें, चौथे ने कहा—राजन्! मैं सर्वकलाविशारद हूँ, प्रतिदिन उद्योग से पाँच रत्न प्राप्तकर एक रत्न पुण्य के लिए, एक रत्न आत्मा के लिए, एक रत्न होम के लिए एक रत्न पत्नी के लिए और शेष एक रत्न भोजन के लिए व्यय करता हूँ। अतः अपनी कन्या मुझे प्रदान करें।

८२०२ द्वापरशेषे भारतावनिर्म्लेच्छदेशीयनृपैः प्रभाविता। म्लेच्छानामादिपुरुष आदमः। तस्य स्त्री हव्यवती आसीत्। इमौ इन्द्रियदमनपरायणौ आस्ताम्।

उत्तर		
पाञ्चाल	मगध	
आनर्त	अवन्ति	कलिंग



त्वं निम्ब कटुकात्मासि
आदित्यनिलयस्तथा।
सर्वरोगहरः शान्तो
भव मे प्राशनं सदा।
(भवि.पु.ब्रा.प. २१५)

राजा निर्णय नहीं कर सका कि अपनी कन्या किसे दूँ। वेताल ने पूछा—हे राजन्! इनमें से कौन इस कन्या के योग्य वर था?

राजा विक्रमादित्य ने कहा—वह रूपवती कन्या त्रिलोकसुन्दरी धर्मदत्त के योग्य है। क्योंकि इन्द्रदत्त शास्त्रज्ञ होने से द्विज कहा जायेगा। भाषा जानने वाला व धनधान्य का विस्तार करनेवाला धनपाल वणिक् कहा जायेगा, तीसरा कलाविशारद रत्नों का व्यापारी शूद्र कहा जायेगा।

सवर्ण के लिए ही कन्या योग्य होती है, अतः धनुर्वेदशास्त्र में निपुण धर्मदत्त वर्ण से क्षत्रिय कहा जायेगा, इसलिए त्रिलोकसुन्दरी का विवाह धर्मदत्त के साथ किया जाना चाहिए।

आदम पुरुष

द्वापर के आठ हजार दो सौ दो वर्ष शेष रहते भारतभूमि म्लेच्छदेशीय राजाओं से प्रभावित होने लगी। म्लेच्छों का आदि पुरुष आदम था, हव्यवती नाम की उसकी स्त्री थी, ये दोनों ही इन्द्रिय-दमन-परायण थे।

पाञ्चालादि पाँच देश।.

सर्वरोगहर निम्ब

इस श्लोक मन्त्र द्वारा निम्ब (नीम) की प्रार्थना कर प्राशन करना चाहिए।

हे निम्ब! तुम भगवान् सूर्य के आश्रय स्थान हो। तुम कटु स्वभाव वाले हो, तुम्हारे भक्षण करने से मेरे सभी रोग सदा के लिए नष्ट हो जायँ और तुम मेरे लिए शान्त स्वरूप हो जाओ।

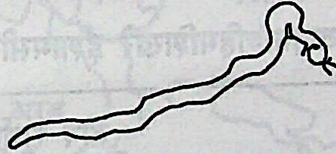
षड्विंशति नरकदा दोषाः

१. अधमः। २. विषमः। ३. पशुः ४. पिशुनः ५. कृपणः। ६. पापिष्ठः। ७. नष्टः ८. रुष्टः। ९. दुष्टः। १०. पुष्टः, ११. हृष्टः १२. काणः। १३. अन्धः १४. खण्डः, १५. चण्डः। १६. कुष्ठः १७. दत्तहारकः १८. वक्ता १९. कदर्यः २०. दण्डः, २१. नीचः, २२. खलः। २३. वाचालः। २४. चपलः, २५. मलीमसः। २६. स्तेयी। (भवि. पु. म.प. प्र. भा.)

३. मोक्षचिन्तांजगच्चिन्तकः। १०. एकाकी मिष्टभक्षकः।
१२. श्रुतिः। १३. स्मृतिः। १८. अज्ञानी धर्मोपदेष्टा।
२०. उद्दण्डः।



'ॐ कुरु कुल्ले फट् स्वाहा'



अहिंसकस्य दान्तस्य धर्मार्जितधनस्य च।
नित्यं च नियमस्थस्य सदा सानुग्रहा ग्रह्माः।। (ब्रा.प. ५६.३०)

नरक को ले जाने वाले छब्बीस दोष

नरकगामी मनुष्यों के छब्बीस दोष बताये गये हैं—१. अधम (अधम संज्ञक दोष), २. विषम (सामने प्रिय वचन और बाद में विष वमन कराने वाले), ३. पशु (मोक्ष की चिन्ता छोड़कर सांसारिक चिन्ताओं में श्रम करने वाले), ४. पिशुन (छल-छद्म से व्यक्ति को ठगने वाले) ५. कृपण, ६. पापिष्ठ, ७. नष्ट (नष्ट संज्ञक दोषों से युक्त), ८. रुष्ट, ९. दुष्ट, १०. पुष्ट, (अकेले ही मधुरमिष्ठान्न भक्षक) ११. हृष्ट, १२. काण, १३. अन्ध (श्रुति और स्मृति ये दोनों नेत्र हैं, इनसे रहित व्यक्ति, अन्धा और काना है), १४. खण्ड, १५. चण्ड, १६. कुष्ठ, १७. दत्तहारक, १८. वक्ता (अज्ञानी होते हुए भी धर्मोपदेश), १९. कन्दर्य (कञ्जूस), २०. दण्ड (उद्दण्ड), २१. नीच, २२. खल, २३. वाचाल, २४. चपल, २५. मलीमस (मलिन रहने वाला) और छब्बीसवाँ स्तेयी (चोर)। ये सब नरक को प्राप्त कराने वाले दोष हैं।

ॐ कुरु कुल्ले फट् स्वाहा (यह सर्प-अपसारण का मन्त्र है)।

ग्रहों का अनुग्रह

अहिंसक, जितेन्द्रिय, नियम में स्थित और न्याय से धनार्जन करनेवाले पुरुषों पर ग्रहों का सदा अनुग्रह रहता है।

जम्बूद्वीपे त्रयः सूर्यपीठाः

१. इन्द्रवनम्। २. मुण्डीरम्। (मूलस्थानं-मुल्तानम्)। ३. कालप्रियः (कालपी)।

तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलभोक्ता तिलोदकी।
तिलहोता च दाता च षट्तिलो नावसीदति।।

(भवि.पु. उत्तर प. १२२)

म्लेच्छवंशः–आदमः, हव्यवती-दम्पती।
रूद्रविक्रमो वैतालः–विक्रमादित्यः। वैताल पञ्चविशतिः। (भविष्यपु.प्रतिसर्गः)
रामांशः, कृष्णांशः।
राजा-शालिवाहनः हिमशिखरे ईशामसीहं दृष्टवान्।

तीन सूर्यपीठ

जम्बू द्वीप में तीन विशिष्ट सूर्यपीठ हैं—इन्द्रवन, मुण्डीर और कालप्रिय। इनमें इन्द्रवन सम्भवतः इन्दौर है, मुण्डीर मूल स्थान–मुल्तान है और कालपी कालप्रिय है।

तिल की महिमा

तिल का उबटन, तिल मिश्रित जल से स्नान, तिलों से पितृतर्पण, तिल का हवन, तिल का दान और तिल से बनी हुई सामग्री (भोज्य पदार्थ) का भोजन करने से किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होता।

म्लेच्छ–वंश

म्लेच्छ वंश का आदि पुरुष आदम था, उसकी पत्नी का नाम हव्यवती (हौवा) था। आदम और हव्यवती से म्लेच्छ-वंश की वृद्धि हुई।

विक्रमादित्य और रुद्रवेताल

भगवान् शिव की आज्ञा से परम शिवोपासक ब्राह्मण शिवदृष्टि ही विक्रमादित्य के रूप में उत्पन्न हुआ। भगवती पार्वती द्वारा प्रेषित पराक्रमी रुद्रवेताल तपस्वी विक्रमादित्य की रक्षा में सदा तत्पर रहता था। अन्य वेतालों की संख्या पच्चीस थी।

रामांश और कृष्णांश

कलियुग में राम के अंश से आल्हा और कृष्ण के अंश से ऊदल उत्पन्न हुए। इन दोनों की वीरता की गाथा भारतीय जन मानस में प्रसिद्ध हैं।

राजा शालिवाहन और ईशामसीह

राजा वीर विक्रमादित्य के पौत्र राजा शालिवाहन ने एक बार हिमशिखर पर एक

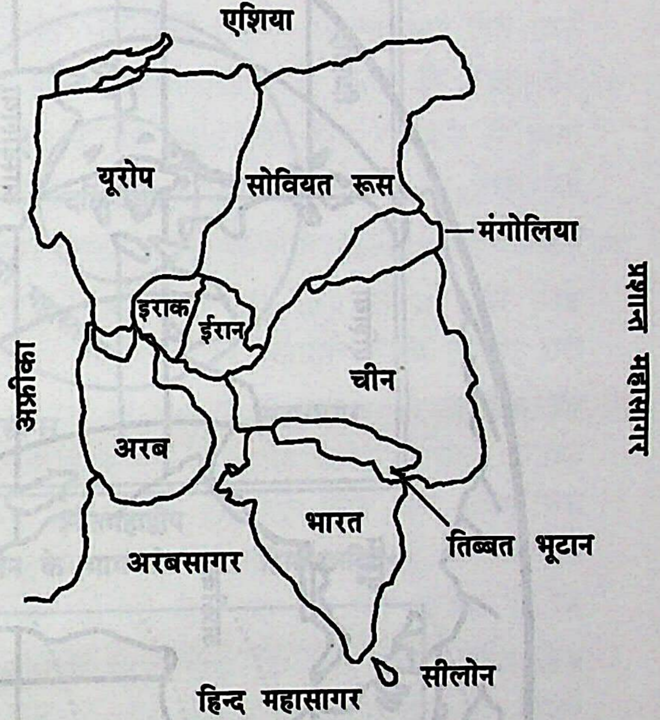
भोजराजेन सह महामदस्य कथा। भोजः मरुस्थले (मदीने) महादेवस्य दर्शनं पूजनं स्तुतिंश्चाकरोत्।

अनामिका-सूर्यः।

कनिष्ठा-मघवा।



वायुः प्रदेशिनी। प्रजापतिर्मध्यमा। अंगुष्ठोऽग्निः। सर्वदेवमयः करो विप्रस्य दक्षिणः



सुन्दर पुरुष को देखा। पूछने पर उस पुरुष ने बताया कि मैं ईश पुत्र हूँ और कुमारी के गर्भ से उत्पन्न हुआ हूँ। म्लेच्छ प्रदेश में मैं मसीह बनकर आया हूँ। दस्युओं से ईशामसी नाम की कन्या प्राप्त कर मैंने मसीहत्व प्राप्त किया है। अतः मैं ईशामसीह हूँ।

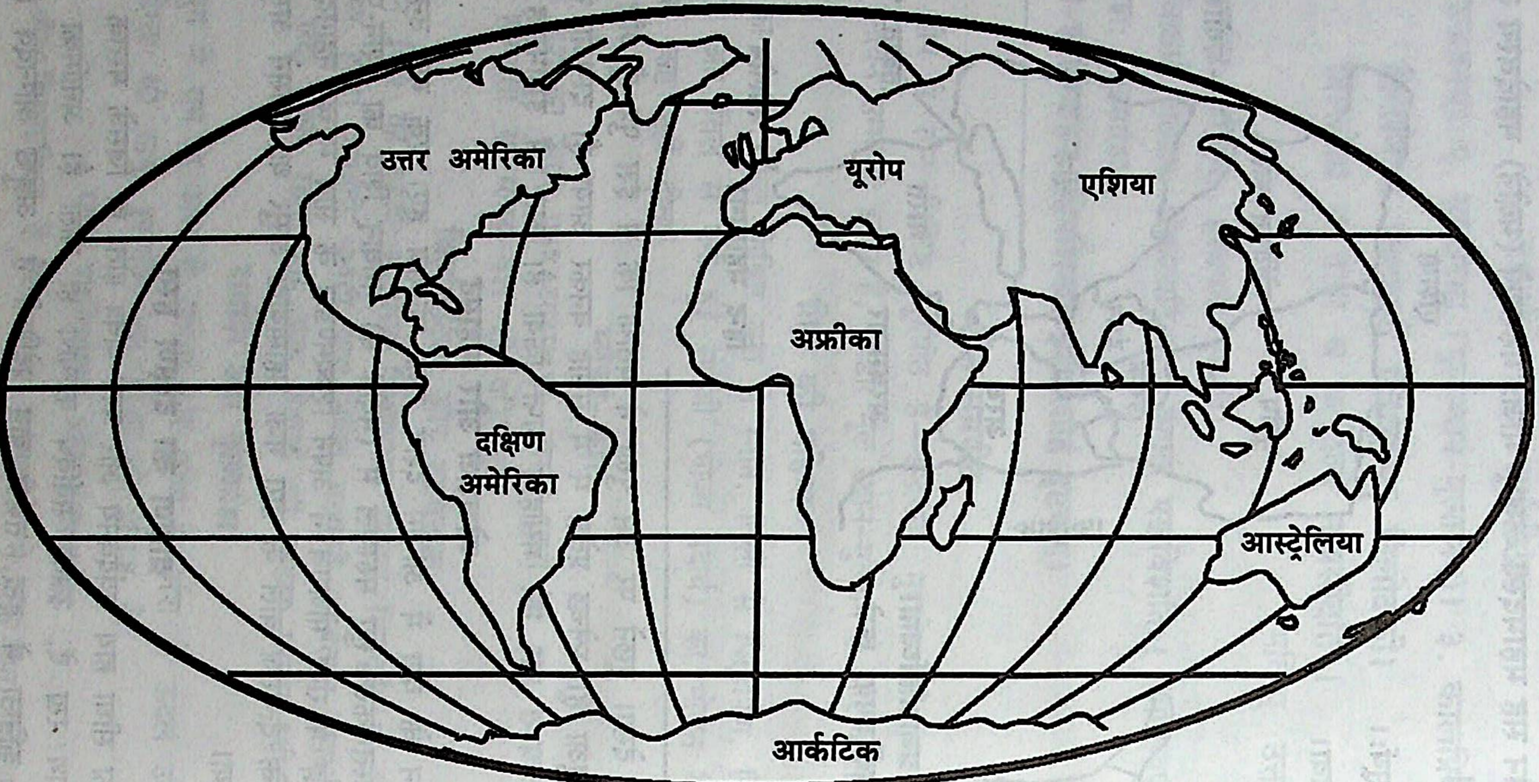
भोजराज और महामद

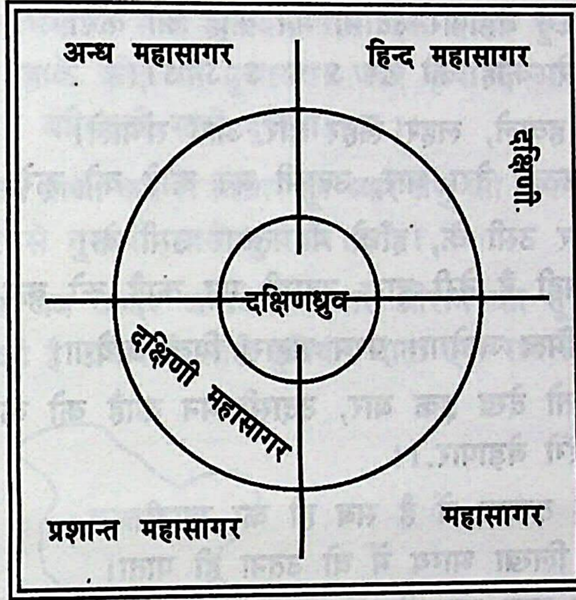
शालिवाहन के वंश में अन्तिम दशवें राजा भोजराज हुए। एक बार उन्होंने म्लेच्छ राजाओं को परास्त करते हुए मरुस्थल में (मदीने में) भगवान् शिव का दर्शन-पूजन-स्तवन किया। उसी प्रसङ्ग में राजा भोजराज ने अपने शिष्यमण्डल के साथ म्लेच्छ महामद (मुहम्मद) को देखा, जो कि दैत्यराज बलि के द्वारा भेजा महामायावी असुर था, जिसने असुर समुदाय को बढ़ावा दिया।

ब्राह्मण का दक्षिण हस्त

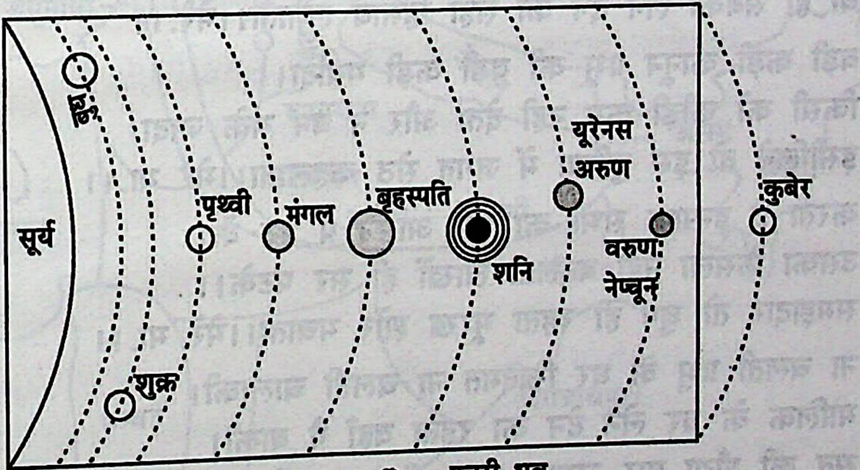
ब्राह्मण का सीधा हाथ सर्वदेवमय और परम पवित्र होता है। जिसके मस्तक पर ब्राह्मण अपना सीधा हाथ रख दें, उसका सर्वविध कल्याण हो जाता है। अनामिका अंगुली में सूर्य स्थित है, कनिष्ठा में इन्द्र, तर्जनी वायु प्रदेशिनी है, अङ्गुष्ठ अग्निदेव है।

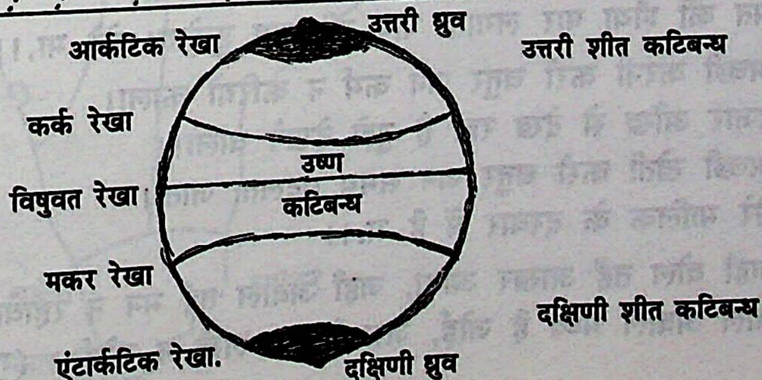
विश्व





श्वेतमहाद्वीप
भारत और चीन के भाग से बड़ा। हिमाच्छादित।





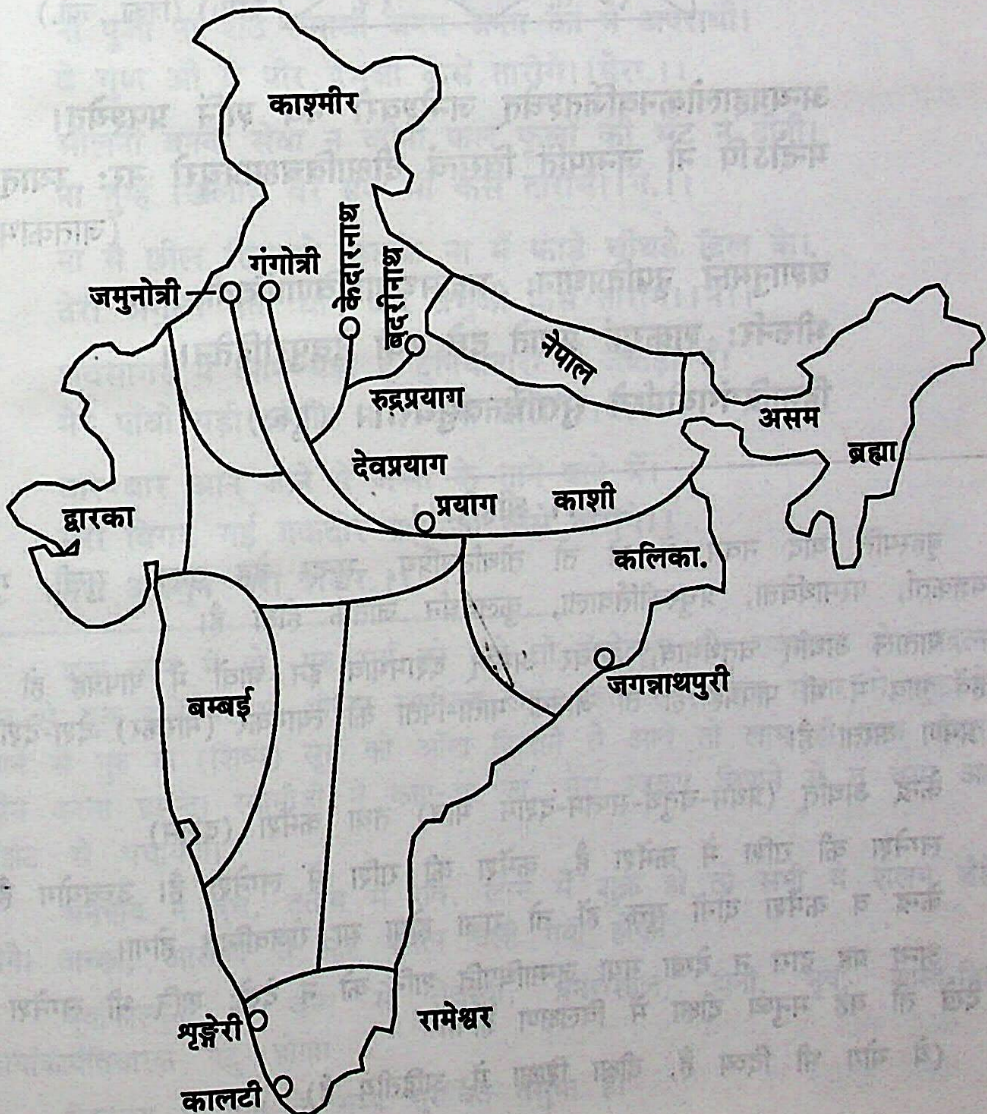
तेरा रामजी करेंगे बेड़ापार उदासी मन काहे को करे।
काहे को डरे रे काहे को डरे ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ।।
नैया तेरी राम हवाले, लहर लहर हरि आप संभाले।
हरि आप ही उठावे तेरा भार, उदासी मन काहे को करे।।तेरा.।।
काबू में मँझधार उसी के, हाँथो में पतवार उसी के।
तेरी हार भी नही है तेरी हार, उदासी मन काहै को करे।।तेरा.।।
सहज किनारा मिल जायेगा। परम सहारा मिल जायेगा।
डोरी सौंप के तो देख इक बार, उदासी मन काहै को करे।।
तेरा रामजी करेंगे बेड़ापार.।।
मेरे मालिक के दरबार में है सब ही का खाता।
जितना जिसके लिखा भाग्य में वो उतना ही पाता।
क्या साधू क्या सन्त गृहस्थी क्या राजा क्या रानी।
मालिक की पुस्तक में लिखी सबकी कर्म कहानी।।
वो ही सबका लेन देन का सही हिसाब लगाता।।मेरे.।।
बड़ी कड़ी कानून प्रभू की बड़ी कड़ी मर्यादा।
किसी को कौड़ी कम नही देता और न बन सके जादा।
इसीलिये तो इस दुनिया में जगत सेठ कहलाता।।मेरे मा.।।
करता है इन्साफ सभी का प्रभु आसन पे डट के।
उसका फैसला नहीं बदलता लाखों ही सर पटके।।
समझदार तो चुप ही रहता मूरख शोर मचाता।।मेरे मा.।।
ना चलती प्रभु के घर खिदमत ना चलती चालाकी।
मालिक के घर लेन देन का रहता वहाँ पै बाकी।
सत की शैया पार लगाता पाप की नाव डुबोता।।मेरे मा.।।
अच्छी करनी करो चतुर जन कर्म न करियो काला।
हजार आँख से देख रहा है तुझे देखने वाला।।
अच्छी खेती करो चतुर जन समय बदलता जाता।
मेरे मालिक के दरबार में है स.।।

जहाँ बोल तहँ आखर आवा, जहाँ अबोल तहँ मन न रहावा।
बोल अबोल मध्य है जोई, जस है तस लखै न कोई।। (गुरु ग्रन्थ साहब)

दाता एक राम भिखारी सारी दुनिया। राम एक देवता पुजारी सारी दुनिया।।
द्वारा पर उसके जाके कोई भी पुकारता। परम कृपा दे अपनी भव से उबारता।।
ऐसे दीन दया पै बलिहारी सारी दुनिया।।दा.।।

दो दिन का जीवन प्राणी कर ले विचार तू। प्यारे प्रभु को अपने मन में निहार तू।।
विना हरि प्यार से दुखारी सारी दुनिया।।दा.।।

नाम का प्रमाण जब अन्दर जगायेगा। प्यारे श्रीराम का तू दरशन पायेगा।
ज्योति से जिसकी है उजियारी सारी दुनिया। दाता एक राम भिखारी सारी दुनिया।।



विविधतीर्थकरः सुकलेवरः सुरगुरौ नवमे सुखवान् गुणी।
त्रिदशयज्ञपरः परमार्थवित् प्रचुरकीर्तिकरः कुलवर्धनः।।

४ १०
पाताले चाम्बरे पापो,
द्वादशे च यदा भवेत्।
पितरं मातरं हत्वा
देशाद्देशान्तरं व्रजेत्।।
(वृ.पा.पू.ख.)

६ बुधः
५ शुक्र चं.
शनि, के.
७ रविः
३
८ भौमः
२
९
११
१ गुरुः
१० रा.
१२

केन्द्र कर्मेशयोर्योगे
राजा वै राजवन्दितः।
(वृ.पा.पू.ख.)

(मारकेशदशाया-
मष्टमेशपञ्चानेशदशा मृत्यु
योगः) (त्रिका. ज्यो.)

अन्यग्रहालोकनवर्जितश्चेत् जन्मेश्वरो नैव शनिं प्रपश्येत्।
मन्दोऽपि नो जन्मपतिं विसत्वं दीक्षाविचक्षाप्रचुरो नरः स्यात्।।
(जातकाभरणे)

वंशानुमानं नृपतिप्रधानः सद्रत्नभूषाद्रविणान्वितो वा।
भीरुर्नरः शुक्रगृहं प्रयाते दृष्टे रवौ देवपुरोहितेन।।
हिमाद्रिगंगयोर्मध्ये सुरार्चितवसुंधरा।। (गुरुः)

।। श्रीहरिः।।

बृहस्पति यदि नवम में हों तो तीर्थाटनप्रिय, सुन्दर देह वाला, सुखी, गुणी, देवयज्ञकर्ता, परमार्थवेत्ता, प्रचुरकीर्तिवाला, कुलवर्धन जातक होता है।

पाताल अर्थात् चतुर्थभाव, अम्बर अर्थात् दशमभाव इन भावों में पापग्रह हों तथा बारहवें भाव में भी पापग्रह हो तो जातक माता-पिता को त्यागकर (मारकर) देश-देशान्तर में भ्रमण करता है।

केन्द्र अर्थात् (प्रथम-चतुर्थ-सप्तम-दशम भाव) तथा कर्मेश (दशम)

लग्नेश की राशि में कर्मेश है, कर्मेश की राशि में लग्नेश है। उच्चयोग है।

केन्द्र व कर्मेश दोनों युक्त हों तो राजा होगा या राजवन्दित होगा।

अन्य ग्रह द्वारा न देखा गया जन्माधिपति शनि को न देखे; शनि भी लग्नेश को न देखे तो वह मनुष्य दीक्षा में विलक्षण होगा।

(ये योग भी दिव्य हैं, दीक्षा शिक्षा में अद्वितीय है)

द्युतिमानटनो दाता नृपशास्त्रविशारदः।
कार्याकार्यविचारज्ञः भाग्यनक्षत्रगः पटुः।। (पूर्वाफा.)

वित्तगतः शशिपुत्रो भ्रातरि वासरनाथः।
लग्नगते भृगुपुत्रे स्युः शलभा इव सर्वे।।
(नारदसंहिता यात्रा प्र. ३३.३९)

मेरा अवगुन भरा है शरीर नाथ! कैसे तारोगे।
मेरे मन मे बँधे ना धीर हमें कैसे तारोगे।।
ना पूजा ना पाठ समाधी जनम-जनम का मैं अपराधी।
वे गुण औ वे पीर प्रभुजी कैसे तारोगे।।मेरा.।।

भीलनी बनके सेवा न कीनी फल फूलों की भेंट न दीनी।
ना तुम्हें खिलाये बेर हमें भी कैसे तारोगे।।मे.।।

ना मै छील खिलाये छिलके ना मैं फाड़े चीथड़े दिल के।
तेरी अँगुली मेवाँ धान चीर प्रभुजी कैसे तारोगे।।में।।

भवसागर में आन पड़ा हूँ दुनियादारों में जकड़ा हूँ।
मेर पाँवो पड़ी जंजीर नाथ कैसे तारोगे।।मे.।।

बार-बार आने जाने में जन्मो के ताने बाने में।
मेरी बिगड़ गई तकदीर प्रभु जी कैसे तारोगे।।
मेरा अवगुन भरा शरीर.।।

शुक्र लग्न में हो, गुरु सूर्य को देखे तो वंशोत्कृष्ट हो, राजप्रधान हो, सद्रत्नभूषण धन से युक्त होने पर भी भीरुता स्थायित्व लेकर रहती है (भीरुता संसार से शुक्र के घर आने से गुरु के (शिष्य) सूर्य को आँख दिखाने से आवे तो लाभ ही लाभ भीरुता को कौन करता पसन्द। स्वामीजी ने कहा-आ जा, मेरा स्वरूप छिपाने में तू काम आयेगी, झंझट से बचायेगी।

धनभाव में बुध, तृतीय में रवि, लग्न में शुक्र हो तो सभी ये शलभ जैसे ही होंगे। अच्छा, आसानी से मोह ममता चली गयी होगी।

पूर्वाफाल्गुनी में जन्म से तेजस्वी, भ्रमणशील, दानी, नृप, शास्त्र-विज्ञाता, कार्याकार्यविचारक पटु होगा।

हिमालय व गंगा के मध्य सुरार्चित वसुधा है।

कभी इन्सान तूफानों से घबराया नहीं करते।
वह वन्दे क्या मुसीबत में जो मुस्काया नहीं करते।।

गिराये जायें वह गिरि से या गिरि भी आ पड़े उन पर।
भयानक मौत भी आये तो भय खाया नहीं करते।।

सदाकत के लहू से सींचकर पाले हों जो गुच्चे।
खिजों में भी कभी वह फूल मुरझाया नही करते।।

भरोसा है जिन्हें अपने सिदक पर और ईश्वर पर।
तमन्नाओं में दामन मन का उलझाया नहीं करते।।

जो दुःख सर्दी और गर्मी को हँस कर सहन करते हैं।
बिना पानी के भी वह कमल मुरझाया नहीं करते।।

जो आकर राज जाने का समझ पाते हैं नत्थासिंह।
वह जग में इक दफा आकर के फिर आया नहीं करते।

श्वास भक्ति में जिनके गुजर जायेंगे।
मुक्ति नगरी को वो ही वशर जायेंगे।।

चैन पायेंगे हरगिज न परलोक में।
खतम पापों में कर जो उमर जायेंगे।।

रहना कायम किसी को न संसार में।
जीके लाखों वरष अन्त मर जायेंगे।।

जिनकी नजरों में भगवान् समाया नहीं।
वे भटकते इधर से उधर जायेंगे।

कतलेयामों में बाँधी जिन्होंने कमर।
करके अपना भी जखमी जिगर जायेंगे।।

गरीबों का अगर कुछ भला न किया।
तेरी आशा के मोती बिखर जायेंगे।।

क्यों गिराये किसी दिल पे तू बिजलियाँ।
कौन जालिम जो जुल्मों में बच जायेंगे।।

काम नेकी के चन्दन जिन्होंने किये।
बकते मुरदन वे सीना सवर जायेंगे।।

ज्ञानी का नाच/रागनट/दीपचन्दी

नाचूं मैं नटराजरे, नाचूँ मैं महराज।
सूरज नाचूं तारे नाचूं, बन महताब रे।।
नाचूं मैं नटराज रे।

तन तेरे में मन हो नाचूं, नाचूं नाड़ी नाड़ रे।
बादर नाचूं वायू नाचूं, नाचूं नदी अरु नाव रे।
जर्रह नाचूं समुद्र नाचूं, नाचूं मोघरा काज रे।
राम ही नाचत राम ही बाजत, राम ही पूरा साज रे।।
नाचूं मैं नटराज रे।।

कहा कोउ प्रेम विसाहन जाय।
महँगा बड़ा गथ काम न आवै, शिरके मोल बिकाय।।

तन मन धन पहिले अरपन करि, जग के सुख न सुहाय।
तजि आया आपुहि होइ जीवै, जिन अनन्त सुखदाय।।

अजपा जाप अकथ को कथनो, अलख लखन किन पाय।
भीखा अविगत की गति न्यारी, मन बुधि चित न समाय।



भैरवी, ता. चलन्त

नजर आया है हरसूं मह, जमाल अपना मुबारक हो।
वह मैं हूँ इस खुशी में दिल का भर आना मुबारक हो।।

यह उरयानी रूखे खुरशीद की जो पर्दा हयात थी।
हुआ अब फाश पर्दा सितर उड़ जाना मुबारक हो।।

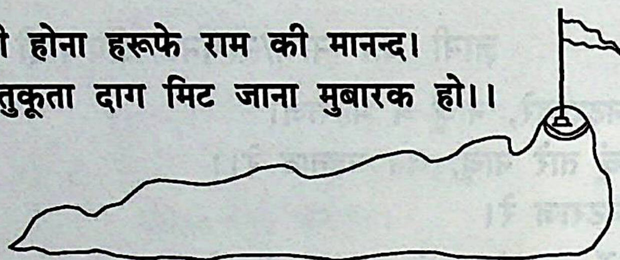
यह जिस्मो इश्म का कांटा जो बेहद सा खड़कता था।
खलश सब मिट गई कांटा निकल जाना मुबारक हो।।

तमसखर से हुये ये कैद साढ़े तीन हाथों में
बले अब वुस्ते फिकरो तखय्यल से भी बढ़ जाना मुबारक हो।

अजब तसखीर आलमगीर लाई सलतनत आली।
मेह वो माही का फरमा को बजा लाना मुबारक हो।

नख दशां हरज का मुतलिक न अंदेशा खलल का बाकी।
फुलेरे का बुलन्दी पर ये लहराना मुबारक हो।।

तअल्लुक से बरी होना हरूफे राम की मानन्द।
हरेक पहलू से तुकूता दाग मिट जाना मुबारक हो।।



ॐ

सूली उमर घर करे विष का करे अहार।
तिनका काल क्या करे आठ पहर हुशियार।। (कबीर)

ज्ञानी की शैर/राग कल्याण त्रिताल

यह खैर क्या है अजब अनोखा कि राम मुझमें मैं राम में हूँ।
बगैर सूरत अजब है जलवा कि राम मुझमें मैं राम में हूँ।।
मरक्काय हुस्ना इश्क हूँ मैं मुझी में ताजो न्याज सब है।
हूँ अपनी सूरत पै आप सैदा कि राम मुझ में मैं राम में हूँ।।
जमाना आइना राम का है हरेक सूरत में वो है पैदा।
जो चश्मे हक की खुली तो देखा कि राम मुझमें मै राम में हूँ।।
वो मुझसे हर रंग में मिला है कि गुल से बू भी कभी जुदा है।
हवावो दरिया का है तमाशा कि राम मुझमें मैं राम में हूँ।।
सबब बताऊँ मैं वजद का क्या है क्या जो दरपर्दा देखता हूँ।
सदा ये हर साज से है पैदा कि राम मुझमें मैं राम में हूँ।।
मकान पूछो तो लामकां था न राम ही था न मै वहाँ था।
लिया जो करवट तो होश आया कि राम मुझमें मैं राम में हूँ।।
अलललातार है पाक जलवा कि दिल बना नूरे बक सीना।
तड़प के दिल यूँ पुकार उट्ठा कि राम मुझमें मैं राम में हूँ।।

।।ज्योति निरंजन ओमकार अरंकार सोहं सत्यनाम।।

***



सम्पर्क सूत्र

पवन कुमार

498/28 साउथ सिविल लाइन,
मुज्जफरनगर, उत्तर प्रदेश

पिनकोड - 251001

फोन नं. : 09359984709